

# धरुवती गद्य-काव्यी कऱ समीक्षात्मक अधुयन

(पंडितराज जगन्नाथ तक)

[ A Cntical Study Of Later Gadya-Kavyas ]

( Upto PANDITRAJ JAGANNATH )

१ २०२३ विक्रमाब्द

लेखिका  
श्रीमती मीना श्रीवास्तवा, एम० ए०

विषय-सूची

भूमिका

पृष्ठ संख्या

प्रथम भाग

प्रथम अध्याय -- विषय-प्रवेश

	१ - ६७
(अ) प्रस्ताव शोध का विषय	१ - ६
(ब) काव्य स्वरूप एवं उसकी सम्भावनाएँ	७ - ५८
(स) गद्य-काव्य का स्वरूप और उसके भेद	५९ - ६२
(१) विभिन्न दृष्टियों से सामान्य काव्य के भेद	५९ - ६४
(२) गद्य-काव्य का स्वरूप एवं विशेषताएँ	६४ - ७६
भारतीय गद्य-काव्य और ग्रीक गद्य-काव्य	६७ - ६९
(ग) गद्य-काव्य के भेद	७६ - ९२
(१) कथा और आख्यायिका तथा दोनों में अन्तर	७६ - ८६
(कथा और आख्यायिका में धारणा और दृष्टी- के विचार)	८४ - ८५
(२) गद्य-काव्य के अन्य भेद	८७ - ९२
(द) गद्य-काव्य का चम्पू काव्य से भेद	९३ - ९७



द्वितीय भाग -- उत्तरकाठीन गद्य-काव्यों के जीवनचरित का सामान्य परिचय ।

६८ - १४६

भोज -- समय, रचनायें एवं संबंधी जीवन-परिचय	१०३ - १०६
धनपाल -- जीवन-परिचय, कृतियाँ, काव्य संबंधों विचार एवं दार्शनिक विचार ।	१०६ - ११६
बौद्धदेव -- कृतियाँ, समय एवं उनके दार्शनिक विचार ।	११६ - १३०
वामनभट्टबाण -- समय, सामान्य परिचय तथा रचनायें	१३० - १३४
वासुदेव -- समय तथा रचनायें	१३६ - १३६
पंडितराजज्ञानाथ -- सामान्य परिचय, रचनायें तथा समय	१४० - १४६

### द्वितीय भाग

प्रथम अध्याय -- गद्य-काव्यों की कथावस्तु ४४० - १६०

उत्तरकाठीन गद्य-काव्यों की कथावस्तु का सामान्य निरूपण १४०-४१

झुंगारमंजरी की कथावस्तु एवं उनकी समीक्षा	१४६ - १४८
तिलकमंजरी ,, ,, ,,	१४८ - १६२
गद्यचिन्तामणि ,, ,, ,,	१६२ - १८०
वैमनूपाख्यचरितम् ,, ,, ,,	१८० - १८२
रामकथा ,, ,, ,,	१८२ - १८४
जासकविलास ,, ,, ,,	१८४ - १८६

द्वितीय अध्याय -- गद्य-काव्यों की शैली १६८ - २४०

शैली के गुण	१६८
शैली और रीति में अन्तर	१६६
रीतियों के आधार	१६६ - २०१
गद्य-काव्यों की शैलियाँ --	२०१ - २०३
भोज की शैली	२०३ - २०६
धनपाल की शैली	२१० - २१६
बौद्धदेव की शैली	२१६ - २२६
वामनभट्ट बाण की शैली	२२६ - २३३
वासुदेव की शैली	२३३ - २३८

तृतीय अध्याय -- अंकार विधान

281-286

अंकारों की आवश्यकता एवं गणकाव्यों में उनका स्थान 281-282

शृंगारमंजरी का अंकार विधान	282-282
तिलकमंजरी का	282-288
गद्यचिन्तामणि का	288-290
कैमभूपालचरितम् का	290-293
रामकथा का	293-297
आसफ विलास का	297-299

चतुर्थ अध्याय -- रस-परिपाक

297-347

रस का महत्त्व तथा गणकाव्यों में उसका स्थान	297-300
शृंगारमंजरी में रस निरूपण	300-307
तिलकमंजरी में रस निरूपण	307-330
गद्यचिन्तामणि में रस निरूपण	330-342
कैमभूपालचरितम् में रस निरूपण	342-347
रामकथा में रस निरूपण	347-349
आसफ विलास में रस निरूपण	349-350

पंचम अध्याय -- प्रकृति-निरूपण

347-493

मानव और प्रकृति का सम्बन्ध	347
कवि और प्रकृति का सम्बन्ध	347-360
काव्य में प्रयुक्त प्रकृति के विविध रूप	360-362
शृंगारमंजरी में प्रकृति निरूपण	362-368
तिलकमंजरी में	368-370
गद्यचिन्तामणि में	370-380
कैमभूपालचरितम् में	380-382
रामकथा में	382-383
आसफ विलास में	383-384

चतुर्थ अध्याय -- पात्रों का चरित्र-चित्रण

४१४-४२०

काव्य में चरित्र-चित्रण की आवश्यकता

४१४-४१५

शृंगारसंजरी के पात्र

४१५-४२१

तिलकसंजरी के पात्र

४२१-४३६

गद्यचिन्तामणि के पात्र

४३६-४४२

कैमभूपालचरितम् के पात्र

४४२-४४८

रामकथा के पात्र

४४८-४४९

बासकविलास के पात्र

४४९-४५०

चतुर्थ अध्याय -- सांस्कृतिक अध्ययन

४५१-४५६

कवि और समाज का सम्बन्ध तथा समाज का उसको कृतियों पर प्रभाव ।

४५१-४५२

शृंगारसंजरी में प्रतिपादित सामाजिक, वार्षिक और राजनीतिक दृश्यों का चित्रण ।

४५२-४५६

तिलकसंजरी में प्रतिपादित सामाजिक, राजनीतिक और वार्षिक स्थितियों का चित्रण ।

४५६-४६६

गद्यचिन्तामणि में प्रतिपादित सामाजिक, राजनीतिक एवं वार्षिक दृश्यों का चित्रण ।

४६६-४६६

कैमभूपालचरितम् में प्रतिपादित राजनीतिक, सामाजिक और वार्षिक स्थितियों का चित्रण ।

४६६-४७७

रामकथा में प्रतिपादित स्थितियों का चित्रण

४७७-४७८

बासकविलास में प्रतिपादित स्थितियों का चित्रण

४७८-४७८

चतुर्थ अध्याय -- उपसंहार

४७८-४७८

परिशिष्ट --

क - क

संक्षिप्त नामावली --

ख - ख

ग्रन्थ - सूची --

ग - ग

## मुद्रिका

\*\*\*\*\*

संस्कृत भाषा अर्थात् अन्य भाषाओं की कौदा अत्यन्त कुछ कमनी जाती है परन्तु उस भाषा के अध्ययन में विशेष ध्यान मिलता है। अन्य भाषाओं के अध्ययन की अपेक्षा में उस भाषा के अध्ययन में अधिक समय व्यतीत करता था। सन् १९०९ को परीक्षा के उपरान्त अपने कुछ मित्रों के आदेशानुसार मुझे १४००० में प्रवेश लेना पड़ा था किन्तु उस और मेरा मन न लगा। मैं चाहता था कि अपना प्रिय संस्कृत भाषा में लिखे हुए काव्यों का अध्ययन करूं। अतः दो ही तीन माह बाद मैंने १४००० करना छोड़ दिया। फिर अपने शोध-कार्य के सम्बन्ध में मैं अपने पास श्रेष्ठ गुरु डा० आशाप्रसाद को मित्र से मिली और उनके संस्कृत-काव्यों के अध्ययन के विषय में अपना उत्सुकता प्रकट की। उन्होंने मुझे 'अर्वाचिन संस्कृत गद्य-काव्यों का एक सौदात्मक अध्ययन' करने का आदेश देकर मेरी इच्छा पूरी की।

मुँकि गद्य-काव्यों में केवल सुबन्धु, बाण तथा वण्डी की ही रक्तार्ये पूर्णतः या अंशतः हमारे सामने आयी थीं और अन्य गद्य-काव्य जाने लिये अर्थात् नवीन थे, अतः उनकी खोज करने की मुझे विशेष जिज्ञासा हुई। नये ग्रन्थों की खोज में तो फिर न जाने कितने गद्य-काव्य मिलने लगे। उनकी संख्या की तो अधिकता है किन्तु उनमें से वैशिष्ट्य की अपेक्षा कृत न्यूनता देखकर डा० मिश्र जो मेरे शोध के विषय की पंक्तिराज जान्नाथ तक सीमित करा दिया। वस्तुतः पंक्तिराज जान्नाथ के बाद हीने वाले कवियों में उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा के दर्शन बहुत कम होते हैं। स्वयं पंक्तिराज जान्नाथ का 'आगम-विलास' नामक केवल कुछ पंक्तियों का अत्यन्त लघुकाय गद्य-काव्य भी कुछ विशेष महत्त्व का नहीं है। इसमें केवल अनुप्रास एवं कुछ प्राकृतिक दृश्यों की उदाहरण दर्शनीय है। उफा तथा उत्प्रेक्षाओं के भी प्रयोग मिलते हैं। पर इसमें न कथा-विकास है, न रस-परिपाक और न ही लोक-चित्रण आदि। परवर्ती अनेक कवियों ने इसी प्रेरणा ग्रहण करके अपने काव्यों को अत्यन्त लघुकाय करना आरम्भ कर दिया जिनमें काव्य के उन्मूलक गुणों के विकास के लिए उपयुक्त क्षेत्र न रह गया। फलतः ये काव्य हीन कौटिक के होने लगे। साथ ही अधिकाधिक कवियों के द्वारा ऐसे सामान्य काव्यों

रचना के लिए प्रचार किए जाने पर लोटी-लोटी गण-दृष्टियों को भस्मार हो गई। मेरे कार्यों के अध्ययन में अधिक हो डेर होना पड़ा, फल ही न बच्यो ही। ४०-तीसरे ज्ञान अनुसन्धान के विषय को पंडितराज के 'आत्मविद्या' तक ही सीमित कर देना पड़ा।

मेरे अनुसन्धान के कार्य में मेरे परम श्रेय<sup>एव</sup> मुख्य गुरु जी ने जो अपना बहुमूल्य समय एवं स्मरणार्थी देकर मुझे कुल-दृष्टि दिया है एवं सारे निबन्ध के दौड़ों का यावच्छब्द परिवर्तन करने में मुझे अमूल्य सहाय्य प्रदान किया, उनका अणु कतिपय शब्दों द्वारा आभार प्रकट करके कैसी चुकाया जा सकता है। मैं उसे चुकाना चाहती भी नहीं, अपितु साजन्म उनके भार से दबी रहने में ही अपना कल्याण सम्भूंगी। इस निबन्ध में जो कुछ भी गुण कावा अक्षर है वह उनका महती कृपा का फल है। हर्षों जो दौण हैं और वे थोड़े नहीं शायद पर्याप्त मात्रा में हैं, वे मेरे अपने हैं जो गुरु जी ने प्रायः दूर रहने के कारण उनका सत्व पशु-प्रतीति न मिलने से अनिवार्यतः वा गर और अन्ततः उनके द्वारा दिखाये जाने पर ही उनका परिवार महान परिश्रम एवं समय के द्वारा साध्य होने के कारण न किया जा सका तथा भविष्य के लिए छोड़ दिया गया।

प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के कर्मचारियों-- विशेषरूप से श्री०कै० त्रिवेदी के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करती हूँ, जिन्होंने मेरे इस शोध के विषय में मर्यादा रुचि लेकर मुझे यथासाध्य सहायता दी है।

मैं पच्छिम लाहवैरी के दि० स्म० स्म० पैन तथा श्री०कै० कर्मा के प्रति भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकों की प्राप्ति में यथायोग्य सहाय्य दिया।

श्री रामहित त्रिपाठी जी ने हमारी विवशताओं को ध्यान में रख कर इस शोध प्रबन्ध को टाठ्य करने में जो त्वरा दिखाई है तथा उत्तम अक्षुदियों का अथावसर परिवार किया है, उसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देती हूँ। उनके सहाय्य के बिना यह कार्य दुष्कर ही था।

अन्त में, मैं अपने मुख्य माता-पिता एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों, जिनके सतत प्रोत्साहन से मैं तदा शोध-कार्य में संलग्न रह सकी, तथा संस्कृत-साहित्य के समस्त गुरुजन का स्मरण करती हूँ उनके प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ। उन्हीं सब की महती कृपा से मैं माँ भारती के चरणों में बढ़ाने के लिए अर्चना के ये कुछ 'पत्र-पुष्प' संजो सकी

संस्कृत विभाग  
प्रयाग विश्वविद्यालय  
प्रयाग

मीना श्रीवास्तव  
(मीना श्रीवास्तव)  
११-४-६६

प्रथम भाग

प्रकाश अध्याय

विषय- प्रवेश  
कलकलकलकलकलकलकल









साधारण कृत्रिम होता था, जिससे भी विषय को लेकर विचार के साथ कवि वर्णन किया करते थे किन्तु पंजिराज जगन्नाथ ने यह वर्णन-विषय को संशोधन कर दिया है। उन्होंने अपने इस काव्य में राजाओं का गुणानुवाद, प्रकृति-विवरण एवं आदि सभी को खान दिया है। यह दूसरी बात है कि सभी विषयों को आवश्यकता के अधिक संशोधन व्यक्त करने के कारण उनके निर्वार में वे सफल नहीं हो पाए हैं। चूंकि एक प्रख्यात विद्वान एवं संस्कृत भाषाकार ने गद्य-काव्य लिखने का एक सरल मार्ग तोड़ दिया था अतः बाद के प्रायः सभी कवियों ने उसी प्रकार का रचना करना प्रारम्भ कर दी। उनके काव्यों में पंजिराज जगन्नाथ का संशोधनता तो मिलती है किन्तु उनमें उनके काव्यगत गुण विंचित्ताच भी न आ पाए। स्वाध कृतियों का तथ्य ही अपवाद स्वल्प है। इस तरह की कृतियों में बहुत-सी कृतियां तो अन्य प्रान्तीय भाषाओं की कृतियों से अनुदित हैं। अतएव उनमें जोध की बहुत कम सामग्री प्राप्त होता है। इस कारण प्रस्तुत विषय को पंजिराज जगन्नाथ की गद्य-कृतियों तक ही सीमित कर दिया गया है।

पंजिराजजगन्नाथ का समय १७ वीं शताब्दी माना गया है। क्योंकि उन्होंने 'दिल्लोश्वर', 'दिल्लो नरपति', 'दिल्लोपरबल्लम' के अतिरिक्त पांच काव्यदाताओं के नामों का उल्लेख किया है --

१- जहांगीर -- १६०५- १६२७ ई०

२- शाहजहां -- १६२७- १६५८ ई०

३- शाहजहां -- (शूरजहां का भाई) १६४१ में मरा

४- उदयपुर के जगत्सिंह -- १६२७- १६६६ ई०

५- कानपुर के प्राणनारायण -- १६२०-१६६० ई०

पौ०बी० काणें इनका समय १६२०-१६६० मानते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत अनुसंधान का काल १० वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक निश्चित होता है। कतना लम्बी अवधि में बहुत से गद्य-काव्य

१-हि० आरू सं० पौयटिका -- पौ०बी० काणें पृष्ठ ३१२

लिखे गये होंगे, हेतो सम्भावना की जाती है । उनमें से क्वालिफिके गद्य-काव्यों का ही अध्ययन करते कवियों में प्रस्तुत किया जा सका है, क्योंकि कुछ गद्य-काव्यों का नामतः उल्लेख साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है किन्तु या तो वे कृतियाँ अनुपलब्ध हैं या उपलब्ध का फटा लगाने पर भी इस शोध-निबन्ध के लेखक को दुर्भाग्यवश प्राप्त नहीं हो सकी है । जिन कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत शोध-निबन्ध में किया गया है वे ये हैं :-

(१) मोक्ष की शृंगारसंजरी कथा	--१०वीं शताब्दी
(२) धनपाल की तिलसंजरी	--१०वीं शताब्दी
(३) जौह्यदेव की गद्यचिन्तामणि	--११वीं शताब्दी
(४) वामनभट्टबाण का वैमधुपालचरितम्	--१५वीं शताब्दी
(५) वासुदेव की रामकथा	--१७वीं शताब्दी
(६) पंक्तिराज जगन्नाथ का बालकविलास और यमुना-वर्णन	--१७वीं शताब्दी

### (ब) काव्य- एवं उत्तरी सम्पत्तियाँ

पीछे बताये गये गद्य-काव्यों का अध्ययन करने के पूर्व काव्य का स्वरूप एवं उत्तरी विशेषताओं का संक्षेप में विचार कर लेना प्रस्तुत विषय के लिए न केवल कर्तव्य नहीं होगा बल्कि बहुत उपादेय सिद्ध होगा । किसी भी वस्तु का जितना धार्मिक चित्र काव्य लींच सकता है, नाटक की छोड़ कर और कोई साहित्य का जग नहीं । कवियों ने देश के हित के लिए,

१- इन गद्य-कृतियों के समय का संक्षेपमात्र यहाँ किया गया है । जाने, यथावसर इस पर विस्तृत विचार किया जायगा ।

वस्त्राचारों से रसा हैतु आदि महत्त्वपूर्ण कार्य काव्य के माध्यम से किये हैं । काव्य के वर्णन भावों से जीतगोत होने के कारण सोपे मर्म का रक्षण करते हैं ।

काव्य मनुष्य को संकेचित घरे से बाहर निकालता है । 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तों को सब के समघा रखता है । शकुन्तला को विदा का दृश्य प्रत्येक गृहस्थ ही कल्याण के विदा का दृश्य का जाता है । राम-सीता का प्रेम उन विशेष का न रहकर प्रेमों-प्रेमिका का बन जाता है ।

काव्य में इतिहासोक्ति पूर्ण वर्णन होता है उक्त कारण कल्पना प्राचुर्य है और कल्पना-प्राचुर्य का कारण कवि की सौन्दर्य-प्रियता है । कानी का प्रिय वस्तु की रसा हैतु कवि ऐतिहासिक घटनाओं में भी परिवर्तन ला देता है । महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में नायक राजा दुष्यन्त के चरित्र की रसा हैतु दुर्वासा का शाप, दुष्यन्त द्वारा की गयी शून्ठी का गिरना, और पहली का उसे निगलना -- सब कवि की ही कल्पना है, सत्य नहीं । किन्तु कवि की कल्पना इतिहास के सत्य में बाधा नहीं पहुंचाती है । क्योंकि कवि की स्वच्छन्दता वहाँ तक बांधनीय है, जहाँ तक सत्य की हत्या नहीं होती है । यदि साहित्यकार राम को कौट पेंष्ट में और हुमायूँ को अकबर का बेटा बताये तो सत्य की हत्या करना ही जाएगा ।

सत्य को सुन्दर रूप में देखने के कारण ही आनन्दवर्द्धन ने कहा है कि कवि केवल इतिवृत्त का वर्णन करके सतल नहीं तो सकता है -- 'न इति-वृत्तात्रेण कविरात्मपक्लापः' ।

कवि की कल्पना में सत्य की सत्ता अनिवार्य है । दोनों का धनिष्ट सम्बन्ध है । कवि की दृष्टि सौन्दर्य पर ही रहती है । वह सब वस्तुओं को सौन्दर्य से ही मण्डित करता है । जो सुन्दर वस्तु होती है उसके सौन्दर्य

१- साहित्यिक निबन्ध -- डा० गणपति गुप्त पृष्ठ ४४

२- सा०द० प्र० परि०, पृष्ठ १८ से उद्धृत

को बड़ा देगा है और जो कुत्सित है उसके रूप-निर्माण में योग देता है ।  
 उन्हीं कारण उल्लास सत्य ऐतिहासिक और वैज्ञानिक के सत्य से भिन्न होता  
 है । वैज्ञानिक और ऐतिहासिक मानव-हृदय को भावनाओं को उपेक्षा करके  
 ज्यों-ज्यों-ज्यों बातों को सब के समता सम देता है, वह यह नहीं गौचता  
 है कि पढ़ने वाले पर उल्लास का प्रभाव पड़ेगा । और कवि सत्य का  
 प्रतिपादन तो करता है किन्तु उसे वैज्ञानिक और ऐतिहासिक के कटु सत्य  
 की भांति अग्राह्य नहीं रहने देता है अपितु काव्य-कलना के मनोहर संयोग  
 से उसे मधुर एवं ग्राह्य बना देता है । तात्पर्य यह है कि काव्य-सत्य वह  
 सत्य है जिसका सौन्दर्य तत्त्व के गण मणि-कांचन संयोग होता है । काव्य  
 का यही सौन्दर्य तत्त्व काव्य-रस उल्लास काव्यानन्द की आधारभूमि है,  
 उसकी प्रतिष्ठा है । इस प्रकार काव्य का सत्य विज्ञान अथवा इतिहास के  
 सत्य से बाह्याभिव्यक्ति में भिन्न हो सकता है परन्तु वह अगत्य कदापि  
 नहीं कहा जा सकता है, वह तो विश्वजनोप होने के कारण उत्कृष्टतर  
 सत्य होता है । यदि उन्में मिथ्या तत्व होता, कोई उपदेश न होते और  
 वह मानव के हितार्थ न होता तो कोई भी व्यक्ति जका अव्ययन करने के  
 लिए प्रयत्नशील न होता । काव्य के प्रयोजन हमारे जीवन से कितने अधिक  
 सम्बन्धित हैं उसमें कोई भी सन्देह नहीं कर सकता है । अतः काव्य में  
 मिथ्या तत्व मान कर उसकी अवहेलना करना कदापि उन्मुक्त नहीं है ।

कवि की विशेषता होती है कि जिग वस्तु को हम अपने सामान्य  
 जीवन में छोड़ देते हैं, उन्हीं को कवि अपनी प्रतिभा से अलौकिक रूप दे देता  
 है । वही शब्द और वही अर्थ होते हैं जिनका लोग आस में प्रयोग करते  
 हैं, वही वस्तु होती है जो सर्वसाधारण की दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होती  
 है किन्तु वे ही सब वस्तुएँ कवि के हाथ में पड़ कर निलर जाती हैं ।

काव्य का साधारणतया अर्थ 'कवेः कर्म काव्यम्' लिया जाता है ।  
 प्रजापति के बाह्य-जगत् के समान कवि भी अन्तः जगत् का निर्माण करता है  
 जिसमें भावनाओं की प्रधानता होती है और जो काव्य-जगत् कहलाता है ।  
 इस जगत् का निर्माण भावोद्भेक के फलस्वरूप होता है । यदि कवि  
 आत्मीकि अपने काव्य की रचना तब तक न कर सके जब तक कि वह श्रेष्ठ

पदां को बाण से बिल देल कर भाव विद्वल न हो उठे । उनके शोक ने हो  
उन्हें काव्य-प्रणयन को प्रेरणा दी । तभी तो ज्ञानदेवर्षिन ने 'शोकः  
श्लोकत्वमागतः' कहा है<sup>१</sup> ।

एक प्रकार काव्य को जितनी अधिक उपयोगिता है एवं सुनने में  
जितना सरल प्रतीत होता है उतना ही उसका स्वल्प आचार्यों के मतभेद  
होने के कारण बस्पष्ट है । यद्यपि संस्कृत आचार्यों प्रारम्भ से ही उनके  
स्वल्प विवेचन में प्रयत्नशील रहे हैं किन्तु उन आचार्यों ने काव्य-स्वल्प के  
जो लक्षण दिए हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण व्याख्या-भाषेय्य  
हैं । यही कारण है कि परवर्ती काल में उनको अनेक टोकार-उपटोकार  
हुं किन्तु विभिन्न व्याख्याकारों ने अपनी रुचि से प्रभावित होकर  
अनो-अनो विशिष्ट व्याख्यान देकर इन काव्य को परिभाषाओं को  
अत्यन्त विवादान्ध का दिया है । आज उनके आधार पर काव्य के  
स्वल्प के सम्बन्ध में किसी सै निश्चय पर पहुँचना, जिस पर सब का एक  
मत हो, असम्भव है । यद्यपि प्रस्तुत निबन्ध के विषयसूत्र परवर्ती गद्य-  
काव्य के साहित्य का काव्यात्मक अध्ययन एवं मूल्यांकन करने के लिए  
काव्याध्ययक न्यूनतम तत्त्व अथवा तत्त्वों का विचार कर लेना आवश्यक  
है ताकि उसी को कर्गोटी मान कर हम साहित्य को उस पर कस कर देला  
जा सके कि वास्तविक काव्य की दृष्टि से उनका क्या मूल्य है । यद्यपि  
काव्य-लक्षण प्रस्तुत करने वाले आचार्यों की संख्या बड़ी है किन्तु सब के  
लक्षणों को उद्धृत करके पूर्ण सूची तैयार करना कोई उद्देश्य नहीं है, अतः  
कुछ प्रमुख शास्त्रकारों के लक्षणों को देकर काव्य के विभिन्न आवश्यक  
तत्त्वों का संग्रह दिया जायगा ।

काव्य का लक्षण प्रस्तुत करने वाले प्राचीन आचार्यों में आचार्य  
मरुत ने काव्य-सामान्य का लक्षण न देकर काव्य के विशेष रूप 'नाटक'  
का ही लक्षण प्रस्तुत किया है । सम्भवतः उनकी दृष्टि में नाट्य-काव्य

काव्य के समस्त प्रकारों में सर्वोष्ठ प्रकार था । क्योंकि उन्होंने नाट्य काव्य का ही लक्षण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है --

“ मूढललावाढवगुदशब्दायैहीनं जनादसुबोध्यं युक्तिमन्तृत्योज्ज्वलम् ।  
बहुद्वारमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं य भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेदाकाणाद्य  
(नाट्यशास्त्र १६।१२२)

इस लक्षण से यह स्पष्ट होता है कि उनकी दृष्टि में काव्य भी नाटक के समान सर्वजन सुलभ एवं बोध्य होना चाहिये । उसे केवल कान्तपदावली, क्लिष्ट शब्दार्थों से रहित एवं विभिन्न रसों से पूर्ण होना चाहिये ।

यद्यपि रस-वर्षण कराना काव्य और नाटक दोनों का कार्य है, किन्तु दोनों एक नहीं हैं, दोनों को विशेषतः पृथक्-पृथक् है । अतः भारत का उपयुक्त लक्षण नाटक के लिए ही र्वथा उपयुक्त है किन्तु काव्य के लिए नहीं । उसमें उनके काव्य-सम्बन्धी विचार बहुत स्पष्ट नहीं हैं ।

उनके पर्याप्त जनन्तर होने वाले प्रसिद्ध काव्य शास्त्रकार जगद्गुरु रामानुज के समय में काव्य और नाटक एक नहीं समझे गए । रामानुज के पूर्व ही काव्यशास्त्रियों के दो दल बन गये थे -- एक दल 'सांशब्ध्य' को काव्य मान चुका था और दूसरा जय व्युत्पत्ति को । रामानुज ने इन सब का समन्वय 'सहितार्थो रसितां' करके किया --

रमणादिरलङ्कारस्तस्यान्यैर्बहुधोदितः ।  
न कान्तमपि निर्मुञ्च विभाति वनितामुखम् ॥  
शुभां तिङ्गानां च व्युत्पत्तिं वाचां वाङ्मन्त्यलङ्कृतिम् ।  
तदेतदाहुः सांशब्ध्यं नार्थव्युत्पत्तिरोपृजो ।  
शब्दाभिधेयालङ्कारमेवादिष्टं जयन्तु नः ॥  
शब्दार्थसहितो काव्यम् ॥

(काव्यालङ्कार ६।१३-१६)

उनको परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह काव्य को स्थिति शब्द या केवल अर्थ में नहीं बल्कि शब्द और अर्थ दोनों ही में मानते हैं । 'सहितार्थो' शब्द को स्पष्ट करने की उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी । वैसे तो आपस के वातालाप में निकले हुए वाक्यों में भी शब्द और अर्थ का साहित्य रहता है अन्वया समझने वाले के लिए वाक्य का कोई मूल्य ही न



रा शब्द, वह शब्द भी शब्द-सूत्र से दूर भी वर्ण ग्रहण कर सकता है किन्तु उसे काव्य का नाम नहीं दिया जाता । श्यों नहीं दिया जाता ? -- इस प्रश्न का साधन भामह ने नहीं दिया । अन्य विद्वानों ने भामह की परिभाषा 'यस्मिं लोकात्', 'समाप्तता' यदि शब्द रा कर दूर करने को नेप्ता को है । यद्यपि भामह का तात्पर्य 'सहितो' का शब्द है किन्तु उन्होंने इसको स्पष्ट नहीं किया है । कवी आलोचकों के आलोचना का विषय बन गया । डा० नौन्द ने उनकी परिभाषा में अनिश्चित और अनिष्ठापित दोष माना है । अनिश्चित दोष इसलिए है कि उनके 'साहित्य' का स्वभाव स्पष्ट नहीं है और अनिष्ठापित दोष इसलिए है कि शब्द और अर्थ का सम्भाव प्रत्येक शब्द में होता है किन्तु हर एक शब्द का अर्थ नहीं हो पाते ।

उनकी परिभाषा के आवश्यकता से अधिक सूक्ष्म हो जाने के कारण काव्य का स्वभाव पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पाता है । उन्होंने अपने काव्य में शब्दार्थ को काव्य का शरीर और अलंकार को उच्च महत्वपूर्ण का बताया है ।

दण्डी ने भामह की भाँति काव्य को 'शब्दार्थ का साहित्य नहीं बताया है । उन्होंने काव्यत्न को कल्पना शब्द में ही को है --

तैः शरीरं च काव्यानामलङ्कारश्च वर्जिताः ।

शरीरं तावदिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली ॥

-- काव्यादर्श १/१०

उनकी परिभाषा का 'पदावली' शब्द का प्रयोग उग्रे और संकेत करता है । यद्यपि उन्होंने शब्द को प्रधानता दी है किन्तु वह अर्थ को सहकारिता को भुला नहीं सके -- 'इष्टार्थ' शब्द का प्रयोग उल्टा किया गया है । 'अनिसहितो' को व्याख्या भामह न कर सके उसकी व्याख्या दण्डी ने की है -- ऐसा सूक्ष्म निरोधान से ज्ञात होता है । कवि का इष्टार्थ -- मनोरम हृदयाह्लादक अर्थ -- होता है उसके युक्त

में काव्य का गदाकरी होने चाहिए, ऐसे उनको मानना है । ऐसा नहीं कहा जाय तो गलत है जब ऐसा मनोरम कर्म देने में शब्द ही रक्षायक हो ।

वामन ने 'काव्यालङ्कारोऽत्र गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थोर्वर्तते महत्या तु शब्दार्थोपात्तयोऽत्र गृह्यते' (काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति १।१) कह कर काव्य में शब्द और कर्म को समान महत्त्व दिया है । यद्यपि वामन की भांति 'सहित' शब्द का प्रयोग नहीं किया है किन्तु वह शब्दार्थ का साहित्य काव्य में आवश्यक मानते हैं । शब्दार्थ का यह साहित्य गुण और अङ्कार से अलङ्कृत होना चाहिए । परिभाषा में अङ्कार का कर्म सौन्दर्य से है और यह सौन्दर्य दोष के त्याग और गुण के ग्रहण करने से जाता है --

काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात् ॥१॥ सौन्दर्यमलङ्कारः ॥२॥

यः दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम् ॥३॥

(काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति)

रुद्रट की काव्य-परिभाषा वामन जैसी है --

'शब्दार्थो काव्यम्' । (काव्यालङ्कार २।१)

उन्होंने केवल 'सहित' शब्द का प्रयोग नहीं किया है और काव्य में रस को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है --

उज्वलदुज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम् ।

स्फुटमाकल्पमनसं प्रतनोति यज्ञः परस्यापि ॥

(काव्यालङ्कार १।४)

आनन्दवर्दन की दृष्टि में भी काव्यत्व शब्द और कर्म के साहित्य में है, इस कर्म को पुष्टि उनके काव्य के विशिष्ट व्यं ध्वनि-काव्य के लक्षण से ही जाती है --

यत्रार्थः शब्दो वा तमसंमुपलर्जनीकृतस्वार्थो ।

व्यङ्ग्यः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

(ध्वन्यालोक १।१३)

ज्य कारिका के अतिरिक्त ध्वनालोक में ज्यो अन्य कारिकाओं के भी युक्ति हो जाती है ।

अन्य शब्दार्थों को भांति उन्होंने भी इस के अतिरिक्त गुण और अर्थकारों से अलंकृत काव्य का होना बताया है --

‘काव्यस्य हि ललितोक्तिरान्विवेकवाचनः’

(११२ की वृत्ति) ।

आनंदवर्द्धन के ‘ललित’ शब्द से तात्पर्य गुणालंकार से ही है जैसा अभिनव गुप्त ने इस पद की वृत्ति में स्पष्ट किया है --

‘ललितशब्देन गुणालङ्कारानुग्रहमाह’ (११२ की वृत्ति)

इस प्रकार आनंदवर्द्धन ने भी काव्य का शरीर शब्दार्थ माना किन्तु उसको आत्मा महृदय-हृदय-श्लाघ्य अर्थ बताया ।

कुन्तक ने काव्य के सम्बन्ध में --

‘शब्दार्थौ संहितां बहुकविष्वापारजालिनि ।

बन्धे अवच्छिन्तां काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी ॥

(वक्रोक्ति जोवित ११७)

कहकर काव्यत्व गुणालंकार से युक्त शब्द और अर्थ के सम्मिलित अर्थ में ही लोकार किया है । उनको वृत्ति में यह शब्द और अर्थ का सम्बन्ध क्या बला नहीं हो सकता है जैसे तिल से तेल का सम्बन्ध बला नहीं हो सकता है --

‘शब्दार्थौ काव्यम्, वाचको वाच्यश्चेति द्वौ सम्मिलितौ काव्यम् ।’

तस्माद् भूयोरपि प्रतितिलमिव तैलं तद्विदाह्लादादिकारित्वं

वर्तते न पुनरेकस्मिन् ।’ (११७ की व्याख्या )

१-‘सौऽर्थस्तद् व्यक्ति सामर्थ्ययोगो शब्दश्च कश्चन ।

यत्मतः प्रत्यभिज्ञेयां तां शब्दाणां महाश्वैः ॥११८

तत्परावेव शब्दार्थौ यत्र व्यहोम्ये प्रति स्थिता ।

ध्वनेः स एव विबोधी मन्तव्यः सहकारोऽस्मिन्तः ॥११९

विविधवाच्यवाचकचरणाप्रपञ्चवाक्यः

काव्यस्य स स्वार्थः सास्मृतः ॥११५ की वृत्ति

‘शब्दाकारोऽपि काव्यामिति यदुक्तं तत्र

शरीरग्रहणादेव केनचिदात्मना तदनुप्राणकेनमाव्यमेव ।’ १। स्वभिनव वृत्ति

उन्होंने बताया है कि जो साहित्य गुणालम्बित होना चाहिए और गुणालम्बित वा साहित्य किन्कर होता है --

समर्कगुणो वन्तो सुदुर्वाचिव नरुणना ।  
परानरन्व लोभारो हृद्वारो भवतो यथा ॥

उन्होंने काव्य के शब्दार्थ का स्वयं स्पष्ट किया है । उन्होंने बताया कि काव्य में कौन-कौनसे शब्दों के होते हुए भी उन सब का बोधातिशय स्पष्ट होना ही ही प्रकाशित कर सके वही शब्द और शब्दों का अनन्वित करने वाला स्वभाव से सुन्दर ही ही श्राव्य है --

शब्दो विविधानार्थैः वाचकोऽन्येषु यत्स्वपि ।  
अर्थः सहृदयाह्लादकारित्वगन्तुन्दरः ॥११६

शब्द और अर्थ दोनों को ही उत्कृष्ट होना चाहिए । भली प्रकार प्रकाशित करने में समर्थ शब्द के अभाव में उत्तम काल्पारो अर्थ स्वल्पतः स्फुरित होने पर भी निर्वाह है और शब्द भा वाक्यीपयोगो अर्थ के अभाव में भार स्वल्प है --

तथा चार्थः समर्थवाचकोऽसद्भावे स्वात्मना  
स्फुरन्नपि मृतकल्पे स्वावतिष्ठते शब्दोऽपि  
वाक्योपयोगि वाच्यासम्भवे वाच्यान्तरवाकः  
स वाक्यस्य व्याधिभूतः प्रतिभातीति ।

(ल०जी० पृ० ३६)

इस साहित्य में शब्द की-गौरव के अनुप्य होते हैं और अर्थ शब्द-सौन्दर्य के अनुप्य । दोनों के बीच अनुनाधिक्य या तारतम्य नहीं रहता है । इससे साहित्य को अनिर्वचनीय मनोहारिणी स्थिति हो जाती है --

साहित्यमनयोः शोभाशक्तिं प्रति क्वांप्सतां ।  
अनुनातिरिक्तस्त्वमनोहारिण्यमवगम्यतिः ॥११७  
(ल०जी०).



(१) व्याख्य-वृत्ति से शब्दार्थ-सुगल में रहे, कला-कला न रहे ।

जैसे कित्त्व बहुत्व यदि । और

(२) प्रत्येक पर्याप्त धर्म से - लघुत्व में रहे और कला भी रहे ।

जैसे मनुष्यत्व ।

यदि व्याख्य-वृत्ति से शब्दार्थ-सुगल-काव्य माना जायगा तो कितने श्लोक के न समझने पर वह काव्य नहीं हो सकता किन्तु 'काव्ये सुतमर्थो नावगतः' एक लौक्यत-व्यवहार है और दुनिया में ही दृष्टि से शब्द को काव्य मानती है और यदि प्रत्येक पर्याप्त-धर्म से काव्य माना जाय तो एक श्लोक में शब्दगत-काव्य और अमित-काव्य-- दो तरह के काव्य हो जायेंगे, एक मात्र काव्य न हो सकेगा । नागेशभट्ट ने जगन्नाथ के इन विचारों को काटा है । उन्होंने बताया है कि लौक्यत-व्यवहार शब्द से ही नहीं, वर्ण से भी होता है । जिस व्यवहार को जगन्नाथ ने 'समणीयता' कहा है उसका कारण शब्द के अतिरिक्त वर्ण भी है । व्याख्य वृत्ति से ही शब्दार्थ-सुगल काव्य होगा -- ऐसा नागेश भट्ट ने माना है । नागेश ने जगन्नाथ का परिभाषा को लेकर शब्दार्थ-सुगल को काव्य होना गिद्ध कर दिया है । उनका कहना है कि पंडितराज जगन्नाथ ने जिस शब्द को काव्य माना है, उसमें उन्होंने 'समणीयार्थ' को कल्पना की है । अतः जगन्नाथ स्वयं काव्य में शब्दार्थ की सहकारिता को फुला नहीं सके हैं । जगन्नाथ को इस मान्यता को प्रमाण के अभाव में शब्दार्थ काव्य नहीं हो सकता है -- नागेश ने निरर्थक गिद्ध कर दिया । उन्होंने शब्द-प्रमाण रूप में प्राचीन काव्यार्थों एवं मम्मट के विचारों को प्रस्तुत किया । यह दूसरी बात है कि जगन्नाथ इस शब्द-प्रमाण को नहीं मानते हैं । क्योंकि उनका कहना है कि शब्द-प्रमाणमान्य है किन्तु वे 'जाप्त' के शब्द होने चाहिए न कि वादी के । मम्मट उनके वादी थे ।

जिस प्रकार जगन्नाथ ने 'काव्यं उच्यते पद्यते', 'काव्यं सुतमर्थो न ज्ञातः' आदि के उदाहरण लौक्य-व्यवहार की दृष्टि से दिए जिसमें

शब्द की प्रधानता है तब प्रथम शीघ्र ने मां लौक व्यवहार की दृष्टि से दोनों की प्रधानता बतायी है -- 'आर्वां तुष्', 'आर्वां कुष्' । इसके अनिर्दिष्ट अर्थों ने तब और व्याकरण का उदाहरण दिया किमें शब्द और भी दोनों को समान महत्त्व मिला है -- 'तदर्थंते तद्वे' व्याकरणं वेति क्व/तेवेति वैश्याकरणः ।

शीघ्र का यह कथन तर्कपूर्ण है और तब की सल्लभा में किमें प्रवाः का उन्दे का किमें जा सकता है । क्योंकि केवल शब्द को काव्य ही माना जा सकता है । शब्द के साथ ही या और ही के साथ शब्द का आह्वय कालौकिक शानन्द देने में यथा रसाभास कराने में शर्णाभास योग देता है --

शब्दप्रमाणवेदोऽर्था व्यनक्त्यर्थान्तरं यतः ।

अर्थस्य व्यनक्त्ये तद् शब्दस्य सहकारिता ॥३॥२३

तद् युक्तौ व्यनक्तः शब्दो यत् सौऽर्थान्तरसुक् तथा ।

अर्थोऽपि व्यनक्तस्तत्र सहकारितया मतः ॥२॥२०

(काव्य प्रकाश)

इस बात का अर्थन न केवल सम्मत है ही अतिसु प्रारम्भ है ही प्राचीन आचार्य करते शार है । जो आचार्य कवि-कर्म काव्यमिति' का शब्द में ही काव्यत्व मानते हैं, उन्हें भी कवि शब्द-विशेष से अर्थ-विशेष का प्रकाशन करता है । उदाहरणार्थ 'गदोगार्वां शौषः' का 'शौष' शब्द व्यंग्यार्थ विशेष का प्रकाशन करता है । इस प्रकार कवि का कर्म 'अर्थ प्रकाशन' भी ही जाता है । अतः इस दृष्टि से जो आचार्य काव्यत्व शब्द में मानते हैं, वह केवल लाक्षणिक दृष्टि है । वस्तुतः काव्यत्व शब्द और अर्थ के साहित्य में ही सम्भव है ।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाता है कि काव्यत्व शब्द और अर्थ के मंगुल सामन्जस्य में निहित है ।✓

इस मंगुल सामन्जस्य को लाने वाली वस्तु कवि ही ही उक्ति

होता है, जब साधारण की नहीं। यौगिक कृति का उक्ति कलात्मक होने के कारण साधारण होता है। उर्ध्व तरलता रहता है, स्मरणयुक्त रहता है तथा आकर्षण की शक्ति रहती है। कौटिल्य का ही वातावरण में नहीं होता। काल को कुन्तक ने दार्ढ्य का प्राण-मत्स्य 'वदोक्ति' माना है। तनको यह वदोक्ति सामान्य-रूप में विभिन्न 'विचित्र अभिधा' होता है -- 'शास्त्रादिप्रतिस्तराशास्त्रोपनिबन्धव्यातिरेकि' 'प्रसिद्धप्रमाणव्यातिरेकि'। 'विचित्र अभिधा' के तात्पर्य विशिष्ट अभिधा अर्थात् कल्प होता है। यद्यपि 'वदोक्ति' अलंकार होता है तथा अधिकांश विद्वानों ने इस पर में इसको प्रमाण मान लिया है किन्तु कुन्तक का यहाँ तात्पर्य विशिष्ट अलंकार से न होकर 'वेदगध्य-महणो-मणिनि' के ही जो शब्दार्थ को गजाने के कारण अलंकार के नाम को गार्ह्य करता है --

उमावेतावतलक्षणार्थं तयोः पुनरुल्लङ्घतिः ।

वदोक्तिरेव वेदगध्यमहणोमणिनिरुच्यते ॥१११०

(व०जो०)

वेदगध्य- महणो- मणिनि को आचार्य कुन्तक ने स्वयं इस प्रकार स्पष्ट किया है --

'... वेदगध्यं विदग्धभावः, कविकर्मकोश्लं तस्य महणो विच्छिन्ति तथा मणिनिः ।'

(१११० की वृत्ति, व०जो०)

किन्तु इस 'महणो-मणिनि' का तात्पर्य तनका शब्द-ज्ञान का अलंकार नहीं है। उर्ध्व तनकोने तीन वस्तुओं का होना सम्भाव्य माना है --

(१) उक्ति वैचित्र्य

(२) कवि-कोश्ल

(३) राष्ट्रियों के हृदय के प्रसादन की सामता ।



ए प्रकार उन्होंने 'वक्रोक्ति' में सुस्पष्ट यदि अगर प्रवृत्तियों को  
 ज्ञान करा दिया है । उन्होंने - को - वक्रोक्ति का अर्थ भी स्पष्ट  
 करा दिया है अतः प्रकार का कृता --

- १- वृणो विद्याय का कृता
- २- पद युक्तों का कृता
- ३- प्रत्यय का कृता
- ४- वाच्य का कृता
- ५- प्रकरण का कृता, और
- ६- प्रबन्ध का कृता

कलाकर एक वक्रोक्ति में काव्य के भी अर्थों को ले लिया है । अनन्दवर्दीन  
 ने एक प्रकार काव्य के सूत्र में सुझाव देकर व्याकरण के व्याकरण  
 अथवा को ध्वनि के अन्तर अर्थात् सुर, तिस्र, लिङ्, वचन , लकार यदि में  
 'ध्वनि' का समन्वय दिखाया है, उन्हीं प्रकार कुन्तक ने काव्य के सभी अर्थों  
 में 'कृता' का समन्वय दिखाया है । उन्होंने अन्तः 'कृता' का अभावना  
 अविद्या, लक्षणों और - व्यंजना दोनों व्यापारों के अन्तर्गत दिखाये हैं ।  
 उनका वक्रोक्ति ध्वनि को भी अपने में अन्तर्भूत करने वाला अर्थात् उससे अधिक  
 व्याकरण तत्त्व है ।

यह 'कृता' कुन्तक को नवान लौकिकी वस्तु नहीं है अतः उसका  
 महत्त्व प्रारम्भ से ही था । धामर ने अतिशयोक्ति द्वारा 'वक्रोक्ति' तत्त्व  
 को और मजबूत किया है और उसका सर्वत्र राज्य बताया है --

निमित्ता वचो यत्तु लौकानि श्रान्तगोचरम् ।  
 मन्यतेऽतिशयोक्तिं कामलंकारतया मना ॥२१३१॥  
 + + +  
 सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिः ..... ॥२१३५॥  
 कोऽयमलंकारोऽनया विना ॥२१३५॥  
 . . . . . (काव्यालंकार)

दण्डी भी वक्रोक्ति को अवहेलना नहीं करते हैं । वामन की  
 'विशिष्टपदरचनारीतिः' (१।२।७ काशु०.वृत्ति ) भी कुन्तक के वक्रोक्ति



तो शिवा को भी विपरिणामि न मानें कि कथन का यह अर्थ विशिष्ट या स्पष्ट प्रकाश का अर्थ या प्रकाश सौन्दर्याभावक अथवा प्रकाश बाह्यद्वारा उत्पन्न है, और शिवा का अर्थ में शब्दार्थ का यह अर्थ प्रकाश न हीना उक्त अर्थता का अर्थ है ।

— कर्ता का अर्थ में शब्दार्थ का साहित्य तथा कर्म का अर्थधारण अर्थात् शक्ति का होना आवश्यक माना गया है, कर्ता का अर्थ में दोषों का अभाव, गुणों का अभाव एवं कर्मकारों का अर्थ प्रयोग भी प्रायः अर्थ वाच्यार्थों ने स्वीकार किया है । अर्थ में अर्थ हुए दोषों उनके सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं, गुणों को सौन्दर्य को लाने हैं और अर्थकार उन सौन्दर्य में अर्थ बांध लाया देते हैं । दोषों अर्थ सौन्दर्य अथवा अर्थ का अपकर्ष करने वाले हैं अर्थः तथा अभाव अथवा अर्थवाच्य अथवा अर्थवाच्य अर्थों को मान्य है ।

प्रारम्भ में दोषों और गुणों का अर्थ अर्थ न था । अर्थों गुणों को दोषों का विपरिणाम माना जाता तो अर्थों दोषों को गुणों का विपरिणाम । अर्थ ने गुणों का अर्थ अर्थ है कि वे दोषों के विपरिणाम होते हैं --

अर्थ दोषास्तु विपरिणामः सुपरिणामिकाश्चाः ।

स्तु स्व विपरिणामः गुणाः का अर्थ अर्थ अर्थिताः ॥

( १९१२ )

'गुणविपरिणामादेशात्' आदि अर्थ अर्थ है कि वे दोषों का अर्थवाच्य और गुणों का अर्थवाच्य अर्थ मानते हैं जिसकी अर्थवाच्य अर्थपुराण में अर्थ गयी है --

अर्थ अर्थ गुणों दोषाभाव स्व अर्थवाच्यति ।

गुणाः अर्थवाच्यो दोषा गुणार्थाश्चा अर्थवाच्यताः ॥

(१९१२)

अर्थ ने दोषों को गुणों का अर्थवाच्य अर्थ -- गुणविपरिणाम-  
अर्थवाच्यो दोषाः । (अर्थवाच्य अर्थ ११११) किन्तु अर्थ और अर्थ के

'विराजि' शब्द के अर्थ में उल्लेख है । भरत ने अपना अर्थ 'विराजित' शब्द का 'अभाव' लिया और वामन ने 'विराजि' । आचार्य विवेकानन्द ने वामन के दोष-स्वरूप को उजागर करने हुए बताया है कि उनके गुणों के 'विपर्यय' का अर्थ -- गुणों का अभाव हो सकता है । यदि गुणाभाव का नाम दोष है तो दोष का अभाव गुणाभाव होगा । किन्तु वामन दोष का अभाव स्वयं नहीं मानते हैं । इत्येवम् वामन ने 'शब्द' शब्द का प्रयोग किया है । अतः वामन ने 'विराजि' का अर्थ 'अभाव' न लेकर 'विराजित' विरुद्ध गच्छन्ति इति विपर्ययाः' किया । इस प्रकार उनको दृष्ट में गुणों के विरारोप विरुद्धगामी स्वरूप वाले दोष होते हैं ।

रुद्र ने भी दोष को गुण का विपर्यय माना है । ध्वनि-स्थापना के बाद भोज ने भी दोष का यही स्वरूप स्वीकार किया है --

यो हेतुः काष्ठाशोभायाः सोऽलङ्कारो निगद्यते ।

गुणोऽपिनादृशो ज्ञेयो दोषः स्याद्विपर्ययः ॥

दोष के गुणाभाव रूप को और स्पष्ट करने हुए उल्लेख किया है कि -- "श्लेषप्रमादश्रमतादिगुणानां रसार्थावबोधजनकतया सिद्धा-नामभावदूरी दोषो न जात्यन्तरम् । यथा श्रुतिवृत्तत्वं लोकायांभावः, कान्तोरभावो शाम्यत्वं... यदि" ।

ग्राम्य में दोष के स्वरूप से बाहे विद्वान् जनमिश्र रहे हों किन्तु किसी ने जो काव्य में दोष को स्थान देना उल्लेख नहीं किया । कुछ विद्वान् इस सम्बन्ध में बड़े कट्टर रहे । भरत ने उल्लेख काव्य के लिए दोष को क्लिष्ट स्थान नहीं दिया । उनके विचारों को अधिनवगुप्त ने निम्नांकित संकित्तियों में रक्खा है --

स्तदोषहोनं श्रुतिसुखं दीप्तरसं चयदि भवतिगुणान्तरे ।

अलङ्कारे बहोनमपि काव्यं लक्षण-योग-व्यभिचारीत्युक्तम् ॥

१- का०सू० वृ० --व्या०वा० विश्वेश्वर, सं० डा०अगेन्द्र पृष्ठ ६८

२- चन्द्रालोक -- टीकाकार प्रेमचन्द पृष्ठ १२

भरल को भाँति दण्डों को दोष के प्रति मन्त्रिष्णु नहीं है ।  
 उनके कारण है कि वे दोष का नित्य और अनित्य विभाजन नहीं करते  
 हैं क्योंकि ऐसा करने से काव्य में कहीं-कहीं दोष की स्थिति भी सम्भव  
 हो जाती है और दण्डों लक्ष्य बना बिल्कुल नहीं पाँकी । उन्होंने पाँष्ट  
 शब्दों में यह दिया है कि सुख सुख दोष है और ये काव्य में कँदा  
 बर्तनीय है -- "तत्र दोषाः कँवेने वर्याः काव्येषु हरिभिः ।"

(काव्यादर्श ३।१।१५) मनुष्य में जैसे कानामन से कारणत दोष होता  
 है वँसा काव्य में दोष इन्होंने नहीं बोकार किया है अपितु जैसे शरीर  
 में जोड़ लक्षे शरीर को विकृत कर देता है और मनुष्य तिरस्कृत हो जाता  
 है वँसा घृणा का विषय बन जाता है वँसे ही जित काव्य में दोष होता  
 है वह ग्राह्य हो जाता है --

तदल्पमपि नोपेक्ष्य काव्ये दुष्टं कान्वन ।

यथाऽपुः सुन्दरमपि शिबिणीकेन दुर्भगम् ॥

(काव्यादर्श ३।१।११)

उनका कहना है कि मत्प्रयुक्त वाणी कामधेनु को भाँति मनोवाँहित  
 मल देने वाली होती है और दुष्प्रयुक्त वाणी क्यारि दोषों से भरी  
 वाणी ब्रि की सुलना को परिनायक होता है --

गाँगाः कामदुधा मन्त्र प्रयुक्ता स्मरते कुम्भः ।

दुष्प्रयुक्ता पुनर्गाँत्वं प्रयोक्तुः त्वं क्षति ॥

(काव्यादर्श ३।५)

यद्यपि इन्होंने दोष को परिभाषा नहीं दी है किन्तु उन्हें  
 उसके स्वरूप का ज्ञान था --

काव्ये दोषाः गुणोत्तमैव विज्ञातव्याविवक्षाणाः ।

दोषाः विवक्ष्ये तत्र गुणाः संपर्कस्यथा ॥

१- डा० नौन्द ने एक श्लोक को दण्डीकृत माना है अद्यपि काव्यादर्श में यह  
 श्लोक अप्राप्य है ।

वामन भी दोष को काव्य में ध्यान देना किञ्चुल नहीं मान्द करते हैं । क्योंकि उनको दृष्टि में काव्य का ग्रहण अङ्कार ले ले और अङ्कार का अर्थ मान्दय है और यह मान्दय गुण के ग्रहण और दोष के त्याग से जाता है --

‘‘दोष गुणालङ्कारानादानाप्याम् ॥३१॥’’

यह प्रकार उनके दोष काव्य-मान्दय के बाधक हैं । वामन के त्याग के लिए एक अलग से अधिकरण रक्खा है । जो वामन ने स्वयं उवाचार किया है -- ‘‘काव्यकारो यथापि काव्यमान्दयविपक्षेन त्यागाय दोषा विज्ञातव्या इति दोषदर्शनं नामाधिकरणमारभते ॥ १११११’’

(काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति)

उन्होंने दोष के स्थूल और सूक्ष्म भेद करके दोनों को ही काव्य में ध्यान नहीं दिया है । उनको दृष्टि में यद्यपि सूक्ष्म-दोष अधिक विद्युत नहीं पंदा करते हैं किन्तु उनका भी काव्य में निराकरण होना चाहिए । जोसिद्ध उन्होंने दोष के नित्य और अनित्य भेद भी नहीं किए ।

किन्तु कुछ ऐसे भी आचार्य हैं जिन्होंने दोष के दो कां -- नित्य और अनित्य करके उसके प्रति उदार और व्यापक दृष्टि रखी है । मामक ने बताया है कि कहीं - कहीं दोष रस कर्क हो जाते हैं जैसे ‘गच्छागच्छ’ में पुनरुक्त दोष है किन्तु यह मय, दुःख, ईर्ष्या की स्थिति के निवृत्त में गहायक होता है । श्रुतिकट्ट दोष कीररस के रसाखादन में सहृदय को नरम सीमा पर पहुंचाता है । उस समय ऐसा दोष उद्यो प्रकार शोभित होता है जैसे माला के बीच नीला पलाश या कान्ता के नेत्रों में लाल हुआ अञ्जन --

शन्निवैज्ञातु दुरकमपि शोभते ।

नीलं पलाशाब्जमन्तराले स्रजामिव ॥११५४॥

किञ्चिदभ्यर्त्तादयान्दं धरो शोभामसाध्वनि ।

कान्ताविलोचनन्धस्तं धलीमसामिवाञ्जनम् ॥११५५॥

१- सांख्यार्थे प्रकृतौ विस्तारो दोषाणात् । उद्दिष्टा लक्षितः हि दोषाः गुणात्ता मन्ति । २१ द्वितीय अधिकरण, प्रथम अध्याय, काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति । २- अत्रानुपस्यदास्यदोषात् तात्वा कविरल्पेदिति तात्पर्यार्थः । २२ द्वितीय अधिकरण, प्रथम अध्याय, काव्यालङ्कार सूत्र । ३- एते वा कव्यालङ्कारदोषाः कव्यागाय तावन्त्याः २४, द्वितीय अध्याय, काव्यालङ्कार सूत्र ।

किन्तु दोष के सम्बन्ध में जहाँ तक विन्मू है जहाँ तक वे रस के  
लाभक हैं, अन्यथा वे दोष में बाध्य हो विन्दनीय माने हैं। उनको  
दृष्टि में दुष्टता का ही स्वभाव माना जाता है और वह दुष्ट के  
स्वभाव लोगों को दृष्टि में विन्दनीय होता है --

स्वैया पदमप्येवं न विनाशमवाप्नुवत् ।

विश्रमणा हि वाच्येन दुरनुमेवनिन्द्ये ॥

सर्ववित्त्वकार्याय व्याधये दण्डनाय वा ।

दुःखवित्त्वं पुनः साक्षात्सृष्टिमाहर्षिताधिपः ॥

(काव्यालंकार १।११-१२)

अधियादी एवं रखादो आचार्यों ने भी नित्य और अनित्य  
दो रूप माने हैं किन्तु उनके दोष का स्वभाव शब्द और अर्थ के आश्रित न  
होकर सात्मात्मेय के आश्रित है। क्योंकि उनकी दृष्टि में वाच्य का  
सौन्दर्य रस-वर्षणा में है। उनके दोष अर्थों का आकर्षण करते हैं। मामह  
ने दोष के सम्बन्ध में जिस मार्गक तथ्य की ओर संकेत किया है उसको पूर्ण  
रूप से विवक्षित करने का अर्थ आचार्य महिम भट्ट को है जिनके गद-विद्वानों  
पर चलकर भोज मम्मटादि आचार्यों ने अपने दोष-स्वभाव को स्पष्ट विवेचना  
की है। दोष विषयक का सूक्ष्म दृष्टिकोण को मम्मट ने मुख्यार्थ हतिर्वाच्यः  
इव कवनों द्वारा स्पष्ट किया है। जितने भी प्रकार के दोष इन्होंने  
क्याये ऐसे सब रस के सम्बन्धित हैं। रस के आश्रय से वाच्य भी मुख्य हो  
जाता है क्योंकि वाच्य (शब्द-वैष्य) रस के साहचर्य से अकारणी हो जाता  
है। इस प्रकार जहाँ रस है वहाँ दोष रस का आकर्षण करते हैं और जहाँ  
रस नहीं है वहाँ अकारणी अर्थों की प्रतीति के विघातक बनते हैं। रस  
और वाच्य के उपयोगी शब्दादि होते हैं क्योंकि उन्हीं से रस को  
अभिव्यक्त होता है, विभाव्यादि शब्दों में ही वर्णित होते हैं अतः  
शब्दादि में भी दोष होते हैं। 'आदि' से मम्मट का तात्पर्य वर्ण एवं  
रचना से है।

१- मुख्यार्थहतिर्वाच्यो रसश्च मुख्यस्तदाख्याद् वाच्यः ।

उपयोपयोगिनः संयुः शब्दाभास्तेन तेष्वपि सः ॥

-- का० प्र० ७।४६





- १- स्वामित्वात्, एत एव यथागे जायते वा शब्दवाच्यत्वं ।
- २- विभावानुभाव का क्लिष्ट रहना यथा उनका निश्चय न होना ।
- ३- वर्णनय एत के विरोधी एत को समष्टा करना ।
- ४- एत को पुनः पुनः वीक्षित होना ।
- ५- प्राप्तुत को छोड़ कर अप्राप्तुत एत का वितार करना ।
- ६- किये एत को परिष्कार अवस्था में अवानक विच्छेद के उक्त विच्छेद करना ।
- ७- संभूत एत को कति वृत्ति करना ।
- ८- कौ को विन्मृति होना ।
- ९- ऐसे एत का वर्णन जिससे प्रधानभूत एत को लाभ न हो ।

जहाँ इन आचार्यों ने एत-दोष बताया है तथा उनका परिष्कार भी बताया है --

- १- कर्त्त-कर्त्तों संबन्धी भाव का शब्दवाच्यत्व दोष नहीं होता है जब विभाव अनुभाव को रचना में एक भाव को पुष्टि नहीं होता है ।
- २- समीपता एत जब कौ बन जाए ।
- ३- भावान्यय से विवक्षित एत में लक्षणादिगभाव हो जाय ।
- ४- एकाग्र के दो विरोधी यथाधि-भाव के लिए कला-कला बालम्बन एत दिया जाय ।
- ५- दो विरोधी एत के बीच लक्षर जोड़ने वाला एत एत दिया जाय ।
- ६- विरुद्ध एत के संबन्धी आदि भावों का यदि बाध्य रूप से कथन हो जगत् कह कर फिर उन्हें प्रकृत एत के किये भाव से दबा दिया जाय तो दोष नहीं गुण हो जाता है ।
- ७- एक कौ और दो कौ बनकर कला-कला कौ को पुष्ट करेंगे ।
- ८- एक कौ-एत और दो विरोधी एत के होने पर दोनों विरोधी एत एक-दूसरे के कौ बनकर कौ एत का ही पोषण करते हैं ।

इस प्रकार एकतादीर्घ ध्वनिवादों का मार्ग ने काव्य में नित्य और अनित्य दोष की विवेचना करते नित्य दोषों का सर्वथा उन्नास किया है क्योंकि वे सर्वदा रागस्वादन में विघातक होते हैं । उनके विचारानुसार अनित्य दोषों को काव्य में स्थान दिया है क्योंकि वे कहीं-कहीं पर दोष न रह कर गुण भी बन जाते हैं । उदा: यदि मम्मट ने अपने काव्य-उदाण में 'बदोषों' शब्द का प्रयोग कर दिया तो कोई अनुचित नहीं किया जो उनको परिभाषा नष्ट गलौजना का विषय बन गया ।

साहित्य दर्पणकार ने भी मम्मट को तुरी परिभाषा को दोषग्रस्त बताया । उन्होंने 'बदोषों' शब्द पर आक्षेप करते हुए यह नर्क र र है --

१- उनका कहना है कि ऊ शब्द से उनको परिभाषा उन्नासित दोष से ग्रस्त है । क्योंकि उदाण सर्वव्यापी होना चाहिए किन्तु मम्मट का काव्य-उदाण ऊ शब्द के प्रयोग से 'न्यङ्कारो ह्येव' जैसे ध्वनि-प्रधान उच्च काव्य में घटित न होगा । उदा: वह काव्य नहीं कहलाएगा । किन्तु यह बात नहीं है । इसे स्वयं मम्मट ने स्वीकार किया है ।

२- 'उ' का उर्ध्व दर्पणकार ने 'नहीं' से लिया है । उनका कहना है कि यदि ऐसे स्थलों के सम्बन्ध में (उपयुक्त श्लोक में) यह कहा जाय कि जिस अंश में दोष है वह अंश काव्य का नहीं है और बाकी में उच्च काव्य है तो यह बात ठीक नहीं । क्योंकि दोष सम्पूर्ण काव्य को दूषित करते हैं ।

३- सर्वथा निर्दोष काव्य अवश्य तथा विरल होते हैं ।

४- यदि 'उ' का उर्ध्व 'ईषत्' से लिया जायगा तो उर्ध्व होगा कि काव्य में थोड़े से दोष होना आवश्यक है । यदि कितने निपुण कवि में दोष न हूँ तो उनको उच्च काव्य नहीं कहलाएगा ।

५- 'सति संमये ईषद् दोषों' अर्थात् दोषों की सम्भावना होने पर पर थोड़े-से दोष हो सकते हैं तो उनके सम्बन्ध में भी उपयुक्त विचार ही होंगे ।

इस गंगाधरकार ने भी विश्वनाथ की भाँति 'उ' का उर्ध्व 'रहित' से लिया है । उनका कहना है कि मम्मट की दृष्टि में दूष्ट काव्य ही

काव्य कहता है किन्तु 'दुष्ट काव्य है' -- इस प्रकार का लोक व्यवहार होता है -- इस तरह काव्य का प्रयोग दोष के लक्षण भी होता है । यदि कहा जाय कि वहाँ काव्यत्व का व्यवहार गौण-रस के द्वारा है तो सम्यक् उदाहरण का कौन सा हेतु विद्यमान रहा है किसे गौण कहा जा सके --

'दुष्ट काव्यमिति व्यवहारस्य बाह्यं विना लाक्षणिकत्वयोगाच्च ।'

'काव्यतत्त्व समीक्षा' में स्वप्न-वाचरो ने भी मम्मट के इस शब्द के प्रयोग पर आक्षेप किया । उनका कहना है कि यद्यपि मम्मट का दोष के कारण रस-रक्षण है किन्तु उसे स्वभावात्मात्मक तत्त्व नहीं माना जा सकता है ?

मम्मट के दोष के सम्बन्ध में आचार्यों (जं शालीकरों) ने गलत धारणाएं बना ली हैं । मम्मट 'दोषों' का अर्थ 'रभाव' से लेते हैं किन्तु इन्हीं दोषों का उभाव बताते हैं जो रस की प्रतीति में नित्य रस से विद्युत उपस्थित करते हैं । और यह सर्वथा ठीक ही है क्योंकि यदि काव्य की आत्मा रस है और यदि दोष रस के विधातक है तो निश्चय ही नित्य रस से रस का विधात करने वाले दोषों से काव्य का सर्वथा शून्य होना आवश्यक है या अनिवार्य रूप से वांछनीय है । क्योंकि काव्य के आत्मभूत रस का विधात ही हो जायगा तो वहाँ काव्यत्व किस प्रकार से रह सकेगा, यह सर्व स्पष्ट है ।

जैसा अभी देखा चुके हैं कि कहीं-कहीं दोष गुण भी बन जाते हैं । इस गुण का स्वरूप क्या है ? दोष की भांति यह भी प्रारम्भ में अदृष्ट रहता । यह बात न थी कि उन लोगों को उसके स्वरूप का ज्ञान ही न रहा हो । जहाँ दोष का उभाव आवश्यक समझा गया वहाँ गुण की संपत्ति की परमावश्यकता समझी गयी । दोष-परिहार ही गुण की महत्ता का सूचक है । इस तत्त्व की स्वीकृति में किसी भी आचार्य को विवाद नहीं है । मतभेद है तो उसके स्वरूप में । इसका कारण है ६

१- रसवाचरो -- 'चन्द्रिका' टीका, पृष्ठ २१

२- काव्य तत्त्व समीक्षा पृष्ठ ३२

विशेष

अध्वनिवादियों एवं ध्वनिवादियों को काव्य-विशेष-भारणा का भिन्नता । पूर्वध्वनिवादी आचार्यों को धारणा वाह्य था । अतः उन्होंने गुणों को भी वाह्य तत्त्व के सम्बन्धित रखा । गुण को वाह्य शब्दार्थ-होत्र का लोभादायक ही एवं चारुत्व का हेतु समझा गया । दण्डी ने --

काव्यलोभाकारान् भाविकलकारान् प्रवक्षते ।

ते चासपि विकल्पान्ते, कस्तान् काव्यैः न तथ्यति ॥२१२

काश्चिन्नामविभागान्मुक्ताः प्राण्यलङ्कियाः

माधारणमलङ्कारात्मन्तान् प्रदक्ष्यते ॥२१३(काव्यादर्श)

कहकर गुणों को भी अलङ्कार जैसे काम करने वाला बताया । अतः उनका दृष्टि में दोनों में कोई अन्तर नहीं है । गुण भी अलङ्कार की भांति सोधे काव्य का उपकार करते हैं ।

वामन यद्यपि शब्द-तत्त्व को और बहुत कुछ ने दिन्नु उन्होंने भी गुण को लोभा को उत्पत्ति का हेतु माना -- काव्यलोभायाः क्लारो धर्माः गुणाः । दिन्नु दण्डी की भांति गुण और अलङ्कार को एक न कर के उन्होंने दोनों में अन्तर देता । गुणों का कार्य केवल शब्द-सौन्दर्य पैदा करना है । यह कार्य अलङ्कार नहीं पैदा कर जाता है वह तो केवल उत्पन्न सौन्दर्य को वृद्धि करता है --

ये सलु शब्दार्थयोर्धर्माः काव्यलोभां कुर्वन्ति ते गुणाः । ते

लोषः प्रसादादयः । न यमलोभादयः । केवल्येन तेषामशब्दलोभाकरत्वात् ।

लोषः प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यलोभाकरत्वमिति ।

अती दृष्टि से उन्होंने गुण को वित्त कहा है -- 'पूर्वे नित्याः'

(का०गु०पृ०३११३) और उन्हें शब्दार्थ का धर्म बताया है ।

दण्डी ने गुण को चारुत्व हेतु मान कर संघटनाशित बताया है --

'चारुत्वहेतुत्वेऽपि गुणालङ्काराणां... संघटनाश्या गुणाः ।

१- प्रतापसुन्दर-श्लोभुषणसु --रत्नायण टीका पृष्ठ ३३७

(भा०का०शा० पर०-- का० मोन्द्र से उद्धृत)

उत्पत्त्याधिविभक्तु गुणानांकाराणां शब्दः सामर्थ्येन सूचितम् ।  
विषयकारत्वेण भेदप्रतिपादनात् । संघटनापरमत्वेन वेष्टेः ।

किन्तु शानंदवर्धन तब उनके अनुयायियों ने उसे न संघटना की तरह  
न शब्दार्थ का धर्म बताया ।

वापन ने गुण को रीति के सम्बन्धित करके--

विशिष्टा उपरतना रीतिः ।१।१।७

विशेषो गुणात्मा ।१।१।८

जो उसे संघटनापरम माना था तथा एक प्रकार के गुण और रीति को  
अभिन्न धर्म दिया था या उसकी स्तुति आलोचना शानंदवर्धन ने की है ।  
उन्होंने गुण और रीति के सम्बन्ध में तीन कथन रखे हैं --

- (१) क्या रीति और गुण अभिन्न हैं? -- वापन मानते हैं ।
- (२) या गुण रीति के आश्रित हैं? -- उद्धृत मानते हैं ।
- (३) क्या रीति गुणाश्रित है? -- शानंदवर्धन मानते हैं ।

शानंदवर्धन और अभिनव गुण का कहना है कि संघटना (रीति)  
और गुण को एक अथवा गुण को रीति के आश्रित मानने से गुणों का  
अनियत विषय हो जायगा । क्योंकि शृंगार में माधुर्य गुण अवश्य रहता  
है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसमें दोष समाप्त न हो । अतः रीति  
तो अनियत है और गुण-नियत है ।

उनकी दृष्टि में गुण उस के केवल धर्म हैं । उस आत्मा है, उसी  
को भी कहा गया है --

समर्थमवलम्बन्ते येऽद्विजनं ते गुणाः स्मृताः ।<sup>१</sup>

१- अलंकारधर्मिक -- रुच्यक पृष्ठ ६

२- यदि गुणाः संघटना वेत्ते तत्त्वं, संघटनाया वा गुणाः, नदा  
संघटनाया अत्र गुणानामनियतविषयत्वप्रसंगः । गुणानां हि माधुर्यप्रसाद-  
प्रकर्षः कलाविप्रलम्भशृंगारविषय एव । रौद्राद् युगादि विषयमोजः ।  
माधुर्यप्रसादां रसमावतदाभावविषयावेव । अति विषयानिर्मा  
व्यवस्थितः । संघटनायास्तु न विद्यते । तथाहि शृंगारेऽपि दोष-  
त्वात्साधुशयो, रौद्रादिष्वभासा वेति ।

--ध्वन्यालोक टीका ३ द्वितीय कारिका ६

अपेक्षित गुण को संभ्रान्तता का धर्म न मानकर संभ्रान्तता को गुण के शक्ति काणा है । रोति रस को अधिकारिक करती है चार गुण रोति के शान्तरिण रस है तथा स्वाभाविक रोति के चारुय रस है -- येना शानंदवर्धन ने कहा है --

गुणानाभिल्य विफलतो माधुर्योत्तोर कमक्ति य । स्वार ।

-कारिका ६ अन्त्यालोक ३ श्लोक

इस प्रकार इन आचार्यों ने गुणों को प्रकृतार्थ के स्थान पर रस के सम्बन्ध किया क्योंकि रसों में गुणों का स्थान निर्धारित किया --

गुण

रस

माधुर्य गुण - शृंगार, विप्रलम्भ और करुण में उत्तरोत्तर अधिक--आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त ।

शृंगार, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --मम्मट

संभोग, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --पं० विश्वनाथ

संभोग, करुण, विप्रलम्भ और शान्त --संक्षितराज जगन्नाथ

इस गुण में मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ ने रसों का स्थिति एक ही रखी है किन्तु इन सब आचार्यों को रस-स्थिति आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त को रस-स्थिति में भिन्न ही महँ है । उन दोनों ने करुण रस को माधुर्य गुण का चरमोत्कर्ष स्थान बताया और मम्मट आदि ने शान्त रस को । उन दोनों ने माधुर्य गुण का स्थान तीन रसों में माना है और मम्मट आदि आचार्यों ने चार रसों में ।

वीरों गुण--

रांड और वीर में उत्तरोत्तर अधिक-- आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त

वीर, वीभत्स और रांड ,, ,,-- मम्मट

वीर, वीभत्स और रांड ,, ,,-- पं० विश्वनाथ

वीर, वीभत्स और रांड ,, ,,--संक्षितराज जगन्नाथ

इस गुण में भी मम्मट आदि आचार्यों का विरोध आनंदवर्धन और अभिनव गुप्त से ही है । उन दोनों ने वीर रस में इस गुण का प्रकर्ष बताया है और मम्मट आदि आचार्यों ने रांड रस में । उन दोनों ने इसे

एक में दोनों गुण जो साथ साथ हैं और उन दोनों गुणों ने तीन रूपों में एक साथ हैं ।

प्रगाद गुण--

ज्ञानवर्धन ने 'स्वभाधारणश्रितः' मम्मट ने 'स्वभावविविधश्रितः', विश्वनाथ ने 'स्वभावोष्ण श्रेष्ठा रक्ताद्यु च' तथा विद्विराज ज्ञान्याण ने 'श्रेष्ठा श्रेष्ठा रक्ताद्यु च साधारणः' कह कर सब रूपों में उपाय विधायित बताया है । अतः 'स्व' प्रकृत का कोई प्रश्न ही नहीं है ।

गुण जो ऊपर सम्बन्धित करने का शीघ्र ज्ञानवर्धन को भारत के 'नाट्यशास्त्र' के मिल गुण था । क्योंकि भारत ने दोष, गुण और अकारण रूपों को एक में सम्बन्धित किया था ।

किन्तु नाटक और काव्य को एक मानने के कारण भारत के गुण एक के साथ ज्ञानवर्धन को भांति साक्षात् सम्बन्ध न रखकर परम्परा सम्बन्ध रहते हैं । क्योंकि उनके गुण वाचिकाभिनय के आश्रित हैं और वाचिकाभिनय एक ही परिपोष करते हैं ।

एक के साक्षात् रूप से सम्बन्धित होने के कारण ध्वनिवाचियों एवं रक्तादिशों की दृष्टि में गुण एक के ही समान व्यंग्य है । गुण को शब्दार्थ का धर्म उत्पन्न ही माना जा सकता है ।

इसलिए गुणों को आत्मा का धर्म स्वीकार किया गया है । देह (शरीर) का नहीं । क्योंकि मोटा-ताजा व्यक्ति दुर्बल भी हो सकता

है और दुर्बल-तला व्यक्ति भी दूर हो सकता है । अतः जिस प्रकार शूरता ३ गुण शरीर के नहीं होते हैं अपितु आत्मा के होते हैं उसी प्रकार आधुनिक गुण शब्दार्थ के धर्म नहीं होते हैं, आत्मा के होते हैं अतः वे अवल होते हैं और एक का उपकार करने वाले होते हैं ।

१- स्वमेते ह्यलकारा गुणा दोषाश्च कर्तितः ।

प्रयोगामैशां च पुनः कदापि रताश्रय ॥७॥१०८

२- भा०का० शा०शु०-- का० कौन्द्य पृष्ठ २७

३- ध्वन्यालोक २।७, २।६, २।१०, का०शु० = १७१, भा०का० = १८-६

४- ये स्वभांगिनी धर्माः शौर्यादयः स्वात्मनः ।

उत्कर्षहेतवः स्युरवकस्थितयो गुणाः ॥

(--का०शु० = १६६)

इस प्रकार ये आचार्य गुण को शोभादायक धर्म न मान कर उसे रम्योपकारक धर्म मानते हैं । मम्मट ने शीघ्रिण वाचन के गुण स्वभाव को शोभायुक्तता का है । तन्कोने का सम्बन्ध में दो प्रश्न उठाये हैं --

(१) यदि काव्य शोभा के हेतु गुण हैं तो क्या सब गुण मिलकर काव्य में शोभा उत्पन्न करते हैं ? यथा

(२) कुछ गुण मिलकर काव्य शोभा उत्पन्न करते हैं ?

यदि तमस्त गुण मिलकर काव्य का शोभा को उत्पन्न करते हैं तो 'रसिति' को काव्य का आत्मा नहीं माना जा सकता है क्योंकि वंदर्पा को छोड़कर बाकी पाँचवाली में सब गुण विज्ञान नहीं रहते हैं ।

यदि कोई अथवा कुछ गुण काव्य शोभा के प्रयोजक हैं तो कुछ ऐसे भी उत्पन्न होते हैं, जहाँ गुण तो रहता है किन्तु काव्यत्व का व्यवहार नहीं होता है । जैसे 'उद्गावन्न प्रज्ज्वलत्याग्निस्तन्मैः प्राज्जः प्रोचन्नुत्सवत्येष पुमः' में शौण्ड्य गुण को रसात्ता ही है जो किन्तु काव्य की रसा के विषय में कहीं बात नहीं कही जा सकती ।

पण्डितराज ज्ञान्नाथ भी गुण को रस का धर्म नहीं स्वीकार करते हैं क्योंकि उनको दृष्टि में आत्मा निर्गुण है और रस काव्य की आत्मा है कतः माधुर्यादि गुण शौर्यादि को मानि काव्य के आत्मभूत रस के धर्म नहीं हो सकते --

'शौर्यादिवदात्मधर्माणाम् गुणानाम् हारादिवदुत्कारकाणाम-  
लंकाराणाम् च शरीरपटवत्वानुपपत्तेश्च ।'

'किंवात्मनो निर्गुणतयाऽऽत्मभूतगुणत्वं माधुर्यादीनामनुपपन्नम् ।  
त्वं तदुपाधिर त्यादि गुणत्वमपि, मानामावात्परसोत्पा गुणे गुणान्तर-  
स्यानां वित्त्वान्च । + + + + + + +

१- 'अप्युक्तम् काव्यशोभायाः स्तारो धर्मा गुणान्तरदण्डितोत्सवत्वलंकाराः'  
इति त्वपि न युक्तम् कतः किं स्मरतेगुणैः काव्यव्यवहार, उत्सव कतिमैः ।  
यदि स्मरतेः तत्कमस्मरतगुणा गौडी पाँचाली च रसितिः काव्यस्यात्मा ।  
अथ कतिमै ततः-- उद्गावन्न प्रज्ज्वलत्याग्निस्तन्मैः प्राज्जः प्रोचन्नुत्सवत्येष  
पुमः - अत्यावावोजः प्रभृतिषु गुणेषु मत्सु काव्यव्यवहारोत्पत्तिः ।



प्रयोजकत्वं चादृष्टादिविलक्षणं शब्दार्थो रसरचनागतमेव ग्राह्यमतो न  
व्यवहारानिप्रसक्तिः । तथा च शब्दार्थयो ररपि माधुर्यादिरोद्गम्य यत्त्वा-  
दुपचारो न कल्प्यः इति माहृशाः ।

लेकिन विश्वनाथ के इस गुण के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार  
बहुत अधिक समोचन नहीं प्रतीत होते क्योंकि आत्मा के निर्गुण होने  
की बात वेदान्तियों को है और मम्मट आत्मा के सम्बन्ध में वेदान्तियों  
को ही कल्पना को मानते थे इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है । न्याय,  
वैशेषिक इत्यादि दर्शन शास्त्र तो आत्मा को सगुण ही मानते हैं । ये  
वेदान्तों में व्यावहारिक आत्मा (जीवात्मा) को सगुण ही मानते हैं ।  
इस निमित्त में मम्मट के इस विषयक उपर्युक्त कथन की पंक्तिराजकृत--  
आलोचना अप्रासंगिक और अगत ही कही जायगी ।

इसलिए काव्य की आत्मा में गुण की बात के विषय में किसी  
प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है । अतः जैसा कि हमने अध्याय  
के अन्तिम भाग में स्पष्ट किया जायगा, काव्य की आत्मा रस है अर्थात्  
काव्य में रसोक्ति अथवा प्राणक<sup>त्</sup> रस के कारण आती है और उस रस  
के साक्षात्पोषक गुण होते हैं । जिस काव्य में रस के साक्षात् पोषक  
ये गुण नहीं रहेंगे तब रस को क्या सबल अभिव्यक्ति होगी और जिस  
काव्य में रस को सबल अभिव्यक्ति नहीं है -- जो काव्य-रस की सुदृढ़  
अभिव्यक्ति से हीन है वह काव्य निष्प्राण और निस्तोत्र ही होगा ।

इसलिए मम्मट ने अपनी काव्य-परिभाषा में 'सगुणों' शब्द का  
प्रयोग किया है गुण और रस का अन्वय-व्यतिरेकि सम्बन्ध मानने के  
कारण ही विश्वनाथ ने उनके विशेषण की आलोचना करके 'रसवन्तों'  
या 'रसों' शब्द के प्रयोग को उचित बताया । किन्तु विश्वनाथ के इस  
विशेषण की अपमान में मम्मट का काव्य-लक्षण केवल उत्तम-काव्य के लिए  
ही ठीक हो सकता है, मध्यम और अधम काव्य के लिए नहीं ।

१- रसमाधुर -- रस चन्द्रिका टीका -- बाँसम्भा संस्कृतगिरी पृष्ठ २०६

जिन गुणों के नाम में आचार्यों का मत-भेद रहा है उस प्रकार गुणों का संख्या में विचार में यह बहुत ताद-विवाद रहा । प्राचीन आचार्यों ने गुणों को षड् और नौ का धर्म मान कर प्रयोग के क-क गुण माने । इस प्रकार उन्होंने गुणों को संख्या से तय माना । किन्तु जब यह चिन्तित कर दिया गया कि वाक्य को जानना, रस के योग्य रस के धर्म गुण हैं तो आचार्यों ने रसास्वादन में चिन्त को तीन प्रकार को आचार्य-- द्विभि, विस्तार एवं व्यापकत्व -- मान कर गुणों को संख्या क्रमः माधुर्य, शोच और प्रसाद -- तीन निर्धारित कर दी । क्योंकि माधुर्य गुण शोचारादि रस के आस्वादन में मूढदय के हृदय में दुःख पैदा करता है । उस समय एक स्त्रीक शोचकता आ जाता है । उसका स्वल्प आह्लादक होता है । शोचो-गुण शोचारादि के रसास्वादन में मूढदय के हृदय में दोष पैदा करता है , जिससे कि चिन्त उही तब ही जाता है और प्रसाद गुण शोच रसों के आस्वादन में मूढदय के हृदय में व्यापकत्व लाता है, जहाँ मन को प्रसन्न कर देता है ।

इसके गुण रस के सम्बन्धित होने के कारण व्यंग्य हैं अतः उनके अभिव्यक्तक वर्णों को निश्चित हैं । माधुर्य गुण में वर्णों में माधुर्य- व्यंग्यक वर्ण और स्मासों में अस्मास अथवा मध्यम स्मास को स्थान दिया गया है, शोचो गुण में उदत- पदसंघटना तथा दोष समासों को स्थान दिया गया है तथा प्रसाद गुण में उन सभी सुकुमार तथा विस्त शब्दों को स्थान दिया गया है जिनके सुनने से अर्थ प्रतीति हो जाए तथा उन स्मासों को स्थान दिया गया है जो सुनने में सुरन्त स्पष्ट हो जाय ।

इन रसवादियों ने इस प्रकार तीन गुणों का स्वल्प निश्चित करके वाचन आदि आचार्यों द्वारा बताए गए शब्द तथा वर्ण मत्त सभी दस गुणों में से कुछ को इन तीन गुणों के अन्दर, कुछ गुणों को दोषाभाव मात्र करके , कुछ गुणों को दोष बताकर तथा कुछ गुणों को अलंकार के अन्दर करके गुणों की संख्या तीन ही निर्धारित कर दी है । उन आचार्यों का इस प्रकार करना उचित ही था । क्योंकि शब्द-गुण के 'श्लेष', 'स्मासि', 'उच्चार तां', 'प्रसाद' और 'शोच' गुण का ही स्वरूप बताया गया है वह रसावादी आचार्यों की दृष्टि में शोचो गुण के अन्दर किया जा सकता है ।



है कि सात सः गुण तीन मार्गों -- 'सौन्दर्याय', 'वैचित्र्य' तथा 'मधुर्य' -- में रहते हैं। सामान्य गुणों के लिए बताया है कि मार्ग-भेद से उनके स्वभाव में कोई भेद नहीं आता है किन्तु विशेष गुणों में स्वभाव-भेद हो जाता है। इस प्रकार उनका दृष्टि में तीनों मार्गों में गुणों का ही या अलग-थलग रहना है।

किन्तु गुणों को एक ही या गिना को भी मान्य नहीं हुए। गुण का एक के सम्बन्ध मानने के कारण महदय को चित्तावस्था से सम्बन्ध रख कर गुणों को तीन तीसरा मानता ही सर्वथा स्मृति होगा। इस का अनुसरण काव्य के गुणों के विवेचन में किया गया है।

काव्य के विभिन्न लक्षणों का विवेचन करते समय यह सामान्य सिद्धान्त प्रतिष्ठित हो चुका है कि काव्य शब्दार्थ युग्म में ही होता है किन्तु एक में नहीं, तथा काव्य में गूढता से शब्द और अर्थ अनिवार्य रूप से बाँध रहित और गुण सम्बन्धित होने चाहिये एवं यावत्काव्य अलंकार से ही सुसोमित होने चाहिये। शब्द और अर्थ के साहित्य रूप काव्य में अलंकार को वाञ्छनीयता का <sup>एक</sup> बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण भी है।

अलंकार को रुचि न केवल चेतन-अणु में अपितु अचेतन-अणु में भी परिशिष्य होता है। जिस प्रकार प्राणी प्रत्येक वस्तु को सुन्दर, सुकल्पित एवं सुसज्जित विधि से एक कर जाने नेत्रों को तृप्त करता है एवं उनके सम्पर्क में जाने वाले लोगों के नेत्रों के लिए आकर्षण का विषय बनता है, जिस प्रकार प्रकृति अपनी सज्जनीयता से नीरस, निर्दयो व्यक्ति को भी हठान्त्र जानी और आकृष्ट कर लेती है उसी प्रकार कवि भी अपने काव्य को अलंकृत करके महदय को आकृष्ट करता है। कवि को प्रकृति सर्वदा कुलप वस्तु को भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने को होती है। यही कारण है कि साधारण व्यक्ति जिसे वस्तु को उपेक्षा की दृष्टि से एवं कुलप सम्पर्क कर अवहेलना की दृष्टि से तिरस्कृत कर देता है उसे ही कवि अपनी काव्य-प्रतिभा से अलंकारों को स्मृति योजना करके सुन्दर बना देता है।

अलंकार कवि की भावनाओं को पुष्टि करने में महायुक्त होते हैं। अर्थात् जब कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में लक्ष्य अपने को

जाता है जब तक केवल कर्तारों का ही सहारा लेता है । किसी नायिका के अतिशय सौन्दर्य को केवल साधारण शब्दों से वर्णन करने में कवि उसके रूप का तिरस्कार करना सम्भवता है अतः वह कर्तार का वाच्य लेकर कर्मा मुख चन्द्रमा है (अपराध), कर्मा चन्द्रमा के सदृश्य है (तपसा), कर्मा दूगरी बाँद है (अतिशयोक्ति), कर्मा मुल है या चन्द्रमा (सौन्दर्य), कर्मा मुल नर्मा चन्द्रमा है (आह्वयति), और कर्मा चन्द्रमा मुख के मान है (प्रताप) आदि कलाकार ही संशोधन का अनुभव करता है । क्योंकि ऐसा वर्णन करने से उसके अतिशय सौन्दर्य का ज्ञान होता है । यही कारण है कि काव्य को भाषा में वही बोल बाल के शब्द एवं रूप होते हैं किन्तु फिर भी काव्य भाषा और बोल बाल को भाषा में भिन्नता का ही ज्ञान होता है । अतः अलंकारों को 'अभिधान प्रकार विशेष' कहा गया है ।

कवि महद्वय और कलाकार दोनों होता है अतः उसके काव्य में भावार्थ और कलायत्न का होना स्वाभाविक है । भावार्थ उसको महद्वयता को उदात्त करना है और कलायत्न उन भावों को अलंकृत करने के लिए कवि को प्रेरित करता है ।

अलंकार के मूल में वैचित्र्य ही रहता है इसी को 'कमलकार', 'विचित्रि', 'वास्तवता', 'अतिशयोक्ति' अथवा 'वक्रोक्ति' कहा गया है । जैसा कि अभी देस चुके हैं कि कुम्भक को वक्रोक्ति और कुल नर्मा, केवल वैचित्र्य-पदोंगी भणिति है और इसका अर्थ कवि-प्रतिभातिथ्य है ।

वैचित्र्य लाने के लिए ही कवि को भाषा में अतिरंजना होता है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है । इसी दृष्टि से आचार्यों ने अलंकारों का प्राण अथवा मूल 'अतिशयोक्ति' को बताया । मामल को दृष्टि में 'अतिशयोक्ति' और 'वक्रोक्ति' पर्याय है --

संज्ञा सर्वैव वक्रोक्तिरन्यथार्थो विभाव्यते ।

यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना ॥

१- मामलकृत काव्या० श्लो० २।८५

नाम 'तन्माभिधेयशब्दोक्तिरिच्छता वानामलक्षणाः' का काल्पनिक का जोर देकर लिया है। उनका अतिशयोक्ति विनिश्चय प्राप्त करने का उद्देश्य ही नहीं बल्कि चोकर किया है। अन्त में उनके अक्षरों का प्राण मानने हैं -- 'अथ च विधिविधये-  
ऽतिशयोक्तिरेव प्राणत्वैतावतिष्ठते तां किंवा प्रायेणालंकारत्वा गौणात् ।'

किन्तु 'अतिशयोक्ति' को जो अक्षरों का प्राण माना है उसका काल्पनिक विनिश्चय अक्षर के न होकर 'वैचित्र्य' तथा 'अलंकार' के है। तथा 'वैचित्र्य' अक्षरों के अर्थ में विचित्रता का अर्थ है। अथ, प्राप्ति, अनुमान, हेतु आदि शक्ति-तत्त्व (आन्तरिक-तत्त्व) में भी होते हैं मान्य वे ही जब 'वैचित्र्य' का परिधान करने पर काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो अक्षर कहलाते हैं।

जो 'वैचित्र्य' का नाम वास्तव में 'वास्तव' कि 'वैचित्र्य'वाचक-पर्याय प्रकाशमान-अक्षरः।' प्रारम्भिक संस्कृत आचार्य अक्षर के विषय में जैसे 'वैचित्र्य' नाम से न परिचित हो किन्तु वास्तव शब्द से यथा भांति परिचित थे। उन्होंने वास्तव को ही अक्षर मान कर काव्य में उसको प्रधानता दी। उनके काव्य में वे काव्य को कहना भी नहीं कर सकते थे। जैसे कट्टर अनुयायी का अक्षर वादी कहलाए। इन लोगों ने शब्दार्थ शरीर को निवेचना अवश्य ही किन्तु वास्तव-तत्त्व को उपासित ही रखा अतः उनके अक्षरों का भी वास्तव तत्त्व से सम्बन्ध न होकर केवल शब्दार्थ से ही सम्बन्ध रहा। अर्थात् उनका दृष्टि में अक्षर केवल शब्दार्थ को ही अक्षर करने वाले ही धर्म रहे। वाचन ने 'रोति' को जो काव्य को वास्तव माना है, वह काव्य के आन्तरिक-तत्त्वों में से न होकर वाह्य-तत्त्वों में से है। अतः उनके अक्षर भी शब्द और अर्थ-गत अन्वय के विधायक होते हैं।

१- कामहकृत काव्या० श्लो० १।३६

२- का०प्र०कलकीकर टोका पृ० ७७३

दण्डी ने दो प्रकार के अलंकार बताये -- १- सामान्य और  
२- विशेष । उनका दृष्टि में 'सामान्य' अलंकार का अर्थसाधारण (एकदली का)  
सौन्दर्य होता है और 'विशेष' अलंकार का अर्थसाधारण (गुण, रीति आदि )  
सौन्दर्य होता है । इस प्रकार उनका दृष्टि में अलंकार का अर्थ केवल सौन्दर्य  
जाना है -- 'श्रीभास्वराश्रमनिर्लंकाराद् प्रसिद्धे ।' अर्थात् जो भा सौन्दर्य  
सामान्य अलंकार है । यही कारण है कि उनका दृष्टि में सौन्दर्य लाने के  
कारण गुण भी अलंकार है ।

दण्डी ने गुण और अलंकार को एक रूपका किन्तु वामन और  
शुद्धर ने इन दोनों को एक नहीं मान लिया ।

वामन ने भी अलंकार के दो प्रकार माने हैं किन्तु दण्डी का  
याँति सामान्य और विशेष न मान कर 'भावव्युत्पत्ति' के अलंकारअलंकारः-  
अलंकारि परक अर्थसौन्दर्य और कारण व्युत्पत्ति के अलंकारःअनेन इति  
अलंकारः -- एकतादिकअलंकार के रूप में लेते हैं । उन्होंने अलंकार के सम्बन्ध  
में ज्ञाना दृष्टिकोण संकुचित नहीं रक्खा है । कारणव्युत्पत्ति के लिए यह  
अलंकार के अर्थसाधारण में बताया है कि वे श्रीभास्वराश्रमि हैं और भावव्युत्पत्ति के  
लिए यह अलंकार के अर्थसाधारण में बताया है कि इन अलंकारों के बिना  
काव्य का ग्रहण नहीं हो सकता । इस अलंकार का अर्थसौन्दर्य है और यह  
सौन्दर्य गुण-श्रवण और दोष के त्याग से जाता है ।

इस आधार पर वह गुण और अलंकार में भेद मानते हैं । दण्डी  
को याँति दोनों को एक नहीं मानते हैं । इस दृष्टि से उनका काव्य-साहित्य  
में महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने इस क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन का काम किया ।  
जहाँ वामन ने गुण और अलंकार का भेद बताया है वहाँ उनका अलंकार से  
नात्म्य उपादि से है । उनका दृष्टि में एक सौन्दर्य तो गुण है और  
बाह्य सौन्दर्य अलंकार । अतः गुण उनको दृष्टि में प्रथम प्रकार का  
(भावव्युत्पत्तिपरक) अलंकार है । और बाह्य अलंकार ही (कारण व्युत्पत्ति-  
परक) श्रीभास्वराश्रमिक होते हैं । वामन ने गुण के लिए बताया कि वे नित्य ही

गौर कर्त्तार जिनका । काव्य में गुण के रहने पर ही कर्त्तार का साक्षात्कार है । अतः गुण के समया कर्त्तार का वाङ्मयीयता उवाचन का ही साक्षात्कार वाचन का ही वाच्य प्रकार के कर्त्तार के ही जिनके कर्त्तव्य मानादि माने हैं । उनमें उदाहरण के लिये कहा है कि जिस प्रकार सुन्दर स्त्री के आभूषण उनके सौन्दर्य का वृद्धि करते हैं तथा प्रकार गुण युक्त काव्य को सौन्दर्य वृद्धि कर्त्तार करते हैं, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री के लिए आभूषण निरर्थक होते हैं वैसे ही निर्गुण काव्य के लिए कर्त्तार निरर्थक होते हैं ।

इस प्रकार वाच्य गुण और कर्त्तार का समवाय कार्य काव्य का सौन्दर्य अर्थात् ~~सौन्दर्य का अभाव के लिये~~ किन्तु दोनों एक तिरा या प्रकार के नहीं हो सकते हैं ।

उद्भट ने भी गुण और कर्त्तार को सादृश्य हेतु और उनमें भेद माना है किन्तु वाचन को वाच्य गुण को शोभादायक और कर्त्तार को शोभाजित हेतु मान कर भेद नहीं किया अतिसु आ-स-भेद के दोनों में अन्तर दिखाया है । उन्होंने संस्कृत में 'राति' के आशय में रहने वाले शोभाजनक धर्म को गुण और शब्द-धर्म का आशय लेने वाले शोभाजनक धर्म को कर्त्तार कहा है । उद्भट ने इस दृष्टि के गुण और कर्त्तार में भेद अवश्य किया है किन्तु काव्य में दोनों को तथा आवश्यक माना है । वाचन को वाच्य कर्त्तार को वाङ्मयीयता के अभाव नहीं है । हाँकि जगत् के लिए तो कहते हैं कि गुण का होना आवश्यक है और कर्त्तार (आभूषण) का नहीं किन्तु काव्य में ऐसा नहीं कहा जा सकता है । अतः उनका दृष्टि में हाँकि जगत् में शरीर के साथ गुण का सम्वाय सम्बन्ध है और कर्त्तार का संयोग सम्बन्ध है किन्तु काव्य-शरीर के साथ दोनों का सम्वाय सम्बन्ध होगा । अतः उन दोनों का आशय-शरीर के दृष्टि सम्भावना नहीं को जा

- १- का० सू० वृ० ३।१।२ वृत्ति का अन्तः श्लोक  
 २- प्रतामरुद्रकौषुषणम् --रत्नापण टोका पृष्ठ ३३७  
 कर्त्तार स्वैव तस्यक पृष्ठ ६



मयल) -- योगवाच्युत्था शोभादयः योगवाच्युत्था तु शारादयः अस्यामु  
गुणात्तराकाराणां भेदः, शोभाः प्रभुतायाः तु प्रागेवादातां शोभोपायानां  
न्यासाच्चुत्था । तिस्रिभिरिति बदलिका खाहंशनेषां भेदः ।

(काव्यप्रकाश चतुर्थ अस्त्याह)

वाचन की क लक्षणा -- गुण के रहने पर ही श्लोकों का  
गर्भकता है अन्वया नहीं का: गुण नित्य और श्लोक अनित्य है -- अर्थात्  
साद में ही शब्दों ने किया । शोभा--

बदलकृतमपि शब्दा न काव्यं गुणदोषवर्जितम् ।

गुणयोगस्तगोभुत्था गुणात्तराकारयोगयोः ॥

(शरद्वती काव्यमरण १५६)

उद्धृत है श्लोककार प्रतिकारेन्दुराज ने भी गुण और श्लोक का  
वचन वाचन जैसा ही श्लोक किया है । अर्थात् वृत्त श्लोक का  
उदाहरण दिया है और वाचन ने गुणों का-श्लोक दोनों में अन्तर है ।

अग्निपुराण में श्लोक श्लोक के अभाव में काव्य ही विख्या श्लोक  
के अभाव बताया गया है -- अर्थात् श्लोककारिताविशेषवधारणा -- किन्तु  
श्लोक को श्लोक गुण के अभाव ही काव्य नहीं है अन्वया में श्लोक  
ही जाते हैं । --

बदलकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् ।

बहुच्छलिते श्लोकां हारो मारायने परम् ॥३६६॥२

इसमें भी गुण को नित्य और श्लोक को अनित्य माना गया  
है ।

ध्वनिवादी शब्दों के पूर्व तक गुण और श्लोक दोनों ही  
शब्दार्थ के अर्थ समझे गये थे । दोनों में अन्तर अर्थ: नित्यता और

१- काव्यालंकार शार संग्रह--६ वमं श्लोक कारिका की वृत्ति पृष्ठ २१-२२

अनित्यता तथा नाश्रय की दृष्टि से देखा गया था, एक को शोभा को उत्पत्ति का हेतु और दूसरे को लोभाश्रय का हेतु समझा गया था। गुण के अभाव में अलंकार का स्थिति नहीं माना गया था और न काव्य में अलंकार-शब्दार्थ का अर्थना को न माना था। किन्तु रसादी वाच्यार्थों की दृष्टि में गुण और अलंकार का पूर्णरूप से खोज बदल गया। उन लोगों ने गुण को शब्दार्थ का धर्म न मान कर काव्य को 'वाच्यारस' का भाग, जो रस का अभाव उत्पन्न करते हैं और अलंकार को शब्दार्थ का धर्म माना जो रस का अभाव उत्पन्न करते हैं। क्योंकि शब्दार्थ गुणों के अनिवार्य होते हैं अतः अलंकार शब्दार्थ का उत्पन्न करने के गुणों का उत्पन्न करते हैं और गुणों का उत्पन्न करके रस का उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार रस का धर्म होने से गुण रस को ही भाँति व्यंग्य होते हैं और अलंकार शब्दार्थ के धर्म होने से नाने वाच्य होते हैं। उनकी दृष्टि में रस अलंकार है और अलंकार शब्दार्थ। अतः गुण अलंकार के धर्म हैं और अलंकार अलंकार के धर्म हैं।

इन वाच्यार्थों ने जो गुण को नित्य और अलंकार को अनित्य माना है किन्तु पूर्ववर्ती वाच्यार्थों एवं इन वाच्यार्थों में अलंकार-भाषा का अन्तर है। इन वाच्यार्थों ने पूर्ववर्ती वाच्यार्थों की भाँति दोनों के भेद में 'शोभाश्रय' को आधार मान कर धर्म-धर्मों अथवा अलंकार-अलंकार अथवा अलंकार-अलंकारों के भाव को लिया है जिसमें धर्म धर्मों का, अलंकार अलंकारों का और अलंकार अलंकारों का उत्पन्न करता है। धर्मों, अलंकारों और अलंकारों रस ही है।

अतः गुण की सार्थकता गुणों का उत्पन्न करने में और अलंकार का सार्थकता अलंकारों के उत्पन्न करने में है। इस प्रकार इन वाच्यार्थों ने रस के भाव गुण और अलंकार दोनों का उत्पन्न-उत्पन्न भाव सम्बन्ध माना और गुण तथा अलंकार को शब्दार्थ के भाव अर्थः व्यंग्य-व्यंग्य एवं वाच्य वाच्य माना है।

१- सा०प्र० २१७३, सा०प्र० २१७, २१६, २१८, २१९

२- ध्वन्यालोक लोका २१६ की वृत्ति, ध्वन्यालोक प्र० ३० अन्तः अलंकार का प्र० २७३०, काव्यानुशासन-हेमचन्द्र २१२३

गुण के बिना रस का विद्यति का कल्पना न करने के कारण गुण और रस के बीच सम्बन्ध-व्यतिरे कि सम्बन्ध माना गया है। मम्मट ने गुण को 'अलक्षिति' कहा है और कलंकारों का रस के साथ गुण का भांति साक्षात् सम्बन्ध न होने से कलंकारों को नियत रूप से अक्षिति न होने के कारण उसे 'लासुनिद्' कहा है।

प्रायः सभी आचार्यों ने कलंकार के अन्वितार का प्रकट विरोध किया। उनका आशय आध्यात्मिक रस के उत्कर्ष करने में है। शानंदवर्ण ने बताया है कि यद्यपि कलंकार चारत्व हेतु हैं किन्तु उनका प्रयोग रस की प्रीति के लिये होना चाहिए --

राशिप्रसन्नया यस्य बन्धः शुकृद्विभोभवेत् ।

तदुपयत्ननिर्वहणैः सौख्यकारोभ्यनां मतः ॥२१२६

मिवज्ञानत्वरत्नैर्नादिगत्तैर्न कदाचन ।

काले च गृहण त्यागो नातिनिर्वहणं शिवा ॥२१२७

(ध्वन्यालोक)

शतः कवि को यदि से अन्त तक उनके निर्वहण को इच्छा नहीं होनी चाहिए और न उनके लिए प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है अपितु प्रतिभावान कवि के पास मानी आवश्यकता पूर्वक स्वयं बहने जाते हैं।

मम्मट ने भी रस के अभाव में कलंकारों के प्रयोग को वैचित्र्य-प्रदर्शना कह कर उनके अनावश्यक प्रयोग के प्रति कवि को सावधान किया है। उन्होंने कलंकारों के तीन प्रकार के कार्य बताये हैं --

(१) रस के रहने पर उल्लार करते हैं।

(२) रस के रहने पर भी उपकार नहीं करते हैं।

(३) जहाँ रस नहीं वहाँ कलंकार वैचित्र्य मात्र रहते हैं।

ऐस नहीं है तात्पर्य है -- रसों की नगण्यता जल्दा उपेक्षा)

मम्मट के कलंकार-विषयक उचार दृष्टिकोण से सिद्ध होकर जयदेव ने जो उनके 'अलक्षिति पुनः क्वपि' शब्द की कटु आलोचना--

उद्योतरोति यः काव्यं शब्दार्थानन्दरूपकृतम् ।

कर्तुं न मन्यते कथादनुष्णमनसं कृतम् ॥ (बन्द्रालोक १।२)

कविर ही है उसमें केवल मनका कलकार विषयक ज्ञानवाक्य मोह ही परिलक्षित होता है ।

किन्तु ऐसा यह नास्तर्प्य न लेता नास्तर्प्य कि इन जाचार्यों ने काव्य में कलकारों को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया है अपितु जैसा कि देस बुके हैं क्या कलकारवादों और क्या सवादा जाचार्यों ने उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है । काव्य में गुण और कलकारों से कलकृत शब्दार्थ का साहित्य ही कभीष्ट होता है क्योंकि यही विशेषता सामान्य शब्द और कर्म से भिन्नता लाती है । किन्तु काव्यों में कलकारों का दुरुपयोग कदापि नहीं होना चाहिए । दुर्भयोग से तात्पर्य रस-नत्व को अवहेलना करके केवल वैचित्र्य मान के प्रदर्शन से है । ऐसा काव्य कभी भी तम लीटि का नहीं हो सकता ।

जैसा कि देखा जा चुका है कि काव्य में जहाँ शब्दार्थ के साहित्य, वचन की क्लृप्ति मंगिमा, दोगों का अभाव, गुणों एवं कलकारों का ज्ञान की आवश्यकता होती है वहाँ रस को भी होता है । किन्तु रस का सग ज्ञान्य काव्य के तत्त्वों को सग से विकसित भिन्न होता है । पुरुष में जो सग आत्मा को होती है जितने कि वह जीवित जन्मा मृतप्राय होता है वही सग काव्य-पुरुष में 'रस' को होती है । उसी के आधार पर काव्य की सजीवता जन्मा निर्जीवता निर्धारित होती है । अतएव उसे काव्य-पुरुष का ज्ञान माना गया है । यदि कवि उस प्राण-नत्व को अवहेलना कर जाता है तो उसका काव्य सृष्टय के बीच कैसे अनुप्राणित रह सकता है यह सर्वसमैय है । जिस प्रकार मनुष्य के जीवित रहने पर ही उसके कर्णों, गुणों एवं आसुषणों की सार्थकता रहती है, उसी प्रकार काव्य में भी रस के रहने पर ही तदनुकूल शब्दार्थ संघटना जन्मा रोति, गुण एवं कलकारों की सार्थकता रहती है अन्यथा वे मार स्वल्प हो जाते हैं --

तथापि ज्येष्ठं शब्दरारं कृणुजाशुक्तमपि न जानि अरुण्यार्थमाभावाद्यं  
अन्वयान्तरात्किसिप रम्यापारुवृत्तिः प्रस्तुतशौचनो ग । निर्व्यंशु-  
गारे कविकृतिबन्धे निष्प्रान्तशौचे वपुषावदना ॥

अर्थात् इस काव्य-गुरुत्व में शब्दार्थ का ज्ञान शरीर की भांति  
इस का ज्ञान आत्मा की भांति, अक्षरों का ज्ञान कृष्णजादि आधुषणों  
की भांति और शैलियों का ज्ञान अक्षरावयवों की भांति होता है ।

जिन आचार्यों ने इस को काव्य की आत्मा के रूप में नहीं माना  
गृहण किया है वे भी उनके प्रबन्ध के सम्बन्ध में किसी प्रकार का मन्दैह  
नहीं करते । अक्षरवादी आचार्य यद्यपि काव्य का प्राण अक्षर मानते  
हैं किन्तु वे भी इस को परमावयव तत्व मानते हैं । ध्वनिवादी आचार्य  
काव्य का आत्मा ध्वनि बताते हैं +ध्वनिवाक्य+ किन्तु ध्वनि के तीन भेद  
रसध्वनि, वस्तु ध्वनि और अक्षर ध्वनि करके वस्तु और अक्षर ध्वनि  
को रसध्वनि के अन्दर करके अन्तर्गता रसध्वनि को ही काव्य का  
आत्मा बताते हैं । आचार्य दामोदर का मारा शौचित्य विद्वान्त रूप पर  
ही आधारित है अतः वे भी इस को काव्य की आत्मा मानने में कोई  
सतभेद नहीं रखते हैं । मम्मट स्वं विश्वनाथ ने अमलः 'रगुणार्थ' एवं  
'वाक्य'रसात्मकं काव्यम्' कहकर साष्ट शब्दों में इस को काव्य की आत्मा  
कहाया । मम्मट का कथन है कि जहाँ शब्दों अथवा अर्थों का केवल  
वैचित्र्य ही रहता है वहाँ पर भी आत्मभूत होने के कारण इस को मना  
रहती है । उन्होंने इस सम्बन्ध में शब्दालंकारगत तथा अर्थालंकारगत  
वैचित्र्य का उदाहरण देकर अपने कथन को पुष्टि की है, और विश्वनाथ  
ने प्रबन्ध के अन्दर आए नीरस अंश का पूरे प्रबन्ध के अन्दर आए रस से

१- ध्वन्यालोक लोचन

२- शिबलीलक्षण ११३

३- साहित्यदर्पण प्र० परि० पृष्ठ २२

रस को लाना काकर काव्य को आत्मा रस है -- रिद किया है ।  
 उनके अतिरिक्त अने मत के स्पर्श में उन्होंने व्यक्तिविकेक कार मन्विभट्ट  
 को काव्यात्मात्मनि रंजनि रसादिषु न कव्यनिमित्तः, ध्वनिधार को  
 नहि श्वेरिति धृत्मात्रनिर्वाहणात्प्रादलापः' और जगन्नि पुराण का  
 'वाग्बेदश्चप्रधानेऽपि रस एवात्र जायितम् --' पंक्तियों को उद्धृत किया  
 है ।

इन उद्युक्त ताचार्यों के शार्थों रस के काव्यात्मा पर में प्रतिष्ठित  
 हो जाने के अनन्तर पंडितराज जगन्नाथ हा एक ऐसे उल्ककोटि के  
 काव्यलाञ्छकार हैं जो काव्य को आत्मा 'रस' नहीं मानते । उनका  
 कहना है कि रस को काव्य को आत्मा मान लेने पर व तु और कंठार  
 प्रधान काव्य, काव्य नहीं हो सकते । इस तरह महाकवियों ने जो जट-  
 प्रवाह, उनके वेग, बालकों की झीड़ा आदि का वर्णन किया है उन सब  
 को काव्य नहीं कहा जायगा जो कि उपयुक्त नहीं है । जगन्नाथ का  
 कहना है कि उनको काव्य मानने में यदि यह तर्क दिया जाय कि उनमें  
 रस का स्पर्श होने के काव्यत्व है क्योंकि वे सब वर्णित पदार्थ किनी-न-  
 कियों रस के उद्दीप्त विभाव आदि से सम्बन्धित रहते हैं तो 'गौश्वलति'  
 'मृगौ धावति' आदि सभी में काव्यत्व का व्यवहार होने लौगा । क्योंकि  
 उनकी दृष्टि में जगत् को समस्त वस्तुसं विभाव, अनुभाव और अभिचारी  
 इनमें न किनी-न-पिची के अन्तर्गत जा हो जाती है ।

जगन्नाथ ने रस को काव्य को आत्मा न मानने का जो तर्क  
 दिया है वह बहुत समीचीन नहीं प्रतीत होता है क्योंकि जगत् के समो  
 पदार्थ विभावादि के अन्तर्गत नहीं जाते । इनका प्रयोग केवल काव्य-जगत्

१- रस गंगाधर--चन्द्रिका टीका पृष्ठ २३-२४

यसु रसवदेव काव्यत्वं इति साहित्यदर्पण निर्णयितम्, तन्न वस्त्वहङ्कार-  
 प्रधानानां काव्यानामकाव्यत्वापदेः । नवेष्टाऽऽपत्तिः, महाकविप्रमुदायस्या  
 झुलीभाक्प्रसङ्गात् । तथा च कलप्रवाहवेगनिपतनोत्पत्तनप्रमणानि कजिनि-  
 र्णयितानि, कपिबालादिविहस्तानि च । न च तत्रापि कव्यत्वेत् परम्परया  
 रसस्यज्ञोऽस्त्वैवेतिवाच्यम्, ईश्वरसम्पत्तयै गौश्वलति' मृगौ धावति' इत्यादा-  
 यतिप्रसङ्गेन प्रयोजकत्वात् । अर्थात्तस्य विभावाऽनुभाव.व्यभिचार्यव्यक्तमत्वादिदि-  
 दिव ।

में था होता है । काः 'गोत्वानि' भूमो शालि' में काव्यत्व जानने का प्रश्न ही नहीं रहता है ।

काव्य की शक्ति एतद् इति प्रकार इसके निरुक्त्य व को जाने पर काव्य स्वयं से निरुक्त्य प्राप्त कर देता भी सम्भव हो जाता है । परन्तु के र. सम्बन्धों -- विद्यावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् एतन्निष्पत्तिः -- इस काव्य-ज्ञान में जानकार्यों के बीच विवाद का विषय बन गया । भट्ट लोल्लट ने निष्पत्ति का अर्थ उल्टा कर अपने उत्पत्तिवाद सिद्धान्त को जन्म दिया । उन्होंने विभाव का सम्बन्ध उत्पादक-उत्पादक, अनुभाव का सम्बन्ध गम्य-गमक तथा व्यभिचारों भाव का सम्बन्ध शोध्य-शोध्यक माना । उन्होंने इस की स्थिति अदृश्य में न मान कर मूल रास में माना । उन्होंने लौकिक सामग्री से ही रासादि में एतन्निष्पत्ति माना ।

उन उत्पत्ति सिद्धान्त में अदृश्य को व्यवहारा को नहीं जब कि अदृश्य दूसरे की रति कादि स्थायिता में से एतद् का अनुभव नहीं कर सकता । लोल्लट ने एतानुभूति के मूल तत्त्व शतानुभूति की ओर खींच दिया क्योंकि अदृश्य नट में उत्पन्न एतद् का आरोप शतानुभूति के कारण करता है किन्तु उन्होंने एतानुभूति पर खल नहीं दिया ।

जानकार्य शंभुक ने उत्पत्ति का अर्थ अनुभूति से लिया है यह सिद्धान्त भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद के सिद्धान्त का विकसित रूप है । इसमें एतद् का स्थिति अनुकार्य में न माना जाकर अदृश्य में माना गटा है । अदृश्य अनुमान करके ही जानपित होता है । 'चिन्तुराज-न्याय' से शंभुक ने लौकिक अनुमान और काव्य-गत अनुमान प्रणाली में भिन्नता लाने का चेष्टा की है क्योंकि उय समय नट में जो राम का ज्ञान होता है वह सम्पद्, मिथ्या, संशय और सापुत्र्य की प्रतीति से भिन्न होता है । इसीलिए अदृश्य नट को राम समक होता है ।

इति नट भी अभिनव कला की शिखा एवं पुनः पुनः अभ्यास के कारण राम की भूमिका उपस्थित करता है अतः उसकी चेष्टाएं इतिहास होने

दुःखी साहूदय उक्तों कृत्ति नकां सम्भन्ता । शुकु को दृष्टि में विप्र प्रकार  
 लौकिक जगत् श्री में राम के हृदय में रति का अनुमान राम का अवात्कार  
 करने वालों ने राम के रति भाव के कारण, शयं एवं अकारण भावों से  
 किया होगा उसी प्रकार काव्य में साहूदय विभाव, अनुभाव<sup>एवं</sup> अभिवारण भावों  
 से नट के अवात्कार का अनुमान करता है । अतः उन्होंने विभाव और  
 अवात्कार का सम्बन्ध 'सम्बन्धे गम्यमानक' अर्थात् 'अनुपाद्य अनुमायक' माना ।

नट का वैष्टाओं की भांति उक्त अवात्कार वास्तुतः उक्त  
 न होकर अभिवारण राम का होता है किन्तु वह अवात्कार नट में ही  
 कालित किया जाता है और सामाजिक जनों वागता से उस अवात्कार  
 की वर्णना (अनुमान) करता है जो अनुमेय रूप होता है । अर्थात् उनके  
 विभावोदि से अनुमित होता हुआ अवात्कार उस कहलाता है ।

इस वाद में भी कोई दोष है । मौलिक दोष यहाँ है कि केवल  
 प्रत्यक्ष ज्ञान ही अवात्कार या आनन्ददायक होता है अनुमानक्यों नहीं  
 होता है -- का लोकानुमति के विरुद्ध यहाँ अनुमान को आनन्द का कारण  
 बताया गया है । प्रदीपकार के शब्दों में -- "सदप्यहृदयग्राहि । अतः  
 प्रत्यक्षमेव ज्ञानं सवत्कारम् , न अनुमित्याधिरिति लोकप्रसिद्धिमवधुयान्यथा  
 कल्पने मानाभावः ।"

शुकु को दृष्टि में नट में अवात्कार न होते हुए ही साहूदय उक्त  
 राम समक का उक्त राम को रति का अनुमान करता है । इस प्रकार  
 मट्ट लौकिक की भांति यह भी उस की वास्तुतः स्थिति अनुकारण राम में ही  
 मानते हैं तदुपरान्त नट में सामाजिक उक्त अनुमान कर लेता है और इसी  
 से वह आनन्दित होता है किन्तु प्रत्यक्ष का अपेक्षा अनुमान में विशेष  
 आनन्द नहीं होता है । मट्ट लौकिक के भिन्नता केवल उक्त ही है कि  
 शुकु साहूदय में रति-स्थिति का उक्त अभाव नहीं मानते हैं ।



भट्ट नायक दोनों वाद सुनिश्चिन्नाद और सुनिश्चिन्नाद को न मान कर पुत्रिवाद को स्थापना करते हैं किमें भोग्य-भोज्य सम्बन्ध माना गया है । उन्होंने अग्नि का भाग दो और व्यापारों -- भावकत्व और भोग को कल्पना की है । इन दोनों व्यापारों का कर्म-फल सम्बन्ध उन्होंने माना है । अग्नि का वायुगर्भ है, भावकत्व का एव है और भोग का सुहृद है सम्बन्ध बताया है । अग्नि व्यापार काश्च या वादक के अर्थ का बोध करता है, पतञ्जल व्यापार संभवादि को साधारणोक्त कर देना है अर्थात् वेलादि विभाव कर्त्तव्य विचारना से रहित होकर स्वैवाधारण अर्थात् एव में एव काश्च के अनुभाव अर्थात् अज्ञान भाव काश्च विशेष के न होकर स्वैवाधारण के ही होते हैं और अथ सुहृद का वा रत्यादिभाव उनके सम्बन्ध से रहित होकर साधारण मानव के भाव के अर्थ में ही होते हैं । इस अर्थ सुहृद का हृदय लोक साधारण का हृदय ही जाना है ।

इस प्रकार दोनों और के भावों के साधारणोक्त ही जाने पर 'भोग' नाम की शक्ति से एव साधारणोक्त स्याग्निभाव का भोग होना है । अथ 'भोग' या 'पुत्रि' सुहृद के रजोगुण और तमोगुण को तिरस्कृत करके अस्व से उत्पन्न तथा प्रजाशय आनन्दमयी केतना होना है ।

इस प्रकार सुहृद को रति ही जानना की अस्वमयी आनंदात्मक केतना से प्रजाशित होकर एव कर्त्तव्य है ।

जैसे अभिनवगुप्त ने साधारणोक्त रति को आस्वाय बताया है वैसे ही भट्ट नायक ने बताया है । दोनों में अन्तर व्यापार के सम्बन्ध में है । अभिनव ने अज्ञाना-व्यापार से ही साधारणोक्त और अभिव्यक्ति होना इन दोनों अर्थों का कल्पना की है और भट्टनायक ने दोनों अर्थों के तिरस्कृत-कृत व्यापार माने हैं ।

किन्तु भट्टनायक के 'भावकत्व' नामक नर व्यापार का कल्पना अप्रामाणिक है -- स्ताहृदव्यापारकल्पने प्रमाणभावः ।

अभिनव ने इस मत को जालीकना करते हुए कहा है कि दो शक्ति को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन दोनों व्यापारों का कार्यव्यंजना व्यापार ही कर देती है<sup>१</sup>।

भट्ट नायक ने भी अभिनवगुप्त के समान ही साधारणीकरण का होना परमावश्यक माना है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो भट्टनायक का मुक्तिवाद और अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद प्रायः एक-ता ही है। भट्टनायक ने जहाँ एक ओर उत्पत्तिवाद और अनुमित्तिवाद को लण्डित किया वहाँ दूसरी ओर अभिव्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया<sup>२</sup>।

जहाँ लौक्य ने उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध, शंकर ने अनुमाप्यानुमा सम्बन्ध और भट्टनायक ने मौज्य-मौजक सम्बन्ध माना है वहाँ अभिनव ने व्यंग्य-व्यंजक सम्बन्ध माना है। ज्ञान-व्यवर्तन ने उस के सम्बन्ध में विशद चर्चा नहीं की थी। उन्होंने उस को व्यंग्य और अवाच्य तथा सद्दय-हृदय संवेध ही बताया था। अभिनवगुप्त ने उसकी सुस्पष्ट व्याख्या की है। उन्होंने जन्मजन्मान्तर की अनुभूतियों एवं वासनाओं को संस्कार कहा है। ये ही संस्कार साहित्यिक पदावली में स्थायी-भाव कलाते हैं। जो इन संस्कार से संस्कृत है वही काव्य की दृष्टि से सद्दय है। प्रत्येक व्यक्ति में प्रेम, शोक, क्रोध आदि भाव दुष्तावस्था में रहते हैं या यों कहना चाहिये कि जैतन मन

१-ध्वन्यालोक लौक्य द्वितीय उद्योत १।४ की व्याख्या, पृष्ठ १८

तस्मात् व्यंजकत्वात्स्यै व्यापारेण गुणालंकाराचित्यादिकेति कर्तव्यतया काव्यं भावकं रसात् भावयति- इति त्र्यंशायामपि भावनायां करणांशे ध्वनन्मैव निपतति। माँगोऽपि न काव्यज्ञानेन क्रियते अपितु धनमोहाध्यसंकट तानि वृत्तिद्वारेण वास्वादापरनाम्नि जलौकिके दुत्तिविस्तरविकासत्पनि मांगे कर्तव्ये लौकौत्तरे ध्वननव्यापार स्व भूषाभिपिक्ताः। तच्चैदं मांगकृत्वं रसस्य ध्वनीयत्वै सिद्धे देवसिद्धयः।

२- का० प्र० -- डा० मत्स्यव्रत सिंह पृष्ठ ७६

में रहते हैं, वे ही अद्भुत होकर गुरु ज्ञानन्दमया बनना ही जानते हैं क्योंकि केवल मन में ही रह जाते हैं । अतः जिसे जीव का अज्ञान भाव का अथवा अन्य किसी भाव का लौकिक जगत् में जन्मजन्मान्तर से अनुभव नहीं हुआ है, जिससे कि उसके हृदय में वे संस्कार मन से विद्यमान हों, उसे स्वास्वाद कभी भा नहीं हो जाता है और वे अहृदय की पदवी पर भूषित नहीं हो पाते हैं । ज्ञानज जगत् में वे नारायण व्यक्ति कहलाते हैं ।

अतः अभिनवगुप्त ने स्वास्वादन के लिए अहृदय का लौकिक जगत् का वागनाशी के संकृत होना परमावश्यक ऋ बताया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में अहृदय का अथागी-भाव ही स्वयं जिससे उसे ज्ञानंद मिलता है । किन्तु इस अथागी-भाव का स्वरूप कुछ और ही होता है । लौकिक जगत् के कारण, कार्य और लक्ष्यारी भाव काठ-जगत् में शकर विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव बन जाते हैं और ये तीनों अहृदय के रत्यादि अथागीभाव के प्रति कारण बन जाते हैं और उनका शयं क्रमः 'विभावने', 'अनुभावने' और 'लंबारण' हो जाता है ।

अथवा अहृदय की रत्यादि अपनी हो जाती है किन्तु उसे अपना सम्पर्क कर कर अपना स्वास्वादन कभी नहीं ले सकता क्योंकि उसे अपनी रति का कुछ ज्ञान प्रदर्शन देकर लज्जा हीने लौगी । यदि यह कहा जाए कि अहृदय उसे जानने सम्पर्क कर अपने शत्रु की या जिससे उज्ज्वल कोई सम्बन्ध नहीं है उसे तटस्थ व्यक्ति ही सम्पर्क ले तो यह भी सम्भव नहीं हो सकता । क्योंकि शत्रु के सम्पर्कने पर ईर्ष्यादि भाव जागरित होंगे और तटस्थ के सम्पर्कने पर उससे कोई सम्बन्ध न होने के कारण उसे ज्ञानन्द नहीं मिल पाता । अहृदय रत्यादि के सम्बन्ध में यह भी नहीं गौच सकता कि वे भाव किसी के नहीं हैं अन्यथा उनकी रति हो नहीं रह जायगी । अतः अहृदय रत्यादि के विशिष्ट उत्पत्ति से रहित ही जाने पर ही क्योंकि उनके साधारणीकृत हो जाने पर ही उनका स्वास्वादन कर पाता है । इसी प्रकार से रत्यादि के विभावनादि भी साधारणीकृत ही जाते हैं । जहाँ सामाजिक अपनी ही साधारणत्व में ग्रहण करता है वहाँ संभव के पात्र

सर्व उनके अनुभाव आदि में आध्यात्मिकरण आ में ही जाते हैं ।

आध्यात्मिक सर्व का तो है विभावादि के आध्यात्मिकरण ही जाने पर आध्यात्मिक स्वयं स्वयं स्वयं का विचार ही जानना है । यही कारण है कि सभी महान्त आध्यात्मिक का आश्वासन करके एक-सा ही आनन्द अनुभव करते हैं ।

शक्तिमान् ने इस का स्वयं कहते हुए कहा है कि यह विभावादि की स्थिति-काल तक स्थित रहता है । इस-स्थिति में विभावादि का ही रहना है किन्तु जहाँ शक्ति ने इस का अभिव्यक्ति ही है कि उन्हीं ही नहीं दिखायी देता है । उन्हीं का आश्वासन कर्त्तव्य होता है । उन्हीं का ही अनुभूति के अतिरिक्त अन्य किसी का अनुभूति नहीं होता है । उस समय तदर्थ-स्थिति में महान्त का वैश्वर्य स्पष्ट होता है कि वह एक-विध ही गया है, क्योंकि उन्हीं का ही आनन्द परिलक्षित होता है । उस समय वाग्म्य की स्थिति होने के कारण उस आनन्द को 'ज्ञानानन्द' ही नहीं कहा जा सकता है किन्तु प्रायः <sup>वह</sup> ही आनन्द ही प्रकार का होता है क्योंकि उस आनन्द को 'ज्ञानानन्द-महोदर' कहा गया है । हाँकि वाग्म्य में जो आनन्द नहीं मिल जाता है वह आनन्द वाग्म्य में मिल जाता है । विभावादि को हेतु मान कर उसे कार्य भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कार्य विहित कारण के नाश होने पर भी रहता है और इस विभावादि के बिना नहीं रह सकता है । आश्वासनक्रिया होने के नाते ही उसे कार्य कहा जा सकता है ।

इसी तरह जैसे दीपक घट को प्रकाशित करके ज्ञान्य कहा देता है वैसे विभावादि इस को ज्ञान्य नहीं कहते हैं क्योंकि इस का स्वयं सिद्धत्व नहीं है अर्थात् विभावादि उसे अभिव्यक्त करते हैं । लौकिकीत अनुभूति होने के कारण मात्र ही ही इसे ज्ञान्य कहा जा सकता है ।

यह ज्ञान न तो निर्विकल्पक-समाधि-सिद्धयोगियों के ज्ञान के समूह है क्योंकि इन्हीं विभावादि का परामर्श रहता है और न निर्विकल्पक-समाधि सिद्ध-योगियों के ज्ञान के समूह है क्योंकि उस समय कर्त्तव्य आनन्द के

वैतरिक और बुद्ध विद्यमान नहीं रहता है। अतः यह ज्ञान इन दोनों के विलक्षण होता है<sup>१</sup>।

अज्ञान न प्रमाण व्यापार न कारक व्यापार कताया है और न उसे प्रमाणाभाव कहा है क्योंकि वह स्ववैय होता है<sup>२</sup>।

गणितराज ज्ञान्नाथ का दृष्टिकोण अभिनवगुप्त के भिन्न है। यद्यपि उनकी दृष्टि में इस व्यंग्य है किन्तु उनके स्वल्प में भिन्नता है। अभिनवगुप्त व्याधिभाव को रस मानते हैं और ज्ञान्नाथ केतन्यात्मक ज्ञान को रस मानते हैं। यह केतन्य आवरण मुक्त बुद्ध केतन्य होता है -- रत्याधवकिन्नामग्नावरणा निदेवराः<sup>३</sup>।

उनकी दृष्टि में रस-निष्पत्ति इस प्रकार होती है --

काव्य में कवि के द्वारा और नाटक में नट के द्वारा जब विभावोक्ति प्रकाशित कर दिए जाते हैं तब हमें अज्ञाना वृत्ति द्वारा दुष्यन्त आदि के विषय में जो रसि होती है उसका ज्ञान होता है। तदनन्तर रसदयता के कारण एक प्रकार की भावना पैदा हो जाती है जो कि एक प्रकार का दोष है। इस दोष से हमारा अन्तरात्मा कल्पित दुष्यन्त से जाच्छादित हो जाती है, अर्थात् हम मन हो मन करने को दुष्यन्त समझने लगते हैं। तब जैसे हमारे अज्ञान में उनके हुए शीप के टुकड़े में चांदी का टुकड़ा उत्पन्न हो जाता है, हमें शीप के अज्ञान में चांदी की प्रतीति होने लगती है ठीक उसी तरह पूर्वोक्त दोष के कारण कल्पित दुष्यन्तत्व से जाच्छादित अपनी आत्मा में रसुन्तला आदि के विषय में, अनिर्वचनीय सव-अस्य के विलक्षण रसि आदि चित्तवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं -- अर्थात् रसुन्तला आदि के

१- का०प्र० कुर्य उल्लास

२- अधि० भा० पृष्ठ २८६ (का०प्र० - ९१० सत्यव्रतसिंह - से उद्धृत पृ. २९)

३- एषा न रसा न प्रमाणव्यापारो न कारकव्यापारः। स्वयं तु ना-ब्रह्म  
S प्रामाणिकी स्ववैयदनासिद्धत्वात्।

३- रसनाधार -- रसवन्त्रिका -- टीका पृष्ठ ८८

साथ व्यवहारतः बिल्कुल कठे जैसे यदि उत्पन्न हो जाते हैं और वे विद्युत्प्रियां आत्म केन्द्र के द्वारा प्रकाशित होती हैं । इनको विद्युत्प्रियां विद्युत्प्रियां का नाम रह है --

‘भगवावर्णविधिनिष्ठो रत्यादि X रत्यादिभाजो रसः १’

एक प्रकार जन्माद्य भाजों को विक्रीयता से उन्हें निवृत्त करने के लिए दोष को कल्पना करके उनके पास गुरुत्व को सात्वा का सम्बन्ध मानते हैं । अर्थात् उनको दृष्टि में साधारणोत्प्रेरण का कार्य भावना-विकल्प करता है जो कि विचारणीय है । क्योंकि दोषों से भावना को कल्पना भाजों को विक्रीयता को दूर करने में समर्थ नहीं है । दूसरे उन्होंने भरत-सूत्र के ‘विष्णुभिः’ शब्द का अर्थ ‘उत्पत्ति’ से लिया है जिसके मानने में कोई दोष है ।

अन्य ध्वनिवादी आचार्यों ने रस को अलंकार्यक्रम बताया है किन्तु जन्माद्य ने उसे मूल्यक्रम और समलंकार्यक्रम दोनों बताया है । अलंकार्यक्रम है उनका तात्पर्य है जहाँ प्रकरण स्पष्ट हो वहाँ विभावादि को प्रतीति लोभ्य हो जाती है और गुरुत्व को पूर्वापर का ज्ञान नहीं रहता है ।

१- रसगंधधर -- चन्द्रिका टीका पृष्ठ २०

‘स्फुटित-ललित-सन्निवेशचारुणा काव्येन समर्पितैः, रसुद्गुरुद्वयं प्रविष्टैः, तदोक्तगुरुद्वयतासकृतेन, भावनाविशेषपरिष्णा किल्लितदुष्यन्तरमणीयत्वादि-भिरलौकिकविभावानुभावव्यभिचारिसम्बन्धव्यपदेश्यैः, संकुन्तलादिभिरालम्बनकारण-चन्द्रिकादिभिर्द्वीपनकारणैः, बहुमालादिभिः कार्यैः, चिन्तादिभिः सत्कारिभिरु-चम्पुयत्राहुर्भावितैर्नालौकिकैर्न व्यापारेण, सत्कालनिवर्तितानन्वांशावर्णनाज्ञानेनार-स्य प्रमृष्टपरिमितप्रमापुत्वादिगिज्जर्मेण प्रमाणा, स्वप्रकाशतया वा स्वर्गेन, भिन्नस्वत्वानन्वैः सह गौवरीश्रियार्णः प्राग्निचिन्तयास्माभ्यो रत्यादिरैव रस

२- रस गंधधर-- चन्द्रिका टीका पृष्ठ २८

३- “ “ “ पृष्ठ ३६२

'संस्कृत' के इनका तात्पर्य है --जहाँ प्रकरण बाध न हो जल्दा प्रकरण  
नो बाध हो किन्तु विभागादि का नष्ट करना यह कार्य उस को संभव्यता  
रहता है ।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि चाहे उदात्त-वाद हो या अनुमितिवाद  
हो या भुक्तिवाद हो जल्दा अभिव्यक्तिवाद हो सब में विभाव, स्तुभाव और  
वैधारी भावों का होना आवश्यक है । किन्तु इन तीनों के परिष्कृत रूप से  
'सं-निष्कृति' नहीं हो सकता है । क्योंकि व्याघ्रादि विभाव रांड, मय,  
अस्तुत्तआदि उस को प्रतीति कराते हैं । स्तुभावादि शृंगार, मय, शोक आदि  
में भी हो सकता है । अतः तीनों में जल्दा लोके में 'सं-निष्कृति' नहीं  
करा सकता है । एक या दो के रहने पर अमलः दोनों जल्दा एक का साक्षर  
करना पड़ता है । नष्ट का करना है कि यदि इन तीनों को अलग-अलग  
गला माना जाय तो अन्वयान्तिक दोष का जायगा क्योंकि जो व्याघ्रादि  
भीरु व्यक्ति में प्य पैदा करेंगे, वही वीर पुरुष में उत्साह पैदा कर  
देंगे । इसी प्रकार मगानक रूप के स्तुभावादि स्तुभाव शृंगार और कुरुषण रूप  
में देखे जा सकते हैं । और मगानक रूप के विन्नादि व्यभिचारी भाव  
शृंगार, वीर और कुरुषण रूप में भी परिष्कृत होते हैं । अतः इन दोष  
से बचने के लिए ही इन तीनों को आवश्यकता है ।

संस्कृत वाचार्थों का विवेकन करने के ~~इस~~ परभाव अन्त में निष्कर्ष  
है यह कहा जा सकता है कि इस मनुष्यगत वस्तु होने के कारण उसको  
उदात्त और अनुमिति तो कदापि नहीं हो सकती है, उसको अभिव्यक्ति  
होती है । किन्तु यह अभिव्यक्ति उस प्रकार की अभिव्यक्ति नहीं है जिस  
प्रकार दीर्घ से घट की अभिव्यक्ति होती है । यह अभिव्यक्ति भट्टनायक

१- रस मंगलधर चन्द्रिका टोका पृष्ठ ३६२

२- का० प्र० चतुर्थ उल्लास

को भूमिज से जो विरोध नहीं रहता है । क्योंकि जैसा पीछे देखा जा चुका है कि दोनों का स्वभाव एक ही है वेवठ भट्टनाटक में व्यापार का भावना और भाव-- का कल्पना का है । इस एक अभिव्यक्ति में विभाव, भुगतान और व्यक्तित्वी भाव दोनों का सम्मिलित रूप होना चाहिए । किन्तु उनके मध्य एक का भावनापन ले ही नहीं सकता है । जोरिष्ठ जो भी वास्तविक स्वभाव काव्य है उन्हें इन दोनों का सम्यक् वि- विवेचन करना है । एक-सिद्ध कवि का बात को जानते हैं कि काव्य में एक ही निष्पत्ति एक दोनों भावों के सम्मिलित रूप में विशिष्ट होने से ही होता है । प्रस्तुत निबन्ध के अध्ययन के विषयमूल काव्य-ग्रन्थों के एक-निष्पत्ति का विवेचन करते समय इस तथ्य को विशद धारणा की जायगी ।



(१) नव-साय का स्वभाव और उसके भेद

संस्कृत साचार्यों ने काव्य का रचना न केवल संस्कृत भाषा में बल्कि प्राकृत, पाप्लि, पलावा, मिश्र और ग्राम्य भाषा में भी माना है। वे काव्य-भेद का एक आधार 'भाषा' भी मानते हैं। कौं समाचार्यः साचार्यों ने काव्य का भेद-दृश्य और नैय किया है। दृश्य-काव्यों का सम्बन्ध नैत्रेन्द्रिय तथा नैय काव्यों का सम्बन्ध श्रवणेन्द्रिय से होता है। दृश्य काव्य के अन्दर केवल नाटक ही नहीं, अपितु दशरूपक -- १- नाटक, २- प्रकरण, ३- भाण, ४- व्यायोग, ५- लवदार, ६- श्लि, ७- लामृग, ८- श्ल, ९- बोधो और १०- प्रहसन, उपरूपक -- १- नाटिका, २- नोटक, ३- गोष्ठी, ४- सट्टक, ५- नाट्य-रासक, ६- प्रस्थानक, ७- उल्लासक, ८- काव्य, ९- प्रेरणक, १०- रासक, ११- मलापक, १२- श्लोकादित, १३- श्लोक, १४- क्लिप्तिका, १५- दुर्भिक्षिका, १६- प्रकरणिका, १७- श्लोकादित और १८- भाणिका, एवं नैय-काव्य भी जा सकते हैं।

दृश्य काव्य को अवेदाय काव्य का रचना <sup>करना</sup> अति दुष्कर होता है क्योंकि इसमें कवि के पास नाटककार की भांति रंगमंच जैसी कोई वस्तु नहीं होती जिसपर वह वर्णनीय दृश्य एवं पात्रों की स्पष्ट उपस्थिति कर सके। इसके लिए उसे कल्पना का ही साधन लेना पड़ता है। साय ही इसमें सट्टक का कार्य दर्शक की भांति देखना न होकर वर्णनीय विषय का रसवादन लेने के लिए कवि की कल्पना में सहयोग देना होता है। अर्थात्

१- सा० द० अ० परि०

२- " "

३- हेमचन्द्र ने <sup>के</sup> दृश्यरूपक, उपरूपक भेद न करके पादय और नैय किया है। पादय में विश्वनाथ के दशरूपक तो हैं ही साय ही उपरूपक के नाटिका, उत्सृष्टिका और सट्टकादि भी हैं। नैय में उन्होंने श्लोकादित, भाण, प्रस्थान, श्लोक, भाणिका, प्रेरण, रामाज्ञोद, उल्लासक, भासक, गोष्ठी, श्लोकादित और काव्य बताये हैं। (हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन, जाल्वा अध्याय पृ० ४३२-४५) उन भेदों में से कुछ विश्वनाथ के उपरूपक हैं। अतन्त्रुधने श्री नैय न मानकर नृत्य का भेद बताया है--

शौम्बो श्लोकादितं भाणे भाणो प्रस्थानरासकः ।

काव्यं च सप्त नृत्यस्य भेदाः स्मृतेऽपि भाणवत् ॥

किन्तु य में भी कवि-कल्पना के ऋतु से बहुत ही वर्णन करता है, उद्योग में गहूँका भी उस ऋतु को कल्पना की । ततः पद्य-काव्य में प्रत्यक्ष तत्त्व(जाट) के अर्थान पर कल्पना-तत्त्व को प्रधानता रखती है । कवि को इस रचना में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है ।

इन्द्र की दृष्टि से काव्य-काव्य के तीन भेद होते हैं -- पद्य, गद्य और बन्धु । पद्य की कन्दोच्छ, गद्य की कन्दो से रहित तथा बन्धु अथवा छि की गद्य-गद्य का मिश्रित रूप बताया गया है । पद्य-काव्य के भेद की दृष्टि से हुए हैं ।

इन्द्र की संख्या की दृष्टि से मुक्तक, कुलक, कोश, संघात, सन्धानतिक, विशेषक और क्लापक भेद किए गए हैं ।

काव्य-कृतियों के आकार की दृष्टि से पद्य-काव्य के दो भेद मुक्तक और प्रबन्ध किये गये हैं । राजशेखर ने इन दोनों काव्यों के भी कुछ चित्र, कथोत्थ, गविधानकम्पु तथा काव्यानकदान -- पाँच भेद किए गए हैं । किन्तु इन भेदों का आधार व्यापक न होने के कारण वे भेद उन्हीं तक सीमित रहे, बाद के किये अन्य आचार्यों को ग्रहण नहीं हुए ।

सामान्यतः मुक्तक के दो रूप -- लौकिक और धार्मिक देवता को मिलते हैं । लौकिक मुक्तक लोक के नाना प्रकार के विषयों से सम्बन्धित होते हैं और धार्मिक मुक्तक देवताओं की स्तुति से सम्बन्धित होते हैं । इन्हें दूसरे शब्दों में स्तोत्र-साहित्य भी कहा जा सकता है ।

सामान्यतः 'मुक्तक' के अन्दर गद्या, श्लोक आदि को भी बताया है ।

प्रबन्धात्मक पद्य-काव्य के दो प्रमुख भेद हैं --

(१) लघु काव्य और (२) महाकाव्य ।

१- काव्य सीमांसा -- राजशेखर, नवम अध्याय पृष्ठ ११४-११५

२- सामान्यतः काव्यालंकार १।३०

महाकाव्य में किसी महाकाव्यी घटना का अविचार वर्णन रना है । महाकाव्य महाकाव्य का वर्णन ही होता है किन्तु विगत का दृष्टि से वर्णन होता है । कारण में वर्णन के कारण युद्ध आदि का वर्णन नहीं करता है । अथवा छोटा और प्रकृति वर्णन अविचार होता है तथा अन्त-वाच में अति के नैतिक विचार ही व्यक्त करते हैं ।

रुद्र ने जो काव्य को महाकाव्य के अन्तर्गत ही है । क्योंकि उन्होंने 'प्रकृत्य' के दो पैर चरके उनको उत्थाय, सुत्थाय, मत्स्य और मत्स्य में बाँटा है । 'मत्स्य' पैर को महाकाव्य और 'मत्स्य' पैर को विगत काव्य माना जाता है, महाकाव्य का वर्णन ही होता है ।

उन्होंने महाकाव्य का वर्णन करते हुए कहा है कि कर्म नाक सुको विमर्ष रहित, प्रकृत्य होता है। एक को दृष्टि से कल्पना या विप्रलम्भ और या प्रमानुराग दिखाया जाता है और अन्त में नाक का अभ्युदय बताया जाता है ।

काव्य जाने कृतकाल होने से ही महाकाव्य को घटती है विवृष्टि नहीं होने लगता है अपितु उसके अपने कुछ विशेष गुण होने हैं । वे गुण हैं -- सौ, अथावस्तु, नाक, एक एवं प्रकृति विवर्ण ।

महाकाव्य का वर्ण ही उसे अन्य काव्यांगों से युक्त करता है , क्योंकि जब अन्य तत्त्व अन्य काव्यांगों में मिल सकते हैं किन्तु वर्ण अन्तः केवल संस्कृत महाकाव्यों को छोड़कर अन्यत्र नहीं उपलब्ध होती है । नाटक के परिच्छेद अंक कहलाते हैं, तथा काव्य के लम्बक तथा आख्यायिका - काव्य के उच्छ्वास कहलाते हैं, वर्ण नहीं ।

इसका द्वारा प्रमुख तत्त्व अथावस्तु होता है जो किसी सामान्य घटना पर आश्रित न होकर ऐतिहासिक होता है । क्योंकि उनमें किसी आदर्श की स्थापना की जाती है । अतिलिए यदि अधिकांशतः महाभारत

तथा समाजों ने तथा वस्तु का ग्रहण करते हैं क्योंकि वे दोनों महाकाव्य  
हमारी भारतीय संस्कृति, भावना एवं राष्ट्रिय भाव के प्रतीक हैं ।  
अत्यन्त पुराणों से भी कथावस्तु ली जाती है ।

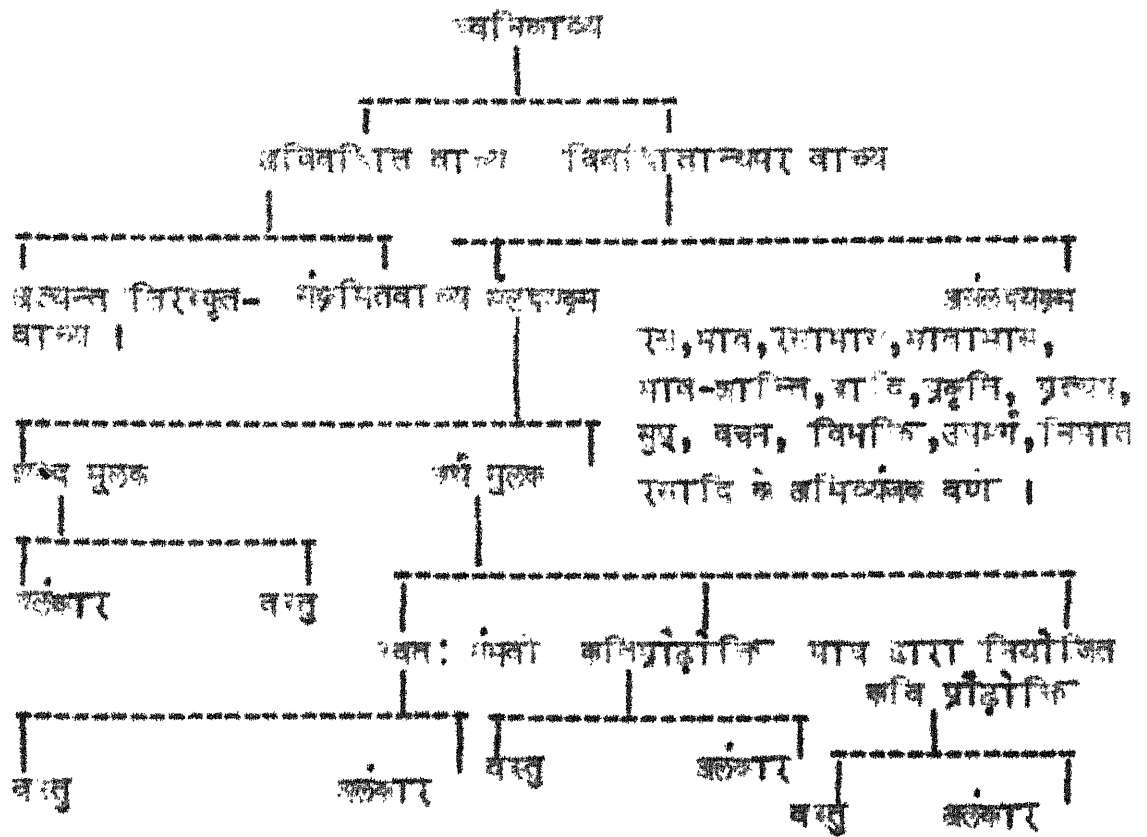
कथावस्तु के सुकृत ही महाकाव्य में नायक होता है अर्थात्  
नायक का चरित्र तममें रखा जाता है । अतिरिक्त विट, धूर्त आदि नायक  
न हीन्दू देवता, शक्ति या मन्त्रों होते हैं जो धीरोदात्त, सर्वगुण सम्पन्न,  
पुत्रोत्पन्न आदि एवं वस्तुओं में से वर्णित एक पात्र का भोला होता है ।  
प्रतिनायक के द्वारा नायक का लक्ष्य दिखाया जाता है । यह प्रतिनायक  
भा वस्तुओं में नायक के कियो प्रकार का तथा होता है । अन्त में नायक  
उत्तम बंध बरके कर्म को रक्षा करता है ।

महाकाव्य में यद्यपि सभी रसों का निरूपण होता है किन्तु शृंगार,  
वीर और शान्त रस में ही लोभी एक रस कथावस्तु के सुकृत को बनाता है  
और अन्य सब रस गौण रूप में वर्णित होते हैं ।

इन तत्त्वों के अतिरिक्त महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन अधिक मात्रा  
में पाया जाता है । कथावस्तु को गौड़ी रखता है किन्तु उत्तम विस्तर  
नगर, राजधानी, प्रसादी, राज्य, युद्ध, सन्धावार और वनों के  
विविध मनोरंजनों, उद्यानों, तटार्णों, स्तूपों, सूर्यास्त, चंद्रोदय, रात्रि,  
प्रातःकाल, आत्म, जलविहार, जलशोभा आदि में होता है । इन प्राकृत  
वृत्तियों का वर्णन कभी स्वतंत्र रूप में -- जिसको बालम्बल्य भी कहा जा  
सकता है, कभी उद्दीप्त रूप में और कभी मानवीय-वर्णन रूप में मिलता  
है ।

पद्य-काव्य के इन भेदाधारों के अतिरिक्त आचार्यों ने व्यंग्य के  
आधार पर भी उसके भेद किए हैं । आमन्वयवर्णन, अभिनवगुप्त, मम्मट एवं  
अन्य ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यों ने ही यह आधार स्वीकार  
किया है । इस दृष्टि से उन्होंने उत्तम, गुणीकृत व्यंग्य मध्यम और नक्षम  
-- चार प्रकार के काव्य माने हैं । उत्तम काव्य को व्यंग्य जयवा ध्वनि  
की प्रधानता होने के कारण ध्वनि-काव्य भी कहा गया है । पंडितराज

जगन्नाथ ने इस को उल्लोच्य काव्य कहा है। इस ध्वनि काव्य के मा. के भेद दिए गए हैं जो अधोलिखित गारिका में स्पष्ट हैं --



गुणीभूत व्यंग्य-काव्य में यद्यपि व्यंग्य गौण रहता है किन्तु ध्वनि काव्य से कियों प्रकार कम नहीं होता है। जगन्नाथ ने इस भेद का नाम उत्पन्न दिया है। मम्मट ने यद्यपि काव्य का दूसरा भेद गुणीभूत व्यंग्य के आधार पर किया है किन्तु ज्ञानन्दवर्धन को भान्ति उते उत्पन्न काव्य के स्मृश्य नहीं बताया अर्थात् उते मध्यम काव्य कहा जो उत्पन्न काव्य से होन और चित्र-काव्य से भेद होता है। क्योंकि इस काव्य में व्यंग्य और वाक्य दोनों ही का सत्ता रहती है किन्तु वहां व्यंग्य प्रधान न होकर वाक्य प्रधान होता है।

मम्मट के गुणीभूत व्यंग्य काव्य के आठ भेद अधोलिखित हैं --

१- काठ चठ पंच्य उल्लास

- |                           |                            |
|---------------------------|----------------------------|
| १- श्लुट् व्यंग्य         | ५- सन्दिग्ध प्रधान व्यंग्य |
| २- आराग व्यंग्य           | ६- तुल्य प्रधान व्यंग्य    |
| ३- बाधा सिद्ध्यां व्यंग्य | ७- बाध्याशिक्ष व्यंग्य और  |
| ४- श्लुट् व्यंग्य         | ८- कुन्दर व्यंग्य          |

हेमचन्द्र ने जो बाधा के -- १- कर्त्तृ, २- सन्दिग्ध और  
३- तुल्य-प्रधान को दृष्टि से तीन भेद किए<sup>१</sup>। उनमें कर्त्तृ के पुनः चार भेद  
किए<sup>२</sup> --

- १- बाधा के अनुत्कर्ष में व्यंग्य की प्रधानता न हो पाए।  
एक व्यंग्य जितनी का काँ बन जाए।
- २- कर्त्ता पर श्लुट् होने के कारण व्यंग्य की प्रधानता न हो।
- ३- कर्त्ता पर अत्यधिक श्लुट् हो जाने से व्यंग्य एक प्रकार से नहीं  
के बराबर ही।

कर्म-काव्य को हा चित्र-काव्य और कर्म-काव्य कहा गया है।  
उसके दो भेद -- शब्द वैचित्र्य और अर्थ वैचित्र्य -- माने गए हैं। किन्तु  
कान्ताय केवल उस शब्द के कर्त्तार को कर्म काव्य बताते हैं जिसमें अर्थ  
का कर्त्तार शब्द के कर्त्तार को शोभित करता है -- 'यत्रार्थ-कर्मकृत्यु-  
युक्ता शब्दकर्मकृतिः प्रधानम्।' उनकी दृष्टि में अर्थ का कर्त्तार नहीं है  
और शब्द का कर्त्तार है तो कर्त्ता काव्य नहीं होगा। अतः मध्यम के  
'अर्थ चित्र' काव्य को उन्होंने मध्यम काव्य के अन्तर्गत किया है।

इन्द्र में होने कर्त्ता न होने की दृष्टि से जो काव्य-काव्य के तीन  
भेद दिखाए जा चुके हैं उनमें से जो कन्दोक्त नहीं होना उसे कर्म-काव्य  
कहा जाता है। 'आदः पदसन्तानो यस्मि' (काव्यादर्श), 'आदः पदसन्तानो  
यसं तदपि कथ्यते' (अग्निपुराण) इत्यौनिबद्धमञ्जु इति तः १५० मयम् ।  
पञ्चमं तदन्यच्च यसं मित्रं च तद इम् ॥ (वाग्महाशंकर २१४-वाग्मह)

१-हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन, द्वितीय अध्याय, पृ. ५७ वीकारिका-पृष्ठ १५२

२-कान्ताय -- उलगाधरः पृष्ठ ७९

३-हेम चन्द्रकृत -- काव्यानुशासन, द्वितीय अध्याय, वी कारिका पृष्ठ १५२-५५

महाभाष्यः प्रकृतान्तरात्कौटिल्ये वाक्यदर्शः (आत्मामुत्पत्तौ प्रथम अध्याय-  
 मात्मह विज्ञान) यदि संस्कृत विज्ञानों को परिभाषा में मानना गद्य का  
 स्वरूप निर्धारण न करके शिल्प गद्य का स्वरूप में जिन गद्य-काव्यों के नाम से  
 अभिहित किया जाता है । प्रायः सभी संस्कृत विज्ञानों का दृष्टि में यह भेद  
 भी गद्य भेद के समान अत्यन्तपूर्ण है । अल्प कारण यही है कि उन्होंने काव्य  
 के सम्बन्ध में काला दृष्टिपूर्ण उदार रचना है । केवल शब्दोक्तता को ही  
 काव्य का मन्त्रो के विनिर्दिष्ट नहीं किया है बल्कि जिस स्थान पर उन्होंने  
 काव्य को संज्ञित --रस,गुण,कल्पना तथा रसाकर्षणशब्दोपाभाव-- देना उसी  
 को काव्य नाम से सुज्ञोहित किया । यही कारण है कि उनको दृष्टि में नाटक  
 भी काव्य है । इनो प्रकार यदि गद्य में रसोष्णता,भावुकता,सद्व्यक्तित्व,कल्पना  
 का सुनिर्दिष्ट प्रयोग, वर्णन को मधुर कला, कल्पना का विशाल क्षेत्र, प्रकृति के  
 सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति आदि गुण परिलभित होते हैं तो वह गद्य,काव्य  
 ही जाता है । बाण ने श्रेष्ठ गद्य-काव्य के लिए विषय का नवीनता, श्रेष्ठ  
 यमावली, अपने शब्दों को स्पष्ट करने में समर्थ शिल्प शैली, सुन्दर रूप से  
 प्रतीकान्तरण एवं विष्ट शब्द योजना का होना परमावश्यक बताया है ।  
 उनको दृष्टि में सरल शब्दों वाले शब्दों एवं ललित पदों से सुज्ञोहित गद्य-काव्य  
 स्वर्णिम पाठों से निर्मित फल के समान शक्य होना है ।

बाण ने गद्य-काव्य में शिल्प शैली को स्थान दिया था परन्तु  
 उनके पूर्ववर्ती सुबन्धु ने शिल्प शैली को स्थान देना अधिक प्रशंसित किया था--

प्रत्यक्षश्लेषमयप्रबंधविन्यासर्वदग्ध्यनिधिं प्रबन्धम् ।

परस्वतो दत्तप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुनैकबन्धुः ॥ (वासुदेवा)

बाण के बाद भी गद्य-कवियों ने शिल्प शैली को गद्य-काव्य की  
 विशेषता के रूप में स्वीकार किया है । इस शिल्प शैली ने न केवल गद्य-

१- नवीऽर्षो जातिरगाम्या श्लेषोऽश्लिष्टः सुपाटो रसः ।

विष्टात्तरबन्धश्च कृतस्त्रमेकत्र दुष्करम् ॥ ६॥ (हर्षचरित)

२- सुप्रबोधकलिता सुवर्णघटनोष्णकौः ।

शब्देराख्यायिका पाति शस्येव प्रतिपादुकेः ॥२१॥ (हर्षचरित)

कवियों को उचित रूप कवियों को भा प्रभावित किया है ।

इसके अतिरिक्त गद्य-काव्य का प्राण तत्त्व बोल गुण बताया गया है जिसे काव्य में समाप्त बहुलता का होना उत्पन्न स्वाभाविक भा --  
 'सौन्दर्य-साधनत्वमेतद् गद्यस्य लौकिकत्वं' (काव्यादर्श १।२०) । अतः सभी गद्य-कवियों ने अपने काव्यों में जो विशेषण है बताया है । अन्त परिणाम यह हुआ कि गद्य-काव्य में विशेषण-विशिष्ट, समास-संकुल, क्लृप्तियों के बौद्धिक दीर्घकाय वाक्यों का होना तथा क्रिया-प्रयोग को अस्तेयता करना एक प्रकार<sup>से</sup> गद्य-काव्यों की विशेषता बन गई । बाण के बहुत से भाष्य तथा प्रकार के मिले जो चार-चार पृष्ठों तक बड़े गद्य हैं । इसके अलावा उत्पन्न विकृष्ट को गई है ।

अन्त यह अर्थ नहीं है कि गद्य-काव्य में दीर्घ-समासाच्छन्न शैली के अतिरिक्त और को शैली नहीं हो सकता है । गद्य-काव्य को शैली अत्यन्त — समास , दीर्घ-समास, समास-रहित कथवा अत्र नव वृत्त के पाद अथवा पादांश की प्रतीति से युक्त हो सकता है जिसे आचार्यों ने अन्तः वृत्तिका, उत्कलिकाप्राय, अविद और वृत्तान्ध कहा है । बाण ने अन्तिम शैली को गद्य-काव्य के लिए बहुत उपयुक्त नहीं माना है । यही कारण है कि उनके आरंभ हुए वर्णन उत्कलिका से आरम्भ होकर वृत्तिका में उलट कर अविद शैली में बन्द होते हैं ।

सं० ए० वासुदेव ने इस दीर्घकाय-समासाच्छन्न शैली का कलात्मक भाषण की कृतियों और अभिलेखों में देखा है जो श्लेष के प्राण प्रयुक्त होकर काव्य में स्वाभाविक प्रवाह ला देती हैं ।

गद्य-कवि अपनी इस शैली का तथा वर्णना-शक्ति का आशय लेकर संश्लेष कथा को अतिविस्तृत रूप देने में समर्थ हो जाते हैं । यह शैली कृत्रिम होती है किन्तु उसके काव्यात्मक सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी

१- सं० ए० का इति० -- वाचस्पति गंगोला पृष्ठ १३२

२- हि० आ० सं० लि० - सं० ए० वासुदेव और सं० ए०, पृष्ठ २१





विचार बहुत दिग्ग । उन्होंने काया कि भारतीय गद्य-काव्यों के लया हा  
य मांडित है और कर्ण पर उल्ला विकारा हुआ है । ग्रीक-गद्य-काव्यों में  
कथा भारतीय गद्य-काव्यों से ली गया है । ए०बो० कोथ को यह मान्य  
नहीं है । उनका कहना है कि ग्रीक की कथा कहने के प्रेयो थे, उनका काव्यों  
में मांडिकता है तथा उनमें कथा के मरुत एवं लिख्य दोनों का मिश्रण है ।  
यह एक विषय में अधिक बर्णन नहीं करते क्योंकि एक तो वृत्तका वास्तविक  
य में नहीं उपलब्ध है और दूसरे जिन आधार पर भारतीय गद्य-काव्य से  
ग्रीक गद्य-काव्य प्रभावित माना गया है यह वास्तवता (सुखेयुक्त) है और  
यह रचना ग्रीक-गद्य-काव्य के बहुत बाद की है अतः भारतीय गद्य-काव्य में  
ग्रीक गद्य-काव्य के प्रभावित होने का प्रश्न ही नहीं उठता है ।

उनका दृष्टि में यदि ग्रीक गद्य-काव्य भारतीय गद्य-काव्य से  
प्रभावित होता तो भारतीय गद्य-काव्यों को मांडि दृष्टि एवं विविध  
उपलक्ष्यों का भा उल्लेख वर्णन होना जब कि उनके लिए वहाँ पर्याप्त  
उत्तर थे ।

असे यह सातार्थ न लेना चाहिय कि काथ दोनों में समानता  
नहीं स्वीकार करते । अपितु वे उल्लेख ए-दूसरे से प्रभावित होने का कारण  
नहीं मानते हैं, क्योंकि उनको दृष्टि में दोनों की सम्यता एवं साहित्यिक  
व्य में पर्याप्त अन्तर है ।<sup>६</sup>

ए०बो० कोथ को मांडि ए०बो० ग्रे ने<sup>३</sup> भारतीय और ग्रीक गद्य-  
काव्य दोनों में समानता देल कर भा एक-दूसरे को प्रभावित करने वाला  
नहीं बताया है । उन्होंने दोनों में पर्याप्त अन्तर मानते हुए कहा है कि

-----

- १- ए०बो० आरु सं० लि०--ए०बो० कोथ पृष्ठ ३६०-३६
- २- " " " " " " पृष्ठ ३६०
- ३- " " " " " " पृष्ठ ३६७
- ४- का० सं० लि० -- " " " " पृष्ठ ८०

संस्कृत-गद्य-काव्य में कथावस्तु गौण, प्रकृति एवं पात्रों के के सामाजिक कार्य, मानसिक, नैतिक, तथा आध्यात्मिक गुण आदि का वर्णन अधिक होता है, अर्थात् वर्णन का प्रधानता होती है जब कि ग्रीक गद्य-काव्य में कथावस्तु ही सब कुछ होती है, पात्राओं को ही प्रधानता रखती है और वर्णन का लोपण रहता है ।

दिलो ने भी दोनों में आकार और व्यवस्था की दृष्टि से भेद किया है ।

संस्कृत ने ने भी दोनों दृष्टि से दोनों में अन्तर बताया है ।

उनकी दृष्टि में संस्कृत गद्य-काव्य को ग्रीक गद्य-काव्य से प्रभावित मानना बेमिस्तर और जो बातें होंगी । क्योंकि संस्कृत गद्य-काव्यकारों ने काव्य से प्रेरणा ली है । बुद्धि से काव्य लक्षणाकर हैं अतः गद्य-काव्य को कथावस्तु है । अतः हमें विदेशी प्रभाव मझने का कोई प्रयत्न नहीं उठता है, फिर हमें गद्य-काव्य की भांति कहानी कहना उद्देश्य नहीं रहता है । संस्कृत गद्य-काव्यों में पात्रों एवं अन्तःकरणों का आध्यात्मिक वर्णन रहता है जब कि ग्रीक-कथाओं में आध्यात्मिकता रहती है ।

हंसराज अग्रवाल ने इस मत के मानने वाले सभी विद्वानों के विचारों का गार लेकर गद्य-काव्य का वैशिष्ट्यनिर्धारण अधोलिखित शक्तियों में किया है --

संस्कृतकाव्ये हि असाध्यस्य वर्णनं न ग्रीककाव्ये तु कथायाः स्व प्राधान्यं दरोदृश्यते । तस्मात् स्वैव स्व सन्ततां च स्व स्व साहित्यिकस्युदायस्य लक्षणाया भारतीयग्रीक-गद्य-काव्ययोः परस्परनिरोधं स्वतन्त्रं सृष्टुं उन्नतिः कथुर्ह एति सिद्धान्तः स्व साधोयात् प्रतिभाति ।

१- ए हि०वाक सं० लिट०--सं०बी० कोष, पृष्ठ ३६६-७०

२- हि०वाक क्ला० सं० लिट०--संस्कृतप्रमाणवार्ता, पृ० ४४७

३- हि०वाक सं० लिट०--संस्कृतप्रमाणवार्ता गुप्त और सं०के० है, पृष्ठ २०२

४- संस्कृतसाहित्यतिहासः द्वितीयो भागः--हंसराज अग्रवाल पृष्ठ ११

एक प्रकार संस्कृत गद्य-कवियों को वर्णना प्रसिद्ध है। विशेषतः वे वेदों का पूर्ण-पूर्ण ज्ञान रखते हैं। उन वर्णना प्रसिद्ध के लिए कवियों को कल्पना का ज्ञान होना पड़ता है। उन कवियों को कल्पना के अभाव में अन्य भाषाओं कवियों को कल्पना नहीं मिलती है। यद्यपि गद्य-कवि अपने ही कल्पना-संसार में वर्णना-विषयों को अत्यन्त विस्तृत रूप में लेते हैं जो कथा-कर्मों भावों को उक्ताने वाले भी लेते जाते हैं किन्तु यदि उनकी वर्णनाओं को साहित्यिक दृष्टि में देखा जाय तो वे कदा के उत्कृष्ट नमूने ही प्रस्तुत होते। दोष का कारण है कि उन कल्पना के लिए ग्रीक और रोमन के पास कुछ भी नहीं है।

कल्पना के कारण ही गद्य-कवियों में अधिकांशतः पौराणिक नायकों का उल्लेख करने को अधिक प्रवृत्ति होती है औदात्त ऐतिहासिक राजाओं के। जो कवि ऐतिहासिक कथावस्तु लेते भी हैं तो उसे न वे ऐतिहासिक रूप देते हैं और न उस प्रकार का रूप देना उनका उद्देश्य ही रहता है। यह दूसरी बात है कि उनकी कृतियों में वर्णित सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियाँ कुछ अनिच्छा का परिचय दे दें, क्योंकि कवि अपने वातावरण से अधिक प्रभावित रहता है।

लेकिन गद्य-कवि कल्पना को उद्योग में बंधक नहीं जाते हैं। उसी के अन्तर्गत निरूपण में असावधानी नहीं दिखाते हैं और अपने काव्य को स्वाभाविकता एवं वास्तविकता से रहित नहीं करते हैं। अतःलिए गद्य-कवि अत्यन्त उन्नत पहुँच कर अलौकिक संसार में विचरण करता है। इसके लिए गद्य-कवि भावोत्कर्ष में अत्यन्त अलंकारों का ही प्रयोग करते हैं। अतः गद्य-काव्यों में अधिकांशतः मुख्य-मुख्य अलंकारों का ही प्रयोग होता है। यही कारण है कि प्रायः सभी गद्य-काव्यों में एक ही ही अलंकार

२- संहिता अथ सं० लिट० -- १०वीं अध्याय, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ४१२

१- हि० अथ सं० लिट० -- ११० अलंकार गुप्त और सस्ये० ई, पृष्ठ २०४

सामान्य होते हैं। जैसे हरिद्वंश, विरोधाभास, किरातना, उत्प्रेक्षा, तन्मा, अपह, इतिहासिक, श्लेष आदि।

जैसे जो गद्य-काव्यों में कवि रसों का निधान रहता है किन्तु कुछ गद्य-काव्य ही होकर प्रायः सभी गद्य-काव्य धृंगार-रस प्रधान होते हैं या कारण है कि हमें या गद्य-कवियों की भांति रिक्यों के सौंदर्य वर्णन को अधिकता रहती है और नायक के अन्य रूपों के अतिरिक्त उनके प्रेमा श्व का भी वर्णन रहता है, रिक्यों के सौंदर्य वर्णन को अधिकता रहता है। उक्त कारण भा है। किन्तु साहित्य में विशेषता माननीय प्रवृत्तियों और स्वभावों का विवरण होता है, और समस्त मानवीय व्यापारों में प्रेम-व्यापार की प्रधानता होती है, इसीलिए काव्यों में धृंगारिक विवरण की प्रधानता होती है। इसको सफल अभिव्यञ्जना के लिए ही संस्कृत भाषाओं में कवियों के लिए कामशास्त्र में निष्णात होना परमावश्यक बताया है।

उन वर्ण-विषयों के अतिरिक्त राजा का वैभव, राजधानी का समृद्धता, महर्षियों, वासियों, पुत्र-जन्म, शिवा, मृगया, युद्ध, विजय, शत्रु, तन्मा, उत्थान, सुर्यासन, चन्द्रोदय आदि वर्णन तथा गद्य-विषयों एवं वृत्तों की गणना को प्रवृत्ति भी मिलती है। बाण ने कुम्हारिका का वर्णन अध्ययन और अध्यापन के सम्बन्ध में कई बार किया है। कादम्बरी को सुभिला में जाया है कि पिंजरी में कौड़ी हुई एक कारिकायें जड़ पदने पर विचारियों को हाँटती थीं कादम्बरी को क्या सकल शास्त्रों में निष्णात वैशम्पायन ताँते से कहलाएँ गई है। सुबन्धु की वाचस्पति में या दुम्भपुर के वर्णन में ताँते के मुक्त से बृहत्कथा के सुने का उल्लेख है<sup>१</sup>। पनाल की तिलकम्बरी<sup>२</sup> महौदर यदा है अभिज्ञप्त गन्धर्वक एक रूप धारण करके हरिवाहन का सन्देश कमलपुत्र के पास पहुंचाता है और वहाँ का सन्देश हरिवाहन के पास ठे जाता है<sup>३</sup>।

१- कादम्बरी श्लो० सं० १२

२- वाचस्पति पृष्ठ १२२

३- तिलकम्बरी पृष्ठ १६३-६४

इस प्रकार गद्य-काव्य के तर्क्य-विषय महाकाव्य को ही भाँति होते हैं किन्तु दोनों स्वतन्त्रता एवं गद्य-गद्य की दृष्टि से अलग-अलग हैं । गद्य-काव्य गद्य को प्रधान रूप प्रकार में दिया ही नहीं जाता है, क्योंकि गद्य का कर्म होता है -- गद्य-काव्य । अच्छा कवि गद्य-कवि कहलाता है और गद्य का गद्य-कवि । दोनों ही काव्य का रचना करते हैं किन्तु दोनों का कार्य-प्रकृति में बहुत अन्तर रहता है । गद्य-कवि को उतना कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता है जितना गद्य-कवि को । क्योंकि गद्य-कवि इन्हीं के नियमों की शृंखला में बंधा रहता है जो कि गद्य-कवि को जाने के कारण अद्या-न्याय का नहीं जाता है उसके काव्य में शब्दों, भावों अथवा दोनों को ही शोभी-कृत शिथिलता उत्पादि होने पर भी इन्हीं का प्रधान प्रतिबन्ध होने के कारण पाठकों तथा स्मालोचकों द्वारा शिथिलता आदि नहीं मानी जाती है । किन्तु उसके ठीक विपरीत गद्य-कवि होता है, उसके सम्मुख तन्मुख वातावरण रहता है, विधर दृष्टि जालना चाहे स्वतन्त्रतापूर्वक बात अथवा जा सकता है, उसके लिए कोई बन्धन नहीं रहता है, उसे काव्य-कौशल दिखाने के लिए पर्याप्त स्थान रहता है । अतः हमें किसी प्रकार की भी शिथिलता जाने पर कवि का अपराध किसी प्रकार भी क्षम्य नहीं होता है और न गद्य-कवि के पास इस दोष से बचने का कोई उपाय होता है । हमें गद्य-कवि को भाँति शब्दों के तोड़-मरोड़ करने को स्वतन्त्रता नहीं रखनी है अतः प्रत्येक शब्द के अर्थ में गावधानी रखनी पड़ती है, विषय-विन्यास और शब्दों का समन्वय देना पड़ता है ।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने गद्य-कवि को उभा बाँधने वाले से तथा गद्य-कवि को उभा झारण लेने वाले से दो है --

गद्य-कवि यह भी नहीं कह सकता कि गद्य-कवि के कारण खारी कविता में बाधों का घट गया । यहाँ तो कुछ भी मधुरता ही नहीं है

तो जनों को ज्ञाना नाहूँ गेगा । जैसे चींड़ हारने वाले जना भुल  
 भाँ पाये के पाये मद्ध देते हैं पर झरंज्वाले को तो जनों भुल मानने छोड़  
 गति नहीं । कौ हो गच्छर्वा जाने पाटव पर भाँ बहुत बात बना करते हैं  
 परन्तु गय-वर्ता को ज्ञाना नहीं ।

पं० कलवेव उपाध्याय ने भी गय-कवि का उमा विंजरवद शुक  
 ने दो हैं जो विंजे को उमा के बाहर उझे के लिए ग्यान नहीं पाता  
 है जपने सीमित ग्यान के मोतर ही कहुन-हाया करता है और गय-कवि  
 का भावुक्य उन्मुक्त पक्षा से किया है जो स्वतन्त्रता के ज्ञानन्द का रक्षित  
 बनकर विशालाकारित्यगन में खेक्या उद्गान लिया करता है, किता  
 यंत्रणा के मोतर वह ज्ञाप निकल नहीं होता ।

गय-कवि के काव्य का उमा स्वच्छ दर्पण से दो गयो है जिसमें  
 कवि की प्रतिभा प्रतिबिम्बित होती है जतः उष्का उष्का दोष का छोटा  
 सा थक्का भी सुगमता पूर्वक परिलक्षित हो जाया करता है --

‘गये हि स्वच्छदर्पणं स्वाऽविच्छं प्रतिकलिता विधाति  
 स्वयितुः प्रतिभा’ ।

एक काव्य में भी गय-कवि के एक पद्य के समान एक वाक्य में पूर्ण  
 रसास्वादन कराने की क्षमता होती है । इस सम्बन्ध में बाण का  
 निम्नलिखित वाक्य मर्याप्त होगा जिसमें शबरसेना को देखकर पुत्र रसातल हेतु  
 व्याकुल पिता शुक की मनोवैज्ञानिक विधिति का निरूपण किया गया है --

तातस्तु तं महान्तमकाण्डं स्व प्राणहरम-प्रतीकारमुप्लवमुपनतम-  
 वलोक्य क्षिणत रोग्यात-वेपथुरणभयाद् <sup>२</sup>प्रान्ततरल तारको  
 विषाद शून्यामक्षुब्धपुतां दृशमितस्ततो विदुः विक्षिपत्...  
 पदासंगुटेनाच्छद्य मां तत्कालोक्तिप्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो  
 मद्राणाकुलः किंकां <sup>३</sup>विमुद्गः क्रोडभागेन मामवष्टभ्य तस्यां ।<sup>४</sup>

१- ग०का०मी -- पं० कलवेव उपाध्याय व्यास, पृष्ठ २

२- काव्यानुशीलन -- पं० कलवेव उपाध्याय पृष्ठ २०५

३- काव्यवरी -- टीकाकार मानुबन्द्र, संशोधक मद्ध श्री मथुरानाथ शास्त्री पृष्ठ

४- ,, -- चन्द्रकलाविधौतिनी पृष्ठ १०२

उत्सुक विवेकन से स्पष्ट है कि यह पूर्ण वाक्यों से संस्कृत गद्य-काव्य का रहना करने का सम्पूर्ण तथा कवियों में नहीं होता है अपितु वे ही विरले कवि होते हैं जो वास्तुतः प्रतिभा-मान्य हुआ करते हैं। आचार्य श्री कवियों का प्रतिभा के रखने को कर्णटो का गणना है -- "गद्यं कवोर्ना निकर्षं वदन्ति ।" वाचन ने आचार्य काव्य के भेदों में सर्वप्रथम स्थान गद्य को दिया है। उन्होंने इस बात का स्पष्ट रूप से निर्देश भी कर दिया है -- गद्यस्य पूर्वनिर्देशो दुर्लभविशेषत्वैव दुर्लभत्वात् । (का० सू० सू० १।३।२)

किन्तु क्या यह ही नहीं लेना चाहिये कि गद्य-काव्य में पद्यों का स्थान बिल्कुल ही नहीं होता है। यद्यपि आचार्यों ने काव्य के तीन भेद श्री दृष्टि से किए हैं। उन्होंने पद्य में केवल गद्य, गद्य में केवल गद्य और चम्पू में गद्य-गद्य दोनों का रहना बताया है, किन्तु उन्होंने आचार्यों ने गद्य-काव्य के अन्दर पद्यों की स्थिति भी निर्धारित कर दी है और 'चम्पू' के भिन्नता रखने के लिए पद्यों का स्वल्प भी निश्चित कर दिया है। क्योंकि 'चम्पू' के वर्णन के समय गद्य-गद्य दोनों का संकुल रहता है, कथावस्तु में दोनों ही साथ-साथ होते हैं, उन्हें हन्दी के प्रकारों का निश्चय नहीं रहता है, किन्तु गद्य-काव्य में गद्य ही प्रधानता और पद्य की गौणता रहती है, पद्य कथावस्तु में भी सहायक नहीं होते हैं तथा जाया, वक्त्र, और जावक्त्र को छोड़कर और कोरी पद्य उन्हें प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं। यद्यपि श्री विषय में पं० अम्बिकादत्त व्यास का कुल वाद विवाद है। उनका कथन है कि जर्म ने भी पद्य प्रयुक्त हो सकते हैं जो गद्य का-सा आनन्द देते हैं। इस प्रकार उनको दृष्टि में जाया, अनुष्टुप, गार, चर्चरी, त्रिंशो, पादाकुलक, रोल, उल्लाला आदि हन्द गद्य-काव्य में निर्दोष हैं।<sup>१, २</sup>

अभावके

१४- गद्य-काव्य के/की कारणों से ही यह भी संभवतः कारण है। इसकी विवेचना यथावसर करेंगे।

२- ग० का० श्री० -- पं० अम्बिकादत्त व्यास, पृष्ठ १६



उन्हीं गद्य-काव्य को उन्वय काव्य है किन्तु उनका दृष्टि में उन्वय का उन्वय उन्वय वाइपयमे (अरकोष) तथा उन्वयः प्रगैव भवेत्काविकोर्ननश् (साहित्य दर्पण) से न होकर उन्वय विषय है है किन्तु उन्वय लौकिक और व्याजोक्ति के रूप में हो सकता जहां मात्र हो न हो" बात उन्वय में कही है लक्षा पद्य का में दिखाना अधिक उन्वय होता है । ये पद्य स्वभावांतिकपूर्ण, प्रगद्युण युक्त, छोटे तथा गद्य का-सा आनन्द देने वाले होते हैं । मंगलाचरण, अन्ते कुल के निष्पन्न कर्मा उत्कार करने वाले राजा आदि के वर्णन तथा प्रसंगानुक्त किलो मो वर्णन में प्रयुक्त श्लोक, वादि में अन्वय अन्त में आ सकते हैं । उन्वय दृष्टि में ये गद्य लौकिक काव्य के अन्वय नहीं हैं अन्तु काव्य के उन्वय तत्त्व हैं । भूमिका अन्वय उन्वयार में जो श्लोक में कहना पड़ता है उसे यदि गद्य में कह दिया जाय तो उनका दृष्टि में कुछ हानि नहीं होता है । कहानो उन्वय पात्रों और घटनाओं से मनीहर होता है । उन्वय कृत्रिमता का अन्वय पात्रों के अनुकूल वार्तालाप को योजना, उत्कृष्टता को प्रधानता, एक कथा का विच्छेद और दूसरे परिच्छेद को कल्पना तथा परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास', 'पाग', 'विराम' (निःश्वास, प्रश्वास) इत्यादि होते हैं । परिच्छेद हो या न हो किन्तु उन्वय उत्कार होना चाहिए । एक भाग के और भी प्रभाग किए जा सकते हैं । (जैसे उन्वय अपने गद्य-काव्य 'शिवराजविजय' में 'विरामक' संज्ञक तीन भाग किए हैं और फिर प्रत्येक 'विरामक' के बार बार निःश्वास किए हैं । ) उन परिच्छेदों के आरम्भ में अपने अन्त अन्वय दूसरों के मो (यद्यपि यह प्रवृत्ति बाद के हो गद्य-कवियों में दोष पड़ती है ) पूरे अन्वय किंचित् पद्य कहे जाते हैं अन्वय अन्वोक्ति की भांति उनके द्वारा उन्वय भाग के विषय में सूचना दे दी जाती है । उन भाग, परिच्छेद के आरम्भ में देश, काल आदि का वर्णन, उसके अन्त में अद्भुत आदि और मध्य में प्रधान विषय का माधुर्यमय रक्खा जाता है । (इसका उदाहरण वीरेन्द्र वीर के आरम्भ में हो वार्ता के स्वभाव, जैसी राते और बाग का वर्णन, फिर प्रधान विषय और अन्त में अद्भुत रस के साथ रौद्र रस कलका कर परिच्छेद समाप्त हो जाता है

फिर इसके दो गारुडों में एक का वर्णन, मध्य में प्रधान विषय और अन्य में मृत के देह का स्वानक मिलना फिर भी जाना, फिर मिला--  
 काले जवभुज रण का प्रदर्शन करके तथा इसके बाद कर्तव्य और भावना  
 का विशाल परिच्छेद को स्थापन कर दिया है । उनको दृष्टि में एक  
 परिच्छेद के अन्दर दो-दो लुप्तों का वर्णन और एक पात्र के स्वभाव  
 में निष्कारण भेद दिखाना अपेक्षित नहीं है ।

इन विशेषताओं के अतिरिक्त गद्य-काव्यों में एक कथावस्तु  
 विविध व्यासों में जुड़ो रहती है जो कि प्रायः गन्धर्वों विशाघर्षों आदि  
 के अधिक सम्बन्धित रहती हैं । काले कथानों दुष्ट हो जाता है ।  
 बादम्बरो में तीन अन्य को कथा का वर्णन सम्भवा हुआ है । तिलकमंजरी  
 में भी कई स्थानियां एक कथावस्तु से उलगती हैं । दशकुमारचरित में यद्यपि  
 दश राजकुमारों के चरित्र हैं किन्तु उल्लेख दूर नहीं है, अलग अलग हैं । जतः  
 दशकुमार चरित को छोड़कर प्रायः सभी गद्य-काव्य इसी प्रकार के ही हैं ।

संस्कृत गद्य-काव्यों में भारतीय एवं अन्तर्गत में विश्वसनीयता,  
 नायक-नायिका के जन्म में से किसी एक के जन्म में देवता को कृपा, अपने  
 से पूर्ववर्ती कृतियों और लेखकों को प्रज्ञा को प्रवृत्ति भी परिलक्षित होता  
 है । अमोचित प्रायः सभी गद्य-काव्यों का एक-सा रूप मिलता है ।

### गद्य-काव्य के भेद

इस गद्य-काव्य के भी कई भेद संस्कृत आचार्यों ने किए हैं जिनमें  
 प्रमुख भेद कथा और आख्यायिका का है । कुछ विद्वान तो इस भेद को  
 मानते नहीं हैं और कुछ विद्वान इन दोनों के बीच कहीं गई विशेषताओं  
 को स्वीकार भी नहीं करते हैं क्योंकि उनको दृष्टि में कथा को विशेषतारं  
 आख्यायिका में बली जाता है और आख्यायिका की विशेषतारं कथा में ।

उसके अतिरिक्त कुछ आचार्यों को दृष्टि में जो विशेषता कही गई है वह दूसरे आचार्यों की दृष्टि में आख्यायिका की ही जाती है ।

लेकिन अधिकांश आचार्यों ने इस भेद को बोलार बिना ही और कथा तथा आख्यायिका की विशेषता बताने हुए कई प्रकार के दोनों में अन्तर भी दिया है ।

भामह, रुद्रट और हेमचन्द्र की दृष्टि में कथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों में हो सकती है और आख्यायिका केवल संस्कृत में होती है । भामह तथा हेमचन्द्र ने इसे स्पष्ट रूप से कह दिया है ।

शैली की दृष्टि से भामह और रुद्रट के काव्यालंकार, अग्निपुराण तथा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में दोनों में यह अन्तर बताया गया है कि कथा गद्य-पद्य दोनों में हो सकती है किन्तु आख्यायिका केवल गद्य में होगी ।

संस्कृत आचार्यों ने कथा और आख्यायिका में परिच्छेद के पृथक्-पृथक् नाम तथा जल-जल हृन्द माने हैं । भामह, रुद्रट और अमिनव गुप्त ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास' बताया है । अग्निपुराण में इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है । जहाँ आख्यायिका के परिच्छेद का

१- संस्कृताऽसंस्कृता चैष्टा कथा अपभ्रंश भाषया । भामहकृत काव्या ० १।२०  
इति संस्कृते न कुर्यात्कथामगधेन चान्येन । रुद्रटकृत काव्या ० १६।२३  
सर्वभाषा कथा -- हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन

२- संस्कृतानाकुलप्रथ्यपदाद्युक्तिना ।... ॥ भामहकृत काव्या ० १।२५  
संस्कृता गद्युक्ताख्यायिका । हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन

३- गधेन युक्तो दनार्था... ॥ भामहकृत काव्या ० १।२५  
यत्र गधेन विस्तरात् । अग्नि ०  
गद्युक्ताख्यायिका हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन

इति संस्कृतेन कुर्यात्कथामगधेन चान्येन । रुद्रटकृत काव्या ० १६।२३  
अथ तेन कथैव यथा रचनीयास्यायिकापि गधेन  
निजवश स्व वाक्यामभिदध्यात्न त्कथेन ॥ रुद्रटकृत काव्या ० १६।२६

४- सोच्छ्वासाऽख्यायिका मता -- भामहकृत काव्यालंकार, १।२५

५- कुर्यादत्रोच्छ्वासान्यसर्वदेवा... । रुद्रटकृत काव्या ० १६।२०

६- आख्यायिकोच्छ्वासादिना... । लोक

७- उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र... । अग्नि ० काव्या ० भा ० १।२४  
परिच्छेदो न यत्र स्यादुवेदा लम्बः क्वचित् ।... १।२६

नाम 'उच्छ्वास' तथा कथा के परिच्छेद का नाम 'लम्का' बताया गया है ।  
कथा ही उर्ध्व यत्न लिख कर दिया गया है कि कथा में परिच्छेद का होना  
आवश्यक नहीं है । विश्वनाथ आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'उच्छ्वास'  
न देकर 'आश्वास' देते हैं<sup>१</sup> ।

असूक्त आचार्यों के अतिरिक्त गण-काव्य का सुव्यवस्थित रूप देने  
वाले बाण ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम 'आश्वास' न देकर  
उच्छ्वास ही दिया है<sup>२</sup> ।

इस प्रकार इन आचार्यों ने आख्यायिका के परिच्छेद का नाम  
उच्छ्वास तथा आश्वास और कथा के परिच्छेद का नाम 'लम्का' बताया ।

हन्दों के सम्बन्ध में भागवत ने कथा में वक्त्र तथा आरवक्त्र हन्द  
को गथा का निषेध किया है और आख्यायिका के अन्तर्गत उन्हें स्वीकार  
किया है । इन हन्दों के विषय में बताया कि हर्षे माध्यायवाचो होना  
चाहिए<sup>३</sup> ।

रुद्रट ने इन हन्दों के अतिरिक्त आख्यायिका में पुष्पिताग्र और  
मालिनि का प्रयोग होना भी बताया है<sup>४</sup> । उनकी दृष्टि में आख्यायिका  
में प्रथम उच्छ्वास को छोड़ कर दो-दो आयतों श्लेष अथवा सामान्यार्थ  
रूप में प्रत्येक उच्छ्वास के अन्दर जातो है<sup>५</sup> ।

अग्निपुराण में आख्यायिका में वक्त्र आरवक्त्र के अतिरिक्त  
'सुगिकौतरा' को भी स्थान मिला है<sup>६</sup> ।

विश्वनाथ ने जायाँ, वक्त्र और आरवक्त्र हन्दों का होना कथा  
और आख्यायिका दोनों में बताया है किन्तु दोनों में अन्तर यह है

१- कथाशानां उच्छ्वासो आश्वास इति बध्यते । ना०द० षष्परि० श्लोक ३३३

२- उच्छ्वासान्तैश्चलिन्वास्ते येषां वक्त्रे सरस्वतो ।

कथमाख्यायिकाकारा न ते वंशाः क्वीश्वराः ॥ हर्षचरित-

३- न वक्त्रापारवक्त्राभ्यां युक्तौ उच्छ्वासवत्पि ।

गोच्छ्वासात् आख्यायिका मता,

वक्त्रं चापारवक्त्रं च काले माध्यायशशि च ॥ मायल्लुक्त काव्या०१।२५-२६

४- तत्रहन्दः कुर्यादायांपारवक्त्रपुष्पिताग्राणाम् ।

अन्यतम वस्तुवशादकथान्यान्मालिनी प्राक्य ॥ (रुद्रटकृत काव्या०१६।३०)

५- कुर्यादत्रोच्छ्वासान्तर्यायिदेवा मुक्षेष्वा पुनाम् ।

६- नै चार्ये श्लेषे, सामान्यार्थे तदुच्यते ॥ रुद्रट-काव्या०१६।२७

कि उभा में का-नत्र के हृन्द प्रयुक्त होते हैं और वास्यायाना में उन हृन्दों के द्वारा अन्योक्तिव्य में परिश्लेष के आरम्भ में कथा को सूचना दे दी जाती है<sup>१</sup>।

किन्तु हृन्दों के प्रयोग में पं० अम्बिकादत्त व्यास का प्रबल प्रतिवाद है। उन्होंने साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के उक्त सम्बन्धित विचारधारा की आलोचना करते हुए बताया है कि जब काव्या, वक्त्र, अरवक्त्र हृन्दों का प्रयोग हो सकता है तो अन्य के सभी हृन्द प्रयुक्त हो सकते हैं जो गण का-सा आनन्द देने हैं जैसे अनुष्टुप्, गार, चरौरी, त्रिमंगो, पादाकुल्ल, रौल, उत्साला आदि<sup>२</sup>।

प्राचीन गण-काव्यों के आधार पर यदि ये हृन्दश्रृंगार्य हैं तो व्यास जो ने प्राचीन काव्यों द्वारा कथा हृन्दों को भी निरर्थक बताया है। उन्हीं के शब्दों में --<sup>३</sup> यदि कही कि प्राचीन वासवदा आदि काव्य सै ही है इसलिए महाकवि के उदाहरणानुसार महापात्र ने लिखा और उसी का लैस हर्ष शिरोधार्य है तो यह भी भूल है क्योंकि यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि संस्कृत में गण-काव्य का केवल आरम्भमात्र हुआ उन्नति न होने गई इस कारण पुस्तकालय दरिद्र है। तो क्या गण-काव्य के विषय में अनिष्णात आरम्भ-कर्ताओं की ही सब नकल करते जायं। फिर वासवदाकार ने तो एक नियमबद्ध होकर के भी नहीं लिखा है। उन्होंने तो बड़े-बड़े श्लोकों के लच्छे भर दिए हैं।

र०बी० कीथ ने एक विषय में प्रतिवाद नहीं किया किन्तु कण के हर्षचरित को लेकर बताया है कि उन्हें अन्य हृन्दों के भी प्रयोग हुए हैं।

१- 'कवचिदत्र भवेदायां क्वचित्कत्रापवक्त्रके ...।' ६।३३३ सा०द०

'आयांक्वत्रापवक्त्राणां हृन्दसा नैव केनचिद् ।

अन्यापदैशेनाश्वान्मुले भा०व्या०सुक्तर ॥ सा०द०

२- गण-काव्य मीमांसा --पं० अम्बिकादत्त व्यास १६-१६

३- गण-काव्य - मीमांसा -- " " " " पृष्ठ १६

उसके प्रथम उच्छ्वास में कविता पर एक अवतरणिका दी हुई है । दूसरे में दो-दो पद्य हैं परन्तु या तो वे दोनों आद्यांश हैं या एक श्लोक और एक आद्यांश, तृतीय उच्छ्वास में आद्यांश और अन्तर्धरा के दो दो पद्य, चतुर्थ उच्छ्वास में दो पद्य वक्र आसक्त के और एक स्वतंत्र पद्य है आद्यांश प्रयुक्त हुई है । पंक्त में एक श्लोक और एक आसक्त, इष्टे में एक आद्यांश और अन्तर्धरा में दो के मध्य में लौंके दो पद्य नहीं हैं । १०वीं काव्य का कहना है कि बाण का वक्र हृन्द शृंगों में लिया हुआ श्लोक नहीं है । वह ऐसा श्लोक है जिसे द्वितीय चतुर्थ पादों के अन्त में दो गुरु हैं ।

कथा और आख्यायिका के इस भेदाधार के अतिरिक्त आख्यायिका को कथ्य आत्मकथा बताया गया है । नायक स्वयं अपनी कहानी कहता है । कथा का नायक हलीन होता है अतः वह अपने चरित्र का वर्णन स्वयं नहीं करता है अपितु उसकी कथा दूसरों द्वारा वर्णित होती है । ऐमचन्द्र ने इसका कारण क्रमशः कथा के नायक का धीरोदरान्त तथा आख्यायिका के नायक का धीरोदरान्त होना बताया है ।

विश्वनाथ कथा और आख्यायिका के इस भेद को नहीं स्वीकार करते हैं । अपने मत के समर्थन में उन्होंने आचार्य दण्डी के मत को उद्धृत किया है ।

१- हि० आ० सं० लिट० -- १०वीं काव्य, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३६०

२- 'वृत्त्याख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ॥'

अन्वयः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु बोध्यते ।

स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिज्ञातः कथं जनः ॥'

--मामहकृत काव्या० १।२६, २६ ।

३- 'धीरोदरान्तस्य नाम्नीर्यगुणोत्कर्षोत्स्वयं स्वगुणोपवर्णनं न संभवती-  
 तस्यां वर्यां धीरोदरान्तिना नायकेन स्वकीयं वृत्तं सदाचार रूपं चेष्टितं  
 .... व्याख्यायते ।'

-- ऐमचन्द्रकृत काव्यानुशासन पृष्ठ ४६२

४- 'अपित्वनिष्कामो वृष्टस्तत्राप्यन्वैरुधीरणाय' इति  
 वृष्ट्याचार्यवक्त्रोत्कथित आख्यायिका नायकेनैव  
 विवेकव्या इत्याहुः तदयुक्तम् । सा०व०पृ० २२७

इसके अतिरिक्त वर्ण-विषय को दृष्टि में आख्यायिका को कथावस्तु ऐतिहासिक और कथा को दार्शनिक होता है । आख्यायिका में कवि अपने अभिप्राय को कहने के लिए जो चिह्न का लेता है तथा उसमें कन्याहरण, संग्राम, एवं विप्रलम्भ का वर्णन करता है । रुद्रट ने कन्याहरण आदि की विशेषता आख्यायिका में न मानकर कथा में माना है क्योंकि उसमें कन्या-प्राप्ति मुख्य फल होने के कारण शृंगार रूप का विशेष रूप से निरूपण रहता है । कथा और आख्यायिका दोनों के प्रारम्भ में ईश्ट देव और गुरु को नमस्कार, निष्कूल का वर्णन, दाय्य-रचना का प्रेरणा का उल्लेख रहता है किन्तु कथा में ये सब बातें श्लोक में संक्षेप के साथ क्लायी जाती हैं और आख्यायिका में सब में विस्तर के साथ क्लायी जाती हैं । रुद्रट ने बताया कि आख्यायिका का रचना के कारणों--राजाज्ञा, राजभक्ति, पर-प्रशंसा कथा रुचि आदि -- में से कोई कारण कवि को कथाना पड़ता है । इन्होंने कविवंशारिष्य देने के

- १- 'कुम्भाख्यायौ' भामहकृत काव्या० १।२६  
नायकाख्यातवृत्ता... गद्यकाव्यायिका । 'हेमचन्द्रकृत काव्या० पृ० ४६२
- २- 'कवेरिभिप्राय क्लृप्तैः कथैः केशिचद्विभक्तः ।' भामहकृत काव्या० १।२७
- ३- 'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता ॥' भामहकृत काव्या० १।२७  
'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविषयः ॥' जग्नि० का० प्रा० का० ०१।१३  
'कन्याहरणसंग्रामसमागमस्युदयमुचिषितं मित्रादि वा व्याख्यायौ.. ।'  
--हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासनं पृ० ४६२
- ४- 'कन्यालामरुतां वा सम्यग्विचिन्यस्त स्मरुतांराम् ।' रुद्रटकृत काव्या० १६।२३
- ५- 'श्लोकैर्माहाक्यायामिष्टान्देवान्गुरुन्मस्कृत्य ।  
सौपायनिषकुरुमभि दध्यात् तं च कुरुक तथा ॥  
पूर्ववदेव नमस्कृत्य तदेव गुरुनात्सहो तिस्थोष्वेषु ।  
काव्यं कुरुमिति कवी नरोदार व्यायिकायां तु ॥' रुद्रटकृत काव्या० १६।२०  
२४ ।  
'कुरुवंशप्रशंसा स्यान्न नयेविस्तरात् ।  
+ + + युवसाख्यायिका कृता ॥  
कथा श्लोकैः स्ववंशं सौपायु कावियत्र प्रकाशति ।  
+ + + नयेन कथान्तरत् ॥ जग्नि० का० प्रा० का० ०१।१३, १५
- ६- तदनु नृपे वा भुक्तिं परयुजसंकीर्तनेऽथवा व्यासम् ।  
अन्यथा तत्करणं कारणमा क्लृप्तमभिदध्यात् ॥ रुद्रटकृत काव्या० १६।२५

लिख कथा में श्लोक का प्रयोग और आख्यायिका में पद्य का प्रयोग होना बताया है । विष्णुनाथ ने कथा के प्रारम्भ में नमस्कार तथा और दुष्टों का चरित्र निरूपण होना और आख्यायिका में इतिवृत्त वर्णन तथा अन्य कवियों के वृत्तान्त एवं उप-तन्त्र त्यों का होना बताया है । वेदों द्वारा वस्तु का निर्देश गद्य के माध्यम से ही होना दोनों स्थलों में बताया है ।

इस प्रकार वर्णन- विष्णुनाथ की दृष्टि से केवल वेदों के नमस्कार आदि ही विशेषता ही दोनों में मिलती है और कोई नहीं । कथा में नमस्कार के पश्चात् कथान्तर के द्वारा सम्पूर्ण कथा का परिचय दे दिया जाता है । रुद्रट ने इस कथान्तर को प्रबन्ध के भेद 'लघु-काव्य' के समूह बताया है, जिसका स्वरूप अधोलिखित है --

ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यत्तमो भवेत्तुर्कान्ति ।

वाग्ग्रानेकारणा ये न समग्रंकारणं पुक्ता ॥ (काव्या० १६।६)

कुछ काव्य-ग्रन्थों में कथान्तर का प्रयोग सम्पूर्ण कथा के परिचय के लिए न बताकर प्रधान ध्येय की साधना के लिए बताया गया है ।

प्रासंगिक कथा के अतिरिक्त कथा में अनुप्रास को विशेष महत्त्व प्राप्त रहता है । इसी आधार पर ज्ञानन्दवर्धन ने कथा और आख्यायिका के भेद

- १- श्लोकेर्महाकथायमिष्टान्देवान्गुह्यमसकृत्य ।  
 सौमनियं कुलमिदध्यात् तं च कर्तुं कथा ॥  
 तस्मै न कथेय यथा स्वनीया ख्यायिकानि गणैः ।  
 निजवंशं स्वं वास्याम मिदध्यान् त्वगणैः ॥

--रुद्रट्टक काव्या० १६।२०, २६

- २- कथायां तस्मै वस्तु गणैरेव विनिर्मितम् ॥ ६।३३२

+ + +  
 जाणो पर्येर्मस्कारः सलादेवुंकीर्तनम् ॥ ३३३

आख्यायिका कथावत्स्या त्वेवैशानुकीर्तनम् ।

आस्यामन्यस्वीना च वृत्त मथ क्वचित्कविविद् ॥सा०५० ३३४

- ३- तादां कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत्प्रपञ्चितं सम्यक् ।

लघुताव तेषाम् प्रकान्तकथावताराय ॥ रुद्रट्ट काव्या० १६।२२

- ४- मुत्थायस्यावताराय भवेन्न कथान्तरम् ॥ अग्नि०का का०शा०भा० १।१५

- ५- वानुप्रासेन ततो भ्रुवो लघ्वशारेण गणैः

रक्तैः तस्याङ्गीतरं भ्रुवैः पुरवर्णकं प्रभृतोनि ॥ रुद्रट्टक काव्या० १६।२१



का आधार रचना रहता है । उन्होंने बताया है कि आख्यायिका में किष्टबन्ध नहीं होता है, कथा पर मध्यम समाप्त कथा बंदोर्धे समाप्त होता है और कथा में किष्ट बन्ध अर्थात् दीर्घ समाप्त को अधिकता होता है । किन्तु ऐसा सोचने पर भी इस के अस्तित्व का ध्यान तो रहना ही पड़ता है ।

रुद्र ने आख्यायिका के सम्बन्ध में कान्ते हुए कहा है कि उर्षे संस्य के समय भुत, भविष्य आदि के निश्चय के लिए कोरे कर्त्तौकिक, व्यापकौकिक, श्लेष आदि के कहाने से कहता है । उन्तः कथा सोचो है । उन्त में नागरक का उन्मुक्त दिहाया जाता है तथा मुनि संघ से मोक्ष का प्राप्ति नागरक को करा जाता है । का सम्बन्ध में उन्होंने बाण में हर्ष-चरित नामक गद्य-काव्य को उद्धृत किया है ।

अग्निपुराण में आख्यायिका के अन्तर्गत रीति, आचार तथा स्वभाव का भी विशेषाध्यय से वर्णन होना बताया गया है ।

बाण ने कथा और आख्यायिका के वर्णयविषय न बताकर दोनों के पुरु-मुष्क गुण बताए हैं । उन्होंने कथा के विषय में बताया है कि कथा कला सम्बन्धी वाक्य रचनाओं से सम्पन्न होकर तथा इस से ( मुख्य - रूप से शृंगार और गौणरूप में अन्य रूप भी जा सकते हैं ) युक्त होकर उसी

१- आख्यायिकायान्तु भ्रुम्ना मध्यव्यासादीर्षिमाये स्व संघटने । गद्यस्य किष्टबन्धा श्रेण शायवत्त्वात् । तत्र च तस्य प्रकृष्माणत्वात् । कथायान्तु किष्टबन्धप्राचुर्येऽपि गद्यस्य रसबन्धोक्तयोचितमनुत्तमम् ।

--३१७ को व्याख्या हि० ध्वन्या० पृष्ठ २५४

२- संशयसंवावारे भक्तो भूतस्य वा परीक्षस्य ।  
 विस्मय कृतस्य भाविनस्तु प्रत्यतस्यापि निश्चिन्त्ये ॥  
 ललित्युः प्रत्यङ्गं स्वाव संशयं पातयेत्कविः ।  
 अन्योक्तिस्मात्तौकि श्लेषा यामेकमुपयं वा ॥  
 सामिप्रायं विचित्रिरुद्ध मिव वस्तु मत्प्रमाणेन ।  
 उन्तः कथाश्च कुर्यान्निवप्येषा प्रबन्धेषु ॥  
 कुर्यादनुदयान्त तथा मोक्षां च मुनिप्रमाणेन ॥ (रुद्रकृत काव्या० १६। २२, २६, ३१)

३- भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिवृत्तयः ।  
 ..... यत्र साख्यायिका स्मृता ॥

-- अग्नि० का का० भा० मा० १११५

प्रकार गुरुत्व को आकर्षित करने है जिसे प्रकार मधुरभाषिणों को प्रेम के लोभों को आकृष्ट करता है । उन्हें विशेषतः में दोष, जामा कंधार, कुर्वं चार्णो का विशेषण रखा है । श्लेष का भस्मार होने पर भी कथा मनोर होती है ।

उन्हे अनिरिक्त गता आख्यायिका 'हर्षचरित' में भी कथा के नायक गुण बताये हैं । उ में नवान् कर्ण, अग्राम्य स्वभाषीनि, अक्षिप्त श्लेष तथा विद्वत्तत्त्वगोचना विशेषण है उसको आदिम भाग ही कथा मधुराणोपार्थी के सम्बन्धित मानी चाहिए ।

आख्यायिका के विषय में बताया है कि वह सरल, सुन्दर वार्णों के सुसम्पन्न होना चाहिए ।

चूंकि बाणों ने कथा और आख्यायिका का भेद बताया किया था अतः दण्डी को होइकर कौं संस्कृत भाषायों ने दोनों में अन्तर देना और विभिन्न विशेषताएं बताईं । दण्डी के पूर्व मामह ने अतः मामह ने जिसे जाया है दोनों में भेद किया उमें ली दण्डी ने निरर्थक गिह कर दिया । इस प्रकार मामह को दण्डी ने मट्ट आलोचना की है ।

मामह ने बताया कि आख्यायिका में नायक स्वयं कहता है और कथा में नायक कुलों होने के कारण स्वयं नहीं कहता है तो उनकी काटने हुए दण्डी ने बताया है कि जैसे गुणों को प्रशंसा करना लोभ दोष नहीं है और फिर मामह के वक्तव्य सम्बन्धी नियम का उपवाद भी देना गया है । दण्डी ने मामह के आख्यायिका के वक्तव्य उपरवक्त इन्द, उच्छ्वास तथा कवि अभिप्राय को व्यक्त करने वाले विद्वत् प्रशंस वक्त कथा में भी कारण है । उनकी दृष्टि में कथा में जाया के समान वक्तव्य आख्यक का भी प्रवेश हो सकता है, कथा के परिच्छेद का नाम लम्बा, पृथक आदि

- 
- १- आदम्बरी -- श्लोक सं० ८, ६
  - २- हर्षचरित --     "     ६, १०
  - ३-     "     --     "     ३२ २१

के ज्ञान पर प्रकृतिवादी भी जो सकते हैं । भाषण की आख्यायिका के कन्याहरण, स्त्रियोग, किरीलम्भादयः आदि वर्ण-विषय सम्बन्धी विशेषताएँ महाकाव्य जैसे होने के कारण दण्डी की दृष्टि में महत्वपूर्ण नहीं हैं । भाषण के आख्यायिका में जो कवि अभिप्रायकृत निदान का विशेषता बताते हैं उसे दण्डी ने सम्बन्ध महाकाव्य आदि में कदाचर बुद्धिमान कवियों का इस प्रकार की प्रवृत्ति होता है -- काया है । भारवि ने किराताजुनीश्वर काव्य में 'सप्तमो' शब्द का जगह भाषण में 'सप्त' आदि का प्रयोग किया है ।

इस प्रकार दण्डी ने भाषण के सब शायरों को एकदम उन्नत में जगता निर्णय दिया है कि वे क्या जगह आख्यायिका एक जाति के सब दो रूप हैं अर्थात् जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मनुष्य के दो नाम हैं तथा प्रकार महा जाति के ये दो नाम हैं । अतएव दण्डी ने सामान्य महाकाव्य का

२- भाषण का काव्यालंकार और दण्डी का काव्यादर्श

भाषण-- वृत्ताख्यायको तस्यां नामनेन च वेदितव्यम् । १।२६।  
 अन्यैः अवचरितं तस्यां नामनेन तु नोच्यते । काव्यालंकार  
 स्वगुणविष्कृति कुर्यादभिजातः कथं जनः ॥१।२६॥

दण्डी-- नामनेनैव भाषणस्या नामनेनेतरेण वा ।  
 स्वगुणाविष्कृता दोषो नास्मृतार्थसंगितः ॥१।२६ (काव्यादर्श)

भाषण-- तत्र च चापस्वल्पं च कालेभाष्यार्थसंगितम् ॥१।२६  
 लोच्यमानाऽऽर्थोक्तिरिति ॥ १।२५

दण्डी -- तत्र च चापस्वल्पं च चापस्वल्पं च भेदकम् ।  
 चिन्मास्यायिकायाश्चेत् प्रसंगेन कथास्वपि ॥१।२६

भाषण-- कन्याहरणसंग्रामविपुलम्भादयान्विता ॥१।२५ (आख्यायिका)  
 दण्डी -- कन्याहरणसंग्रामविपुलम्भादयः ।

सर्वबन्धुत्वात् च न ते वेशेषिकगुणाः ॥१।२६  
 भाषण-- कवेरभिप्रायकृतैः कथैः कथितकथिभिः ॥१।२०

दण्डी -- कविभावकृतं निदानमत्रापि न दृश्यते ।  
 कुर्वन् पुरतमिष्टार्थसंगितां किं किं तस्यात् दृवात्मनाम् ॥१।३०  
 दण्डीमत--

तत्कथाख्यायिके लोका जातिरसंज्ञाभ्यांकिता ।  
 वक्रान्तमविष्यन्ति शब्दाश्वास्थानजातयः ॥१।२८

व न भवते दुःखं शोकः, गुण्यं चौरं स्मान् चोऽप्युक्ता प्राण्यं क्लामं है ।

दण्डना का दृष्टि में एक आकाशक नहीं है कि नम-भक्त्या नम वायव्य परिष्कार, एक न्तं हुयोन ही । अनेकान् दन्तोंने जो 'गव-डा' के 'दण्डुधार बरिते' के नागनों ही महान् नहीं रखा है । उनके नागक शोर, तुशारी, शीनेबाज, सिंगत, मुठे, परसुलगाभारा आदि हैं ।

अरुणि दण्डों के निवारों को उनके परवर्ती शवायों ने नकां श्वोकार किया है और भामह के मत का ही अनुकरण किया है । यदि कन्द, वल्ग आदि को दृष्टि में दोनों को पूरक-पूरक विशेषताएं न ही माननी मानती भी एक मानने में कियों को भी प्रतिवाद नहीं हो सकता है कि आख्यायिका ऐतिहासिक होता है और क्या कालान्तरित होता है । यह आधार दण्डों को भी ४ मान्य है क्योंकि दन्तोंने भामह के सब आधारों को ही निरर्थक किए किया है किन्तु 'वृत्ताख्यायो' (काव्यालंकार १।२६) के विषय को नहीं काटा है । इस आधार को अमरकोश, हेमचन्द्र और अमृतानन्द गोपी ने श्वोकार किया है । अमरकोश में तो केवल यही आधार शब्दा दोनों को विशेषता मानो गयी है । पाश्चात्य विद्वानों में २०वीं शताब्दी भी इस आधार को अधिक न्यायक समझते हैं ।

एक प्रकार क्या और आख्यायिका को पूरक-पूरक रत्ता श्वोकार करके क्या के भी समेद किए गए हैं । अग्निपुराण में लणकथा, परिष्कार और कथानिका तीन उपमेद किए गए हैं । लणकथा में अनुषादी होती है परिष्कार में क्या और आख्यायिका का मिश्रण होता है तथा कथानिका के आदि में भयानक रस किन्तु उक्त अन्त सुखमय, मन्त्र में कल्याण और एक के अन्त में सब को जोड़कर लक्ष्मण रस होता है । अर्थात् उदात्त प्रकृति नहीं होती है । यद्यपि लणकथा और परिष्कार में राजमन्त्रो-हृत्त का क्या ब्राह्मण नायक होता है, कल्याण रस रहता है, नार प्रकार का विरह रहता है

१- शोकः स्मान् चोऽप्युक्ता प्राण्यं क्लामं है । १, २०

२- क्ला० सं० लिट० -- २०वी० शीघ्र पृष्ठ ६-



बुर्ण का अर्थ और अर्थों में उदाहरण है -- 'अग्निवृत्त-  
 पूर्व बुर्णम्' । ( १, ३, २४) अथ उदाहरण -- 'अथानि हि अर्थाणां  
 संख्यावति । न हि न कुन्तिगाणां ज्यौदकिन्दुरणि प्रावपि निम्नतामा-  
 प्राति ।'

उत्कलिताप्रायं बुर्णात्मकं गणं के ताक विचारान् होता है --  
 'विपरांतमुत्कलिताप्रायम्' । ( १, ३, २५) जैसे -- 'कुन्तिविकारानिकर-  
 प्रसङ्गवत् चेटा गटितमन्त्रातद्व्याकुम्भरक्षणलन्ध्रकटा कुरित्वात्कारमार-  
 भासुसुते कैरिति ।'

अग्निपुराण में अन्तों भेदों को खोजकर लिया गया है । विद्वानाग  
 ने उन भेदों के अतिरिक्त अन्तों एक और भेद 'मुक्तक' का भी है जिसे  
 अन्तों नहीं रखा है । विद्वानाग का 'बुर्णक' भेद वाग्न का 'बुर्ण' ही  
 है ।

किन्तु गणं अम्बिकादा व्यास गण-काव्य<sup>के</sup>वृत्तान्धि भेद को गण-  
 काव्य का भेद न मानकर उसे उसका प्रविभाग करते हैं । इस सम्बन्ध में  
 साहित्यदर्पणकार के विचार भी लेकर कहते हैं कि '... प्रथम ही तान  
 गणों में ही अस्वता का सारा गण-भण्डार हो पर जाता है फिर ज्ञान  
 का स्थान ज्ञेय रह जाता है जहाँ वृत्तान्धि गण स्थित हो । हाँ वृत्तान्धि  
 गण जब होगा तब उन तान में से कोई सा होगा अग्लिह उसे प्रविभाग करें

- १- अग्नि० का० का० शा० भा० १।६-११
- २- वृत्तान्धोच्चकृतं गणं मुक्तकं वृत्तान्धि च ।  
 भवेदुत्कलिताप्रायं बुर्णकं तथा चतुर्विधम् ॥  
 वाचं म्मासरहितं वृत्तभागुतं गणम् ॥  
 वृत्तान्धीर्षमागदयं तुर्षं चालम्भासकम् ॥

तो यों पर नञ् विभाग में तो नहीं रख सकते ।”

अतोंने यह गण ताँ यों न मानकर 'लम्पान', 'कम्पान' और 'मि' रूप माना है । उनके दृष्टि में स्थाय-योग्य वाक्य-पदों में समाप्त हो तो 'लम्पान', किसी में न तो तो कम्पान और स्थाय-योग्य पदों में किसी में समाप्त हो और किसी में न तो तो 'मि' रूप हो जाता है ।

समाप्तों को उत्पत्ता (छोटार्थ), शोका (लम्बा) तथा बाध को विनाश के आधार पर 'लम्पान' के तीन भेद करके पुनः उन सब के 'कुमु', 'गुम्' और 'वाटिका' भेद किए । ताँतों के नाम क्रमशः 'मुम्', 'उत्कणिका' और 'मुणिक' आये । किन्तु इनका लक्षण प्रायतन शब्दार्थों को भाँति नहीं है । किन्तु वाक्य में छोटे-छोटे वाक्य हों वह 'कुमु', किन्तु वाक्य में बड़े-बड़े वाक्य हों वह 'गुम्' और जिसमें ये दोनों गुण मिलित हों वह 'वाटिका' भेद कहलाता है ।

उन सब वर्णों को पुनः 'वृगन्धि', 'ज्वृगन्धि' तथा 'संकीर्ण' में बाँटा । उनको दृष्टि में 'वृगन्धि' गण वह है जिसमें कुछ नियत माध्यामों के समूह को अथवा नियत वर्णों के समूह को आवृत्ति बराबर चले तथा वह किसी रीति से भी ताल में हो । उसमें यदि प्रत्येक आवृत्ति में अनुप्रास हो तो अधिक मधुर होता है । 'ज्वृगन्धि' गण वह है जिसमें पूर्वोक्त नियम नहीं लागू होते हैं तथा संकीर्णक गण वह है जिसमें कुछ वृगन्धि और कुछ ज्वृगन्धि के वर्णों का मिश्रण हो ।

अम्बिकादास व्यास ने गण-शास्त्र को सान्ध्याम मानकर उनके नाम भेद किए हैं --

- १- कथा, २- क्कानिका, ३- क्कान, ४- जालान, ५- शाल्यान,
- ६- वास्यायिका, ७- सणकथा, ८- परिक्का, ९- संकीर्ण ।

कथा-- को पूर्वमोठिका में वक्ता को भूमिका निबद्ध होता है और

१-	ग०का० मो०	--	पं० अम्बिकादास व्यास	पृष्ठ ८
२-	११	११	११	पृष्ठ ११
३-	११	११	११	पृष्ठ १२
४-	११	११	११	पृष्ठ १३

उपमा एक हीना होता है । वक्ता के मुख से सम्भाषित कथा दो जाती है तथा भी प्रधान विषय जो में स्थापित कर दिए जाते हैं उनके बाद उपरोक्तिका होता है, जिसमें वक्ता और श्रोता का यह जाना वर्णित होता है, प्रसंगों का पारस्परिक संगति होता है । उनके दो भेद होते हैं --

- १- वक्ता भी प्रसंग का गन्ध होता है जैसे कादम्बरी में पुष्प
- २- वक्ता प्रधान कथा का गान नहीं होता है ।

कथानिका -- कथा के समान होता है किन्तु एक से अधिक के भाष्य बलाप किया जाता है और सम्पूर्ण आ-गणिका बह दो जाती है । उनके तीन भेद होते हैं --

- १- वार्तालाप करने वाले शब्द प्रधान कथा के गन्ध हों,
- २- गन्ध न हों, और
- ३- कुछ हों तथा कुछ न हों<sup>२</sup> ।

कथन में न कवि को उक्ति होता है और न पूर्व तथा उपरोक्तिका होता है स्वयं ही वक्ता चरित्र कहना आरम्भ कर देता है । उसके उक्ति से ही जाना जाता है कि कौन वक्ता कहां पर है । आस्थान को समाप्ति पर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है । पात्रता और अपात्रता की दृष्टि से कथा के समान इसके भी दो भेद होते हैं<sup>३</sup> ।

बालाप में एक से अधिक बालान होता है । कथन का भांति न कवि-वाणी और न पीठिका होती है । कथनिका को भांति इसके तीन भेद होते हैं<sup>४</sup> ।

आस्थान में कवि आस्थान को कहता है । प्रायः गौष्टवार्थ अद्भुत रूप में निकट रहता है । नाटक के समान इसके बीच से विषय उतारा

१-	गद्य कथन को मीमांसा	--	सं० उम्बिकादास व्यास	श्लोक सं० २७-३०
२-	॥	--	॥	श्लोक सं० ३१-३२
३-	॥	--	॥	श्लोक सं० ३३-३५
४-	॥	--	॥	श्लोक सं० ३५-३६



जाता है । अथि का दुकलना ये सब हम यों लखित हो जाते हैं । कथाओं के अथि-भेद उत्कण्ठा को और मा अधिक बढ़ाने वाले होते हैं । यह नाटक के गद्य भागों के मित भागों से भुविज होता है । उन्नीयाति 'प्रथिलनि' आदि के प्रयोग होते हैं<sup>१</sup> ।

आख्यायिका -- आख्यायिका के गद्य होते हैं किन्तु अन्तर यह होता है कि उसे पाठ कदा-कदा बरिज हो जाता है<sup>२</sup> ।

रूपरचना -- के कई रूप होते हैं । एक-एक रूप में एक-एक अर्थ कहानो होता है और प्रत्येक रूप मनोहर होता है । ऐसे दो भेद होते हैं । प्रथम भेद में सब कथावियों का उद्दान तथा परिणाम एक ही प्रकार का होता है और द्वितीय भेद में कौरी कथानो कथनीय-व्यास के ढंग से बरिता है और कौरी कथानो कलायोन्यास आदि का विधि से बरिता है ।

परिकथा -- में एक कहानो के अन्तर बहुत-सी कथानो होता है वे जाण में सम्बद्ध तथा साक्षात् होती हैं । उल्लेख दुद, अतिमुक्त, सतवक तथा कदम्ब -- ये चार प्रकार के भेद भाषा को दृष्टि से होते हैं । दुद के अर्थ के लिए व्यास जा ने बता दिया कि वह नाष्ट हो है और अन्य का स्वल्प बताया है । उन्होंने एक कथा के अन्तर दूसरी कथा, दूसरी कथा के अन्तर तीसरी कथा उस प्रकार जुड़ी हुई कथा को 'अतिमुक्त' बताया है और उस प्रकार बहुत अधिक कथा एक ही जाने से उसे कदम्ब बताया है । सब के सम्मिश्रण को 'सतवक' बताया है<sup>३</sup> ।

१- ग० का० मो० -- पं० अम्बिकावत व्यास, श्लोक संख्या ३७-४०

२- " -- " " श्लोक संख्या ४१

३- " -- " " श्लोक संख्या ४२-४३

४- " -- " " श्लोक संख्या ४४-४७

संक्षेप-- मैं सभी भेदों के लक्षण परिशिष्ट तैते हैं किन्तु उनके वर्णन में विशेष प्रकार का तमो नहीं रहता है।

इन सब भेदों के पुनः भेद भी व्याप्त जा ने लिए हैं।

पं० अञ्जनादास व्यास ने संस्कृत भाषाओं द्वारा मान्य-व्या, आह्वान वाच्यार्थिका, लक्षणा, परिच्छेदा भेदों को मा क्या रूप देकर काव्य शास्त्र में नई धारा के लाने का प्रयत्न किया था किन्तु उनके इन भेदों तथा इनके द्वारा अन्य भेदों के स्वल्प में थोड़े सार परिशिष्ट नहीं होता है। उन्होंने सम्भवतः अपने इस ग्रन्थ की रचना साहित्य दर्पणकार के मत को धाटने के लिए ही की थी और उद्युक्त भेद बताकर अपने नए विचार प्रकट करने की चेष्टा की है।

-----

१- गद्य काव्य मीमांसा -- पं० अञ्जनादास व्यास श्लोक सं० ४००



योंकि प्रारम्भ में गण-काव्यों में यों का बाहुल्य नहीं होता था । इसका कारण था कि गण-काव्य के रचना में निर्धारित यों का ही उच्च प्रयोग हो सकता था, अन्य किसी का नहीं । पनगल की तिलकामंडरी को छोड़ कर बाद के गण-काव्यों का भी प्रायः यी प्रकार का स्वभाव है । लक्ष्मणदेव ने तिलकामंडरी के आधार पर ही सर्वान्वित गण-काव्य का विशेषता रस-बाहुल्य बताया है और यी आधार पर 'उदयकुन्दरी क्या' को भी गण-काव्य बताया है ।

बाद के गण-काव्यों में यों का बहुलता का कारण सम्भवतः गण-कवियों की कल्पना रही हो क्योंकि गण को रचना पद्य का रचना से दुष्कर होता था और जो इस रचना में सफल होता था वही प्रतिभावान एवं अधिष्ठा समझा जाता था । अतः कुछ कवियों ने प्रतिभावान एवं अधिष्ठा बनने की इच्छा से गण-काव्य को रचना करना शुरू तो कर दिया किन्तु उन्हें उन्हें केवल गण को बनाने में लक्ष्य प्राप्त हुआ अतः गण के गण-काव्य यों का ही प्रयोग करने लग गए । इसके बाद तो कवि स्वच्छन्द रूप से कभी गण में तो कभी पद्य में विषय का वर्णन करने लग गए । उनकी दृष्टि में गण-काव्य में पद्य-प्रयोग से सम्बन्धित काव्य गण निकायों का कोई भी महत्त्व नहीं रहा । उन्होंने अपनी सुविधानुसार यी यों में दोनों-- गण और गण-- का प्रयोग करना शुरू कर दिया । इस प्रकार उन्होंने एक नई शैली को जन्म दिया जिसका नाम बन्धु शैली रखा गया ।

१- हि० आक सं० त्रि०--शत०सप्त०वा० गुण और लक्ष्मणदेव के पृष्ठ ४३२

२- इसका लक्षण 'उदयकुन्दरी क्या बन्धु काव्य है अथवा गण-काव्य शोचक परिशिष्ट में उल्लेखनीय है ।

३- संस्कृत कवि दर्शन -- डॉ० भोलालकर द्वारा पृष्ठ ५२६

गण के फलतः पर बाण जैसी प्रवाचनय शैली को बनाये रचना और वैसी वर्णन पद्यता का परिषय देना बाण के बाद के गण-कवियों से सम्भव न था । फलतः उन्होंने गण के बीच-बीच में पद्य की झाँक डाल-डाल कर एक नई शैली को जन्म दिया । पद्य के छोटे-छोटे 'कन्वेंश' पर शैली ली निभा लेना फिर भी सम्भव था और धीरे-धीरे गण-काव्यों में पद्यों की झाँक बढ़ती गई और बाद के बन्धु-काव्यों में तो पद्यों का क्षेत्र गण-भाग से भी अधिक हो गया, जिसका रूप ही बन्धु मारत' जैसे बाद की बन्धु कृतियों में देख सकते हैं ।

जो कारण है कि गद्य-काव्य और बन्धु-काव्य में शैली और विषय की दृष्टि से प्रभुत्व स्मानता है । गद्य-काव्य की प्रांति ज्यों भी बनी व्यासच्छन्न लम्बे काव्य अंशों से बौद्धि, कल्याण का मधुरलता, पावुक्ता, रसोलता, पाण्डित्य प्रदर्शन, स्मासकपुला-वस्यमान- स्मास-विहीन गद्यात्मक शैली, कृत्रिमता का वाहुल्य यदि गरिष्ठिहित होता है । जो प्रकार विषय की दृष्टि से शक्य भी क्या शरीर संकुचित होता है, कथावस्तु गौराणिक, धार्मिक महाकाव्यों से गृहीत होता है, वर्णन का प्रधानता, देवपुत्रि, पूर्वकृतियों की प्रशंसा, नायक-नायिका में स्त्री के जन्म में देवता को कृपा, गद्य-मन्त्री, लक्ष्मण पटनायें स्व प्रेम को प्रमुक्ता जादि रहती है । जो प्रकार की दोनों में स्मानता का कारण गद्य-काव्यकार और बन्धु काव्यकार का बाण से प्रभावित होता है ।

जो अधिक स्मानता होने पर भी बन्धु-काव्य गद्य-काव्य से भिन्नता यह की हो दृष्टि से रहता है । क्योंकि गद्य-कवि अपना काव्य-प्रतिभा का गरिष्ठ गद्य के माध्यम से देता है और बन्धु-कवि गद्य और गद्य दोनों के माध्यम से । अतः बन्धु में दोनों ही -- गद्य और गद्य-कथावस्तु के विकास में बहाक्य होते हैं । एक-दूसरे के ज्ञान में स्मानक का ज्ञान टूट जाता है और ज्ञान स्मानता दुष्कर हो जाता है । उदाहरणार्थ--

कौन तासां लब्धे क्लेशानिकलेति च ।

विश्वे मयि काकुत्स्थ विश्वे वितरामिते ॥३७॥

ततो गृहोत्थियस्य दाहरथेः प्रदेक्ष्येकं प्रहृत्यं भगवानित्थमकथयत् ।

अथिद् पुरा पुरविदः परमेश्वरस्य

कालान्तरालान्ज्वलने मनोषुः ।

सद्यः प्रपद्ये क्लमत्त्वममुज्ज्वदई०गं

तस्माद्युं जनपदं विदुरहोगसंज्ञम् ॥३८॥

तदनु मानसहरः प्रहृतां गरुमतिश्रम्य वृत्रवधप्रवृद्धवृद्धः पदकवातल्लब्ध --

मलयोर्मल्लकृत्ता म्नीर्जनादयोः शीम्नि कृतपदयो दक्षिणयोः पुनरप्येवमज्जीव ।

यस प्रकार चम्पू में गद्य और पद्य दोनों के सम्बन्ध को परमावलम्बता मिलता है ।

यद्यपि संस्कृत-साधारण ने वाच्य शब्दों में चम्पू में पद्यों को विशिष्टि के विषय में नहीं बताया है किन्तु उनके द्वारा दो गद्य अथवा परिभाषा के पद्यों को विशिष्टि वाच्य है । गद्य-पद्य दोनों के विषय में यह चम्पू-काव्य उक्त प्रकार काष्टादकारी हो जाता है जिस प्रकार विविध वायों के युक्त संगीत और द्राव्या के युक्त मधु ।

किन्तु चम्पू-साहित्य के अध्ययन से प्राप्त होता है कि कुछ ऐसे भी चम्पू-काव्य हैं जिनमें गद्य को नगण्यता और पद्यों का बाहुल्य है, गद्य को शान्त को पुनः गद्य में कह दिया गया है, सुति, परस्पर संवाद, मातामिव्यक्ति, सम्प्रतिपादन अधिकांशतः पद्यों द्वारा हुआ है, कहीं-कहीं श्लेष गद्य को पंक्तियां कल्या-विकास में सहायक होती हैं और कहीं श्लेष गिह होती हैं । इस प्रकार के चम्पू-काव्यों को श्रेष्ठ चम्पू-काव्य नहीं कहा गया है । क्योंकि जहाँ गद्य और पद्य में के किसी एक का अत्यन्त कवि को लक्ष्यता का सूचक होता है ।

यद्यपि बहुत से विद्वानों ने चम्पू में पद्यों का स्थान निश्चित माना है किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उन विद्वानों ने श्रेष्ठ

१- दण्डी- गद्य पद्ययोः कापि चम्पूरित्याभिधीयते । (काव्यादर्श १।३१)  
'मिश्रं चम्पूरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च धिया' ॥ १।३०  
(अग्नि० का० का० शा० मा०)

विश्वनाथ- 'गद्यपद्योः काव्यं चम्पूरित्याभिधीयते' (शा० ५०)

२- चम्पू रामायण--भोज-- बालकाण्ड  
गयानुबन्धरत्नमिश्रिताभूक्तिः हृष्यापि वाचकल्या कलितैव गीतिः ।  
तस्माद्भवात् कविमार्गज्ञाना सुतायवन्प्रबन्धरचनां खना मदीया ॥३॥

विष्णु गुणादश चम्पू-- वेदध्वरि  
'पद्यं यद्यपि विश्वे बहुस्तां ह्यपि विद्यते न तद्  
गद्यं च प्रतिपद्यो न विजहत्या कुवास्वास्वाम् ॥  
जादये हि तयोः प्रयोग उभयोरामोऽभुमादयम्  
सङ्गः कस्य हि न स्वदेत ? मनसि माध्वीक-गुदीकयोः ॥

३- संज्ञा० का उक्ति०-- वाचस्पति मराला, पृष्ठ २६५  
संस्कृत-साहित्य में कुछ काव्य-कृतियां ऐसी हैं, जिनमें वर्ण्य-विषय का प्रति-  
पादन गद्ययो भाषा व और उक्तों अधिक प्रमावोत्पादक एवं आकर्षक स्थाने  
लिए पद्ययो भाषा का प्रयोग किया गया है, या गद्यमें पद्यित किसी  
बात को पद्यमें सजाया कर दिया गया है । ऐसे गद्य-पद्य मिश्रित काव्यों  
को काव्यशास्त्रियों ने चम्पू नाम से कहा है । संज्ञा० का उक्ति०-- पं० बलदेव-  
उपाध्याय, पृष्ठ ४१८।

बन्धु-काव्य का गण-काव्य होने बन्धु-काव्य/काव्य है-- ऐसा गता  
बलता है ।

किन्तु इस काव्य में गद्यों वही गद्यवर्दी यह होता है कि न गद्य को  
कविचित्त का प्रवाहित होने का स्वर मिलता है और न गद्य को ही ।  
क्योंकि गद्य भाव कथा गद्य के और कथा गद्य के स्वरुह ही जाता है । कथा-  
कथा को गद्य का वाक्य खूब रह जाता है और उन्की पूर्ति गद्य द्वारा  
होती है । इस प्रकार गद्य-गद्य को वाङ्मय में बन्धु काव्यकार न गद्य रचना में  
कथनी प्रतिभा एवं योग्यता का परिचय दे जाता है और न गद्य रचना में वह  
गद्योत्तम एवं प्रभावात्मकता का पाता है जो एक उच्च गद्य-काव्य में होना  
चाहिए<sup>१</sup> । कवि का गद्य-गद्य है मिश्रित बन्धु-काव्य चिकित्सुमि के समान  
ही जाता है किन्तु विशेष आकर्षक नहीं हो जाता है । स्वयं गन्देह नहीं  
कि बन्धु-कवि गद्य-गद्य दोनों में लिखने का सामर्थ्य रखता है परन्तु विशुद्ध  
गद्य-कवि जथा गद्य-कवि के काव्यात्मक गद्य और गद्य में जित नाँलिक प्रतिभा  
का दर्शन मिलता है वह बन्धु-काव्य के उच्च गद्य-गद्य में गहकता से सुलभ नहीं ।  
बन्धु में साहित्यकला के विविध रूप एवं विविध विषयों के पाण्डित्यपूर्ण  
वर्णन ही विशेषण के प्राप्त होते हैं ।

बन्धु में गद्य-गद्य के मिश्रण के अतिरिक्त आख्यायिका का भाँति  
अंक, उच्छ्वास तथा उदात्त नायक को कल्पना भी को गयी है ।

-०-

(पृष्ठ ६६ का शेष) का वर्णन पद्य के द्वारा ही और वर्णनात्मक विषयों  
का विवरण गद्य के द्वारा ही, परन्तु बन्धु के लेखकों ने इस तत्त्व का अनुसरण  
तथा पालन अपने गद्यों में समुचित रूप से नहीं किया है । इस विषय के  
मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर उन्होंने ध्यान कम दिया है ।

१- हि०वाक सं० लि०--सं०सं०दाण्डुल वार सं० के०दे पृष्ठ४३४

२- दो ज्वरल वाक दो गंगानाथ भा रिवर्ष इन्स्टीट्यूट, ज्वाहारबाद भाग १  
नवम्बर १९४३, पृष्ठ ५३

३- समुद्रकृत काव्यानुशासन-- 'गद्यकथयो साहोका सोच्छ्वासा बन्धुः ।'

४- त्रिविक्रम मद्रकृत बन्धु-काव्य- उदात्तनायकता गुणवदवृत्तुका ।

बन्धुत्वहारयाष्टिश्च केन न त्रिको हृदि । २४ प्र०

द्वितीय अध्याय

उत्तरकालीन गद्य-कवियों के जीवन चरित का  
सामान्य परिचय



## उत्तरकालीन गद्य-कवियों के जीवन चरित का सामान्य परिचय

पहले देखा जा चुका है कि गद्य-कवियों का कृतियाँ बहुत ही अल्प हैं । मुबन्धु, बाण तथा दण्डी ने इस प्रकार की रचना को प्रवृत्ति का जोर लोगों का ध्यान आकर्षित तो किया किन्तु दण्डी को छोड़ कर मुबन्धु और बाण ने ( इन दोनों में विशेषकर बाण ने ) जाने गद्य-काव्य का स्तर बहुत ऊँचा रखा जिससे वे इस प्रवृत्ति का उन्नीलन कराने में अना योग न दे सके । क्योंकि कवि इन दोनों कवियों से प्रभावित होकर वे भी काव्य का रचना करना तो चाहते थे पर वे कर नहीं पाते थे । अतः बहुत से कवि तो ऐसी रचना करने का चाहते ही नहीं रखते थे । यही कारण है कि दण्डी (७वीं सदी) के बाद से धनपाल (१० वीं सदी) के बीच तक की कृतियाँ नहीं उपलब्ध होती हैं । यह नहीं कहा जा सकता है कि इस बीच गद्य-काव्य लिखे ही नहीं गए होंगे । लिखे अवश्य गये होंगे किन्तु बाण से कमस्कृत लोगों की दृष्टि में उस समय के वे नाप्य से प्रतीत हुए होंगे अतः उन कृतियों की उपेक्षा हुई होगी । किन्तु कई सदी बीत जाने पर भी जब कोई कवि बाण के टक्कर को रचना न कर सके तो उस समय बाण का अनुकरण करके जैसी भी रचना की गयीउसी को उत्तम समझ कर विद्वानों ने उन कृतियों को रक्षा की । यही कारण है कि १० वीं सदी से पुनः गद्य-कवियों को रचना करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गई । अब भी गद्य-काव्य लिखे जा रहे हैं किन्तु इन गद्य-काव्यों का स्वरूप देखने से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक गद्य-काव्य और वाजकल के गद्य-काव्य के स्वरूप में आकाश-माताल का अन्तर हो गया है । जहाँ पहले गद्य-काव्यों में वर्णन की प्रधानता होती थी वहाँ अब कथानी की प्रधानता हो गयी । वर्ण्य विषयों का वृत्ताकार रूप संक्षिप्त हो गया । इस प्रकार काव्य की संक्षिप्त रूप देने की प्रेरणा इन कवियों की ज्ञान्नाय से मिली ।

इसके अतिरिक्त काव्य की शैली में अन्तर हो गया । वहाँ की दीर्घ समासाच्छन्न विशेषण विशिष्ट वाक्य इन काव्यों में बहुत कम है । सम्भवतः इस प्रकार की शैली का जन्म उस शैली की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ । लोग उस अलंकार एवं कृत्रिम भाषा से ऊब चुके थे । वे ऐसी भाषा चाहते थे

जो सरल और तादी हो तथा जानानी से समझी जा सकती हो । कथावस्तु कोई भी हो, उस विषय में कोई प्रश्न नहीं उठता था । शंकर सुब्रह्मण्य शास्त्री ने 'श्रीकृष्णरितम्' में पात्रों के नाम रोमन रखे हैं तथा रोम का वर्णन है । इसके अतिरिक्त गण-कवियों की विभिन्न साहित्य से अनुवाद करने में भी कोई संकोच नहीं रहा । श्री शैल दोग्रित उपनाम तिलमलाचार्य ने अपने 'भारता विलास' कृति में शैलिनपर के *Comedy of errors* का अनुवर्तन किया है, हरिचरण मट्टाचार्य ने अपने 'कपाल कुण्डला' की वंस्मिचन्द्र का कपालकुण्डला के संस्कृत-अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया है । उसी प्रकार अप्पाशास्त्री ने वंस्मिचन्द्र के लावण्यमयी नामक बंगाली उपन्यास का अन्तर किया । कुछ संस्कृत-नाटकों को कथावस्तु को संतोष रूप में करके, गद्य-काव्य में स्थान दिया गया जैसे अनन्त शर्मा का मुद्राराक्षस अपूर्व लक्ष्मणक । कुछ गद्य-काव्यों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति को स्थान मिला है । जैसे कृष्णमाचार्य की 'पातिव्रत्य' और 'पाणिग्रहण' दोनों रचनाओं में पतिव्रत और पाणिग्रहण के महत्व की चर्चा है । 'उल्लास' कृति में आचार पदा को उज्ज्वल बनाने की शिक्षा दी गयी है । विधि का विदम्बना (विधि विलास) , पौराणिक कथा (उदयनकथा -वे० वैकटरामशर्मा, उदयनवरितम्- अनन्ताचार्य, 'मन्मथो-न्यथम्', 'रतिविलास' ), रामकृष्ण सम्बन्धी कथा (श्रीरामोदर -पी० शंकरसुब्रह्मण्य शास्त्री, 'श्रीकृष्णलीलायित' तथा श्रीशैल गज्जा का 'श्रीकृष्णा-भ्युदय') की बाद के गद्य-कवियों ने अधिकांशतः अपने काव्य का विषय बनाया ।

उस प्रकार इन कवियों में अधिकांशतः कथावस्तु के चयन में न कोई मौलिकता है और न उनके काव्य में ऐसा स्थल प्राप्त होता है जहाँ कवि को अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय कराने का अवसर हो । क्योंकि इन कवियों ने प्रकृति से अपना सम्बन्ध रखने की कोई आवश्यकता न समझी । सूर्योदय , सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, ऋतु वर्णन, पशु-पक्षी, वृक्षा, उपवन आदि के वर्णनों से जो पहले गद्य-काव्य भरा रहता था किन्तु कवि तरह-तरह की कल्पनाएं करके काव्य-प्रतिभा का परिचय देता था उन्होंने से इन कवियों ने गद्य-काव्यों को किमुक्त कर दिया । फलतः ये कवि अपनी काव्य प्रतिभा को दिखा कर काव्य में नवीनता न ला सके ।

किन्तु प्राचीन एवं राजतरंगिणी के बीच कुछ गद्य-काव्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने बाण से प्रभावित होकर उनका अनुकरण गद्य दृष्टि से करने का चेष्टा की। यह दूसरी बात है कि वे पूर्णतया से तफल नहीं हो पाए हैं। कनकपाल को तिलक मंजरी, भोज को शृंगार मंजरी व्यास, औदकदेव को गद्य-विन्तामणि, वामन भट्ट बाण के वैमभूपालचरितम् के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि इन कृष्ण की रचना पढ़ रहे हैं। इन काव्यों में भी राजार्जो, उनकी महाशिवियों, राजधानियों, पुत्राभाव को व्याकुलता, पुत्रोत्पन्न को धूमधाम पुत्र-शिखा, दिग्विजय-प्रस्थान, जन्म, हाथियों का वर्णन, नर शिशु वर्णन, विविध रत्नों की चर्चणा, नायक-नायिका के जन्म में देवी कृपा, प्रकृति के नाभ्य भयावह, जलम्बन एवं उदात्त रूप आदि के वर्णन मिलते हैं। इन प्रतिपाद्य विषयों की दृष्टि से इन गद्य-कवियों की कृतियां प्राचीन गद्य-काव्यों से कथमपि कम नहीं हैं। वैमभूपालचरितम् के रचयिता वामन भट्ट बाण ने बाणोच्छ्रित 'जात्यर्षम्' को किंवदन्ती को काटने के लिए ही अपने को बाण का अवतार माना है<sup>१</sup>।

संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रतिपादित गद्य-काव्य को समस्त विशेषताओं का पालन प्राचीन कवियों की भांति इन कवियों ने भी किया है इन्होंने अपने काव्य का नायक उच्चवंशी आदर्श गुण सम्पन्न और राजार्जो को बनाया। नायक के अनुकूल नायिका को भी काव्य में स्थान दिया। इस विषय में भोजराज को होकर दण्डो का अनुकरण और किलो ने नहीं किया। भोजराज ने अपने काव्य में वैश्याओं, किटों, मुसंगों, वैश्याओं को मातार्जो एवं उनको दूत वालों का ही विस्तार वर्णन किया है।

इन कवियों ने बाण का अनुकरण वर्ण्य-विषयों की दृष्टि से तो किया ही है साथ ही बाण की शैली ने उन्हें अंधा बना दिया है। दीर्घ समासाच्छन्न शैली को अपना कर अपने काव्य को दुःख बनाने में इन कवियों ने अपने काव्य का उत्कर्ष देखा। बाण की भांति पांच छः पृष्ठों तक काव्यों



कुछ कवियों के नाम के अतिरिक्त और कुछ नाम प्राप्त हो गये हैं । कुछ रचनाओं के नाम मिलते हैं किन्तु वे प्राप्त नहीं हैं । उदाहरणार्थ श्रीकृष्णम् के कवि वरदेविका ( १५ वां श्लोक ) के गरामायण, देवविजय गणने ( २६ वां श्लोक ) के रामचरित, तथा लालना ( १४ वां श्लोक ) के कृष्ण चरितम् का उल्लेख संस्कृत साहित्य में पाया है किन्तु इन कवियों के विषय में और न उनकी कृतियों के विषय में विशेष परिचय मिल पाता है ।

देवविजय गणने के विषय में केवल उतना ही ज्ञान हो सका है कि उन्होंने अपने राज्य का रत्ना अक्षर के शासन-काल में मारवाड़ प्रदेश में १५६६ ई० में का भा जिमें छैनन्द के रामायण का अनुकरण किया गया है । यह तपायना के राजविजय गुरि के शिष्य थे । उन्हीं कवि ने संस्कृत और प्राकृत का भी एक तत्र प्रयोग किया है<sup>१</sup> ।

'कृष्ण चरितम्' के रचयिता जोराल के राजा प्रतापसिद्ध के दरबारा कवि बताए गए हैं । उत्पन्न विद्वान होने के कारण उन्हें विद्वानाथ भी कहा गया है । सम्भवतः लोगों को दृष्टि में यह 'प्रतापसिद्धाय' का रचना करने वाले विद्वानाथ और अत्यन्त एक हैं । तथा समय १३२० बताया गया है<sup>२</sup> । श्री० वरदाचार्य ने बालभारत के रचयिता और कृष्ण चरित के रचयिता को एक बताया है<sup>३</sup> । श्री० कृष्णमाचार्य ने इनके गद्य को आकर्षक बताया है<sup>४</sup> । इसको हस्तलिपि तंजीर को सरस्वती मठ लखनऊ तथा फेलिस का लखनऊ में है किन्तु बहुत प्रयास करने के पश्चात् भी प्राप्त नहीं हो सकी है ।

१- हि० आफ ग्ला० सं० लिट०-- श्री० कृष्णमाचार्य, पृष्ठ ४००

२- सं० लिट० के वन्देयार और मुद्राण्यशास्त्री, पृष्ठ १२२

३- ६ हि० आफ सं० लिट०-- श्री० वरदाचार्य पृष्ठ १२७

४- हि० आफ ग्ला० सं० लिट०-- श्री० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७८

५- A Descriptive Catalogue of the Sanskrit Manuscript in the Tanjore Maharaja Sarfoji's Saraswati Mahal Library, Tanjore. Publish by the Administrative Committee with Grant-in-aid sanctioned by the Government of Madras. 23556.

६- Catalogue of Manuscripts in the Palace Library, Tanjore, by P. P. S. Sastri Vol II 2994.

## राजा भीम

यह मालवा के परमार वंश का राजा था। इस वंश का प्यार नों कहा गया है। डा० स्मार्शकर त्रिपाठी तथा कावे भनपाल ने एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसमें बताया है कि बशिष्ठ ने अपना गाय नन्दिना का विश्वामित्र से रत्ना करने के लिए जाबू पर्वत के अग्निकुण्ड से इस वंश को उत्पन्न किया। डा० त्रिपाठी ने इस अनुश्रुति में यह तात्पर्य निकाला है कि अग्नि से उत्पन्न होने के कारण इस वंश के <sup>पुरुष</sup> राजपूत आदि को भांति विदेशों थे जो अग्नि संस्कार के बाद हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में प्रविष्ट हो गए। अहमदाबाद जिले से प्राप्त अभिलेख के आधार पर ये राष्ट्रकूट जाति के बताए गए हैं। वे मुल में दक्कन के निवासी थे जो राष्ट्रकूट सम्राटों का मुल आवास रहे कुल था।

इस कुल का पहला शक्तिशाली राजा सोयक हुआ जिसका समय वि० सं० १००५ अर्थात् ६४६ ई० तथा वि० सं० १०२६ अर्थात् ६७२ ई० माना गया है। इसके बाद उनका यशस्वी पुत्र मुन्न उभ गद्दा पर बैठा। इसके उपनाम वाक्पति, उत्तरराज, शोवल्भ, ज्योषवर्ष थे। इनका समय ६७४ ई० बताया गया है।

१- प्राचीन भारत का इतिहास -- स्मार्शकर त्रिपाठी पृष्ठ २८२

२- अस्त्याश्चर्यनिधानमर्बुद इति न्याती गिरिः लंबरः

पृच्छा लद्विष्यतदिग्ग्व लद्विष्यशिराग्रामोऽग्रिमः समाभूताम् ।

मनाकेन महार्णवे हस्तनां सत्या प्रवेष्टे कृते

येकेन क्षिमाचलः शिरिणां पुत्रोति लक्ष्योऽभवत् ॥३८॥

वासिष्ठेः स कृतमयो वरुतेरस्त्यग्निकुण्डोदभवो

भूपालः परमार इत्यभिषया न्याती महामण्डले ।

जथाध्युदगतहर्षमद्गदगिरो गायन्ति यस्यार्बुदे

विश्वामित्रजयोऽभिमतस्य मुजयोर्विष्कृजितं गुर्जराः ॥३९॥

३- प्राचीन भारत का इतिहास -- स्मार्शकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८२

४- " " " " " " " " पृष्ठ २८२

५- " " " " " " " " पृष्ठ २८३

६- " " " " " " " " पृष्ठ २८३

इसने बालुज्य तैल्य ितों को कम से कम रु: बार परास्त किया था ।  
 मेरुङ्गाचार्य के अनुसार जब वह जातकों बार भंतियों को मंत्रणा को व्यवहलना  
 करके गौदावरी पार करके बालुज्य प्रदेशों में पुला ती उले पार डाला गया ।  
 इसका प्रसिधोप भोजर् ने बालुज्यों को हरा कर किया ।

इसके बाद लीन राजा हुआ-- इस विषय में वाद-विवाद है ।  
 प्रबन्ध विन्तामणि जैसे जैन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मुन्ज का गदा का  
 उत्तराधिकारी भोज हुआ । किन्तु डा० स्मार्शकर त्रिपाठी ने अभिलेखों के  
 आधार पर बताया है कि उसका गदा का अधिकारी मुन्ज का छोटा भाई  
 सिन्धुल हुआ । इसे सिन्धुराज और नवराहसांक भी कहा गया है । उसने  
 कुछ ही साल शासन किया था । इसके बाद उसका पुत्र भोज उस गदा  
 का उत्तराधिकारी हो गया ।

इसके विपरीत बलालीन विरचित भोजप्रबन्ध में ज्ञात है कि  
 सिन्धुल मुन्ज का बड़ा भाई था । उसको वृद्धावस्था में भोज हुए । उसने  
 अपना राज्य मुञ्ज को देकर अपने पंचवर्षीय बालक भोज को सौंप दिया ।  
 भोज को वह बहुत चाहता था किन्तु उद्योतिषियों को प्रविष्यवाणो --

पंचाशत्पंचवर्षाणि सप्तमासिदिनत्रयम् ।

भोजराजेन भोजोऽव्यः ज्वांङो दक्षिणापथः ॥६॥

१- प्राचीन भारत का इतिहास -- स्मार्शकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८३

२- जय मालवमण्डले तद वृजान्तवेदिमः सचिवैस्तद प्रातृर्षी भोजनापा

(अ) राज्येऽध्युषिच्यत् । (प्रबन्धविन्तामणि, पृष्ठ २५)

(ब) तिलक मजरी धनपाल --

तस्यादगुणः समस्तमुभटगामाश्रमापी सुतः

सिंहो दुर्धरसिन्धुरततेः श्रीसिन्धुराजोऽभवत् ।

स्काकिन्य चतुर्जिताकिन्धवलयोषिच्छन्नभूर्यस्य स

श्रीमहात्म्यतिराजदेवपुतिदीरागुणी गुणः ॥४२॥

जाकी पैाधितलः सराजकलशाज्जत्रादिभिलान्तरं -

स्तस्याजायत मांश्लायतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः ।

श्रीत्याथोम्य इति त्रंतापकभतिः स्यातेन मु जाश्रम्या

यः स्यै वाक्यतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम् ॥४३

३- प्राचीन भारत का इतिहास -- डा० स्मार्शकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८४

मुनकर एवं राजमद से उन्नत होकर उसे मार डालने का प्रयत्न किया। उसके यंत्रियों ने उसे बहुत रोका किन्तु मुंज ने किली की बात को नहीं धोकार किया। वत्सराज अन्त में भोज का कृत्ति फिर ला कर मुंज को दे दिया। उसे देकर उसे बहुत हा मन्वा नाम हुआ। वत्सराज योग का वेष धारण कर मुंज को सांत्वना देकर श्मशान में कृत्तियोगिक क्रिया से भोज को बुलाकर उसे मुंज के हाथ सौंप दिया। मुंज ने हर्षित होकर अपना सारा राज्य भोज को दे दिया और स्वयं तपस्या करने चला गया।

किन्तु भोज प्रबन्ध की ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। क्योंकि कवि ने इस और ध्यान देने की चेष्टा नहीं की है। अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों को एक साथ भोज को विन्मण्डल में लाकर उपस्थित कर दिया है। बरहृषि, बाण, मयूर, रेफण, हरिश्चंकर, कलिंग, कर्पूर विनायक, मदन, विशाविनाद तथा तारेन्द्र आदि निरन्तर ही उनका समा को अर्जुन करते रहते थे। इसके अतिरिक्त भा दूर-दूर के कवि उसके दरबार में जाते थे। द्रविड देश के लक्ष्मीधर, बाण, श्रीहानन्द, पं० रामेश्वर, कविप्रियो सोता, किलीचन, शुक्देव, वायुदेव, कश्मीर देश के मुचुकुन्द, कुण्डिनगर का गोपाल, वाराणसी के मन्मथ, गुर्जरदेश के माघ, दक्षिण देश के मत्स्य, कविशेखर तथा कालिदास आदि कवि सब एक

१-	भोज प्रबन्ध -- बल्लालसेन	पृष्ठ १६	१-११
२-	११	१६	
३-	११	२१	
४-	११	२२	
५-	११	२६	
६-	११	२७	
७-	११	४०	
८-	११	४७	
९-	११	४८	
१०-	११	५१	
११-	११	५२	
१२-	११	५६	
१३-	११	६७	
१४-	११	७६	
१५-	११	७६	७६



साथ भोज के दरबारों की विलोपना गई है । इन कवियों में कालिदास भोज का सर्वप्रिय पात्र बताया गया है । उन्हें कालिदास को भारत का अवतार बताया गया है<sup>१</sup> ।

यह कालिदास खुवंश आदि के स्वामि कालिदास से भिन्न है । यह भोज के पिता विन्दुराज और भोज दोनों के प्रिय पात्र परिलक्ष्य है । उनकी का उपनाम कालिदास था ।

कलकत्ता के इण्डियन मे भोज के शासन काल का समय १०३० ई० बताया गया है<sup>२</sup> । कलकत्ता ने राजतरंगिणी में भोज को कलशराज का समकालिक बताया है जिसके राज्याभिषेक का समय १०६२ ई० माना गया है । उसी आधार पर ब्यूहलर ( Buhler ) ने भोज का समय १०६२ मान लिया किन्तु भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह का ताम्रपत्र ( Copper plate ) मिला है जिसका समय १०५५ ई० है<sup>४</sup> । इस प्रकार भोज के समय के निर्धारण को सोमा १०५५ मानने में सन्देह नहीं किया जा सकता है<sup>५</sup> ।

इतिहास में आया है कि उसने चालुक्य जयसिंह तृतीय से लड़ाई १०१५ और १०१६ईमें की थी । इसी आधार पर एस०के० डे ने उनका समय १०१० ई० से १०५५ ई० तक माना है<sup>६</sup> ।

डा० कल्पलता भुंशी भी भोज के उसी समय का समर्थन करती<sup>७</sup> है किन्तु पं० कलदेव का समय के मत का समर्थन न करके ब्यूहलर के मत का समर्थन करते हुए १०५६ ई० मानते हैं<sup>८</sup> ।

- 
- १- भोजप्रबन्ध बल्लालसेन , पृष्ठ २८
  - २- संस्कृत पोयटिक्स, एस० के० डे पृष्ठ १३५
  - ३- " " " " पृष्ठ १३६
  - ४- " " " " पृष्ठ १३६
  - ५- " " " " पृष्ठ १३६
  - ६- " " " " पृष्ठ १३६
  - ७- शंभारमंजरी कथा -- भूमिका डा०कल्पलता भुंशी , पृष्ठ ६
  - ८- सं०सा० का इतिहास -- पं० कलदेव उपाध्याय पृष्ठ ५१४

राजनीतिक दशावा और सामरिक कुशला से भोज सुदूर प्रदेशों पर अधिकार करके 'सर्वभूमि' की उपाधि से विभूषित हुए थे। वह वार थाहा होने के साथ-साथ काव्य मर्मज्ञ थे। एक अभिलेख में उन्हें 'कविराज' पद से अंकृत किया गया है। उन्हें लगभग दो दर्जन ग्रन्थों का रचयिता माना गया है। उनको रचना के विषय चिकित्सा, ज्योतिष, कर्म, व्याकरण, वास्तु-कलकार, कौशल, कला आदि हैं। उनमें से कुछ ग्रन्थों के नाम-- 'आयुर्वेद-सर्वरथ', 'राजमृगांक' (१०४२ई०), 'व्यवहार-समुच्चय', 'उब्दानुशासन', 'भारंगणसूत्रवार', 'सरस्वतीकण्ठाभरण' (१०वीं), 'नाममालिका', 'युक्ति-कल्पतरु', 'शृंगार प्रकाश' बताये गये हैं<sup>१</sup>। उन्होंने शृंगारमंजरी नामक एक गद्य-काव्य भी लिखा है। जिसकी शैली में बाण का अनुकरण और कथावस्तु के ग्रहण में कवि का निजो मौलिकता है।

उनकी इतनी अधिक रचना की देखकर लोगों को आश्चर्य होता है कि निरन्तर युद्ध में व्यस्त रहने वाले भोज को इतनी अधिक रचना करने का अवकाश कहाँ मिलता होगा। कुछ विद्वानों का कथन है कि कुछ कवियों ने राजा को प्रसन्न करने के लिए स्वयं उससे धन प्राप्त करने के लिए स्वयं उनके नाम से रचना की होगी। किन्तु उन विद्वानों के पास भी इस मत को प्रमाणित करने का कोई उपयुक्त प्रमाण नहीं है।

अन्य काव्य-कृतियों के रचयिता के सम्बन्ध में बाहे वाद-विवाद ही किन्तु 'शृंगार प्रकाश' सरस्वती कण्ठाभरण तथा 'शृंगारमन्जरीकथा' इन्हीं को कृतियाँ हैं -- इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता है। 'शृंगारमंजरी कथा' के सम्बन्ध में तो कई अन्तः प्रमाण भी मिलते हैं।

प्रत्येक कहानी के अन्त में परमारवंशी महाराजाधिराज भोज का उल्लेख है -- 'इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचितायां शृंगारमंजरी-कथायां ..... समाप्ता<sup>२</sup>।'

१- प्राचीन भारत का इतिहास--डा० रमाशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ२८४

२- शृंगारमंजरीकथा पृष्ठ१६, २६, २८, ३०, ३५, ४०, ४८, ५६, ६६, ७२, ७७, ८१, ८४, ८६

काव्य के अन्त में गये हुए श्लोक से भी इस परमारवंशी राजा का यह रचना प्रतीत होती है --

..... (ब) सराणां रक्षिणः ।

द्वैतं भोजराजेन कथा (शृंगारमंजरी) १।

कथा के बीच में भी यह परमारवंशी राजा का रचना कायी गया है -- "सरस्वतीकारभिव विराजितपरमाराजनापकंश २।"

कथा के सम्बन्ध में भोज ने अपने जो विचार रखे हैं ३ उसे कोई अन्य व्यक्ति भोज के नाम पर नहीं रख सकता है ४।

जिस प्रकार 'शृंगारमंजरीकथा' की कहानियों के अन्त में भोज का नाम आया है उन्ही प्रकार सरस्वतीकण्ठाभरण तथा शृंगारप्रकाश के इंग्लिश 'परिच्छेद' और 'प्रकाश' में आया है ५। सरस्वतीकण्ठाभरण में भोज ने प्रथम तथा तृतीय परिच्छेद में अपना नाम दिया है ।

साहित्य के प्रेमो होने के साथ-साथ वह उसके महान् रक्षक भी थे । उन्होंने धारा में एक संस्कृत विश्वविद्यालय खुला था जहाँ पर दूर-दूर से विद्यार्थी आकर अपनी बौद्धिक-पीपासा को शान्त करते थे । उसमें सभी विद्यार्थी को सुव्यवस्थित रूप मिला था । इस विद्यालय की 'भोजशाला' भी कहा गया है जहाँ पर अब नवार्थी में मज्जिद कथा दी है ।

- १- शृंगारमंजरी कथा पृष्ठ ८८
- २- " " " " पृष्ठ ७८
- ३- किन्तु कथा हि कीर्त्यमाना नगरादि वर्णनपुरःतरा तांन्दर्यमावहति ।

न चेतस्याः पुरीताऽन्या मिलिताणा काचिदप्यस्ताति प्रथमैषैव वर्णनाया-  
भवति । -- शृंगारमंजरी पृष्ठ १

- ४- शृंगारमंजरीकथा--भूमिका -- डा० कल्पलतामुंशी, पृष्ठ ८
- ५- इति श्रीमहाराजाधिराजभोजदेवेन विरचिते सरस्वतीकण्ठाभरणनाम्नि (अ) अलङ्कारशास्त्रे गुणविवेकनामप्रथमः परिच्छेदः । इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमदभोजराजविरचिते सरस्वतीकण्ठाभरणनाम्न्यलङ्कारशास्त्रेऽर्थालङ्कार-तृतीयः परिच्छेदः । -- सरस्वतीकण्ठाभरण, पृष्ठ १३३, ३८६ ।
- (ब) इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीभोज देवविरचिते शृंगारप्रकाशसामेदाशब्दशक्ति-प्रकाशो नाम अष्टमप्रकाशः समाप्तः । पृष्ठ ३०४ (शृंगारप्रकाश पृ० ३७, ८४, १२५, १६०, १६०, २२२, २६७ में भी दृष्टव्य)
- ६- प्राचीन भारत का इतिहास--डा० रामशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ २८६

प्रभाकर चरित से मना जाता है कि जब तिलराज जयभित्त विजय करके  
उज्जैन में पुगा तो वहाँ जाने देना कि सभी विद्यार्थी भोज के व्याकरण का  
अध्ययन कर रहे थे और साहित्य भोज को रचनाओं से भरा था<sup>१</sup>।

भोज के समय विद्वानों की स्थिति --

अध्वारा सदाधारा सदासम्बानरखती ।

सपिङ्गता सपिङ्गताः सर्वे भोजराजे भुवं गते ॥”

-- भोजप्रबन्ध श्लोक २६५

तथा भोज के अभाव में विद्वानों की स्थिति --

अध्वारा निराधारा निरासम्बा सरखती ।

सपिङ्गता सपिङ्गताः सर्वे भोजराजे दिवंगते ॥

-- भोजप्रबन्ध श्लोक २६४

कहाँ गई हैं ।

यद्यपि 'भोजप्रबन्ध' का ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं है  
किन्तु भोज की साहित्यिक संज्ञा तथा उनकी विद्वानों के सम्बन्ध में कोई  
भी गन्देह नहीं कर सकता है । कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में उनकी  
दानशीलता एवं विद्वानों के सम्बन्ध में अधोलिखित श्लोक कहा है --

त भोजरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विदुर्ता ।

सुरी तस्मिन् क्षणे तुल्यो धावस्तां कविबान्धवां ॥७१२५६

-- राजतरंगिणी

धनपाल--

धनपाल ने बाण की कादम्बरी के आधार पर अपना 'तिलकमंजरी'  
नामक गद्य-काव्य लिखा है जो काव्य की दृष्टि से सफल रचना कही जा  
सकती है । किन्तु इसके कवि के विषय में अधिक बारीक ज्ञातव्य नहीं हो  
पाई है । मेरुचुंगाचार्य ने अपनी 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक कृति में कई

कविर्षी को लौघनियों का संकलन किया है उन्हें धनपाल का जीवन चरित्र इस प्रकार का बताया गया है कि उनके पिता सर्वदेव कैलाश गौत्रोद्य ब्राह्मण थे और विशाला (उज्जयिनी) में रहते थे । जैन धर्म को मानने वाले थे । उनके दो पुत्र-- शौभन और धनपाल थे । एक बार अवलम्बान सूरि उनके यहाँ आए सर्वदेव ने उनका विशेष सम्कार किया और उनसे लुप्त हो जाने वाली पुर्वजों को निधि के बारे में पूछा । बल्लमान सूरि ने वक्त्र-बाधुरी से पुत्रों का आधा हिस्सा मांग लिया । संकेत कानने पर निधि मिल गई । जब सर्वदेव आधा भाग देने लगे तो सूरि ने दोनों पुत्रों में से आधा हिस्सा मांग लिया । धनपाल इससे अत्यन्त दुःखी हुए और जैन मार्ग की निन्दा करने लग गये । शौभन पितृभक्त था अतः उनके पिता का प्रतिज्ञा पालन करने के लिए जैन-दीक्षाग्रत ग्रहण कर स्वयं गुरु का अनुसरण किया । धनपाल जमस्त विषाजों का अध्ययन करके भोज के संकलन मण्डलों में प्रतिष्ठित हुए और उन्होंने भाई को उन्ध्याविश बारह वर्ष तक अपने देश में जैन दर्शनियों का आगमन निषिद्ध कराया । शौभन नामक तपोधन एक बार धारा में जाया । धनपाल उस समय राजा के साथ भ्रमण में जा रहे थे, उसे न पहचान कर उगहात के साथ कहा -- ' गदर्मदन्तमदन्त, तुम्हें नमस्कार है ' उस पर उसने कधि के वृक्षण के समान मुंह वाले मित्र, तुम्हें मुक्त हो --' उत्तर दिया । इस उत्तर में धनपाल को दुःख हुआ । उसने सोचा कि मैंने तो मण्डाक किया किन्तु इसने उसे आशीर्वाद दिया । धनपाल ने उसे भोजन के लिए आमन्त्रित किया किन्तु अनुदिष्ट आहार भोजी होने के कारण उसने (शौभन ने) भोजन करना स्वीकार नहीं किया । धनपाल उसके चरित्र एवं शुभापदेशों से बहुत अधिक आकृष्ट हुए और उन्होंने जैन धर्म को स्वीकार कर लिया । इस प्रकार दोनों भाई पुनः मिल गए ।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस घटना के बाद धनपाल जैन धर्म के पक्के अनुयायी हो गये । उन्होंने अपने आश्रयदाता भोज को भी इस धर्म की ओर प्रवृत्त करने का प्रयत्न किया था । इसके लिए उन्होंने

ब्राह्मण धर्म को अत्यधिक निन्दा की है । उन्होंने ब्राह्मण धर्म में होने वाले बलिप्रथा<sup>१</sup>, गी का वंदना<sup>२</sup>, शिव का वंदना<sup>३</sup> एवं अन्य विविध देवताओं का वंदना<sup>४</sup> तथा महाभारत की हलाकत<sup>५</sup> उद्घाटित है ।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अन्तर्गत से ज्ञात होता है कि वह पादपुराण में परम प्रवीण थे । समुद्र पर मिले शिव को मन्दि-र का दीवारा पर कुछ श्लोक थे जिनकी नीम से हाथ लें पर अक्षित निम्नलिखित श्लोक को पूरा करने के लिए राजा ने विद्वानों के सम्मुख रक्खा --

अपि स्यु विषमः पुरातानां भवति हि जन्तुञ्ज कर्मणां विपाकः ।

१- ताहं स्वर्गलोपमोगतृषिती नाभ्यर्षिनात्त्वं मया संतुष्टस्तृणमत्तणेन तततं साधो न युक्तं तव ।

स्वर्गं गान्ति यदि त्वया विनिहिता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनी यत् किं न करोषि-  
नातृषितृषिः पुत्रैस्तथा बांधवः ॥ (प्रबन्धचिन्तामणि-मैरुतुंगाचार्य पृ० ३८)

२- पयः प्रदानसामर्थ्याद्भिन्वा वैन्महिषो न हिम् ।

विशेषो वृक्षे नाभ्यां महिषोती मनागपि ॥ (प्रबन्धचिन्तामणि पृ० ३८)

३- विन्वय्योत्साहं वृथा पुण्यमाला ललार्त विनाही कर्म फट्बन्धः ।

लक्षणे त्वनेत्रे कर्म गीतनृत्ये ज्मादन्य पादे कर्म मे प्रणामः ॥

(प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ३८)

४- विष्णुपारश्वै र्कान्तकलत्राद्भावत्, रुद्रादग्नि पार्वतीराद्भावत्, ब्रह्मणी ध्यानमग्नौन शापादिमयात्, विनाय(क)स्य त्वालिभृतमोदकाशने स्पर्शनं संयत्, बण्डिकायास्त्रिभुलैतिस्त्रस्तमदिषमत्सन्मुतागमत्रात्, हनुमतः कोपाटोपव-  
शंवदस्य चपेटामयात् कुत्राप्यवसरौ नाम्भूत् ।

(प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ३८)

५- कनीनस्य मुनेः स्वबान्धववधुवैषव्यविध्वंसिनो

नैतारः किल पंच गौडुलुताः कुण्डाः स्वयं पाण्डवाः ।

तेऽमोपंच समानजातय इति त्वातास्तदुत्कीर्त्तनं

पुण्यं स्वस्वयमं पवैर्द्वि तृणां पापस्य कान्वा गतिः ॥

--प्रबन्धचिन्तामणि पृष्ठ ४२

कोड़े भी विद्वान् होते पुरा न कर लंका तो धनपाल ने इसे इस प्रकार पुरा किया --

‘हर शिरसि शिरांसि यानि तैर्हर हर तानि दृण्ठन्ति गृध्रपादः ।

विद्वानों के कलने पर पुनः उस लोक को क्षाप हो गई और धनपाल की संज्ञित शक्ति निकली ।

प्रकाण्ड विचार होने के कारण कोड़े भी वादों उनके सम्मुख सड़ा नहीं हो सकता था । मैतृगुणाचार्य की ‘प्रबन्धचिन्तामणि’ में बताया है कि राजा भोज की शमा में जाया हुआ ‘धर्म’ नामक वादो धनपाल का आगमन हुनकर ही भाग गया ।

इसमें सन्देह नहीं है कि प्रबन्धचिन्तामणि में जतिशयोक्तिपूर्ण बातें कही गयी हैं किन्तु उस सत्य में तो किसी का प्रतिवाद नहीं है कि यह सर्वदेव के पुत्र थे और परमारवंशो राजाओं में से किसी-न-किसी के कथा कवि थे । धनपाल ने अपने काव्य में अपने पिता का नाम ‘सर्वदेव’ ही बताया है --

आशीर्विज्ज्यातिलमध्यदेशे प्रकाशशाइ०काश्मनिवेशज्ज्या (?) ।

अलम्भ देवधिरिति प्रसिद्धिं यो दानवधित्वविभुषितोऽपि ॥५१

शान्त्रैश्वधीती कुशलः कलाशु बन्धे च बाँधे बगिरां प्रकृष्टः ।

तयात्सज्ज्या सममुन्नहात्मा देवः स्वयंभूरिव सर्वदेवः ॥५२॥

तज्ज्या जनकादि० पद्म०करजः देवात्सविज्ज्या

विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामैतानबध्नात्कथाय ।

+ (तिलकमंजरी) + ॥५३॥

२०बी० कीथ तथा स्म० कृष्णमाचार्य ने कवि धनपाल को सायब और वाहूपति मुंज का दरबारी कवि माना है । स्म० कृष्णमाचार्य इन्हें मट्टहलायुव, पद्मगुप्त, धनन्वय, धनिक और देवभद्र के समकालिक मानते हैं ।

१- हि० आफ सं० लि०-- २०बी० कीथ हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३६१

२- हि० आफ कलासं० लि०-- स्म० कृष्णमाचार्य, पृष्ठ ४७४-४७५

३- " " " " पृष्ठ ४७४-४७५

१०६० के तिलकमंजरी का रचना वाक्यांतिमुञ्जराज के काव्य में बताकर उनका समय ६५० ई० माना है<sup>१</sup>।

चिन्तु इन काव्य साधनों का अंशतः कवि की कृति को और यदि दृष्टि गांज जाए तो इस अंशकार में बहुत प्रकाश मिल सकता है। धनपाल ने स्वयं ही अपने आश्रयदाता को पूर्ण वंशावली का है और अपने आश्रयदाता भोज को मुक्तकंठ से प्रशंसा की है<sup>२</sup>। उन्होंने अपने काव्य में बताया है कि राजा भोज की आज्ञा से ही उन्होंने अपने काव्य का रचना का है -

निःशेषवाद्दमयविदोऽपि जिनागमोऽपिः

श्रीतुं कथाः समुपजानतुस्तुल्य ।

तस्यावदात्तवसिस्व विनापेहेतो

राजः स्फुटाद्भुतराज रविना कथेम ॥

-- तिलकमंजरी ॥५०॥

काव्य में यह भी बताया है कि मुञ्ज ने उसे सरस्वती शब्द से विद्विषित किया था -- 'तुञ्जेन सरस्वतीति तदसि जायन्ताम्ना व्याहृतः ॥५३॥'

इसने स्पष्ट हो जाता है कि धनपाल का वह समय राजा मुञ्ज के पास आता हुआ और अग्रिमः जीवन उनके पुत्र भोज के काव्य में आता हुआ। काव्य में भोज का विस्तार वर्णन होने के कारण भी इस कवि के आश्रयदाता मुख्य रूप से भोज ही कहलाये।

प्रबन्ध चिन्तामणि में तिलकमंजरी नामक काव्य के शोधक के सम्बन्ध में किंवदन्ती आयी है कि एक बार राजा ने देवा में डोलना होने का कारण पूछा तो उन्होंने इसका कारण अपनी काव्य-रचना बताई

१-हि०आफ सं०लि०--सं०सं०दास मुञ्ज और १०६० के पृष्ठ ४३१

२-तिलकमंजरी श्लोक ३८-५०

३- " " " ४३-५०



शान्पाल का राष्ट्र के अंतिम प्रहर में राजा को कोई अन्य विनोद नहीं मिला तो धनपाल को बुलाकर उनको यही रचना पढ़ने ला गये और धनपाल उनको व्याख्या करने ला गये । उस अद्भुत काव्य से कमलूत होकर राजा ने कहा -- " यदि तुम्हें इस काव्य का क्या नायक बनायी और विनाता के स्थान पर अन्ता का नाम रखी तथा श्रावतारतार्थ को जगह महाकाल को उल्लिखित करी तो जो मांगी वह तुम्हें दूंगा --" उस पर धनपाल ने सजीत धुप में अरार्ण - जौरु में, कांब-कांबन में तथा धतुरे- कल्प-वृद्धा में महद अन्तर बताते हुए काव्य के नायक और राजा भोज में अन्तर बताया । यह सुनकर राजा रुष्ट हो गया और उसको कृति को बाग में जल दिया । उस घटना से दुःखित होकर धनपाल मकान के पिछले भाग के मंच पर लेट कर ली गये किसी प्रकार उसकी लड़की तिलकमंजरी ने उसे स्नान, पान और भोजन कराया । उसने पिता को जनमिता में प्रथम प्रति के लेखन का स्मरण कर आधा ग्रन्थ लिख दिया और धनपाल ने उतराई लिखकर पूरा कर दिया । धनपाल ने अपनी पुत्री को विद्वता से प्रसन्न होकर अपने काव्य का शोषक उसी के नाम पर कर दिया ।

किन्तु राजा के इस प्रकार के व्यवहार से अगन्तुष्ट होकर वह नाणागांव चले गये । राजा ने पुनः उन्हें आदर के साथ बुलाया किन्तु फिर उन्होंने कोई काव्य-रचना नहीं की । राजा के पूछने पर कि क्या कोई और ग्रन्थ लिखा जा रहा है कवि ने फटाक करतें हुए कहा -- " गले में उतरने वाली गरम कांजा से, जल जाने को वाशंका के कारण तरस्वती मेरे मुंह से निकल कर चली गयी है । अतलिः बैरियों के लक्ष्मी के केश पकड़ने में व्यग्र हाथ वाले महाराज । मेरे पास अब कवित्व नहीं रहा ।"

इस प्रकार तिलकमंजरी इनको अन्तिम रचना थी । इनका दो और कृति बताई जाती हैं पाठ्यलक्ष्मीनाम-वाला नामक प्राकृत कौष तथा कवमपंजाशिका । द्वितीय कृति जैन धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् लिखी

१-प्रबन्ध विन्तामणि, पृष्ठ ४१

२- " " " " पृष्ठ ४२

गहं तथा च भूय देव की प्रशंसा हेतु उत्तम ५० श्लोकों का संग्रह किया गया है ।

जहाँ प्रबन्धचिन्तामणि में धनपाल ब्राह्मण धर्म का उपहास करने वाले कारक गये हैं किन्तु तिलक मंजरी के अध्ययन से धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण मिलता है यह अवश्य है कि उनका जैनधर्म के प्रति विशेष पक्षपात है । प्रारम्भ में जहाँ उन्होंने 'जिन' देवता का आराधना की है वहाँ ब्रह्म एवं सरस्वती का भी उल्लेख है पुनः प्राप्ति के हेतु अयोध्या-नरेश सेवदाहन द्वारा लक्ष्मी को आराधना करवाते हैं । विद्याधर राजन को प्राप्ति के हेतु विद्या-देवियों को उपासना करवाते हैं ।

विविध हिन्दू देवताओं को उपसान के रूप में काव्य में स्थान दिया है । नृसिंह, शेषनाग, विष्णु, बभ्रुत, रुद्र, लक्ष्मण शत्रुघ्न, आदिवराह, कंसदिश कृष्ण आदि का उल्लेख कई बार आया है । 'अर्द्धदर्शनस्त्रिगिरिव नेमव्यवहारस-  
क्षिप्तलोकः', 'बाह्वृक्षसर्वतः शून्यदर्शो', 'वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः  
'वैशेषिकं मते द्रवरय कूटस्थनिस्थता', अभिप्रेतसाधकैः शर्वरिव प्रधानशकुनेः पदे  
पदे दानिवृत्तिः शर्वरोमनयव आदि उद्धरण उनके विविध धर्म विषयक ज्ञान के सूचक हैं ।

जहाँ धनपाल विविध दर्शनों के ज्ञाता थे वहाँ वे संगीत के प्रेमी भी थे । बाध-वादन में कीर्णा से उनका विशेष रसि भी यह कीर्णा को मुर्च्छना, गमक, स्वर विशेष, ग्राम, तान, नादि से परिचित थे ।

१- हिन्दुवाक सं० लि० -- कोय हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३६२ (२)

२- संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास—सुधीरकुमार गुप्त पृष्ठ १७१ (बी)

३- तिलकमंजरी श्लोक संख्या ३,५

४- तिलकमंजरी, पृष्ठ ३०

५- " " पृष्ठ ३६८-४००

६- " " पृष्ठ ४१

७- " " पृष्ठ २८

८- " " पृष्ठ १२

९- " " पृष्ठ १२

१०- " " पृष्ठ १६६

१०- " " पृष्ठ १८६-३६२

एक श्लोक में गणित से उपमा (शक्राणितनिवलाकभुजकणदिभारितम्<sup>१</sup>) देने से उनके गणितनिष्णाक ज्ञान का पता चलता है ।

राजा भोज के वर्णन से उनके सामुद्रिक ज्ञान का पता चलता है --

अयोध्याश्लेषतः शरीरकलाचन्द्रादिभिर्लीलानै-

नराजाय माण्डलायतभुजः श्रीभोज इत्यात्मजः...।४।

धनाल को ज्ञान का काव्य-रत्ना पर गर्व था --

वनं धनालस्य चन्दनं मलयस्य च ।

सरसं हृदि विन्ध्यस्य कौडभून्नाम न निर्वृतः<sup>३</sup> ॥

काव्य के विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में धनाल को कुछ अपना विशिष्ट मान्यता है जिन्में से कुछ उद्योतित हैं । उन्होंने रा वृत्तियों में कौशिक वृत्ति को, हन्दों में उपजाति को, रीतियों में वेदों को, काव्य-गुणसम्पत्तियों में प्रसति को, नातियों में पंचम भुक्ति को तथा भणिति में रसोक्ति को श्रेष्ठ माना है । उस को काव्य में महत्वपूर्ण स्थान देने के कारण माधुर्य गुण को प्रशंसनीय मानते हैं । उस गुण के सम्बन्ध में उनका कहना है कि जो कवि उस गुण का आश्रय लेकर बहुदय हृदय को मदमत्त नहीं कर सकता है तो वह कवि नहीं है । उस गुण के अतिरिक्त या स्माधि गुण को भी काव्य में स्थान देना फलन्द करते हैं । इस दृष्टि से उन्होंने यथावर कवि को प्रशंसा की है । यह श्लेष को अधिकता को काव्य में श्रेष्ठ नहीं मानते हैं<sup>६</sup> किन्तु सुन्दर ढंग से प्रयुक्त श्लेषों को काव्य में स्थान देना फलन्द करते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में ऐसे श्लेष सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं<sup>७</sup> । कवि ने स्पष्ट, गंभीर एवं वाली तथा रसमयी कथा को प्रशंसनीय बताया है । अश्लेष संस्कृत की तरंगवती कथा तथा प्राकृत प्रबन्धों में जीवदेव के वर्णन को मुक्तकंठ से प्रशंसा की है । उन्होंने भावों एवं रसों की स्पष्टता के साथ विचित्र पदन्यासों का होना भी काव्य में आवश्यक बताया है<sup>१०</sup> ।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २४	६- तिलकमंजरी १६वां श्लोक
२- प्रस्तावना, --मवदशास्त्री पृष्ठ ६	७- " ३५ "
३- तिलकमंजरी पृष्ठ १५६	८- " २३, २४ "
४- " ११वां श्लोक	९- " २४ वा श्लोक
५- " ३४वां श्लोक	१०- " ३० "

इस प्रकार जनपाल ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का विशेषताओं से आकृष्ट होकर उनको काव्य में स्थान देकर अपनी काव्य विषयक धारणा प्रस्तुत की । इन कवियों के अतिरिक्त उन्होंने वाल्मीकि, व्यास, प्रवरासेन, कालिदास, माघ, वाल्मीकिराज, भद्रकाली, महेन्द्रगुरि तथा कदमराज का भी स्मरण किया । बाण के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है । उनसे तो वे तबसे अधिक प्रभावित हैं --

केवलाऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान्वयोर ।

किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्प्रकृतानिधिः ॥ २६ ॥

कादम्बरौसोदर्या सुवया केवले हृदि ।

हर्षात्स्वाभिव्या न्यानि बाणोऽिब्धिरिव लब्धवान् ॥ २७ ॥

एक  
इस उलोक में उन्होंने श्रेष्ठ कवि तथा श्रेष्ठ आलोचक के सम्बन्ध में अपने विचार रखे हैं । उन्होंने बताया है कि कवि को काव्य-मर्म तथा गुण-दोष की पूरी भाँति जानना चाहिए तथा आलोचक को इन गुणों के अतिरिक्त पक्षपात रहित होना चाहिए --

वन्ध्यास्ते स्वयः काव्यपरमार्थविकारदाः ।

विचारयन्ति ये दोषांगुणांश्च गतमत्सराः ॥ २८ ॥

जनपाल ने जहाँ एक ओर कवि-हृदय पाया था वहाँ दूसरी ओर सत्कार के गूढ़ तत्वों की समझने की क्षमता भी पायी थी । अतः वह कवि होने के साथ-साथ एक बड़े दार्शनिक के रूप में भी स्वारे मंदा जाते हैं । उनके काव्य में दुःख-दुःख, मार्ग्य-विह्वलता, कर्म की प्रधानता, पुनर्जन्म जैसे गूढ़ विषयों का विस्तृत व्याख्या है उपलब्ध होती है । इनका कहना है कि सत्कार मिथ्या है उसके वैभव साणभंगुर है, उर्मि केवल मार्ग्य और कर्म की प्रधानता होती है अतः मनुष्य को सांसारिक मोह में नहीं पड़ना चाहिए किन्तु माया बड़ी गिनी गयी है वह सांसारिक रहस्यमयताओं को भी मोह है के जाल में फँसा लेती है । लेकिन मनुष्य को इससे सावधान रहने का निरन्तर प्रयत्न

करना चाहिए । मनुष्य के जीवन का सार धार्मिक कर्म ही है -- 'साम्प्रतमिव धर्मतत्त्वपरिव' । उसी तथा से अपने जीवन को सफल बनाया जा सकता है । इसी से दुःखों का निवारण होता है । बड़े-बड़े तपि मुनियों के पास असौख्य कष्ट नहीं आ पाते क्योंकि चिरकाल से संकित पुण्य कर्म सन्ने शैवक का भांति उनका रक्षा किया करते हैं लेकिन ऐसे मनुष्यों को भी निश्चिन्त होकर बैठ न जाना चाहिए अपितु शरीर के जीवन को भी सुकृम्य बनाने के लिए निरन्तर नीति के मार्ग का अनुसरण कर करना चाहिए<sup>१</sup> । क्योंकि कर्म का गति बड़ी विचित्र होती है उसा के अनुकूल ही मानव-जीवन के साथ सुख-दुःख हैं । उन कर्मों का कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता<sup>२</sup> । उसा के अनुकूल मनुष्य को विविध योनियों में जन्म लेना पड़ता है<sup>३</sup> । यह सुख-दुःख का नियम न केवल मनुष्यों के लिए है अपितु देवताओं के साथ भी है क्योंकि ये पहले पुण्यों का भाग करके तत्पश्चात् दुःख को प्राप्त करते हैं<sup>४</sup> । किन्तु मनुष्य को इससे व्याकुल नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि दुःखों व्यभिक्त सुख को भी प्राप्त करता है --

ज्ञाण्णाऽपि रोहति तरुः क्षोणाऽप्युपवाप्तो पुनश्चन्द्रः ।  
इति किमुशन्तः गन्तः संतप्यते न विदुरेण ॥<sup>५</sup>

इसलिए संसार में निर्धन, सुखी, दुःखी, दास, स्वामी, कुम्प, सुन्दर, सर्वज्ञ, ब्राह्मण, नीच जाति, पुरुषार्थ तथा पुरुषार्थविहीन व्यक्ति का व्यक्तिगत दिलायी पड़ना कौन आश्चर्य का बात नहीं है । असाध्य वस्तु का प्राप्य होना, लभ्य वस्तु का लो जाना, स्वयं व्यक्ति को मृत्यु आदि पूर्व संकित कर्मों का फल है<sup>६</sup> । इसी को भाग्य कहते हैं । इसका विधि को

१- तिलकमञ्जरी पृष्ठ ६०

२- ,, पृष्ठ २०

३- ,, पृष्ठ २४६

४- ,, पृष्ठ ३४६

५- ,, पृष्ठ ४०२

६- ,, पृष्ठ ४०६

७- ,, पृष्ठ ३४६

न कीर्ति जान सका है, न वह किसी से बाधित हो सकी है और न उसका किसी प्रकार प्रतिकार हो सका है। यही भाग्य विविध व्यक्तिकार दिखाता है।

जैसा कि जमीं देखा जा चुका है कि धनपाल भास्करादी होते हुए भी कर्म-पत्रा पर बल देते हैं। उनकी दृष्टि में इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। बिना लीचे-समके कार्य करने में विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। अतएव बिना कुछ लीचे-समके, बिना कुछ आगे-पीछे देखे समुद्र में उत्पन्न ध्वनि का अनुसरण करने ला तो जाता है किन्तु आगे भयंकर रूप देखकर विचलित होता है और अपना मूर्खता पर पश्चात्ताप करता है।

इस प्रकार धनपाल पाठक के सम्मुख जहाँ एक ओर कवि के रूप में आते हैं वहाँ दूसरी ओर एक बड़े दार्शनिक के रूप में भी आते हैं।

### ओड्यदेव--

धनपाल के बाद दूसरे जैन कवि ओड्यदेव हैं जिन्होंने 'गद्यचिन्तामणि' नामक गद्य-काव्य लिखा है। इनका उपनाम वादीमसिंह था। इसी नाम से वे अधिक प्रसिद्ध हुए --

श्रीमद्वादीमसिंहैर्गद्यचिन्तामणिकृतः ।

स्थयादोड्यदेवेन चिरायन्वानमुष्णः ॥

स्थयादोड्यदेवेन वादीमहरिणाकृतः ।

गद्यचिन्तामणिलोकैः चिन्तामणिरिवापरः ॥

इस नाम एवं उपाधि से वे वादि-पाठ्य प्रतीत होते हैं। एम० कृष्णमाचार्य ने उन्हें मद्रास का निवासी बताया है। यह दिग्गजर जैना थे।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २४६

२- ,, पृष्ठ १४६

३- हि० बाफ कलासंग्रह-- एम० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४०६



उन्हें उसमें आत्मसंतोष न मिला और जाने इ को गद्य में भावों को अभिव्यंजना करने में असमर्थ पाया । अतः उन्होंने उसी कथावस्तु को लेकर पद्य में निष्कल कर दिया । उदाहरणार्थ गद्यचिन्तामणि में सत्यं की सत्कथा को देखकर और जाने विनाश को गौचर सत्यंवर केवल भक्तिव्यता का आश्रय लेता है , पश्चात्ताप नहीं करता है कि मैंने क्रमास्थी के कर्तव्य को ठुकराया । किन्तु ज्ञान बुद्धामणि में पश्चात्ताप को वर्णित है--

गन्त्रिणां लक्ष्मिणां वाच्यमनान्येन मया मुधा ।

विभाके हि सतां वाच्यं विवक्षन्त्ययिवेकिः ॥

-- प्र० लम्प ० ३५

इसी प्रकार के कई स्थल मिलेंगे । इनके प्रतिरिक्त दोनों काव्यों में बहुत अधिक समानता है । कथावस्तु एक-ही तो है ही साथ ही कहीं-कहीं पर दोनों काव्यों में एक से ही श्लोक आदि भी आ गए हैं । उदाहरणार्थ काष्ठांगार से लड़ते हुए सत्यंवर की वंशान्त हो गया । गद्यचिन्तामणि में वंशान्त युक्त भाव जो पद्य में कहा गया है वही पद्य ज्ञानबुद्धामणि में भी आया है --

विदम्यद्गदोष्णोऽयं त्वमेव विषयीकृतः ।

सांप्रतं वा विषमप्रये मुंवात्मन्विषये स्पृहाम् ॥

नवजात शिशु जीवंधर को पा कर सुख होने वाले गन्धीकट की की उपमा है दोनों काव्य में प्रायः एक ही है --

स्वांशेषिणीदृष्टः किं वा न प्रीतये मणिः ॥६६॥

(ज्ञान बुद्धामणि)

‘इं कुंति एव दुर्लभं फनं धरापतितनमालीन्य हर्षकण्टकिताभ्यां कराभ्यामत्यादरमावत् ।’ (ग० वि० पृष्ठ ३०)

ज्ञान बुद्धामणि में गद्य-चिन्तामणि की ही भांति जीवंधर के लोकपाल को मौज गिलाने का उल्लेख एक सा है ?

१- ग० वि० पृ० २७ ज्ञान बुद्धामणि प्र० ६० श्लो० ६६

२- ,, पृ० ३८ ,, दि० ६० ,, २८-२९



एक-दो लोकीन्त दोनों में आया है -- 'एव वेदे हि शश प्रायो  
बलिष्ठाः कुंजरादपि ॥६४॥ (जात्रबुडामणि), 'वदेशतः शशः कुंजरातिशायो  
उपि किंपदन्ता ।' (ग० वि० पृ० ४४)

जोष्वर के राज्याभिषेक को देकर दोनों काव्यों में एक का  
उलोक आया है --

श्वपुत्रं राजपुत्रत्वं प्रेतवारो न्व वाजनिः ।

न्व वा राज्यपुनः प्राप्तिरतो र्मविचिक्रता ।

दोनों काव्यों में बहुत से ऐसे उल्लेख मिलेंगे जहाँ पर केवल गय और  
पय के कारण ही भिन्नता है अन्यथा नहीं । उदाहरणार्थ --

विपदः परिहाराय शौरः किं कल्पते नृणाम् ।

गावके न च हि मातः - ताद तम लेखान्त्ये ॥ प्र० ल० ३०

(जात्रबुडामणि)

'विपदः किं नु विपदमपनुदति । प्रत्युत विपदनिव भवे भवे प्रबन्ध-  
मनुबध्नाति । तदेवमुपलोक विरोधो विषादः किमित्याद्रियते । यश्च  
सुपस्थितायां विपदि विषादस्य परिग्रहः सोऽयं चण्डात्तान्दित्तस्य दावहुत-  
मुत्पिपातः ।' ( ग० वि० पृ० १६ )

वत्सरं ताम्भतामेकं वत्सैर्यं गुरुदाज्ञया ।

गुरुणेति निषिद्धोऽभुव कोऽन्वो ल३० ध्यतेगुरुम् ॥३६॥

(जात्र बुडामणि तु० ल०)

'वत्स, वत्सस्मात्त जमत्वागुरुदक्षिणीऽम्' इति सप्रणमयादिषः ।

(गणचिन्तामणि पृ० ४१)

दोनों वाक्य प्रायः एक के ही हैं ।

इसी प्रकार -- 'अग्निन्विद्यया कान्त्या विदुषां योषितां हृदि ।

एषे च योगस्या भाति तत्र प्रस्तुतमुच्यते ॥६१॥

(जात्र बुडामणि, तु० ल०)

११४

...जोवकुमार वारुणतानां पांखुदानां न हृदि स्वाशारोहणारोहणोपर -  
म्भानना हृष्टानां करिस्तुलप्रष्ठानां पृष्ठेण न गदा नियतति तद्वरर  
प्रस्तुतमुच्यते ।" (गणचिन्तामणि, पृष्ठ ५६)

ये दोनों वाल्य पुनः कला-प्रसंग में ज्ञान के छिद्र बने गए हैं ।

श्रीकृष्ण (व्यापारी) के विचार मन विहीन व्यक्ति के सम्बन्ध में  
रहे थे --

रिक्तस्य हि न जागति कीर्तनोऽथोदसितो गुणः ।

हन्त किं तेन विद्यापि विद्यमाना न शोभते ॥७॥

(सात्रबुद्धामणि तु०७०)

"रिक्तस्य कस्य न जागति, नामिवात्स्यं जागति न पौरुषं  
परिस्फुरति, न विद्या विद्योतते... ।" (गणचिन्तामणि, पृ०५६)

गंधर्वदत्ता के द्वारा विषय चुनक जयमाल जोवंधर के गले में लट  
वने पर काष्ठांगार के बतव्य दोनों में एक से है --

त्रयविभ्रयोर्योग्यः कुप्याना के सुतुकः ।

कथं लभेत रत्नोत्तमं शस्तं वस्तु हि भुजुगा ॥४६॥

(सात्रबुद्धामणि तु०७०)

वैश्वसुतोऽयं परप्रतामेवं पराङ्गशालिनां परार्थवस्तुपलम्भयोग्या-  
नामयोग्यः कथं योग्यामिमां राज्यत्रियमिव त्माश्रयेत् ।" (गणचिन्तामणि पृ०७०)

जोवंधर को चन्द्रोदय पर्वत पर ले जाकर महा बुद्धसंग के द्वारा बड़े  
हुए वाल्य प्रायः स्मान है --

पयोवर्षिपयः पुरैरभिषिच्यामब्रवीत् ।

पवित्रोऽसि पवित्रं मां श्वानं मत्कृतवानिति ॥२६॥

(सात्रबुद्धामणि पं० ७०)

... जोवकस्वामिनः स्वमत्सुलपरिहात कुमारमहोष्कारिता-  
स्थादर्दरिः सार्धं पयोवर्षिपुरैरभिषेक्य । व्याहाषोव कुमार मां  
विश्वदूषणपात्रे मान्णपात्रे रिक्तमेव पवित्रीकृतयतस्ते पवित्रकुमार इति  
मक्तिव्यं नाम्नेति ।" (गणचि० पृ० ८७)

गणचिन्ता को प्रायः दोनों में एक ही है । शरीर की  
नक्षरता एवं तत्त्वविवेकता का वर्णन दोनों में है किन्तु अन्तर केवल इतना  
ही है कि दात्र बुडामणि में नारा शरीर को लेकर कहा गया है और गण  
चिन्तामणि में सामान्य शरीर ही लेकर ।

पुरे काव्य का नारांश दोनों काव्यों में एक पाद्य है --

मन्त्रो वनपालोऽयं काष्ठांगाराकरो हरिः ।

राज्यं फलाकरो तस्मान्नयैव ताचक्यैव तत्र ॥२८॥

(दात्र बुडामणि : कादश सं०)

अर्थात् काष्ठांगाराकरो करज्ञानाभ्रष्टफलः शालापृगः । जन्मको  
नुनमा च्छौटितकलफलः स वनपालः । फलं तु निश्चयेन भोगाकरो ।

(ग० चि० पृष्ठ १५८)

इस प्रकार दोनों में पर्याप्त मात्रा में समानता मिलती है ,  
भिन्नता कुछ ही स्थलों पर है । किन्तु यह भिन्नता दोनों काव्यों के रचयिता

१- ग०चि० पृ० ११०-११ दात्र बुडामणि ग०सं० पृ० १५७, ५९

२- " १०६ " " प्र०सं० " १३

३- दात्रबुडामणि में काष्ठांगार से युद्ध करने की प्रयुक्त राजा उत्सव को  
देकर मुर्च्छित होने के पश्चात् श्वेत राना विक्रया को समझाते हुए उत्सव  
करते हैं --

दि

स्युक्तानां वियोगश्च भविता स नियोगतः ।

स्मिन्व्यरंगतोऽप्यंगी निःसंगी हि निवर्तते ॥६०॥

(दात्रबुडामणि, प्र०सं०)

गणचिन्तामणि में यह पदमा अपनी माता के सम्मुख जोर्बधर द्वारा  
कहे गए उद्देश को बताती है जो इस प्रकार है -- प्रियेपथ्य मर्तुवियोगेऽपि पुनरत-  
त्संयोगसंभूष्यतया विह्वलसहिष्णुमिमाम् । (गणचिन्तामणि पृ० ६८ = अष्ट लम्ब)

गणचिन्तामणि में आचार्य नन्दो धीरता के साथ उपदेश देते हैं ।

जोर्बधर को देकर तथा उन्हें शान्त करके जोर्बधर के पांडित्य पर गर्व करते हैं  
किन्तु दात्रबुडामणि में गुरु भी उन्नेजित ही जाते हैं । जोर्बधर को क्रोधित देखा  
कर यद्यपि गुरु दक्षिणा मांग कर गुरु उन्हें शान्त तो कर बैठे हैं किन्तु वह  
क्रोध पर कब्जा सासा उपदेश दे देते हैं । (द्वितीय लम्ब)

गणचिन्तामणि के अष्ट लम्ब में पदमा के वियोग से दुःखित होने प  
उसकी माँ के द्वारा पिछला वृत्तान्त पूछना तथा पदमा का कच्चा कच्ची के वृत्तान्त  
का कहना वर्णित है जो दात्रबुडामणि में नहीं है ।



कहना है कि वादीभरिह नाम नहीं है अस्तु कथियाँ को उपाधि है ।

कि विजय का नाम औज्यदेव कागा माना है किन्तु गणचिन्तामणि के गद्य रचयिता थे -- प्रमाणित नहीं हो सका है<sup>१</sup> ।

टी०ए०ए०कुपु नामी हरिचन्द्र और वादीभरिह को प्राचीन कथियाँ के श्रोत्रि में रखते हैं और इसका कारण उनका काव्य-ज्ञातृत्व कहते हैं --

किन्तु हरिचन्द्रो वादीभरिहपेत्सुभावपि स्वस्य कवित्वप्रौढ्या प्राचीनकविकृतानारोहत इति मात्स्येण वक्तुं प्रभवति सना<sup>२</sup> ।

इन्होंने औज्यदेव को कालिदास, वाण आदि के अन्तर ही माना है । उनका कहना है कि वाण ने अपने पूर्ववर्ती गद्य-काव्यकारों में कुपु और हरिचन्द्र का ही नाम लिया है और कियों का नहीं, जोः औज्यदेव उनके बाद हुए होंगे । इस दृष्टि से डॉ० कुपु नामी ने उनका समय ६५० ई० माना है -- जो वादीभरिह सुरिः (६५०)पंचाशदुरषदक्षाव्यात्तर-मेवासीदिति निरुच्युं पायते<sup>३</sup> ।

किन्तु एक स्थल पर वह गणचिन्तामणि ने तो ऊँचर तथा दूसरा समय निर्धारित करते हैं । उनका कहना है कि बलालौन विरचिते भोजप्रबन्धे में भोज की मृत्यु के ३४ पश्चात् जो कालिदास की

अध्वारा निराधारा निरालम्बा सरावती ।

पण्डिताः सपित्राः सर्वे भोजराजेदिकान्ते ॥

उक्ति बताई गई है वह चौड़े बहुत परिवर्तन के साथ गणचिन्तामणि में जो काष्ठांगार के दुरे व्यवहार से दुःखी तथा अत्यन्त की मृत्यु हो जाने के पश्चात्

१-जोसंधरचम्पू, सं०हि०टी०का उद्धृत पृष्ठ १५

२- " " " " पृष्ठ १५-१६

३-गणचिन्तामणि, मुद्रिका--टी०ए०ए० कुपु नामी पृ० ३

४- " " " " " पृ० ४-५

शोक करना हुई प्रजा के कर्तों में भिन्न है --

जम निराधारा बरा, निरात्म्य सरस्वती, निष्कलं लोकोक्त-  
विधानम्, निःकारः संसारः, नीरस्ता रक्षिता, निरात्मदा वास्ता ।<sup>१</sup>

जो यह नाश ही जाता है कि यह कवि भोज के बाद हुआ है ।  
भोज का समय ६५७-२०५३ आदि इन्हीं का कन्व और ग्यारहवाँ का आरम्भ  
माना गया है । अतः यदि जोष्यदेव का समय बहुत पहले ब रफ्त जाय तो  
उनका ग्यारहवाँ का उन्नाई ही होगा।

पं० बलदेव उपाध्याय ने अन्वय अन्वय १० वाँ शताब्दी माना है<sup>२</sup> ।  
पं० कृष्णमाचार्य ने अन्वय अन्वय ग्यारहवाँ शताब्दी माना है<sup>३</sup> ।

धनपाल की भांति जोष्यदेव भी बाणो के प्रेमा थे । उन्होंने  
कवि काव्य में अन्वय कई बार उल्लेख किया है । अन्वय, ग्रामविशेष और  
मूर्च्छना का उल्लेख करके बाणो विषयक अपने ज्ञान का परिचय दिया है ।

नकजात शिष्य जोष्यदेव के वर्णन में कवि ने अन्वय/ज्योतिष ज्ञान का  
परिचय दिया है<sup>४</sup> । कवि का इस शास्त्र पर अट्ट विश्वास भी था । काव ने  
नायक जोष्यदेव के विवाहों के सम्बन्ध में लोह-न-लोह ज्योतिषज्ञों से मविष्य-  
वाणी करवाई है और उनकी बाणो की मत्ता करवाया है ।

यह अट्ट जैसा थे । इनके काव्य गद्य-चिन्तामणि में ज्ञात होता  
है कि अन्य कर्तों के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि \* बहुत उदार और मच्छिष्टा  
थी<sup>५</sup> । उनकी दृष्टि में कर्त ही अन्वय उस की देने वाला है --

जिनदी शाविधिभिवापेक्षितास्त्रिगुण्यसंज्ञानमनिर्वाणानन्वयेतुतवा  
ततोऽप्यभिनन्दनोयम् ।<sup>६</sup>

- १- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ २६-२७
- २- सं०सा० का इतिहास -- पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३६६
- ३- हि०आफ कला० सं० लिट० -- पं० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७०
- ४- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ६४, ६७, ६६
- ५- ,, ,, पृष्ठ २६
- ६- अन्वय विशेष विवेक सांस्कृतिक अध्ययन नामक अध्याय में किया जाया।
- ७- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ २३३

अपि जन्तुं विधि कर्मां का निन्दा की है किन्तु उन्होंने  
किन्तु देवताओं की आदर की दृष्टि से कहा है । नाक के वरिष्ठ उत्कर्ष  
तथा अन्य जन्तुओं में शम्भु<sup>१</sup>, वसु<sup>२</sup>, वसुधा<sup>३</sup>, शाश्व<sup>४</sup>, निपुरदाहक  
तपस्या करते हुए शम्भु का जन्म करने वाले राम आदि देवताओं की उपमान  
रूप में ज्ञान दिया है ।

कवि भक्तिभक्ता और पूर्वजन्म में विश्वास करता है उसकी दृष्टि  
में कोई भी पुरुष भक्तिव्यता की रीति में कार्य नहीं है अशक्ति भावा  
यति बलवान होने के कारण दुह का दुह ही जाता है<sup>५</sup> । यह भक्तिव्यता  
पूर्वजन्त कर्मां के जन्म में होता है । ये कर्म मनुष्य के जीवन पर बिना प्रभाव  
हाले नहीं रहते । तपादि से थोड़े बहुत दोष अवश्य ही जाते हैं किन्तु  
पूर्णतया नाश नहीं होते ।

कर्मां के अनुसार जीवन का चार्याोनियां होता है , ऐसा कवि  
का विचार परिलक्षित होता है --

- (१) अत्यन्त नीच कर्म के कारण जोव नरक योनियों में जन्म लेता है
- (२) पाप की प्रवृत्ति हांती है नरपहल जैसा ताव्र न होने के कारण  
पशियोनि में जोव जन्म लेता है ।
- (३) पाप और पुण्य दोनों कर्म करने वाला जोव मनुष्य योनि में  
जाता है ।
- (४) पुण्य करने वाला देव योनि में जाता है ।

हिंसक, कुठा, चोर, कामी, क्रूर, अर्थां, धर्मद्रोहां, नरक के  
कर्मां की फेलते हैं ।

- 
- १- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ १४०-४१  
२-        "        पृष्ठ १५  
३-        "        पृष्ठ १४३  
४-        "        पृष्ठ १४३  
५-        "        पृष्ठ ५८  
६-        "        लोकपाल वृत्तान्त, पृष्ठ ३७  
७-        "        पृष्ठ १६१-६३

उनके मत से किसी भी यौनि में जाव मुक्त नहीं रहता है । नरकवासियों को तो कष्ट हीमा हो है, मनुष्य और पक्षी यौनि में भा लौग काङ्ग, अशुष्ट-विद्योग, अनिष्टप्राप्ति, मृत, तृष्णा, रोग, श्रौय आदि से विन्ना रहते हैं । दुःख के कारण देव यौनि को प्राप्त देवतागण कर्म-ज्ञान से दुःखी रहते हैं कि कर्म के नाश होने पर पुनः हमें संसार में कहीं जाना न पड़े । इस प्रकार उनके लिए वह पुन भी दुःख बन जाता है<sup>१</sup> ।

अतः इस प्रकार उनकी दृष्टि में यह दुःख का निमित्त सब के साथ है किसी भी व्यक्ति को भावी विपत्ति से दुःखी एवं मन्मोत होने को आवश्यकता नहीं है । दुःखी होने से दुःख कम होने को अपेक्षा बढ़ता है । दुःख में दुःख को स्वीकार करना अपने को अग्नि में डालना होता है । अतः बुद्धिमान इस बन्कर में नहीं पड़ते हैं<sup>२</sup> ।

मनुष्य यौनि के सम्बन्ध में जोडिय देव ने बताया कि यह यौनि बड़ी कठिनता से मिलती है । समुद्र में जिस प्रकार मणि को प्राप्त दुष्कर होता है वैसे ही इस यौनि को भवसागर में प्राप्त होती है । अतः मनुष्य को धर्म आदि से अपने जीवन को सफल बनाना चाहिए क्योंकि धर्म निश्चय को सिद्धि करने वाला है उसका रूप सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र से युक्त होता है । किन्तु इस शरीर में आलसिता नहीं रहनी चाहिए । क्योंकि यह हाड-मांस का शरीर सब के देखते हो नष्ट हो जाता है । रागात्म्य मनुष्य इन्द्रियों के रहते हुए भी उससे काम न लेने के कारण महान अन्धा होता है । कुछ कुछ ही विवेकी दुःख होते हैं<sup>३</sup> ।

पंच नमस्कार मंत्र पर कवि को पूर्ण विश्वास है कि आपत्काल में इनका उच्चारण करने से कष्ट दूर हो जाता है । कवि ने जीर्णधर के मुंह

- 
- १-गणधन्तामणि पृष्ठ १६१-६३
  - २- " " पृष्ठ १६, ५७
  - ३- " " पृष्ठ १४३
  - ४- " " पृष्ठ १६०
  - ५- " " पृष्ठ १०६-११०



इसे  
सै/काला वर श्रावण द्वारा मोहित होने के कष्ट को दूर कराया<sup>१</sup>। पंच  
ननकार मंत्र इस प्रकार है --

ओं णमो अलिहनाणम्  
ओं णमो सिद्धाणम्  
ओं णमो आहरिनाणम्  
ओं णमो उवञ्जनाणम्  
ओं णमो लोर पव्यगाहूणम्।

इस प्रकार कवि ने अपने इस गद्य-काव्य में जैन धर्म का विशेषण  
से प्रतिपादन किया है और इस काव्य का प्रयोजन मोक्षप्राप्ति रक्ता  
गया है। अन्तिम लम्ब का नाम इसीलिए 'मुक्ति-शैलम्बी नामिकादशौ लम्बः'<sup>२</sup>  
रक्ता गया है। इसमें मुक्ति को एक कन्या के रूप में चित्रित किया गया है।

धनपाल और जोडयदेव दोनों ही जैन कवि हैं अतः दोनों के  
दार्शनिक दृष्टिकोण एक से हैं।

### वामन भट्टकाव्य

संस्कृत-साहित्य के अन्तिम श्रेष्ठ गद्य-कवि वामन भट्ट कौमटियज्वा  
के पुत्र थे। यह अपने ही कादम्बरी एवं हर्षचरित के रचयिता बाणभट्ट का  
अवतार मानते हैं, इसलिए उन्हें वामिनव भट्ट बाण भी कहा जाता है।  
उन्होंने बाण के कहते हुए यश एवं बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् को उक्ति को  
निर्मूल सिद्ध करने के लिए ही उन्हीं की रचनाओं के अन्तर्गत 'वैम-धुपालचरितम्'  
नामक गद्य-काव्य लिखा<sup>३</sup>। इसमें रेडिड के राजा वैमधुपाल का, जिसे वीर-  
नारायण भी कहा गया है, चरित्र-चित्रण होने के कारण इनका समय  
पन्द्रहवीं शताब्दी माना जाया, क्योंकि वीर नारायण का समय १४०३-  
१४२० माना गया है<sup>३</sup>।

१-गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ७५

२-बाणादित्य कवयः, बाणाः कलु सुरसाक्षरणीयः।

इति जाति इदमयसी, वामनबाणाऽपमाष्टि वत्सकुलः॥६॥वैमधुपाल०

३-(अ) हि०आफ सं०लि०--सं०सं०वाङ्मय और एस०के० के पृ०४३३

(ब) हि०आफ कला० सं०लि०--सं०कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४८०

(स) ए० हि०आफ सं०लि०--ए०बी०कोय, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ३७३

कवि को अपना कृति को सफलता पर अटूट विश्वास था<sup>१</sup>। इन्होंने अपने को अन्य कवियों से श्रेष्ठ, कविता को सुदार्ढ्य के नाते बिकार करने वाला मधुर एवं सहृदयों का सुबन्धु बताया है<sup>२</sup>।

यद्यपि यह मधुर गद्य शरणा, आवादन्य वाच्यविन्यास, श्लाघनीय वर्णन-कुशलता तथा हृदयावर्जक उत्प्रेक्षा से कवि बाण भट्ट का अतिश्रमण करना चाहते थे किन्तु काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उन्होंने अन्ततोगत्वा बाण का ही अनुकरण किया है।

जिस प्रकार बाण भट्ट ने अपने आध्यदाता हर्ष के विषय में हर्षचरित लिखा है उसी प्रकार वामन भट्ट बाण ने अपने आध्यदाता के विषय में 'कैमभूपाल चरितम्' लिखा है।

वामन भट्ट बाण नारायणीपासक थे। इन्होंने अपने काव्य में उन्हें तथा उनके विविध रूपों को किसी-न-किसी रूप में ध्यान देकर उन देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। नारायण को तो न जाने कितनी बार काव्य में कवि ने ध्यान दिया है।

जहाँ हर्षचरित में बाण भट्ट ने पद्मानोपति के परमभक्त चित्रमानु का पुत्र अपने को घोषित किया है वहाँ वामन ने अपने इस काव्य के प्रारम्भ में लक्ष्मीपति का स्मरण किया है तथा अपने आध्यदाता को वंशावली का गुणगान करते समय उसकी उत्पत्ति भगवान विष्णु से बताई है -- 'श्रीमत्स्मरण कमलादवती माँ वर्णश्चतुर्थः कति'<sup>३</sup>।

१- कविरभिनवबाणः काव्यमत्युद्भतार्य

पुवनमहितभूमा नायकी कैमभूपः ।

त्रिसुवनमहनीयः प्रातिमानेषयोगः

प्रकटयति न केषां पण्डितानां प्रहर्षम् ॥७॥कैमभूपाल०

२- प्रतिकविपेदनबाणः ॥ कवितातः गहनविहरणमधुरः ।

सहृदयलोकः सुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः ॥८॥कैमभूपाल०

३- कैमभूपालचरितम् पृष्ठ ३

इसी प्रकार जहाँ बाण शंकर की विभूति, जटा जादि का स्मरण करते हैं वहाँ वामन भट्ट बाण वट-वृक्ष पर सोये हुए एवं जाने ही पर से निकले हुए गंगा का रसा-वादन लेने के लिए अवतार लेने वाले वासुदेव का स्मरण करते हैं । जहाँ कवि बाण महादेवता के शंकर व्रत के वर्णन में रूब जाता है वहाँ अभिनवबाण वासुदेव के ध्यान में लीन हो जाता है ।

उन दोनों के ऊपर के स्वल्प में अन्तर दिखाने हुए आर० कृष्णमा-  
चार्य का कथित्य अवलोकनाय है --

‘अमलमुक्ताशिलाघटितलिङ्गमशेषत्रिभुवनवन्दितवरुणं  
वरावरुणं चतुर्भुजं भगवन्तं श्यामकर्मित्यादिभक्तितपरमशो  
गायति प्राचीनी बाणः । ताशान्नारायण इव सकल-  
लोकवन्द्ये, दूरग्राह्यहीतमजपतिरक्षाण विबलाणा विभूतय  
गत्तद्वजस्यैव सर्वलोकशरणत्वम् , विश्वमिव नारायणमूर्तिः,  
इत्याद्यात्मना भक्त्युन्मेषाविष्करोति अभिनवबाणविष्वा  
समलंकृतोऽयं वामनाचार्यः ।’

किन्तु नारायण के अनन्य भक्त होते हुए भी वह शिव की  
आदर की दृष्टि से देवते हैं । वह जिस उत्साह के साथ विष्णु की उतुति  
करते हैं उसी उत्साह के साथ शिव की भी । उन्होंने शंकर के मन्दिर,  
नान्दीबेल का विस्तार वर्णन किया है<sup>२</sup> ।

देवियों में चण्डिका देवी का कवि ने विस्तार के साथ वर्णन  
किया है<sup>३</sup> जिसमें कवि को उन देवी के प्रति भक्ति परिलक्षित होती है ।

कवि की रुचि रामायण, महाभारत एवं पौराणिक कथाओं  
के प्रति भी परिलक्षित होती है । काव्य में उन्द्र के वज्र द्वारा हुए वज्राक्षुरदिति  
के गर्भ के नाश,<sup>४</sup> विद्योमपुत्र के वध,<sup>५</sup> ग्राह से फकड़े गज के उद्धार,<sup>६</sup> तथा शकुनि से

१- कैमभूपाल चरितम्--भूमिका--आर०कृष्णमाचार्य पृष्ठ ३

२-     ”                     पृष्ठ १४७-४८

३-     ”                     पृष्ठ १८२-८४

४-     ”                     पृष्ठ १११

५-     ”                     पृष्ठ १११

६-     ”                     पृष्ठ ७८

शक्ति औरव को तथा<sup>२</sup> में सम्बन्धित कहानियाँ तो जायो हा हैं, साथ ही विलोप, उजानपाद, गांधर्व, क्षिप्रामित्र, भोमसेन, पुन्नुमार, हरिवन्द, भगीरथ, मान्याता, श्वाक आदि पुरुष पात्रों का तथा स्त्रा-पात्रों में द्रौपदी, रुक्मिणी, रम्भा, मन्दोदरी, सुदाक्षिणा, सुभद्रा, लोप्सुद्रा, सोता आदि का उपमान रूप में ग्रहण करना कवि का उसी सम्बन्धित कथाओं से परिचित होना सिद्ध करता है ।

बाबाक दर्शन के प्रति भी कवि ने 'बाबाकमतानुभारिण इव न बध्नाति परलोक बुद्धि'<sup>३</sup>, 'बाबाकपूनिरिक्कातिभेदानपैक्षिणो'<sup>३</sup>, तथा 'प्राकृत्यैव आत्मानुरक्तानां कौपानदायिनी'<sup>४</sup> आदि पंक्तियाँ कहकर अपने विचार प्रकट किए हैं ।

इन शायरों के अतिरिक्त वे संगीतशास्त्र और हन्दशास्त्र से भी परिचय रखते हैं । एक स्थल पर संगीत के श्रुति स्वरमण्डल आदि का उल्लेख किया है (मान्यवैभिव ह्युत्साण श्रुतिस्वरमण्डलमिव)<sup>५</sup> ।

कथाओं के नल-शिल वर्णन में हन्दों का उल्लेख कर इन्दविषयक ज्ञान का परिचय दिया है --

'कणेश्च स्वधरा, विलासेश्च ललिता, वाक्त्रणेश्च हरिणी,  
वचसि मंजुभाषिणी, ह्ये रुचिरा, स्वरं मत्कौकिला, नितम्बविम्बे  
पृथिवी चैवं संदर्शितानेकपुत्राणि पुत्रावलम्बिनी'<sup>६</sup> ।

इ: भाषाओं में अधिकार होने के कारण उन्हें बहुभाषा-वत्सल्य को उपाधि मिली हुई थी । इसके अतिरिक्त कवि-श्रेष्ठ होने के

- 
- १-कैमभूपालचरितम् पृष्ठ १३६  
२- " " पृष्ठ १३२  
३- " " पृष्ठ २००  
४- " " पृष्ठ २००  
५- " " पृष्ठ १३  
६- " " पृष्ठ १६८

कारण कवित्तार्वर्भाव को उपाधि भी मिली पा<sup>१</sup> ।

'कैमधुपाल चरितम्' के अतिरिक्त इनकी रचनायें --पार्वती परिणय नामक नाटक, कुमारसंभव नामक भाषा, रघुनाथ चरित, नलाभ्युदय, हंसदूत, कनकलता, शब्द चन्द्रिका और शब्द-रत्नाकर बताई गई हैं ।

पार्वती परिणय में शिव - पार्वती का पौराणिक दृशा को नाटकीय रूप दिया गया है । यह 'श्रीरंगम्' के बाणों विलास प्रेस से प्रकाशित है । इस रचना के रचयिता के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद है । पी०वी० काणे इस रचना को वामननट्ट बाण को न बताकर प्राचीन कवि बाण को बताते हैं । इस सम्बन्ध में वह पार्वती परिणय के प्रारम्भिक श्लोक को उद्धृत करते हैं जिसमें वह वत्सगोत्रो बाण को रचना बताई गई है --

अस्ति कवित्तार्वर्भावो वत्सान्वयज्जलधिगम्भवो जात-बाणः ।  
नृत्यति यद्रत्नार्था मेघोमुखलासिका बाणा ॥४९७० अं०१,

पी०वी० काणे ने बताया है कि कादम्बरी का इतिहास रचयिता भा वत्सगोत्रो बाण था । वह यह स्वीकार करते हैं कि यद्यपि यह नाटक अत्युत्कृष्ट नहीं है, किन्तु इस आधार पर उसे बाण का रचना न बताना ठीक नहीं है । उन्होंने ऐसी लोगों के विचारों को भी निर्मूल सिद्ध कर दिया है जो यह कहते हैं कि इस नाटक का विषय कुमारसंभव का है और बहुत से विचारों एवं पदों का समानता है तथा बाण ने किसी का अनुकरण नहीं किया है । इस सम्बन्ध में पी०वी० काणे का कहना है कि उनके काव्य में ऐसी समता मिल जाना कोई आश्चर्य का बात नहीं है<sup>२</sup> क्योंकि बाण ने स्वयं ही अपने को महाकवि कालिदास से अत्यधिक प्रभावित होना माना है --

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सुकित्तसु ।

प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मंजरीष्विव जाते ॥ हर्ष चरित

१- सं०सा० का इतिहास --पं० बलदेवउपाध्याय पृष्ठ ४१६

२- कादम्बरी, पी०वी० काणे, तृतीय संस्करण पृष्ठ१८-१९

एक तर्क यह भी देते हैं कि उस नाटक के गद्य, विचारों एवं अभिव्यक्ति में कादम्बरी और हर्षचरित से न्यता है<sup>१</sup>।

ए०बी० कोथ पी०बी० काणे के विचारों का समर्थन न करके इस रचना को पृन्द्रहवीं शताब्दी में होने वाले वासनभट्ट बाण को रचना बताते हैं। उनकी इसका कारण इस कृति को ऐलोगत तथा रचनानत दुर्बलता बताते हैं<sup>२</sup>।

एम० कृष्णमावायें भी इस कृति को वासन भट्ट बाण को रचना बताते हैं और वे इस विषय में तीन कारण देते हैं --

- (१) किसी जर्जरशास्त्रियों एवं नाटककारों ने पार्वती परिणय से पद्य नहीं उद्धृत किए हैं।
- (२) कादम्बरी की तरह संवादशैली एवं काव्य प्रतिभा का सुन्दर रूप नहीं है।
- (३) वैमभूपाल चरित से काफी समानता है<sup>३</sup>।

इस विषय में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है किन्तु अधिकांश भारतीय विद्वान इस सम्भावतः प्रतिभासम्पन्न बाण को रचना न मानकर अभिनव भट्ट बाण को रचना मानने के पक्षपाती हैं।

महाभ्युदय नलविषयक अपूर्ण काव्य है,<sup>४</sup> रघुनाथ चरित ३० सर्गों का अप्रकाशित महाकाव्य है, शब्द-बन्धिरता और शब्द-रत्नाकर नामक दो कृतियों का ग्रन्थ अप्रकाशित है।<sup>५</sup> भृंगारपुष्पण निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित है।

१- कादम्बरी, पी०बी० काणे, तृतीय संस्करण पृष्ठ १८

२- ए० हि०जाफ़ सं०लिट्टो-- ए०बी० कोथ पृष्ठ ३१५

३- कादम्बरी --पी०बी० काणे पृष्ठ ३१८

४- अनन्तस्यमन ग्रन्थमाला, नं०३

५-सं०सा० का इति०--पं० कलदेव उपाध्याय पृष्ठ ४१६-१७

६- " " " " " " " ४१६-१७



प्राणायि तेन मनुवंशयोः कथम्

आदित्यवर्मनुपतेः कृतिना निदेशात्<sup>१</sup> ॥

सं० श्री० शंकररामशास्त्री ने द्वेनकीर के इतिहास के आधार पर आदित्यवर्मा नामक चार राजाओं का उल्लेख किया है --

(१) आदित्यवर्मा तिरुवादी ( Tiruvādi ) का समय १३३३ईसा ।

(२) आदित्यवर्मा ने १४७२-७८ईस तक शासन किया था जिसके बाद रघुवर्मा ने १४७८-१५०४ ई० तक शासन किया था ।

(३) आदित्यवर्मा ने १५५३-१५६७ तक शासन किया था ।

(४) आदित्यवर्मा का समय १६६१-१६६७ था<sup>२</sup> ।

इस काव्य के आदित्यवर्मा के लिए 'नरलोकवीर' शब्द का प्रयोग किया गया है-- '..... आदित्यवर्मा नरलोकवीरः'<sup>३</sup>

इन राजाओं को 'नरलोकवीर' उपाधि नहीं मिली थी किन्तु 'भूतलवीर' की उपाधि मिली थी । इस उपाधि को सर्वप्रथम द्वेनकीर के राजा वीर उदय मारुतण्ड वर्मन् ने १४६४-१५३५ के बीच तिननेवेल्ली ( Tennevelly ) जिले को जीत कर पाई थी । इस आधार पर श्री० शंकररामशास्त्री ने प्रथम दो राजाओं को इस काव्य के रचयिता वासुदेव कवि का आश्रयदाता नहीं माना है<sup>४</sup> ।

अन्तिम दो राजाओं में से इस कवि का आश्रयदाता निश्चित करने के लिए उन्होंने दो और काव्य -- संक्षेपमारत और संक्षेपरामायण के रचयिता का नाम भी वासुदेव बताया है । उनका कहना है कि ज्ञान्तारिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि इन दोनों काव्यों के तथा रामकथा के रचयिता एक ही हैं । इस सम्बन्ध में वे तीनों काव्यों की संज्ञितियां उद्धृत करते हैं<sup>५</sup>

- १- रामकथा पृष्ठ ५२  
२- ,, भूमिका पृष्ठ ८  
३- ,, श्लोक सं० २  
४- ,, भूमिका पृष्ठ ६  
५- ,, ,, पृष्ठ ६-१०



तंदोपभारत में --

ज्जवानन्दान् गोभिः क्तामार्गं ज्ञाययत् ।  
प्रकाशः श्रीकरी राजा रविवर्मा विराजते ॥  
गिरां देवी रमा चोमे यं स्मग्गुणोत्कृष्टम् ।  
जाश्रित्य स्वप्रियो देवो रमरती न कदाचन ॥  
तस्याज्ञया सुमनसः गार्थानां चरितं सुमर ।  
भूमः संक्षिप्य सुतरां प्रणेदन्त्विह देशिकाः ॥

+ + +

यदेतदकृत्तेषां पाण्डवानां महात्मनाम् ।  
सैफंतादृशो कापि वायुदेवस्य निर्मितः ॥

तंदोपरामायणमें --

रामस्य चरितं पुण्ये संक्षिप्य वदती मम ।  
वाल्मीकिमुखा गुरवः प्रतोदन्तु दयालवः ॥

रामकथा में --

‘गुरवः प्राचेतसापवर्षवत्सदा ।’

उनकी दृष्टि में तीनों काव्यों की अन्तिम पंक्तियाँ प्रायः एक-  
ही होने के कारण उन सब का रचयिता एक है -- ऐसा निश्चित करती हैं ।

जैसा कि उपर्युक्त काव्यों की पंक्तियाँ से स्पष्ट है कि तंदोप-भारत  
की रचना रविवर्मा की आज्ञा से हुई है और रामकथा की रचना जादित्यवर्मर  
की आज्ञा से । अतः यदि तीनों काव्यों के रचयिता एक हैं तो उन वायुदेव  
की रविवर्मा और जादित्यवर्मा दोनों के बीच का होना चाहिए । उसीलिए  
श्री० संकररामशास्त्री ने अन्तिम जादित्यवर्मा (१५५३-१५६७) को उस कवि का  
आश्रयदाता बताया है । उन्होंने इतिहास का आश्रय लेते हुए बताया कि  
जादित्यवर्मा की गद्दी पर उमयम्मा रानी (Umayamma Rani) )  
बैठी थी जिसका समय १६७८-१६८३ ई० माना गया है । और उनके स्थान पर

१- रामकथा भूमिका -- श्री० संकररामशास्त्री पृष्ठ १०

रविकर्मन् कहे थे। उनका समय १६८४-१७१८ ई० माना गया है। उस प्रकार उन्होंने इस काव्य के रचयिता का नाम तत्कालीन राजाओं का उल्लेख बताया है।<sup>१</sup>

विद्वानों ने सुविष्टिर विजय की भांति 'धातुकाव्य' जिस काव्य के आधार पर लिखा गया है उस काव्य के रचयिता को रामकथा के रचयिता वासुदेव ही बताया है जो कि कतुतः नका रचना नहीं है।<sup>२</sup>

त्रिपुरसैन तथा शौरिण कथा के रचयिता का नाम साधुश्रवण देकर उन कृतियों को भी उन वासुदेव की रचना बताया गया है किन्तु रामकथा के संपादक श्री० शंकरराम शास्त्री ने ऐसा नहीं माना है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि त्रिपुरसैन के टीकाकार नीलकण्ठ ने काव्य में आशु रविभुवः<sup>३</sup> को व्याख्या करते हुए बताया है -- रविनामाय्य कवेः पिता तेन वासुदेवेन।<sup>४</sup> जिससे स्पष्ट है कि इस कवि के पिता का नाम रवि था जब कि रामकथा के रचयिता के पिता का नाम नारायण था।<sup>५</sup>

इस प्रकार इनकी रचना संक्षेपभारत, संक्षेपरामायण और रामकथा ही बताई गई है।

उन्होंने अन्त कृतियों की भांति काव्य के विषय में अपने दृष्टिकोण अपने काव्य 'रामकथा' में नहीं रखे हैं किन्तु इनके काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि वे काव्य में न अंकारों को बहुत अधिक स्थान देते हैं और न वर्णन की दीर्घता को। वह सरल सीधी सादी भाषा में अपनी कथा का विकास करते हैं।

- १- रामकथा भूमिका--श्री० शंकररामशास्त्री पृष्ठ १०  
 २- " " " " " " पृष्ठ-१०  
 ३- " " " " " " पृष्ठ ६  
 ४- " " " " " " पृष्ठ ८

## पंडितराज जान्नाथ--

जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र को मौलिक रूप देने वाले अंतिम आचार्य हैं । पं० बलदेव उपाध्याय ने उन्हें जान्थ ब्राह्मण बताया है<sup>१</sup> किन्तु पंडितराज जान्नाथ ने स्वयं अपने को जातकविलास में माधुर कुलजन एवं तैलंगकुलीन माना है-- 'माधुरकुलमुद्रैन्दुना', 'तैलंगकुलावतरीन'<sup>२</sup> । 'भामिनीविलास' के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा शशोके<sup>३</sup> डे<sup>४</sup> उन्हें तैलंग निवासी मानते हैं और अपने मत के समर्थन में जान्नाथ द्वारा रचित 'प्राणाभरण'<sup>५</sup> नामक काव्य से उनके श्लोक को उद्धृत करते हैं --

तैलंगाव्यमंगलालयमहालक्ष्मीदयालारितः ।

श्रीमन्पैरामभट्टशूरनिशं किररखलाटंतपः ।

स्तुष्टः समताधिसस्य कवितामाकर्ष्य तक्षणं

श्रीमत्पंडितराजपंडितजगन्नाथो यथागोविंदर ॥

(प्राणाभरण)

उपरोक्त श्लोक से स्पष्ट है कि इनके पिता का नाम पैरामभट्ट था । महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उनके पिता का नाम पैठि भट्ट तथा पैरामभट्ट दोनों का उल्लेख किया है<sup>६</sup> । इसी प्रकार आचार्यबद्रीनाथ फाग तथा यदुनमोहन फाग ने पैरुभट्ट और पैरम भट्ट बताया और पं० बलदेव उपाध्याय जा ने पैद भट्ट बताया<sup>७</sup> । ये नामान्तर संभवतः पैरामभट्ट के ही हैं । इनकी माता का नाम लक्ष्मी था ।

उन्होंने समस्तशास्त्रों का अध्ययन अपने पिता के साथ रह कर किया । उन्होंने वैदान्त की शिक्षा जनेन्द्र भिष्म से, न्यायवैशेषिक की

१- सं०सा०का इति०--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६

२- पं०का०सं० -- डा०बालेन्द्र शर्मा, जातकविलास पृष्ठ २५

३- भामिनीविलास--सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ८

४- सं० पौयटिन्स-- शशोके डे पृष्ठ २३२

५- भामिनीविलास-- सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ६

६- रत्नगंधर--बन्द्रिना टीका, नीलम्भा पृष्ठ ३६

७- सं०सा० का इति०-- पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६

महेन्द्राक्षि से, पूर्व-मीमांसा को लण्डेव से, तथा महाभाष्य को शेष  
वीरेश्वर से प्राप्त की थी । पर शेष वीरेश्वर उनके पिता के भी गुरु थे।

महावीरप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि अस्त शास्त्रों की  
शिक्षा ग्रहण करके जन्नाथ 'तंजावर' नामक संस्थान में जीविकार्जन के लिए  
चले गए किन्तु वहाँ उनकी आदर मिला । उनके प्राण्य में द्विवेदी जी  
'अक्षयटी' काव्य के अशोभित श्लोक को प्रस्तुत करते हैं --

तंजायितोधिपति गंगाऽपरोपि वस रंजायतोऽत्र धनदः

तंजायतोति गुणजुंजायितम्य न तु गुंजायितं च कनकर ।

किं जाग्रतो ज्यति किं जानता स्वर्तिषि किं जाननुपुरपदे

तेषु पुरेशि नदकंजायिता साधु तदिदं जातु वा ष्मि शिवे ॥

( तंजावर )

द्विवेदी जी का कहना है कि वहाँ से जन्नाथ कई संस्थानों  
से होते हुए दिल्ली आए<sup>२</sup> ।

पंडितराज जन्नाथ की शाहजहाँ से मिलने के सम्बन्ध में कई  
प्रकार की किंवदन्तियाँ हैं । पं० अलदेव उपाध्याय का कहना है कि शाहजहाँ  
ने अपने पुत्र दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाने के लिए उनकी आदर आमंत्रित  
किया<sup>३</sup> । इस सम्बन्ध में यह भी अनुश्रुति है कि अध्ययन करने के पश्चात्  
जन्नाथ जयपुर गए वहाँ किसी काजी से वाद-विवाद हुआ और काजी  
परास्त हो गया । काजी ने जाकर बादशाह से इनकी प्रशंसा की और  
बादशाह ने उनकी जुला लिया<sup>४</sup> । दूसरी अनुश्रुति यह है कि काजी के बजार जयपुर  
के राजा ज्यसिंह द्वारा नकी भेंट बादशाह से हुई । क्योंकि मुस्ला लोग  
जयपुर नरेश को दो प्रकार से परिचान करते थे --

१- सं० पौथटिपस -- इसको० के पृष्ठ २३२

२- ~~सं० अक्षयटी-कवि-इति०--सं० अलदेव~~ मामिनीविलास--सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी  
पृष्ठ ६

३- सं० सा० का इति०-- पं० अलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१६

४- रत्न गंगाधर-- चन्द्रिकाटीका, चौदहमा पृष्ठ ३६



उनके विपरीत एक और किंवदन्ती मिलती है कि काशी में पर्याप्त आदर मिलने से उन्हें वैराग्य ही गया तो जाने को पवित्र करने के लिए गंगा के तट पर बैठकर उन्होंने गंगा लहरों को रचना का ।

उन किंवदन्ता में कुछ नश्य भां परिलक्षित होता है । क्योंकि प्राणोत्सर्ग कर लेने पर गंगालहरी को रचना कैसे हो सकती है । उन दृष्टि के गंगालहरी उनकी संतान रचना प्रतीत होती है ।

उन दोनों किंवदन्ती से मालूम पड़ता है कि कवि का अन्तिम समय काशी में व्यता हुआ । भामिनि-विलास में एक श्लोक आया है जिसमें बताया गया है कि कवि की युवावस्था बादशाह के दरबार में तथा वृद्धावस्था मथुरा में व्यतीत हुई --

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि संभाविताः  
दिल्लीवलभगाणि पल्लवतले नीतं नवीनं वयः ॥  
सम्प्रत्युज्जितवातं, मधुपुरीमध्ये हरिः रोच्यते,  
सर्वं पण्डितराजराजिल्लैनाकारि लोकाधिकारः ॥

(सान्तविलास श्लो० ४५)

'भामिनीविलास' इन्हीं को रचना होने के कारण इसको सत्यता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता । किन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अपनी प्रेमिका को मृत्यु से गिन्न होकर एकाएक उनको ईश्वर के भावद् भवन की ओर लक्ष्मण हुए ही और वहाँ से मथुरा चले आए ही तत्पश्चात् वहाँ से काशी आकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण वहाँ व्यतीत किए हैं ।

डा० जार्येन्ड्र शर्मा ने उनका अन्तिम समय मथुरा में न बताकर काशी में व्यतीत होना बताया है । इस विषय में उन्होंने उद्धृत किये तर्क दिये हैं<sup>१</sup> --

१- आगरा की स्थिति शाहजहाँ के बाद ठीक नहीं हो पाई ।  
कतः कवि ने उधर जाना पसन्द न किया होगा ।

२- पिता कारण में रहते थे । कबल वहीं होता था । अतः नवीन स्थान जाने की अपेक्षा उन्होंने काली चाना अधिक पसन्द किया होगा ।

३- 'मनोरमाकुवमर्दन' और 'शब्द-कौस्तुभ-शानोभेजना' इसी बीच की व्याकरण संबंधी रचना है । मधुरा या जागरा की अपेक्षा कारण में व्याकरण लिखने का अधिक वातावरण है ।

डा० आर्येन्द्र झा के अन्तिम दो तर्क बहुत अधिक स्वीचीन प्रतीत नहीं होते हैं क्योंकि अधिकांश विद्वान् उनका जन्म तैलंग में मानते हैं तथा मनोरमाकुवमर्दन की रचना कवि की इस समय की बताई गई है जब भट्टोजी दीक्षित ने उनके गुरु द्वारा रचित 'प्रश्रिया-कौमुदी' को टीका 'प्रश्रिया प्रकाश' का संपन्न अपनी 'मनोरमा' में किया । पं० बलदेव उपाध्याय ने इस सम्बन्ध में जान्नाथकृत अधोलिखित पंक्तियों को उद्धृत किया है<sup>१</sup> --

नाम नामं धनश्यामं धामतामरसेदाणम्  
पण्डितेन्द्रो जान्नाथः न्यतिगर्वं गुरुदुःखम् ।<sup>१</sup>

यदि लवंगी की घटना सत्य है तो उस समय 'मनोरमाकुवमर्दन' तथा 'शब्द कौस्तुभ -शानोभेजना' जैसी गम्भीर व्याकरण सम्बन्धी रचना कवि के लिए दुष्कर होगी ।

उनकी अतिशय प्रतिभा के विषय में तो कोई किसी प्रकार सन्देह कर ही नहीं सकता है । उस गंगाधर में विभिन्न आचार्यों के मतों को काट कर जिस विद्वता से अपने मत को स्थिर किया है वह प्रशंसनीय है । उन्हें अपनी पांडित्य पर गर्व भी था --

'अपक्वकल्लौकनि स्तारविस्तारित्महोष्कारपरम्पराधनिमानसैम  
प्रतिदिन्मुषनवयहुकायमथा लोकधानेकविषाविषातितान्तः करणैः कविभिरुपात्य-  
मानेन... कुतितुणजालमाच्छादित वैदवनमार्गं विलोकनाय सुदोषितसत्कंदहन-  
ज्वाला जालेन ... पण्डितजान्नाथे<sup>२</sup> ।

१- सं०सा०का इति०--पं० बलदेव उपाध्याय पृष्ठ ३१७

२- पं० का०सं० --डा० आर्येन्द्र झा, आर्यकवितास पृष्ठ ८५

रसगंगाधर में की हुई अपनी इस प्रतिभा की इस रचना में जितने भी उदाहरण होंगे वे स्वतः निर्मित होंगे—सूक्तिक से विभाया है ।

इनकी विद्वान्ता ही हो जाकृष्ट होकर शाहजहाँ ने उन्हें 'पण्डितराज' एवं 'राय' पदवी से विभूषित किया था -- "दोस्तार्वर्षामवाहि जहानप्रसादाधि-गतपण्डितराय पदवीविराजितेन तैलंगकुलावर्ततेन ? ।"

इस कवि के चार आश्रयदाता थे -- जहाँगीर (१६०५-१६२७ ई०), शाहजहाँ (१६२७-१६५८), आनकसाँ (१६५१ ई० में मरा), उदयपुर के जगत्सिंह (१६२७-१६५६ ई०) और कामपुर के (साम्ब के) राजा प्राणनारायण (१६३३-६६) थे । शाहजहाँ का समय ग्रहण करने के पहले कवि ने जगत्सिंह का आश्रय लिया था जो: वहाँ 'जगदाभरण' नामक काव्य का रचना की, शाहजहाँ के दरबार में 'आनकविलास', 'रसगंगाधर' और 'चिन्मोमांसा' का रचना की, प्राणनारायण का आश्रय लेकर 'प्राणाभरण' नामक काव्य का रचना की ।

आनकविलास में शाहजहाँ और उसके कनौड़ आनकसाँ का वर्णन है । पौ०वी० काण० तथा सस०सन० दास गुप्त इस रचना की आनकसाँ की मृत्यु पर लिखी हुई बताते हैं ।

यह गद्य-कृति है । इस कृति को रचकर वह गद्य-रचना के क्षेत्र में नवानता ले जाते हैं ।

इनका 'यमुना वर्णन' की गद्य-काव्य बताया गया है किन्तु यह अभी प्राप्य नहीं है । इसके कतिपय अंश ही रसगंगाधर में उपलब्ध होते हैं ।

इन रचनाओं के अतिरिक्त इनकी रचना में यमुना वर्णन चम्पू, रत्नमन्थ नाटक, कुसुमती-परिणय नाटक, पियूष-लहरी, अमृत लहरी,

१- रसगंगाधर--बन्धिका टीका, बालम्भा० पृष्ठ ६

२- पं०का०सं० डा० जायें-दस्तावेज आनकविलास पृष्ठ ८५

३- " " " " पृष्ठ ४

४- हि० आफ सं० लिट०--सस०सन०दास गुप्त और सस०के० के पृष्ठ ५६६



गुभा लहरी, करुणा लहरी, लक्ष्मीलहरी, मामिनीविलास (जिसे अन्दर चार विलास हैं -- प्रास्ताविक विलास, शृंगारविलास, करुणविलास और शान्त विलास), अश्ववाटीकाव्य, (काश्माला नामक मुंबई की मानिक पुस्तक में बताया गया है) अमुनावर्णन चम्पू, रत्नान्मथ नाटक तथा वसुमती परिणय नाटक काव्य ग्रन्थ अभी अप्राप्य हैं ।

इनके आश्रयदाताओं का समय १७ वीं शताब्दी है अतः इनका भी समय अठहवीं शताब्दी माना जायगा । जयचन्द्र शर्मा का कथन है कि जगन्नाथ ने कुछ वर्ष आगरा के जहांगीर के यहाँ व्यतात किए । उसी मृत्यु के पश्चात् वे उदयपुर के राजा जगत्सिंह के यहाँ चले गए और वहाँ उनके गुण गाए । जब आगरा को लालच टोक ली गई और शाहजहाँ राजा हुआ तो उनसे वापस आ गए और उनको मृत्यु फरमान वहाँ रहे । १६५८ ई० के लालच प्राणनारायण के दरबार में गए । प्राणनारायण के भूटान भाग जाने पर जगन्नाथ को वहाँ का भी दरबार छोड़ना पड़ा ।

इन सब जाधारों पर डा० जयचन्द्र शर्मा अपना समय १५६०-१६७० तक बताते हैं ।

इतिहास में शाहजहाँ का समय निश्चित होने के कारण इनके अठहवीं शताब्दी के होने में किन्हीं प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है ।

१- मामिनीविलास --सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ १३

२- सं० का० सं० डा० जयचन्द्र शर्मा पृष्ठ ६-१०

३- ,, ,, ,, पृष्ठ १०

द्वितीय- भाग

प्रथम अध्याय

उत्तरकालीन गद्य-काव्यों में कलावस्तु का स्वरूप

## उत्तरकालीन गद्य-काव्यों में कथावस्तु का स्वरूप

प्राचीन गद्य-काव्य का कथावस्तु या तो ऐतिहासिक होता था या काल्पनिक होता था। उसमें शृंगार-रस को प्रधानता होती थी, नायक उच्च हुडकीन या राजवंशी होता था, नायिका भी ऐसी ही होती थी। अर्थात् प्राचीन गद्य-काव्यों में कोई इस प्रकार के नियम का गलन करना आवश्यक न था। तिलकमंजरी, गद्य-चिन्तामणि, कैमभूपालखरित, रामकथा और आशाकिलास नामक गद्य-काव्यों ~~में~~ <sup>के</sup> नायक यद्यपि राजवंशी हैं किन्तु तिलकमंजरी, कैमभूपालखरित तथा रामकथा को छोड़कर उनकी नायिका स्वे वंश से सम्बन्धित नहीं हैं। गद्य-चिन्तामणि में कवि ने नायक के आठ विवाह कराए हैं उनमें से कुछ बन्ध्याएं राजाओं की, कुछ गौप की और कुछ वैश्य की हैं। मौज को 'शृंगारमंजरी कथा' की नायिका बताया है। 'आशाकिलास' में कोई नायिका है ही नहीं। अतः कवि के इस दृष्टिकोण के बदलने से इन गद्य-कवियों के काव्यों को कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर आ गया।

प्राचीन गद्य-काव्यों में किसी धर्म के प्रति विशेष पक्षपात नहीं दिखायी देता है किन्तु 'तिलकमंजरी' तथा 'गद्यचिन्तामणि' में सर्वत्र जैन धर्म को श्रेष्ठ परिचित कराया जाता है। संसार को निःआरता, दुःख-दुःख, ज्ञान-ज्ञान, त्रिरत्न, तपस्याओं की निन्दा आदि का सविस्तर ~~में~~ <sup>में</sup> विवेचन इन दोनों काव्यों में मिलेगा। इस प्रकार इन दोनों गद्य-काव्यों ~~में~~ <sup>में</sup> अपने धर्म की प्रशंसा का है।

'तिलकमंजरी' में जैन धर्म की विशिष्ट बातें होती हुए भी यह बाण की कादम्बरी के अधिक समीप है। इनकी कहानियां विषाधरों से सम्बन्धित हैं।

'गद्यचिन्तामणि' केवल कौली की दृष्टि से बाण से ऊपरता रखती है। उसमें एक-दो कहानियां ही विषाधर से सम्बन्धित हैं।

'कैमभूपाल' <sup>की</sup> रचना वामनभट्ट बाण ने कवि बाण के बढ़ते हुए यह को कम करने के लिए की थी। उन्होंने जज्ञि को बाण का अवतार माना है। अतः कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग यदि बाण से काफी मिलता है

तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इन्होंने इसमें राजा प्रोल्ल और अनन्ता की कथानों तथा उनसे उत्पन्न हुए कैम-वंश का वर्णन दिया है । कैमभूप को नायक बनाकर उसकी दिग्विजय का वर्णन किया है जो क्लासिक है ।

शृंगार-रस की दृष्टि से बाण तथा इनमें पर्याप्त अन्तर ही गया है । बाण ने नायक-नायिका (चन्द्रापोड और कादम्बरी) तथा उपनायक-उपनायिका (पुण्डरीक और महादेवता)दोनों के ही प्रेम का वर्णन किया है किन्तु वामन भट्ट बाण ने केवल उपनायक और उपनायिका के बीच ही प्रेम व्यापारों का चित्रण किया है जब कि नायक की वीरता और तेजस्विता का वर्णन करके वीर-रस का ही चित्रण किया है ।

बाण की 'शृंगारमंजरी कथा' का मन्त्रा किञ्चुल ही भिन्न है । उस काव्य में वैश्या-वृत्ति का राजाव चित्र साँकर सामाजिक स्थिति पर विशेष प्रकाश डाला गया है । यद्यपि 'दशकुमार चरित' में भी शृंगारमंजरी और काममंजरी नामक दो वैश्याओं, उनकी मां का वर्णन एवं उन सब की कुटिल चालों का विशद वर्णन किया गया है किन्तु 'दशकुमारचरित' तथा 'शृंगारमंजरी' दोनों की कथावस्तु उद्देश्य-भिन्न होने से पृथक्-पृथक् ही जाती हैं । 'दशकुमार-चरित' में रामो राजकुमार अपनी आप बीती सुनाते हैं, उसमें से एक राजकुमार वैश्याओं की चालों तथा अपने द्वारा ठीक मार्ग पर ले जाने के उपायों का वर्णन करता है । इसी सिलसिले में कुछ घुर्तों, घुर्तानों, इतियाँ तथा कुट्टिनियों का भी उल्लेख है । इस प्रकार वहाँ वर्णन अंग हम में आया है । 'शृंगारमंजरी कथा' में इस वर्णन को प्रमुख स्थान दिया गया है । उसमें उन्हीं का सविस्तर और रोचक वर्णन किया गया है ।

'जासकविलास' बाण के 'हर्षचरित' की भाँति अपने जासकदाता जासकलाँ की प्रशंसा में लिखा हुआ काव्य है । इसमें कथावस्तु सम्बन्धी पुरानी मान्यताओं--नायक के जन्म में देवी-कृपा, शिक्षा, दिग्विजय यात्रा, यात्रा के बीच किसी वन में पहुँचकर कन्या को देखना और उस पर आसक्त होना, विरहावस्था आदि का वर्णन तथा सूर्यास्त, सूर्योदय आदि का वर्णन करना -- को स्थान नहीं दिया गया है । आश्चर्य की बात है कि मुगल राजाओं का युग विरोध का युग था किन्तु कवि ने अपने काव्य में कोई भी

नायिका नहीं रजनी और उसमें कवि ने झुंगार-रस का प्रमुख ध्यान देना पसन्द नहीं किया ।

<sup>कथा</sup> 'रामचरित' की कथावस्तु रामायण से ली गयी है । <sup>कथा</sup> 'रामचरित' की कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग आकर्षक नहीं है । कहीं-कहीं पर काव्य प्रतिभा का परिचय होता है । अब तब उसमें कवि ने कथावस्तु में परिवर्तन भी किया है ।

काव्यनिक कथाओं का ऐतिहासिक रूप देकर विक्रित करने का प्रवृत्ति उन कवियों को अपनी थी । 'तिलकमंजरी' की कथा बिल्कुल काव्यनिक है किन्तु उसमें मेघवाहन जयोध्या का राजा बताया गया है जिसका पुत्र हरिवाहन हुआ, सिंहलोचन की रंगशाजा नामक नगरी के राजा बन्द्रकेतु का पुत्र अरकेतु बताया गया है और कांबी नरेश कुमुदशेखर का पुत्रो मलयशुन्दरी बताया गई है । इसमें जयोध्या-नरेश और कांबी नरेश के युद्ध का भी वर्णन है । 'गद्य चिन्तामणि' में हैमांगद नामक जनपद (जम्बूद्वीप के दक्षिण में) की राजधानी राजपुरी का राजा मत्स्यधर था जिसका पुत्र जौधर हुआ । 'झुंगारमंजरी कथा' का नायक स्वयं मौज है जो सब कहानी विषमशाला के मुँह से कल्लाता है ।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ गद्य-काव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक, काव्यनिक तथा विविध धर्मों, वैश्याओं तथा रामायण से सम्बन्धित हैं ।

### झुंगार मंजरी <sup>कथा</sup> की कथावस्तु

'झुंगारमंजरी कथा' नामक गद्य-काव्य को कथावस्तु सब गद्य-काव्यों की कथावस्तु से भिन्न है । उसमें वैश्याओं के चरित्र का विस्तार वर्णन है । उसकी नायिका भी वैश्याओं में अग्रणी विषमशाला का पुत्रो झुंगारमंजरी है । उनको माँ अपनी वृत्ति के अनुसार उसे शिक्षा देती है । पुरुषों का व्यवहृत्य कितने प्रकार का होता है ? उनसे कैसे सावधान रहना चाहिए ? राग (प्रेम) कितने प्रकार का होता है ? यह पुरुषों की मनोवृत्ति समझने में किस प्रकार सहायक होता है ? आदि की कहानी द्वारा आकर्षक बनाकर उनको विशद

व्याख्या की है। कतः उस काव्य की झोंटी-झोंटी भी कहानियाँ में प्रेम को बर्बाद है।

रविदत्त की कथा में कुण्डिनपुर नगर निवासी रविदत्त पिता के द्वारा काम विकारों से सावधान किये जाने पर भी विनयवती नामक बच्चा पर मोहित हो जाता है किन्तु अवार नहीं होता। विनयवती को सखी संगामिका उसके प्रेम के प्रस्ताव को रविदत्त के अनुमूल रखती है और रविदत्त पहले अपने पिता की शिक्षाओं का उमरण करता है किन्तु अन्त में उसे तर्क स्वीकार कर लेता है। बच्चा होने के कारण विनयवती कृत्रिम प्रेम किया कर उसके सारे धन का अहरण कर लेती है और अन्त में उसका तिरस्कार करने लगती है किन्तु रविदत्त के ऊपर कुछ भी अवार नहीं होता है।<sup>१</sup>

विष्णुसिंह की कथा में तामलिषि नगर का विष्णुसिंह नामक राजपुत्र वहाँ की निवासिनी दंष्ट्रा नामक बच्चा को पुत्री मालतिका पर मोहित होता है और उसके पास अपना प्रेम-प्रस्ताव प्रकट करने के लिए अनुबर की भेजता है। अनुबर से यह मालूम हो जाने पर भी कि उसे मालतिका से मिलने के लिए कुछ दिन प्रतीक्षा करना पड़ेगी, वह प्रतीक्षा करता है। मालतिका भी उसके द्वारा धन लूट कर तिरस्कार करती है किन्तु वह निरन्तर उसके पास जाता रहता है।<sup>२</sup>

माधव की कथा में सिंहलद्वीप का माधव नामक व्यापारी विदिशा में जा कर मुजंग वायुरा नामक बच्चा की पुत्री कुवल्यावली पर आसक्त होता है और उसके यहाँ जाने लगता है। अपना सारा धन लुटता हुआ देखकर वह वहाँ से जाने की सौमता है। कुवल्यावली उसके विप्रयोग की अहम्यता बताकर

१- प्रथमकथानिका

२- द्वितीय कथानिका

उसके सम्मुख रौने का अभिनय करती है किन्तु उससे माधव विचलित नहीं होता है । अन्त में उसे कुछ दूर शोऽने के लिए भुजंगवागुरा तथा कुवल्यावला दोनों जाती है । भुजंगवागुरा माधव से स्मृति-विह्वन के रूप में उसका परिधान मांगता है । माधव उसकी स्कान्त स्थल में देने का आश्वासन देकर उस स्थल पर ले जाकर उसकी नाक, कान काट देता है<sup>१</sup> ।

सूर धर्म की कथा में हस्तिग्राम नामक बस्ती का निवासी सूरधर्म नामक ब्राह्मण अपनी दरिद्रता से ऊब कर समुद्र की उपासना करके उसने दिव्य-रत्न प्राप्त करता है, । उस दिव्य-रत्न की अपनी बांध में रख कर पागल का आ अभिनय करने लगता है । वहाँ की बैया देवदत्ता उसके भाव को समझ जाती है और प्रेम-पाश में बांधने का प्रयत्न करती है । सूरधर्म वहाँ भी पागल बना रहता है । कुछ दिनों बाद देवदत्ता उसे घर जाने की अनुमति देकर उसे फाँसने के लिए कपट-मृत्यु को बाल बलती है, जिसमें देवदत्ता की मृत्यु का कारण सूरधर्म को बताया जाता है । जब वह सूचना मार्ग में जाते हुए सूरधर्म की देवदत्ता की गलियों से मिलती है तो वह देवदत्ता के शोक से व्याकुल होकर तुरन्त लौट पड़ता है और अपना दिव्य रत्न मृत (जो वास्तव में मरी नहीं है) देवदत्ता के माता-पिता को बाँप देता है । दिव्य रत्न पाते ही वह उठ बैठता है । कुछ दिन उसके साथ रह कर <sup>वह</sup> उसने उसे निकाल <sup>देती है</sup> दिया<sup>२</sup> ।

लावण्यसुन्दरी कथा में अहिच्छत्र नामक नगर का राजा वज्रमुकुट लावण्यसुन्दरी के सर्दारों पर गुग्गु होकर उसके पति तैलिक घुडाक को परेशान करने के लिए बहुत बड़ा दण्ड देता है । पति को उस दण्ड से मुक्त करने के लिए लावण्यसुन्दरी बैया-वृत्ति अपना कर उसकी के राजा विजयसिंह पर अपना प्रेम-पाश फँकती है । राजा उस पर मोहित हो जाता है । उसका मंत्री कुछ भट्टमाकुप्य उसे उस प्रेम-बाल में न फँसने के लिए आवधान करता है और राजा स्वयं उसकी कथमानुसार लावण्यसुन्दरी को कई प्रकार से प्रेम-परीक्षा लेता है । लावण्य-सुन्दरी प्रेम-परीक्षाओं से ऊब कर आत्महत्या

१- तृतीय कथानिका

२- चौथी कथा०



कर लेता है। राजा उसके शरीर को वाशापुरा के मंदिर में ले जाकर स्वयं मरने को उक्त होता है किन्तु देवी उसे इस कार्य से रोक कर लावण्यसुन्दरी को माँ जाकिर कर देती है। अन्त में लावण्यसुन्दरी विक्रमसिंह को अत्यधिक प्रसन्न कर कर जमाना तारा रक्षय लौल देती है और उन्ही हाथी आदि लेकर अपने पति को वण्ड-विधान से मुक्त करती है।

दुर्जनोर्वचन की कथा में विन्ध्याटकी पार करते समय मार्ग में मिली कपोतिका को खाने से सोमदा धनवान और मिले कपोत को खाने से उक्ता मार्ग मगध का राजा बन जाता है। सोमदा कांची पहुँचकर मकरदंष्ट्रा को पुत्री कर्पूरिका पर बाधना ही जाता है। उसके अपारधन को देखकर माँ-बेटा उसके मूल श्रोत के पता लगाने का प्रयत्न करती हैं। कर्पूरिका के बहुत अनुरोध करने पर सोमदा उस धन का तारा रक्षय लौल देता है। कर्पूरिका को माँ उसके भोजन में कानोन पदार्थ मिला कर उसके मुँह से निपली कपोतिका को ध्वय ग्रहण कर लेती है और उसको अपने घर से निकाल देती है। अन्त में सोमदा पाहँ का आश्रय लेकर कृत्रिम सिद्धि का बहाना करके कर्पूरिका और उसकी माँ को धोला देकर अपनी लोई तथा उन दोनों के द्वारा स्वर्गित को हुई धन-राशि को पाकर उन्हें स्मृति वण्ड देता है।

च्यनुराग की कथा में पुण्ड्रवर्द्धन नामक नगर का निवासी रत्नदा नामक व्यापारी मानसैट के राजा की सेवा में करने को इच्छा से अपने अनुचर के साथ चल देता है। उसके विदिशा नगरी में पहुँचने पर वहाँ का वैश्या लावण्यसुन्दरी उनके साँदर्य पर मुग्ध हो जाती है और अपनी सखी कुलिशा को भेजकर उसे अपने पास बुलाती है और वैश्या-वृत्ति के प्रतिकूल अन्धे श्रेम का परिचय देती है। वह रत्नदा के साथ आने भी जाती है। इन दोनों का अनुसरण लावण्यसुन्दरी की माँ 'ढोण्डा' भी करती है। किन्तु 'पूर्णपक्के'

१- इठी कथा०

२- सातवीं कथा०

नामक नगर के राजा चूरकर्म के पास जा कर रत्नदास पर कन्या के भ्रातृ जाने का झूठा आरोप लगाता है । राजा अपने मन्त्री आदि को भेज कर तथा स्वयं उस स्थल में जाकर घटना को सत्यता देखता है (इसके बाद कुछ अंश अनुपलब्ध है जिससे क्या अवरोध हो गया है) (मानसरेट पहुंचकर) रत्नदास को कुछ दिनों के लिए लावण्यसुन्दरी को छोड़कर जाना पड़ता है । लौट कर जाने पर वह लावण्यसुन्दरी को अत्यधिक प्यो देखकर उसे पत्नी रूप में नहीं स्वीकार करता अपितु उसे मां के रूप में देखता है<sup>१</sup> ।

उममानुराग की कथा में अशोकवती और हृदयक के मन्त्रे प्रेम की तीक्ष्ण के लिए उरगपुर का राजा समरनिह अपने प्रिय मित्र सुन्दरक को अहायता से बाल बध्ना है । सुन्दरक अशोकवती के साथ रात में रहकर उसके चरित्र को कथंकित करता है । हृदयक भी उसके चरित्र को कुछ दिखाने के लिए अपने मरने की झूठी <sup>सूचना</sup> ~~सूचना~~ अशोकवती के पास भेजता है जिसकी सुनकर वह मर जाती है । इस पर सुन्दरक अपने कर्मी पर महानाप करता हुआ आत्महत्या कर लेता है । अशोकवती को मृत देखकर हृदयक भी मर जाता है । राजा भी अत्यन्त दुःखी होकर प्राण त्यागने की उधत होता है किन्तु देवी प्रकट होकर उसे रोकती है और मृतकों को जिवित कर देती है<sup>२</sup> ।

सर्प की कथा में कौशाब्धी नगरी का विनयधर जन्गवती नामक कन्या पर मोहित होता है । सब धन के सर्व हो जाने पर कुटुनी उसका तिरस्कार करना शुरू कर देती है । इसका परिणाम यह होता है कि वह रुपया उधार लेकर तथा मृत सर्प को लेकर जन्गवती के यहाँ पहुंचता है । रात के समय मृत-सांप को कुटुनी के ऊपर बाल कर नासून से उसकी नाक काट देता है जिससे सांप का काटा हुआ ली । कुटुनी के बित्तलाने पर तथा रौझनी के करने पर वहाँ सांप दिलायी देता है । उसे <sup>बीच</sup> विनयधर भी उस स्थल पर

१- आठवीं कथानिका

२- नवमी कथानिका

पहुँचता है और विषण न फैलने की भूमिका रख कर उसकी जोड़ सहित नाक काट देता है ।<sup>१</sup>

मलय सुन्दरी की कथा में पाँचाल देश के राजा महेन्द्रपाल का प्रिय सामन्त प्रतापसिंह डोण्डा नामक कुटुम्ब की पुत्री मलयसुन्दरी से अनन्य प्रेम करता है । मलय सुन्दरी के द्वारा परिहास में यह कहने पर कि यह बालक उगा है-- रुष्ट होकर महेन्द्रपाल उसकी बुरी तरह से पीटता है । मलयसुन्दरी की माँ के द्वारा राजा से कितनी बिराद्री जानने पर प्रतापसिंह निर्भीक होकर मलयसुन्दरी के पीटने का कारण बता देता है<sup>२</sup> ।

इन कहानियों के विपरीत देवदत्ता और मूलदेव की कथाओं में प्रेम-व्यापार का विषय नहीं है ।

देवदत्ता की कथा में उसके द्वारा जो गहरे उज्जैन के राजा विश्रमादित्य की चाटुकारिता से प्रान्न होकर उसका देवदत्ता को अपार धन-राशि देना वर्णित है और मूलदेव की कथा में स्त्रियों के प्रति कुविचार रखने पर भी धूर्त मूलदेव अन्ति के राजा विश्रमसिंह के अतुरोध करने से विवाह कर लेता है । किन्तु कुछ समय पश्चात् मूलदेव की स्त्री-विषयक कुविचार यथार्थ सिद्ध होते हैं । क्योंकि वह जाना पत्नी को दूसरे के साथ और राजा को महिषी को महाव्रत के साथ देखता है । इन दोनों की सुचना वह राजा को देता है और राजा उन दोनों को मरुचित दण्ड देता है ।<sup>३</sup>

भमारक की कथा में बहुत से अंश अनुपलब्ध होने के कारण उसकी कथा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है ।<sup>४</sup>

इन कहानियों का उद्देश्य कवि ने स्वयं ही अपने काव्य के अन्त में स्पष्ट कर दिया है जिसमें बताया गया है कि विष्णुशैल्य अपनी पुत्री शृंगारसुन्दरी को कहानियों द्वारा उच्छलित उपदेश दे रही है कि वह किसी प्रकार

- १- दसवीं कथनिका
- २- न्यारहवीं कथनिका
- ३- पाचवीं कथनिका
- ४- तीरहवीं कथनिका
- ५- बारहवीं कथनिका

विटो, कुतों, कान्धों, कद्यों, मुजों, रागिया एवं विदग्धों ने किसी प्रकार से धोखा न खाए ।

यद्यपि कवि ने अपने इस काव्य में 'राग' को चर्चा की है, आरम्भ में उन्होंने बारह प्रकार के --१- नौलरीराग, २- रीतिराग, ३-अक्षोवराग, ४- मंजिष्टराग, ५- कषायराग, ६- नकलराग, ७- कुसुम्भराग, ८-लाक्षारराग, ९- कर्दमराग, १०- हरिद्राराग, ११- रौचनाराग और १२- काम्पिल्य राग काटार हैं तथा उनके चार वर्ग --

(१)नौलरीराग वर्ग(रीति और अक्षोवराग इसी में)

(२)मंजिष्टवर्ग (कषाय और नकल राग इसी में)

(३)कुसुम्भराग वर्ग(लाक्षारराग और कर्दम राग इसी में)

(४)हरिद्राराग वर्ग (रौचनाराग और काम्पिल्यराग इसी में)

किए हैं और उपर्युक्त सभी कहानियों को इन रागों से सम्बन्धित किया है, इन रागों के अतिरिक्त मूलदेव की कथा में श्रुतिराग, इष्टिराग, और स्योम-अन्य-राग को चर्चा की है, और वह स्वयं शृंगार-रस को सब कुछ मानते हैं, किन्तु इस काव्य में बहुदय इस रस का आस्वादन नहीं ले पाता है । इस काव्य में वह कवि का दोष नहीं कहा जा सकता है क्योंकि कवि ने यहाँ वैश्याओं का प्रेम दिखाया है जो सर्वदा एक निष्ठ होता है । एकाध कहानियों में यद्यपि उनका सच्चा प्रेम दिखाया है किन्तु किसी-न-किसी कारणवश उनका स्थिर न रह सकना भी कवि ने दिखा दिया है ।

इस काव्य में मुख्यरूप से वैश्याओं के तीन रूप मिलते हैं --

१-धनादय का अपहरण करके उन्हें निकालना,

२-वैश्याओं का स्वयं धोखा खाना, और

३- वैश्याओं का सच्चा प्रेम ।

इस प्रकार इस काव्य में वैश्याओं के जीवन-वृत्ति को ही प्रधानता है ।

१-	शृंगारसंज्ञरीकथा	पृष्ठ ८६
२-	॥	पृष्ठ १८-१९
३-	॥	पृष्ठ ८४

अपनी कथावस्तु को देखते से प्रतीत होता है कि कवि भीज अपने पूर्ववर्ती कवि सुबन्धु एवं बाण से प्रभावित न हो कर कवि दण्डो से है । दण्डो के 'कशुमारचरितर' में श्री कशुमारों का चरित्र वर्णित है वही हा उस काल में वैश्याओं का चरित्र वर्णित है । किन्तु भीज ने अपने काव्य के शीर्षक का नाम 'वैश्या-चरित' जगत्ता 'क्यादशयेश्या-चरित' आदि न देकर 'शृंगारमंजरी'के<sup>१</sup>नाम ही दिया है । क्योंकि कवि ने <sup>शृंगार मंजरी की</sup> ~~इसके~~ अपने काव्य को नायिका माना है, <sup>इसके</sup> अन्तर्गत आये हुए सारी कथानियां उनके को सुनाई गई हैं । अतः कवि ने अपने काव्य के शीर्षक का नाम नायिका के नाम के आधार पर रखा है ।

कथावस्तु के प्रस्तुत करने के ढंग में तथा शैली में भीज अवश्य बाण से प्रभावित है । लक्षचरित में जिस प्रकार बन्धुओं के अतुरोध से बाण ने उस काव्य को रचा है उसी प्रकार राजा भीज ने मंत्रियों के अतुरोध से 'शृंगारमंजरी कथा' नामक गण-काव्य को रचना की है । अपनी धारा नगरी के वर्णन में उन्होंने विशेष रुचि दिखायी है किन्तु जब वहाँ के राजा के वर्णन (भीजराम) का प्रसंग आया तो राजा ने उसका स्वयं वर्णन न करके यन्त्र-पुत्रिका के मुख से करवाया है, यद्यपि काव्य में लिखा उन्होंने ही है । वर्ण्य विषयों के वर्णन करने की विधि सुबन्धु और बाण जैसे प्राचीन गण-कवियों की भांति है । उदाहरणार्थ राजा भीज के वर्णन में जाघान राजाओं के फुलने एवं शत्रुओं को रिक्तियों के विनाश करने की कल्पना इस काव्य में भी देखने को मिलती है <sup>१</sup> ।

बाण की तरह उन्होंने भी विन्ध्याटकी के लाम्ब्य और भयावह दोनों अर्षों का वर्णन किया है <sup>२</sup> । यह दूसरी बात है कि बाण के वर्णन-प्रसंग में अविलष्ट श्लिष्टोपमा होने के कारण अज्ञानजन्य शैली होते हुए भी दुरुहता नहीं आयी है किन्तु भीज का यह वर्णन श्लिष्ट ही गया है ।

बाण के इन्द्रायुध तथा सुबन्धु के मनोजव घोड़े की भांति उन्होंने भी <sup>३</sup> अश्व का वर्णन किया है किन्तु यह वर्णन न कवि की सुदमदृष्टि का

१- शृंगार० पृष्ठ ७-८

२- ,, पृष्ठ ५०-५२

३- ,, पृष्ठ ३७

परिभाषक है और न आक्षेपक है । बाद में एक नाम ही वाण श्लोच्य होने से उनके वर्णन-वर्णन में विस्पष्टता आ गयी है ।

मौज का 'रविदत्त' नामक हाथी का वर्णन अथवा बाण के 'दर्पशात' हाथी के वर्णन के साथ कल्पना की दृष्टि से भी समता रहता है । कवि ने उनके प्रत्येक अक्षय को लेकर अपनी सुख दृष्टि का परिचय दिया है ।

बाण ने शबरसेनापति का अधिकतर वर्णन किया है और मौज ने विन्नाटाटी के प्रसंग में गदिय में किन्तु उनकी व्यापारिक आधुति का अभाव विवक्षित किया है ।

'रविदत्त कथाविका' में बाण की भाँति उन्होंने भा जीवत की प्रभुत विन्दा की है किन्तु विस्तार के साथ नहीं ।

प्राचीन कविगर्वा का प्रशंसा करने की परिपाटी का उन्होंने भी अनुकरण किया है किन्तु उसकी प्रस्तुत करने का ढंग नवीन है । अपनी हा राजधानी के वर्णन-प्रसंग में राजा मौज की शीघ्र होता है तो उनके मिन उस सम्बन्ध में दण्डी के मत -- स्वगुणाविच्छिन्न दोषो नात्र भूताःशंसिनः को उद्धृत करते हैं, साथ ही अपनी प्रशंसा करने वाले आत्मोक्ति, पराशर, व्यास गुणादय, भास, भवभूति, बाण आदि कविगर्वा का नाम आदर के साथ लेते हैं --

तथाहि मुनिभिरपि वात्सीकि-पराशर-व्यासादिभि,  
कविभिरपि गुणादय-भास-भवभूति-बाणप्रभृतिभिरात्मागुणा-  
विष्करणमक्रियते ।<sup>४</sup>

उनके अतिरिक्त कवि ने इन कविगर्वा की प्रशंसा स्वतंत्र रूप से भी की है --

'देवीऽप्यसिद्धमता सुबन्धुः शोभासौ गुणादयः  
प्रशस्तगीर्वाणः ।'<sup>५</sup>

१- आार० पृष्ठ ४६-४७

२- ,, पृष्ठ ५२-५३

३- ,, पृष्ठ २६

४- ,, पृष्ठ १

५- ,, पृष्ठ १

इस नवीनता के अतिरिक्त कथावस्तु के प्रस्तुत करने की पूर्वभूमिका में भी पूर्ववर्ती कवियों से भिन्नता होने के कारण नवीनता आ गई है। और गण-कवियों में ईश्ट-देवाराधना, काव्य का उपासिका देवी सरस्वती की अभिवन्दना, हाथु दुष्टों के चरित्रों का विवेचना आदि का वर्णन पद्य-गद्य में सीधे तथा विस्तर के साथ मिलता है, जसमें से किसी का भाव यहाँ वर्णन नहीं है। पद्य ही तो कवि ने किसी भी रूप में ध्यान नहीं दिया है। सीधे नगरों का अविस्तर वर्णन करते राजा का वर्णन किया है और वहाँ का विविध प्रकार का वैशाखों के जोषा से संबंधित कहानियों को कहना शुरू कर दिया है।

इन कहानियों में यद्यपि उपदेश-वृत्ति की प्रधानता है किन्तु ये कहानियाँ पंचतंत्र, छित्तोपदेश आदि की भाँति नहीं हैं, क्योंकि कवि ने कलात्मक वर्णन में अपनी विशेष रुचि दिखायी है।

कवि ने अपनी कथावस्तु में नायिका और उसके भाँ के नर-शिर-वर्णन के अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यों का भी उलंकारिक वर्णन किया है।

### तिलकमंजरी की कथावस्तु--

तिलकमंजरी में कोई एक कथावस्तु नहीं है। इसमें कई कहानियों का सम्मिश्रण है। जिस प्रकार 'बृहत्कथामंजरी' तथा 'कथासरित्सागर' आदि में हथर-उधर की कहानियाँ भिन्न-भिन्न पात्र कहते हैं उसी प्रकार इसमें भी विभिन्न पात्रों द्वारा कही हुई कहानियाँ हैं। मुख्यरूप से इस काव्य में दो कथारं -- हरिवाहन-तिलकमंजरी तथा समरवस्तु-मलयसुन्दरी का है। इन दोनों कथाओं में उनके पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त भी दिया गया है।

हरिवाहन और तिलकमंजरी पूर्वजन्म में क्रमशः ज्वलनप्रभ और प्रियंसुन्दरी थे। ज्वलनप्रभ ने इगोल्या-नरेश मेघवाहन के घर जन्म लिया और उनका नाम हरिवाहन रखा गया तथा प्रियंसुन्दरी ने <sup>रथपुर</sup> चक्रवाल नामक नगर के राजा कन्नौन के यहाँ जन्म लिया और उसका नाम तिलकमंजरी रखा गया।

एक बार हरिवाहन अपने मित्रों के साथ 'कलमण्डपह' में बैठा था वहीं एक विषाधरपुत्र गन्धर्वक ने तिलकमंजरी के चित्र से-अंकित चित्रपट

को लेकर राजकुमार हरिवाहन को दिलाया । राजकुमार चित्राट पर अंकित उस कन्या को अपनाधुरी पर मोहित हो गया । उस चित्र को प्रशंसा करते हुए उसने उस चित्र के साथ पुरुष-रत्न को लम्बी गन्धर्वक को बनाई । गन्धर्वक ने हरिवाहन का ही चित्र उस चित्राट में कन्या के आसप आस दिया जिससे हरिवाहन के हृदय में कन्या के लिए और भी प्रेम बढ़ गया । गन्धर्वक के वहाँ से चले जाने के पश्चात् उनके पुत्रः नागमन की प्रतीति पर हरिवाहन बड़ी उत्कण्ठा से करने लगा ।

एक दिन हरिवाहन वन को बहलाने को उच्छा से कामाय-प्रदेश को और बढ़ा । वहाँ पर एक हाथी को 'चित्रमाय' नामक विवाधर ने हरिवाहन को विवाधर लोक में ले जाने के लिए ही हाथी का पथ धराया (वश में करने के लिए जैसे ही हरिवाहन उस पर बैठे वैसे ही वह उड़ गया । हरिवाहन ने जब उसकी मारने के लिए तलवार निकाली तो उस हाथी ने उसे अक्षुष्टमार नामक दिव्य तरावर में गिरा दिया जो रामपुर बज्वाल की सीमा पर था ।

वहाँ पर पहुँच कर हरिवाहन को सर्वप्रथम भेंट यद्यपि तिलकमंजरी से हुई थी किन्तु हरिवाहन उसे उसके वहाँ से चले जाने के पश्चात् ही सर्व महिमान पाया था और तिलकमंजरी स्वाभाविक लज्जावश हरिवाहन द्वारा मार्ग के सम्बन्ध में पूछे जाने पर भी नहीं बोली । किन्तु उस घटना से यह अवश्य हुआ कि तिलकमंजरी भी हरिवाहन के प्रति आकृष्ट हो गई ।

तिलकमंजरी के चले जाने के पश्चात् हरिवाहन को वहाँ पर तपस्या करती हुई मलयसुन्दरी के साथ धनिष्ठता हो गई । मलयसुन्दरी को सखी तिलकमंजरी थी । उसने मध्यस्थ बनकर हरिवाहन से तिलकमंजरी को मिलाया ।

वहाँ पर कुछ दिन रह कर बन्धु-वर्ग एवं अपने प्रियमित्र स्मरकेतु को देखने की इच्छा से हरिवाहन 'चित्रमाय' के साथ अपनी राजधानी आया वहाँ पर स्मरकेतु को न देखकर उसका ढूँढ़ने के लिए निकला । मार्ग में लक्ष्मी देवी की उपासना करके विवाधर राज्य को प्राप्त कर विजयार्धगिरि का राजा बन गया तत्पश्चात् उसने तिलकमंजरी के साथ <sup>उसे</sup> विवाह कर लिया ।

बाद में उसका प्रिय मित्र स्मरकेतु भी <sup>उसे</sup> मिल गया ।



जिस प्रकार स्मरकेतु इस जन्म में हरिवाहन का मित्र था तथा मलयसुन्दरी तिलकमंजरी को रक्ता थी उन्ही प्रकार पूर्वजन्म में भी ये दोनों क्रमशः सुमालि और प्रियंवदा उन दोनों के मित्र थे । उन दोनों ने क्रमशः सिंहलद्वीप के राजा चन्द्रकेतु और कांची नरेश कुमुदशेखर के यहाँ जन्म लिया । एक बार अयोध्या-नरेश के यहाँ दम्पतीविपत्ति कज्रायुध ने कुमुदशेखर के साथ लड़ाई हेड़ दी । कुमुदशेखर हारने लगा तो अपने मित्र चन्द्रकेतु को सहायता के बुलाया । चन्द्रकेतु ने अपने पुत्र स्मरकेतु को सहायता के भेज दिया । उधर कुमुदशेखर ने तंथि के रूप में अपना कन्या मलयसुन्दरी को कज्रायुध को देना चाहा किन्तु उसको कन्या मन-हा-मन स्मरकेतु को हर रूप में ग्रहण कर चुकी थी । उसके अन्तर्गत प्रेम को देखकर कुमुदशेखर ने इस प्रकार का इरादा छोड़े दिया और उसे 'प्रज्ञान्त वर' नामक आश्रम में भेज दिया । आश्रम में जाने के पहले मलयसुन्दरी को भेंट स्मरकेतु से ही गयी थी क्योंकि वह कुमुदशेखर की सहायता के लिए आ चुका था ।

आश्रम में कुछ दिन व्यतीत करने पर एक दिन कांची के आये भादमी ने स्मरकेतु के साथ छिड़े युद्ध में कांची की हार हुनकर तथा अन्य राजाओं के

१- इन दोनों प्रथम दृष्टिपाल-प्रणय की घटना बड़ी अद्भुत है । विचित्र वीर्य (जो मलयसुन्दरी का नाना है, पर मलयसुन्दरी नहीं जानती है) के मनोरंजनार्थ विधाधर एक रात को अन्य कन्याओं के साथ मलयसुन्दरी को भी ले जाते हैं । मलयसुन्दरी को नृत्य-कला को देखकर तथा उनको आकृति को देखकर विचित्रवीर्य को अपनी कन्या गन्धर्वदा को याद आ जाती है जो नगरविप्लव में ली गई थी । मलयसुन्दरी से उसको मां के सम्बन्ध में पूछ कर अपना सन्देह मिटा लेता है और तपनवेग को मलयसुन्दरी के घुमाने के लिए आदेश देता है । वह उसे अन्य कन्याओं के साथ समुद्र के जिलालय में ले जाता है वहाँ सुबह गर्वत के दुष्ट सामंतों का दलन करने के लिए निकलते हुए स्मरकेतु को नाव पर बैठे हुए देखती है । वहीं से दोनों को एक-दूसरे के लिए प्रेम हो जाता है ।

साथ अमरकेतु की मृत्यु का अनुमान करके उन्ने वात्महत्या करने की इच्छा से  
 किंमाक नामक विषले फल को खा लिया । किन्तु देवशाक्त वह बच गई  
 और ज्वेत छाने पर उन्ने जाने की अदृष्टगार नामक दिव्य सरोवर में पाया ।  
 पुनः मरने की इच्छा से जब वह सरोवर में डूबने को हुई तो उन्ने अमरकेतु के  
 हाथ को लिये चिदटी देता जिसे अमरकेतु ने उन्ने अयोध्या-नरेश के पास  
 कुशलपूर्वक रहने की बात लिखी थी । उस पत्र को पाकर उन्ने मरने का  
 इरादा छोड़ दिया और वहाँ रहकर तपस्विनी का-या जीवन अतीत करने  
 लगी । वहाँ पर हरिवाहन से उसकी भेंट हुई । वहाँ पर उन्ने प्रिय मित्र  
 हरिवाहन को डूढ़ता हुआ अमरकेतु पाया । जिस प्रकार मलयसुन्दरी ने  
 हरिवाहन को तिलकमंजरी से मिलाया था उसी प्रकार हरिवाहन ने मलयसुन्दरी  
 को अमरकेतु से मिलाया । तत्पश्चात् विचित्रवीर्य ने आकर उन दोनों का  
 विवाह करा दिया ।

इस प्रकार काव्य की कथावस्तु और शोषक का दृष्टि से हरिवाहन  
 को नायक तथा उन्ने मित्र अमरकेतु को उपनायक माना जा सकता है । किन्तु  
 अन्य कथाओं की भाँति यह उपनायक न नायक के किसी कार्य में बाधा डालता  
 है और न नायक की प्रेयसी की प्राप्ति में किसी प्रकार सहायक बनता है ।  
 यह अवश्य है कि नायक का मित्र होने के कारण नायक के गायब होने पर  
 वह सब कुछ त्याग कर उसे ढूढ़ने निकलता है और उधर नायक रघुपुर कबाल  
 में तिलकमंजरी को पाकर बन्धुवर्ग को देखने की इच्छा से अपनी नगरी में पहुँच  
 कर अपने मित्र अमरकेतु को नहीं देखता है तो उसे ढूढ़ने निकलता है । ये दोनों  
 कथाएं स्वतंत्रता से विकसित हुई हैं ।

अमरकेतु और मलयसुन्दरी की कहानी के अतिरिक्त काव्य में अन्य  
 कहानियाँ भी आयी हैं ।

१० गान्धर्वक की कथा--

गान्धर्वक नामक विषाधर अपनी माँ विप्रलेखा की आज्ञा से (जो  
 तिलकमंजरी की धात्री थी) तिलकमंजरी का चित्र लेकर हरिवाहन के पास  
 जाता है वहाँ पर उस चित्र के साथ हरिवाहन का चित्र बनाकर जब काँचो  
 की और जाने लगता है तो मार्ग में किंमाक फल को खाने से मृतप्राय मलयसुन्दरी

के प्रति किए गए उसकी सखी जगता घायो के विलाप को सुनकर अपने मित्र  
चित्राया के साथ वहाँ रुक जाता है । चित्राया ने हरिवाहन को तिलकमंजरी  
के पास लाने के लिए यह कर अन्य मलयसुन्दरी को लेकर दिव्य शोभाधि लाने  
के लिए आगे बढ़ता है तो महींदर नामक यदा सेनाधिपति उसे रोक देता है ।  
गन्धर्वक पहले उसी विनती करता है किन्तु जब उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता  
है तो वह वदु शब्द भी कहता है जिससे क्रुद्ध होकर यदा उसे झुक ही जाने का  
श्राव देता है ।

दुक-योनि में भी अन्य परिचार्यों ने उल्लग रहकर गन्धर्वक हरिवाहन  
का उच्चार करता है । मलयसुन्दरी के पास बैठे हरिवाहन की बिट्ठी उसने  
बिछुड़े बन्धु वर्गों के पास ले जाता है और वहाँ से पत्र का उतर लाता है ।  
उसके इस श्राप को मुक्ति 'निशीथ' नामक वस्त्र के जाल से ही जाता है ।

यही गन्धर्वक हरिवाहन को दूढ़ने में तत्पर समरकेतु को हरिवाहन  
के पास ले जाता है ।

### २- चित्राया की कथा--

-----

यह चित्राया गन्धर्वक का मित्र और उनका सहायक है । हरिवाहन  
को तिलकमंजरी के पास पहुंचाने के लिए हाथी का वैश धारण करके हरिवाहन  
को उड़ा ले जाता है । हरिवाहन के तलवार निकालने पर अपनी जीवन-रक्षा  
हेतु उसे गरीवर में पटक देता है ।

यह तिलकमंजरी का सेवक है । पुनः बन्धु-वर्गों को देखने को उच्छा  
होने पर हरिवाहन के साथ यही भेजा जाता है । हरिवाहन के वहाँ से न  
वापस लाने पर वह बड़ी कठिनाई से वापस आता है । तिलकमंजरी के पुनः  
हरिवाहन के लौच करने की आज्ञा मिलने पर जब वह नहीं सफल होता है तो  
वह अपने अन्य अनुचरों को लाता देता है ।

### ३- महींदर की कथा--

-----

यह श्री का सेवक है । श्री ने उसे प्रियंवदा (मलयसुन्दरी) और  
प्रियंशु सुन्दरी (तिलकमंजरी) की रक्षा का भार सौंप रखा था । प्रथम  
दृष्टिपात-प्रणय के समय समुद्र में जब मलयसुन्दरी और समरकेतु आत्महत्या के

करने के उद्योग से बूझते हैं तो क्या उन दोनों को रखा जाता है । किन्तु अकस्मात् उन दोनों के गायब हो जाने से वह दुःख ही जाता है । जब गन्धर्वक को मलयसुन्दरी के साथ देखा है तो वह उसके मार्ग का बाधक बन जाता है और जन्त में उसे छुड़ लाने का श्राव दे देता है ।

#### ४-नाविक तारक की कथा--

यह जात्या वणिज तथा राजा बन्द्रकेतु का प्रिय पात्र है । वह राजा की अनुमति से प्रियदर्शिना के साथ प्रेम-विवाह कर लेता है । यह नाविक-समूह का स्वामी बना दिया जाता है । वह दुष्टों का दमन करने के लिए निरन्तर सुरस्मरकेतु का सच्चा मित्र बन प्रसिद्ध जाता है । उसको समुद्र-यात्रा में निरन्तर साथ रहता है । समुद्रयात्रा के समय मलयसुन्दरी और स्मरकेतु के बीच प्रेम उत्पन्न हो जाने पर तारक ही स्मरकेतु के प्रेम-प्रस्ताव को रजता है और उसे मलयसुन्दरी के सम्मुख फुकवाता है स्मरकेतु के समुद्र में डूबने पर वह भी उसमें डूब जाता है ।

#### ५- गन्धर्वदत्ता की कथा --

गन्धर्वदत्ता की कहानी एक दुःखद कहानी है । उन्का पिता विश्वित्रीयी 'पंचशैल' नामक द्वीप का राजा है । बचपन में उसके मामा उसे अपने पास ले अवश्य गए किन्तु नगर में विप्लव होने के कारण वह अपने बन्धुवर्ग से बिछुड़ कर 'प्रशान्तवैर' नामक जात्र में पहुंचता है वहाँ पर किली कार्य से कांची नरेश कुमुमशेखर जाता है और उसके साथ प्रेम-विवाह कर लेता है । उसी की कन्या मलयसुन्दरी होती है । कुमुमशेखर अपनी कन्या को कप्रायुष की रात्रि के रूप में देना चाहता है पर वह इस विषय में कुछ नहीं कहती । जब कुमुमशेखर इस विचार को छोड़ देता है तब वह अपनी पुत्री को शुभकामना से उसे प्रशान्तवैर नामक जात्र में भेजने की सलाह देता है । जन्त में ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार गन्धर्वदत्ता अपनी पुत्री के विवाह के समय अपने बन्धुवर्ग से मिल जाती है ।

## ६-विद्याधरराज्य-प्राप्ति की कथा--

विद्याधरगिरिशिखर पर विहित गणन बल्लभ नामक नगर का नरवर्ती राजा विक्रमबाहु है । उन्को स्कारक वंराग्य हो जाने के कारण राज्याभिषेक करने के लिए एक वाञ्छित राजकुमार की आवश्यकता होती है । उनके लिए वह तथा उनके पंत्रों हरिवाहन की उत्पन्न समकते हैं । हुंकि उस समय हरिवाहन आते भित्र के विद्यांग में उत्पन्ना दुःखी था अतः उस राज्य के शास्य बुद्धि नामक ज्ञास्य अंगरति के द्वारा भूमी के दाम्पत्य-कलह करवाता है । हरिवाहन जब उसी लड़ाई का कारण सूझता है तो अंगरति बताता है कि उसकी सम्पत्ति उसके बन्धुओं ने लीन ली है और वह तपन्या करना चाहता है पर प्रेक्षी भी उसका अनुसरण करना चाहती है । प्रेक्षी जीवन छोड़े इसके पहले वह जीवन छोड़न चाहता है । उन्का करुण भरी बात सुनकर उसके बदले में हरिवाहन स्वयं तपस्या करने ला जाता है और देवी के प्रकट होने पर अंगरति के लिए विद्याधर-राज्य की प्राप्ति का वरदान मांगता है । देवी अंगरति को लड़ाई का रहस्य लीकर उसी की विद्याधर राज्य दे देती है ।

ये कथारं वापस में इतनी अधिक उलझ गई है कि बीच-बीच में पाठकों को उन्हें स्पष्ट करने के लिए जागे-पीके पुस्तक के पृष्ठ फलटने पड़ते हैं । पाठक को यह उलझन कथा के सौदर्य को दूर कर देती है । कहीं-कहीं बनपाल ने अपनी पुस्तक को वृहताकार रूप देने के लिए कुछ निरर्थक कथाओं का प्रवेश किया है । पाठक चाहता है कि जब जो मुख्य कथा टूट नहीं है वह फिर से प्रारम्भ हो किन्तु वहाँ पाठक की आशा के विपरीत दूसरी ही कथा जा जाती है । ऐसी कथारं कभी भी प्रशंसनीय नहीं होती है ।

यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि ये कथारं आकर्षक नहीं हैं । वस्तुतः वे न केवल आकर्षक ही हैं अपितु सरल भी हैं किन्तु उनका सौन्दर्य आवश्यकता से अधिक कथाओं के एक-दूसरे में प्रवेश करने के कारण ली गया है । एक कहानी चल रही है, उसी के अन्दर दूसरी कहानी शुरू हो जाती है फिर दूसरी कहानी में तीसरी कहानी चलने लगती है । इस प्रकार कहानियों की एक शृंखला बंधती चली जाती है । यही उलझन पाठकों में नीरसता उत्पन्न कर देती

कैसे तो कई कहानियां कादम्बरी में भी आयी हैं किन्तु सब कहानियां स्पष्ट हैं। उन्में तीन जन्मों की कथाएं हैं किन्तु उसकी एक-एक कथा अपने निराले ढंग की एवं आकर्षक है। तिलकर्मजरी में दो जन्म की कथाएँ हैं किन्तु उलफनी हुई हैं।

इस काव्य में इतनी अधिक आश्चर्यजनक घटनाएँ वर्णित हैं कि वह एक जादुगर को पिटारी-जो प्रतीत होती है। हरिवाहन का हाथों से उड़ना, शुक द्वारा हरिवाहन को दुःखता की चिट्ठी उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाना तथा वहाँ से उसका उतर जाना, मलयसुन्दरी का तीसरे समय विधाधर-लोक में पहुंचना तथा उत्तरी रात्रि उसकी अपने ज्ञान-रक्षा में पहुंचना, मलयसुन्दरी के किंपाक फल खाने से मूर्च्छित हो जाने पर अकस्मात् उसका दिव्य सरोवर में पहुंचना, वहाँ पर कलना हुआ स्मरकेतु का हो पत्र मिलना, मलयसुन्दरी जिस वाक्य भवन में अपने को देखती है उसका स्कारक गायक होना, आदि बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ पहले रहस्यमय प्रतीत होती हैं।

इस काव्य में हरिवाहन और तिलकर्मजरी की कथा ही प्रमुख है किन्तु जितनी आकर्षक ढंग से स्मरकेतु और मलयसुन्दरी की कथा वर्णित है, उतनी हरिवाहन की नहीं है। स्मरकेतु और मलयसुन्दरी जब एक-दूसरे को देखते हैं तो कवि ने दोनों की ओर से होने वाली प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया है किन्तु हरिवाहन और तिलकर्मजरी के आजाव मिलने पर कोई विशेष प्रतिक्रियाएँ नहीं वर्णित हुईं। कवि ने दोनों की वियोगावस्था का अवश्य थोड़ा-सा वर्णन कर दिया है। जब हरिवाहन अपने देश छोड़ जाने पर अपने मित्र को नहीं देखता तथा जब वह विधाधर राज्य को प्राप्त के लिए निकलता है तब तिलकर्मजरी की वियोग-दशा का चित्रण हुआ है। हरिवाहन की मनोदशा का वर्णन तब हुआ है जब वैताद्वय पर्वत में पहुंचने के पूर्व अपने ही प्रसाद में चित्रपट में तिलकर्मजरी को देखता है तथा वैताद्वय पर्वत में पहुंच कर तिलकर्मजरी को पहचान लेता है।

कहीं-कहीं कवि ने अपनी कथावस्तु में भावों की अवहेलना भी कर दी है जिससे काव्य में अस्वभाविकता आ गयी है। हरिवाहन अपनी दुःख भरी

क्या तमरकेतु को बताया गया था उसी बीच तमरकेतु और मलयसुन्दरी के बीच की वार्तायें जो उसने मलयसुन्दरी से सुनी या हरिवाहन ने तमरकेतु से कहीं किन्तु उसे सुनकर होने वाली तमरकेतु की प्रतिप्रियायें कुछ भी वर्णित नहीं की गयीं । अब प्रकार को अज्ञानियों के अन्त हो जाने के मद्देनान्त जो तमरकेतु के भाव वर्णित किए गए<sup>१</sup> उन्हें कौं सौन्दर्य नहीं है । ऐसा लगता है कि हरिवाहन उस कथा को तमरकेतु को नहीं सुना रहा है अपितु पाठकों को सुना रहा है ।

इसके अतिरिक्त अस्वाभाविकता के और भी कई स्थल हैं । इनसे कथावस्तु क्षिणित हो गयी है । विनायक मुनि आकाशमार्ग से उतर कर अयोध्या-नरेश मेघवाहन के पास आते हैं किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम है कि वह किस नगरी में लड़े हैं, किससे बात कर रहे हैं और जान में लक्ष्मी स्त्री कौन है ? जब कि वह एक बहुत बड़े योगी थे और उन्होंने पुत्र प्राप्ति की विधि बताई थी । उनका राजा के दुःख का कारण उन्होंने वे इस प्रकार पूछा --

इयमपि च कल्याणी क्षिमिति म्लानदेहा  
यापि तल्लङ्घान्तकल्लङ्घकपिष्टुनिताशुप्रमाज्जना  
सखी विरतेव रोदनादिजाप्ते । त्वचिन्न संपन्नः  
प्रयत्नसंरक्षितस्याथैत्य कस्यचिद्विदित्तौ विनाशः । त्वचिन्न  
जातः केनापि प्रैकनिबन्धेन बन्धुना सह प्रवृत्तादिकारणसुखी  
विप्रलम्भः । त्वचिन्न संभाविता दुर्लभता चिरं हृदि स्थापितस्य  
कस्यचिन्मनोरमस्य । कस्य यदि नातिरहस्यं अघणार्हं  
वास्यद्विधानाम् ? --

-- एक योगीके लिए अस्वाभाविक लगता है क्योंकि उनके लिए सभी वस्तुएं प्रत्यक्ष होती हैं । यदि वे जानते हुए भी अनभिज्ञता दिखाना चाहते थे तो केवल इतना ही पूछना उनके लिए पर्याप्त था कि जाम दौनों का मुस इतना अधिक मालिन क्यों है ? इतना अधिक योगी का रानी के

१- तिलकमंजरी पृष्ठ २७

२- " " पृष्ठ २७

प्रति जानने की उत्सुकता क्लेशात्ता उचित नहीं लगता है । जवानागिकता की तो उस समय पराकाष्ठा ही गई जब यह वीरों विद्याधर मुनि राजा को जन जानने से निवृत्त करके घर में ही राजकुमारों की उपासना की आज्ञा देकर रानी से परिणाम करने ला जाते हैं --

राजपुत्रि, नियतितत्तावदरप्यकामनादेश ते प्रणयोऽप्यनः ।  
नियोजितत्तामिदुष्करे देवताराधनकर्मणि ।  
मा न्म कुप्यन्नेतसि तदग्नाभिरकृत्वा प्रानभुत्वा  
प्रतिवचनमगृहीत्वानुमतिं मत्तभागायाः कृतास्त केतसौ  
नियंत्रणा निवारणा च ।<sup>१</sup>

यह विद्याधर मुनि पुत्र प्राप्ति की सूचना देने जाते हैं । अतः उन विद्याधर ही जाने कहाँ जाना है क्लाने की कोई आवश्यकता न थी और न जाने के लिए आज्ञा माँगने की ।

राजा मेघवाहन केताल के कटने पर अपने शिर को तलवार से काटता है । आधा शिर कटने पर उन्की अन्द्रियां शिथिल ही जाती हैं वह भुत्क्षित ही जाता है उस समय राजा का अरसुन्दरियों के तूपुरों की आवाज सुनना, उस वीर दृष्टि डालना तथा प्रकट हुई से घुलने की सामर्थ्य होना कि वह कौन है, किलासि देवमन्दिर में जायी है -- अस्मभव लगता है । क्योंकि भुत्क्षित अवस्था में ये सब प्रतिक्रियायें नहीं होती हैं ।

इसी प्रकार देवी लक्ष्मी का राजा मेघवाहन के साथ इतना देर तक वातालाप करना तथा मेघवाहन की प्रवृत्ताप्ति की वचनमंगिमा को सुनकर उनका इस प्रकार परिहास करना कि आपकी पिलसो डर लगता है जो आपने इस प्रकार की वचन मंगी अपनायी है केवल आपकी दुष्ट महोदर से सावधान होने की आवश्यकता है , मैं और किली रानी से हयकी चर्चा नहीं इहंगी जादि तथा राजा का यह कहना कि मुझे किली का भय नहीं

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३१  
२-     ,,     पृष्ठ ३३  
३-     ,,     पृष्ठ ५३-५५



आपत्ति

यदि केशी चाहें तो उन्हें भी पुत्र दे, हर्ष को स्मरण नहीं-- यदि उचित नहीं प्रतीत होता और न केशी या राजकार्यों और भोगधिलार्यों के लिए मैनवाहन को उन्मुक्त करना ही उचित लगता है। विशावर मुनि की भांति श्री का भा -- 'अनुजा-नीहि मां गमनाय' तथा जाने कहां जाना है -- बताना अज्ञानमयी है।

परिस्थितियों की ओर भी ध्यान न देने के कारण कथावस्तु में अस्वाभाविकता जा गयी है। तिलकान्वरि शिर पर जाते हुए हरिवाहन ने शोकग्रस्त गन्धर्वक को देखा। उसके शोक का कारण था -- तिलकान्वरी का प्राणत्याग करना। हरिवाहन ने जब उसी शोक का कारण पूछा तो उस समय गन्धर्वक को तिलकान्वरी की तत्कालिक स्थिति की बताना बाह्य का शिस्तु कवि ने गन्धर्वक पात्र के माध्यम से उनके तथा स्मरकेतु और मलयसुन्दरी के पूर्वजन्म के वृत्तान्त का सविस्तर वर्णन करना शुरू कर दिया। यदि कवि ही इस ओर उल्लेख करना ही था तो पहले तिलकान्वरी का हाल बता कर रातौ बल्ले जैसम में यह सब बता दिया जा सकता था।

कहीं-कहीं यह असावधानता चरित्र-चित्रण में बाधक हुई है। क्योंकि हरिवाहन को अयोध्या पहुंचा कर चित्राय जब लौट कर बताता है कि स्मरकेतु के न मिलने पर हरिवाहन उसे ढूढ़ने निकल गया और अभी तक उसका मित्र नहीं मिला तो उस समय मलयसुन्दरी को स्मरकेतु के लिए दुःख होना चाहिए था और उसी शोक के कारण उसे मुर्च्छित होना चाहिए था पर कवि ने उसके मुल से ये वाक्य निकलवाये --

'हा स्मस्तलीकलीकनुमग, हा निरन्तरोपभोगलात्ति, ...

विषमवनवासदुःसप्राप्तितुर्विहितः ... मलयसुन्दरी\*

मौल्यगमद ।

१- तिलक० पृष्ठ ५८-६१

२- ,, पृष्ठ ३६२

जी क्लिबुल ठीक नहीं हैं ।

उन दुर्बलजाओं के होते हुए भी कथाओं को धरन कहा जा सकता है । उनके कथावस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग अन्य गद्य-कथियाँ जैसा है। इन्होंने भी सर्वप्रथम आराध्य-देवों की स्तुति करके काव्य की उपासिका देवी सरस्वती की उपासना की तदनन्तर श्लोकों में गद्य-काव्य का स्वरूप, दुष्टों की निन्दा, पूर्ववर्ती कथियों की प्रशंसा, नाश्वदाता की वंशावली, उसका गुणगान, एवं अपनी वंशावली का परिचय देकर ज्यौध्या के राजा मेघवाहन उसके वैभव, श्री-हाजों, पहिणी का नैर्दय्य वर्णन, पुत्राभाव की निन्दा, उनके लिए किए गए विविध प्रयत्नों का उत्साह के साथ वर्णन किया है । नायक के जन्म में देवी कृपा एवं स्वप्न की भी काव्य में स्थान मिला है । इन्होंने भी पुत्र-जन्म-महोत्सव, बालकहरिवाहन के जन्मप्राशन, कृष्ण सिंहाने, लोगों का अपने पास बुलाकर बिपटाने चलते समय उनकी रक्षा हेतु जन्तःपुर के रोवलों का उनके पीछे-पीछे चलने, घूमने आदि का वर्णन किया है<sup>१</sup> । यह दूसरी बात है कि हमें अधिक आश्चर्य नहीं है ।

हमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि यह कथावस्तु को प्रस्तुत करने में तथा उनके वर्ण्य-विषय को अपनाने में बाण से प्रभावित हैं । किन्तु उन वर्णनों में बाण जैसी उच्च काव्य की प्रतिभा का परिचय नहीं दे सके हैं । कादम्बरी में चन्द्रापीड़ के विधाध्ययन करने के बाद उसके लीटने पर पुरवारियों एवं जन्तःपुर का लघिस्तर वर्णन मिलता है पर तिलकमंजरी में ऐसा नहीं है । हरिवाहन के विधाध्ययन करके जाने पर राजा उसे अपने भवन में ले जाते हैं + कस इतना वर्णित है<sup>२</sup> ।

इन्होंने भी राजा मेघवाहन के भोजन करने का वर्णन किया है । कादम्बरी के राजा शुक्र की मूर्ति मेघवाहन भोजनालय में जाता है, साने के पश्चात् धूप सेंकता है, घुम्रमान करता है, ताम्बूल ग्रहण करता है, हाथ को पुष्पान्वित करता है और कुछ विश्वस्त एवं सुखदुःखी के साथ कलात्मक एवं

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ७८

२- ,, पृष्ठ ७६

विद्यारात्मक कार्यों में समय व्यतीत करता है । ऐसा ही वर्णन राजकुमार हरिवाहन के भोजन करने में भी किया है । पीछे कादम्बरी में चन्द्रापीड त्रिभुवन के लिए राजनी वैभव के साथ चन्द्रापीड वीर पर चढ़ता है वही ही अश्वेतु सुवैद्यवत के दुष्ट सामन्तों का दल करने के लिए 'अस्वत्थम' नामक हाथी पर चढ़ता है । अतः इन दोनों काव्यों में समानता है । क्योंकि यहाँ नगरपालियों का एकत्रित होकर अश्वेतु तथा उसकी सेना को देखने, अश्वेतु का क्रम से नगरसीमा आदि को धार करते हुए खुद को देखने आदि का वर्णन कवि ने बड़े उत्साह के साथ किया है ।

X ~~अस्वत्थम~~ नामक हाथी का वर्णन यद्यपि श्लोक में है किन्तु बाण के 'हर्षचरित' के वर्णित हाथी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है ।

मलयसुन्दरी का, अपनी दशाश्रु का प्रारम्भ करने का उंग्र वही है जो कादम्बरी में महाश्वेता का है । वहाँ चन्द्रापीड महाश्वेता से इस प्रकार के तपस्विनी वेश धारण करने का कारण पूछता है और महाश्वेता के रोने पर उसके कष्ट का कारण समझने लगता है, जब ठाकर उठता हुआ पुछता है तब उद्देश के शान्त होने पर महाश्वेता अपना वृत्तान्त कह शुरु करती है उसी प्रकार तिलकमंजरी में हरिवाहन मलयसुन्दरी से वही तब पूछता तथा करता है और मलयसुन्दरी को सारी प्रतिक्रियायें महाश्वेता की ही भाँति होती हैं ।

जिस प्रकार बाण ने जाबालि ऋषि के आश्रम का पवित्र वर्णन किया है उसी प्रकार धनपाल ने भी 'प्रशान्तवैर' नामक आश्रम का वर्णन किया है । उन्हीं जनवासियों की जीवनियाँ, मुनि-कुमारियों का देवपूजा के लिए फूलों का तोड़ना, उनके द्वारा कलताजों का बालबाल (धाली) (कौल)

- १- तिलकमंजरी पृष्ठ ६६  
२- " पृष्ठ २७८  
३- " पृष्ठ १२४-१२२  
X ~~४- " पृष्ठ १२३~~  
५- " पृष्ठ २५८-५६

ज्ञाना, पितादिहोत्रों (वेदा) में लोक सुन्दर पत्रों से व्यक्तिकाओं का शिक्षना, पशुओं का बिलाना आदि का स्तव्य चित्रण किया गया है।  
 इस प्रकार धनपाठ का वर्णन-विषय बाण के वर्णन-विषय से भिन्न ही गया है। धनपाठ ने इसका वर्णन अत्यन्त शोच के साथ किया है जब कि बाण ने विस्तार के साथ। जो सौन्दर्य बाण के वर्णन में है वह धनपाठ के वर्णन में नहीं है।

इस काव्य में शोक से व्याकुल होकर मलयसुन्दरी के आत्महत्या करने का प्रसंग बार बार आया है --समुद्र में डूबने है, पाण्डु है, किंताक नामक विषैले फल खाने है और सरोवर में डूबने है।<sup>५</sup> इस विषय में धनपाठ सुबन्धु ने प्रभावित है। क्योंकि सुबन्धु ने कन्दर्पकेतु की त्सुद्र में प्राण देने के लिए तत्पर दिलाया है।

अपने काव्य में कवि ने सुबन्धु और बाण की भांति आत्महत्या से रोकने के लिए आकाशवाणी की कल्पना नहीं की है अपितु ब्रह्मपारा नामक सरोवर में डूब कर प्राण देने वाली मलयसुन्दरी को इस कार्य से निवृत्त करने के लिए कवि ने कर्मकेतु के पत्र-प्राप्ति की कल्पना की है। इस सम्बन्ध में कवि की मौलिकता परिलक्षित होती है।

बाण और सुबन्धु के अतिरिक्त धनपाठ कवि कालिदास से प्रभावित है। 'अभिलानशाकुन्तल' में शकुन्तला जिस समय तपोवन से राजा दुष्यन्त के पास जाने जाती है उस समय पशु-पक्षियों की वशा एवं उनकी वेशकर उत्पन्न हुई शकुन्तला की वशा का पीड़ा-रा साम्य मलयसुन्दरी की

१-तिलकमणरी पृष्ठ ३३२

२- " पृष्ठ २६२

३- " पृष्ठ ३०५-६

४- " पृष्ठ ३३५

५- " पृष्ठ ३३६

६- " पृष्ठ ३३६/७

अवस्था के साथ है जब कि उसके पिता उसे वज्रायुध को देना चाहते हैं और वह मृत्यु का निश्चय कर लेती है --

‘ तत्र चाशंभादितपावप्रहारदोहदेष्वशोकशासिषु सेदायं  
निःश्वसन्ती, जट्टकोरकोद्गतिषु सखारेषु विषादमुद्दहन्ती  
... तात रक्ताज्ञोक, लोकान्तरगतापि स्मर्तव्यामि।  
कमलदीर्घिकै, दीर्घकालं क्लेशमनुभावितासि निर्घृणया निदाघमज्जनेषु।  
सौ शिखण्डिड्व, अस्मं गता ते हस्तताल ताण्डुलीडा ।.... इति  
पाषनाणा परिम्रम्येतस्ततोऽस्तगिरिहिरः स्त्रस्वैजसि तिग्मानौ  
स्वनिवासमगमम् ।’

पूर्व कवियों की अनुकृति के अतिरिक्त कवि की मौलिकता भी परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ राजकुल का वर्णन बाण की भांति न उन्होंने विस्तृत किया है और न अंकारों से बोझिल बनाया है। राजाजों के कार्यों, स्वं दानशीलता आदि का वर्णन करके उसे पवित्र स्थान के रूप में वर्णित किया है<sup>१</sup>।

इसी प्रकार पुत्राभाव के वर्णन करने की प्रेरणा यद्यपि कवि को बाण से मिली थी किन्तु उसके वर्णन करने का ढंग काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है<sup>२</sup>।

इसके अतिरिक्त भी काव्य में कवि की मौलिक उद्भावनायें भी मिलेंगी।

### गणचिन्तामणि की कथावस्तु--

धनपाल की मांति जीव्यदेव ने भी अपनी कथावस्तु में जैन धर्म के प्रति विशेष पक्षपात दिखाया है। इस काव्य में जीवधर की कथा वर्णित है। कवि ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि इसको यह कथावस्तु नवीन नहीं है। उन्होंने बताया है कि श्रेणिक राजा के प्रहरी के अनन्तर गणनायक

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३०१-३०२  
२- " " पृष्ठ ६३-६५  
३- " " पृष्ठ २०-२१

सुधर्मा ने उसी क्या को जनाया था<sup>१</sup> । गणचिन्तामणि में वर्णित जीवंधर की कथा इस प्रकार है ।

सम्बुद्धीय के दक्षिण में हेमांगद नामक जनपद की राजधानी राजपुरी का राजा सत्यंधर था । उसकी महिषी का नाम विजया था । यद्यपि वह प्रायः सभी राजाओं को वश में कर चुका था किन्तु कामी होने के कारण शासन की व्यवस्था न रह पाता था । अतः मन्त्रियों के मना करने पर भी उसकी बातों को न मान कर उसने अपना राज्य काष्ठांगार को दे दिया और स्वयं विविध भोगों को भोगने लगा ।

एक दिन रानी विजया ने पुत्रप्राप्ति का सूक्त तथा राजा के विनाश का यौक्त स्तुत देता । रानी विजया के दुःखी होने पर राजा ने उसे समझाया । उसके गर्भवती होने पर राजा की मृत्यु से वह दुःखी न हो सैसा लोकर उसने विजया को मयूर यंत्र पर बैठा कर अन्यत्र स्थान में भिजवा दिया ।

धर काष्ठांगार को राज्य का लोभ हो गया और मन्त्रियों के सम्मुख स्वप्न की बाल रखकर राजा सत्यंधर को मारने के लिए उक्त हो गया और उसने पैना के साथ उसे धर लिया । राजा सत्यंधर पहले कुछ होकर लड़ा किन्तु श्काक वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण उसने हस्त उठ दिया । काष्ठांगार ने उसे मार डाला ।

उसकी मृत्यु के पश्चात् रानी विजया का मयूर यंत्र उठी एणभूमि में पहुँचा और वहाँ रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया । ब्रह्मदेवी ने उसकी सान्त्वना दी कि उसके पुत्र का पालन एक <sup>गन्धीत्कट</sup> ~~मन्धीत्कट~~ नामक वैश्य करेगा । उही समय अपने मृत पुत्र को गन्धीत्कट लेकर उसी स्थल में आया और वहाँ पर निःसाध्य जाँकित पुत्र को देखकर उसे उठा लिया और अपने घर लाकर उसका छाल-पालन किया । गन्धीत्कट ने उसका नाम जीवंधर रक्ता । इसके बाद उसके नन्दादय नामक एक और पुत्र हुआ ।

१- इत्येवं गणनायकैः कथितं पुण्यास्त्रं सुष्वतां  
तस्मीं वरपुत्रं कति प्रत्यापितं हरिभिः ।  
विद्यासू तीव्रवा यिभिननी वाणी गुणाम्यथिना  
कथे गणमेन वाङ्मयमुधावर्षेण वाञ्छितद्वये ॥१५॥ गणचिन्तामणि

गन्धोत्कट ने अपने पुत्रों को शिक्षा की सुविधा व्यवस्था रखी ।

एक बार कुछ लोगों ने गाय बुरा ली । काष्ठांगार ने लेना के साथ गाय बुराने वालों से युद्ध किया किन्तु वह कफल हुआ । उसने गौपल्य सत्यंघर के राज्य का स्मरण करके बहुत ही दुःखी रहने लगे । गौपालग्राम के कृपाती चन्द्रगोप ने यह घोषणा की जो भी गो-तत्कारों को हराकेगा उसके साथ सत पुत्रियों के साथ बाली गोविन्दा नाम की कन्या का विवाह कर देगा । जोरंधर ने उन्हें हराकर उसके साथ विवाह किया ।

उसके अतिरिक्त जोरंधर ने वीणावादन में गन्धर्वकता को हराकर गन्धर्वकता के साथ, सर्प के विष को दूर करने पद्मा के साथ, खुति से रंधिर के द्वार खोल देने से नाम्नी के साथ, हामपुरी के राजा वृद्धमित्र के पुत्रों को पशुशिक्षा देने के बड़े में कन्धमाला के साथ, सागरदत्त की विरसंचित रत्न राशि का बिका देने से विमला के साथ वृद्ध योगी को बाठ बलकर सुरजंदरी के साथ, ब्रह्म-यन्त्र में नियंत्रित तीन बराह की एक बाण से-~~के~~ भेद करके विदेहराजा गोविन्द की कन्या के साथ और कठोर तपस्या करके 'सुजित' कन्या के साथ विवाह किया ।

जोरंधर द्वारा गुणभाला को परेशान करने वाले हाथी को मार कर वध में करने से हाथी को वधा सराब रहने लगे । यह हाथी काष्ठांगार का था ज्ञाः उसने क्रुद्ध होकर जोरंधर को कुलाने की आज्ञा दी । सब योद्धावर्गों ने जाकर कुमार के घर को घेर लिया । गन्धोत्कट ने सब को शान्त किया और जोरंधर के साथ काष्ठांगार के भाग जाकर वध प्रकार से विनती को किन्तु उसने विनती को ठुकरा कर उसके वध करने की आज्ञा दी । अधिक जब उसे बध स्थल पर लिये जा रहे थे तो जोरंधर के सुदर्शन नामक यक्ष (जो पहली कुते की योनि में था किन्तु जोरंधर की सेवा तथा मंत्रोच्चारण से उसने विधाघर योनि की प्राप्ति कर ली थी) का स्मरण करते ही वह प्रकट हो गया और जोरंधर की चन्द्रोदय नामक शैलशिखर पर ले गया । वहाँ उसने उसका नाम 'पवित्रकुमार' रखा और उसका यथेष्ट सत्कार किया । एक बार जाते समय जोरंधर ने वहाँ जाग से वस्तु हाथियों की देखा । यक्ष सुदर्शन से बुराीब करने पर उसने अग्नि बुझा दी ।

उसके बाद जीवंधर चन्द्राग नगर और पल्लव की सीमा <sup>को</sup> पारकर के  
 लैमापपुरी पहुँचा वहाँ पर उसे उसकी लीज में उत्तर उसके मित्र मिले । उन्होंने  
 जीवंधर की वपुष्कारण्य में मिली उनकी माता के सम्बन्ध में बताया । जीवंधर  
 भी माँ से मिलने गया । उन्ने वीरमाता बनकर जीवंधर तथा उसके मित्रों की  
 काष्ठांगार से बचवा लेने के लिए उत्साहित किया । जीवंधर उसे पूरा गान्त्वना  
 दे कर और उसे मामा के घर भेज कर राजपुरी जाकर विमला और सुरमंजरी  
 से विवाह करके और गन्धोत्कट के घर पहुँच कर उनसे तथा उनकी पत्नी सुनन्दा  
 से आज्ञा लेकर मामा (विदेह राजा गोविन्द) के यहाँ गया । मामा ने उसका  
 यथेष्ट सत्कार किया । मामा जिस समय मंत्रियों के साथ जीवंधर के राज्य की  
 पुनः प्राप्ति के लिए बाल बल रहे थे तभी काष्ठांगार के द्वारा भेजा हुआ  
 बनावटी संधिपत्र मिला । गोविन्द उसको बाल समझ गया । उसने भी वाश्य  
 रूप में संधि की घोषणा करा दो और राजपुरी पहुँचकर उन्ने अपनी कन्या  
 के चर्यंबर की घोषणा की जिसे जो एक बाण से चक्रवर्त में नियंत्रित तीन  
 वराह को मारेगा उसके साथ उसकी कन्या का विवाह हो जाएगा शर्त रखी ।  
 उसमें सभी राजा बर काष्ठांगार भी आया । जीवंधर को होकर कोई भी  
 इस शर्त को पूरी न कर सका । गोविन्द ने सब राजाओं के बीच बताया कि  
 यह जीवंधर चर्यंबर का पुत्र है । काष्ठांगार को होइ सभी राजा प्रसन्न हुए ।  
 काष्ठांगार ने युद्ध किया किन्तु वह मारा गया । गोविन्द ने उसकी चर्यंबर  
 को नदी पर बँठाया । उसी समय बुद्धैन यदा ने भी जाकर उसका राज्याभिषेक  
 किया । जीवंधर ने काष्ठांगार द्वारा कैद किए हुए व्यक्तियों को बंधन मुक्त  
 किया । वहाँ पर अपनी सब पत्नियों को बुलाकर वह धर्मपूर्वक शासन करने  
 लगा । उसके बाद उसने मामा की कन्या उत्पणा के साथ पुन मुहूर्त में विवाह  
 किया ।

कुछ समय के बाद उनकी माँ विजया और सुनन्दा ने काश्यपीपति  
 की अनुमति से प्रवृज्या ले ली । पहले जीवंधर बहुत ही दुःखी हुए किन्तु  
 धार्मिक कर्तों से शान्त हो गए । माँ की विदा करके एक बार पत्नियों के  
 साथ बल्लि झीड़ा कर रहे थे । थकावट दूर करने के लिए बैठ गए । वहाँ पर  
 उन्होंने देखा कि एक बन्दरी को बन्दर बहुत पना रहा था किन्तु जब किसी



प्रकार वह नहीं मानो तो जने क्षत्रिय मृत्यु का बहाना किया । बानरी उसे मृत समझ कर विलाप करने लग गई और उका उन्मार करने लग गई । प्रसन्न होकर बन्धर बन्दरी के लिए जैसे ही पनगफल लाया कि माठी ने जाकर उसे हीन लिया । इस दृश्य को देखकर जीवंधर को वैराग्य हो गया और लोगों के मना करने पर भी जिन दीक्षा लेकर वह उनको पूजा करने लाता उसी बीच बरणों ने उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त बताया । उसके पश्चात् पुनः राजपुरी जाकर मंत्रियों की सलाह से गन्धर्वका के पुत्र को राज्य देकर पत्नियों को तपस्या के लिए तैयार कर गन्धात्म्य के साथ तपस्या करने निकल गया । कठोर तपस्या करके उसने कामण्डू को स्थिति प्राप्त कर ली और अन्त में कैवल्यसुख से विवाह कर लिया—~~अतः~~ उसने मुक्ति प्राप्त कर ली ।

इस मुख्य कथा के अन्तर्गत प्रत्येक कथा के विवाह से सम्बन्धित कई कहानियाँ आती हैं । इसीलिए कवि ने कथाओं के नाम के आधार पर 'लम्बों' के नाम रखे हैं ।

इन कहानियों के अतिरिक्त मुख्य कथा के अन्तर्गत दो और भी कहानियाँ आती हैं । इनमें से एक जीवंधर के गुरु गन्धाचार्य से सम्बन्ध है जिसमें गुरु ने जीवंधर को अपनी कथा अन्य कथा के बहाने से बताई है । वह कथा इस प्रकार है --

विशधर लोक में लोकापाल नामक राजा था । किसी समय बाढ़ के टुकड़े को देखकर उसे वैराग्य हो गया । अतः परम पुत्र को प्राप्त हेतु राज्य भार अपने पुत्रों को बाँप कर वह जिन-दीक्षा में प्रविष्ट हो गया किन्तु पूर्व कर्मों के कारण उसे मस्मक-रोग हो गया । अतः भूख से पीड़ित हो उसने तप छोड़ दिया । भूख से व्याकुल होकर वह गन्धात्मक के घर में शिवा किसी शिवकिवाहट के घुस गया, जहाँ खाने की तैयारी हो रही थी । जीवंधर ने उसकी वाक्यति से पहचान लिया कि वह भूखा है अतः उसने उसको मरपेट खाना खिलाया । यहाँ तक कि अपना पराण हुआ खाना भी उसे दे दिया । इससे उसका मस्मक रोग शान्त हो गया । उसने इसके बदले में प्रसन्न होकर जीवंधर को कामण्डू-विद्या से अर्जुन किया ।

दूसरी कथा जीवंधर के पूर्व जन्म से सम्बन्ध है जिसे उसने तपस्या से प्राप्त होकर चारणार्थ ने उसको सुनाया है । जीवंधर जन्मे पूर्व जन्म में राजा पवन के का पुत्र यशोधर था । धूमते हुए उसने एक सुन्दर जालपाद-शिल्प को पकड़ लिया । पिता को जब भासूँ हुआ तो उसने अपने पुत्र को सम्झाया कि यह पाप है और जो इस प्रकार के कार्य करता है उसे कष्ट भोगना पड़ता है । इस पर यशोधर को पश्चात्ताप हुआ और वह जिनेश्वर की पुजा करने लग गया । किन्तु कर्म की गति बदलाने होती है । उसे मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ा । चूंकि उसने राजसूय को पकड़ा था तथा उसे बन्धुर्वा से विपुलत किया था अतः राजपुरी में जन्म लेकर उसे भी अपने मां-बाप तथा बन्धुर्वा से विच्छिन्नता चढ़ा ।

आध्यदेव को यह कृति अन्य गद्य-कवियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है । यद्यपि कथावस्तु के प्रारम्भ करने का ढंग-- अपने आराध्यदेव की स्तुति, काव्य की उपासिका देवी सरस्वती को स्तुति करना, काव्य की कथावस्तु की प्राचीनता पर अपने विचार प्रकट करना, तत्पश्चात् हेमांगद जनपद का वर्णन करके मुख्य कथा पर जाना-- एक प्रकार से प्राचीन गद्य-कवियों की परम्परा का अनुसरण करना है ।

इनकी कथावस्तु में और कृतियों की अपेक्षा बाण का कम प्रभाव परिलक्षित होता है । हेमांगद सत्यधर तथा रानी विजया के वर्णन में बाण की शैली को अनुकृति है । कथावस्तु में नन्दाचार्य जीवंधर को यौवन और राजसूय के सम्बन्ध में उपदेश देता है जिसमें बाण के सुकाल के उपदेशों की माला है । तथा जिस प्रकार हर्षचरित में मेरवाचार्य/राजा पुष्यमूति को महाभारत से विनाधर योनि की प्राप्ति का उल्लेख है उसी प्रकार गद्य चिन्तामणि में जीवंधर की कथा से कुते के सुदर्शन नामक यदा कदा विनाधर योनि के प्राप्त करने का उल्लेख है ।

बाण के भोजन-वर्णन करने की विशेषता इन्होंने भी अपनाई है किन्तु उसमें पर्याप्त मात्रा में भिन्नता आ गई है । जीवंधर के भोजनालय में जाने तथा भोजन करने के पश्चात् फिर जाने वाले कूपान आदि का वर्णन

१- गद्यचिन्तामणि, पृ० ४१-४२

२- हर्ष-चरितम् पृ० १६४.

न करके कवि ने मौजन भुभि का वर्णन किया है<sup>१</sup>।

इसी प्रकार उन्होंने भी बाण को भांति उबरी का वर्णन किया है किन्तु दोनों में महदन्तर है। जोड्यदेव ने यहाँ ऋकृत शैली का प्रयोग न करके तोषे-गादे शब्दों से उनका स्वाभाविक रूप अंकित किया है<sup>२</sup>।

बाण को भांति इस काव्य में भी ऊब आदि सेना का वर्णन हुआ है किन्तु उन्हें कुछ विशेष काव्य-सुषमा दिखायी नहीं पड़ता है।

इस काव्य में दक्षिण वरण उठाकर श्रीशुक के बोलने का कल्पना कादम्बरी ने ही हुई प्रतीत होती है। इसी प्रकार उन्होंने पुत्र-प्राप्ति के पूर्व वरण देखने को विशेषता अपने पूर्ववर्ती सुदन्तु और बाण से ग्रहण की है।

प्रायः सभी कवियों ने विन्ध्याटकी का वर्णन किया है किन्तु उन्होंने दण्डकारण्य का<sup>४</sup>।

जोड्यदेव की कन्दुक - श्रीडा का वर्णन दण्डी के 'दशकुमारचरित' में वर्णित वृष्ट उच्छ्वास को नागिका कन्दुकवती की कन्दुक-श्रीडा से प्रभावित है। दण्डी की भांति उन्होंने भी कन्दुक-श्रीडा को-गौतमान, गोपूत्रिकाज्म आदि मुद्राओं का उल्लेख किया है<sup>५</sup>।

इसके अतिरिक्त सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में उन्होंने भी दण्डी की भांति सुरसंजरी के रूप वर्णन में कामदेव की स्मरत सौन्दर्य तामसी को उसी के अवयवों में लीमित कर दिया है। इस सम्बन्ध में गद्य चिन्तामणि में दशकुमार चरित की कल्पसुन्दरी का सौन्दर्य वर्णन ही प्रायः पूरा उतार लिया गया है।

इसके अतिरिक्त दण्डी की तरह उन्होंने अपने काव्य में मृगया, झूतश्रीडा, मधुपान, वीर्यकर्म, कामश्रीडा आदि का वर्णन किया है। धूर्तों का भी वर्णन करना नहीं भूल है।

१- गद्यचिन्तामणि पृष्ठ ३८.

२- " " पृष्ठ ४८

३- " " पृष्ठ २१

४- " " पृष्ठ १२०

५- " " पृष्ठ १२२

६- " " पृष्ठ १२८, दशकुमार चरित पृष्ठ ८६-८७

सुबन्धु का 'वासवदत्ता' में वर्णित स्वयंवर का वर्णन इन्होंने भी अपने काव्य में किया है। विन्दु भावी का कव-तत्र साम्य होने पर भी दो दृष्टि से अन्तर आ गया है। गद्य-चिन्तामणि में स्वयंवर मण्डप का वर्णन नहीं है, केवल स्वयंवर में आर हुत राजकुमारों का वर्णन है। दूसरे 'वासवदत्ता' में स्वयंवर में कोई शर्त नहीं रखी गई है। गद्यचिन्तामणि में प्रत्येक स्वयंवर में शर्त है।

जोइन्द्रदेव के इस काव्य में कव-तत्र कालिदास के सुवंश को शायद भी परिवर्तित होता है। जैसे -- दूत के स्वल्प वर्णन में --

“कसी राजा वाहसमिञ्जितात्मधुक्मति विप्रकृष्टं चैत्या-  
त्मनिष्ठरिचर्षां अमेष्ट । उल्लापना नीतिः काताविहा  
शौर्यं श्वापदवेष्टितमित्थमी ष्टितिसिन्धिताभामाकांक्षीव ।  
अप्रणिधानं प्रहितप्रणधिनेत्रः श्वाभिर्ब्रीदासीन मण्डले  
तैरज्ञात्मव्यज्ञासीव । राज्ञां रात्रिदिवंविभागेऽयं यदनुष्टे-  
यमिदमित्थमन्वतिष्ठत् । जात्मपि सद्यः समर्पितुं शक्तीऽपि  
यदा प्रबुद्धतया प्रतिकारयोग्यं नाजीजनत् । राजन्वतामवनि-  
मतानीव ।” (गोवि० पृष्ठ ८)

“जनित्या शक्रो वाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः ।

अतः सौऽभ्यन्तरान्नित्यात् चर्षुं पूर्वमजयद्रिपुत्र ॥४५॥

कातर्यं केवलानीतिः शौर्यं श्वापदवेष्टितम् ।

अतः सिद्धिं स्मेताभ्यामुम<sup>आभ्या</sup>भ्यमभिनियेष तः ॥४७॥

न तस्य मण्डले राज्ञोऽन्यस्तप्रणधिदीक्षितैः ।

जदुष्टममवकिञ्चिदवधस्यैव विवाचतः ॥४८॥

रात्रिदिवंविभागेऽयं यदादिष्टं महोक्षिताम् ।

तत्सिषेवे निगोर्गेन विकल्पपरो<sup>उ</sup>मुत्तः ॥४९॥

कामं प्रकृतिर्वैराग्यं सद्यः समर्पितुं क्षयः ।

यस्य कार्यःप्रतीकारः स तन्नि<sup>नी</sup>वोदयात् यत् ॥५०॥

इस प्रकार जीयदेव की कथावस्तु में मांलिकता होते हुए भी जन-जन प्राचीन गद्य-कवियों एवं कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

### कैम्भूषालक्षित्य की कथावस्तु--

वामनभट्ट बाण ने अपने काव्य की कथावस्तु का विषय अपने वाक्यदाता कैम्भूषाल-- जिन्हें कौसारायण भी कहा गया है -- को बताया है ।

शिखि नामक जनाद का राजा 'काम' या शिखी राजधानी अर्द्धिक था । उसका पुत्र प्रौढ था । एक बार वह वांत शत्रु में शिकार के लिए जाया गया । वहाँ पर ऊँचे घोंड़े पर बैठकर अतिशय हरिण का पीछा किया । उसका पीछा करते हुए वह एक मनोहर जंगल में पहुँचा वहाँ उसका सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो गया और हरिण का पीछा करना भूल गया । वहाँ एक जगत्माव एक ओर से जाता हुई सुगन्धि का उसने अनुभव किया । उस सुगन्धि का अनुसरण करते हुए उसने 'हिन्दोलान' पुता । वहाँ जाने की इच्छा से वह घोंड़े से उतर गया और वृक्ष के नीचे उसे बांध कर राजा छोटी कुम्हुरी के बीच पहुँच गया वहाँ उसने लक्ष्मी वृक्ष पर झूलती कन्या 'अन्ता' को देखा और कन्या ने राजा को । दोनों ही कामबाणों से किड हुए गए । इसी बीच राजा को राजस से पीड़ित अपने मित्र विदूषक की आर्तनाद सुनाई दी । राजा कन्या के प्रति आकर्षित होने पर भी उसकी रक्षा के हेतु विदूषक के पास आया । राजा के प्रभाव से बिना युद्ध जादि किए ही राजस ने विदूषक को छोड़ दिया और अपना उस योनि की होकर उसके वंश-वृद्धि के विषय में भविष्यवाणी करके वह अन्तर्हित हो गया ।

इसके बाद पुनः वह विदूषक के साथ दौलाविहासभूमि गया किन्तु उस कन्या को न देखकर बहुत दुःखी हुआ । विदूषक ने पहले उसे आवधान किया फिर उसका प्रभाव न पड़ने पर कामोपहार किया और सान्त्वना दी । कल पुनः जाकर उस कन्या को देख लिया जाया, कलकर उसे राखधानी ले गया ।

इस कन्या की सखियाँ भी राजस के कुट्टान्त से भस्मीत होकर उसे कलाव कन्यान्तःपुर में ले गई किन्तु वहाँ वह काम से ही पीड़ित रही ।

ससिधियों ने भाग्यशक्ताया तथा गन्धना को और पुनः लता मण्डल में जाने की आज्ञा दी । कमलारोवर के तट पर पहुंच कर सब स्थल पर देखने के लक्ष्य में राजा प्रोत्सु जब उसे नहीं मिले तो उस कन्या ने बन्धकान्त वैशिका को गिरा पर लैट कर लगी राजा का विनोदित किया और रस्ता करते-करते उसका अनिर्वचनीय कला हो गई । ससिधियों ने उज्ज्वल उपहार किया और शय्या पर लिटा दिया । उन्को बीच दुष्ट हाथों के आ जाने से ससिधियां भयभीत हो गयीं और अपनी सारी को छोड़कर कन्यान्तःपुर में ले गयी । इसी भागदौड़ में वह वहीं कुछ चित्रफलक वहीं छुट गया ।

यही चित्रफलक उन्को दिन आरंभ हुए राजा प्रोत्सु के हाथों में पड़ा । जब वह उसको देखकर उस पर विचार हो कर रहा था कि अनन्ता की सती उस चित्रफलक को लेने के लिए आयी । राजा के हाथ में चित्रफलक को देखकर उन्ने कन्या के पिता तथा उसकी कामुक अवस्था के विषय में बताया राजा ने भी चित्रफलक पर एक आर्था लिखकर 'अनन्ता' के पाद भिजवा दिया । उनके अभाव धूमयाम से दोनों का विवाह हुआ ।

इस दिनों के पश्चात् इन्द्र की कृपा से उसके पांच पुत्र— माच नरेन्द्र, वैभूम्य, दोइड नरपति, जन्तुभूम्य तथा मल्लमहोपाठ हुए । माच के तीन पुत्र रेड्डी प्रोत्सुभूम्य, पेदकौमटीन्द्र और नागेन्द्र हुए । जन्मे पेदकौमटीन्द्र राजा हुआ तथा अनन्ताम्ब्या के साथ विवाह हुआ । उनके दो पुत्र वैभू और नाच हुए । उन दोनों में वैभू राजा हुआ ।

एक बार शरद् ऋतु में दिग्विजय की इच्छा से वैभूम्य लैना तथा विदूषक मायव को साथ लेकर निकला । उन्ने नारों और के राजाओं को युद्ध से, कृपा दृष्टि से , राजाओं द्वारा लार गए उपहारों को स्वीकार करने से तथा दान से जमने कह में कर लिया । मार्ग में आए सभी मन्दिरों को आदर को दृष्टि से देता तथा अपनी राजधानी में पहुंचकर उन्ने स्वच्छत्र-राज्य किया ।

इस काव्य में कवि के आश्रयदाता का वंश तथा उसकी दिग्विजय का सविस्तर वर्णन होने के कारण इन्ने कवि की वाण के हर्षचरित के अनुकरण करने की प्रवृत्ति देली जा सकती है । यद्यपि इन्ने --

-- वापकीन्द्रादन्येषाणाः सः सरसाक्षरणीः । इति

ब्रह्मर वाण के अनुकरण न करने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु जन्ततोगत्वा  
उस काव्य में उन्हें इसी मुक्ति मिला हुई नहीं परिष्कृत होता है ।  
शैली के अनुकरण में तो किसी प्रकार का शन्देह नहीं है, कणावस्तु में भी  
यही प्रवृत्ति है ।

जिस प्रकार कादम्बरी में चन्द्राणाः दिग्विजय प्रस्थान के बाद  
किन्नरों की देवता है वैसे ही उस काव्य में प्रौल राजा शिकार खेलने के  
बाद हरिण को देखता है<sup>१</sup> । चन्द्राणाः किन्नर का पीडा करते हुए जिस  
प्रकार जरण्य में जञ्जीयसरोवर के त्वाप महाश्वेता को देखता है वैसे ही  
प्रौल हरिण का पीडा करते हुए उपवन में 'जन्ता' कन्या को देखता है ।  
जन्तर इतना है कि महाश्वेता को चन्द्राणाः ने शिकार की उमासना करते हुए  
देखा और प्रौल ने झूठे पर झूळती हुई कन्या को देखा<sup>२</sup> ।

राजा प्रौल ने भी चन्द्राणाः की तरह घोड़े से उतर कर वृक्षा में  
उसे बांधने के पश्चात् कुछ आगे बढ़कर उस कन्या को देखा ।

इस प्रकार राजा प्रौल का अकस्मात् जायी हुई गुणन्धि से आकृष्ट  
होकर उसका अनुसरण करते हुए कन्या का देखना महाश्वेता का अकस्मात्  
जायी हुई परिजात मंजरी की गुणन्धि से आकृष्ट होकर पुण्डरीक के देखने का  
स्मरण कराती है<sup>३</sup> ।

कादम्बरी में जो पुण्डरीक के साथ सर्वदा कपिञ्चल रहता है, उसे  
काम पीडित देखकर समझता है, उसका प्रभाव न पड़ने पर उसका कामोपचार  
करता है तथा एक-दूसरे से मिलाने के लिए तन्त्रे मित्र की भाँति कार्य करता  
है वैसे ही उस काव्य में विदूषक राजा प्रौल की समझता है, कामोपचार  
करता है और उसकी प्रेक्षी को सती से राजा को कणावस्था का चित्रण  
करके दोनों के विवाह कराने में महायक बनता है ।

१- कैमपुपालवरित पृष्ठ २४-२५

२- " पृष्ठ ३१

३- " पृष्ठ ३७

पुपरीक को समावस्था के रूप में कापेजल आश्चर्यवन्ति हो जाता है, वही ही विदुषक भी हो जाता है<sup>१</sup>।

इस विषय में ~~अन्तर~~ अन्तर आता ही है कि इस काव्य में सखियों और विदुषक दोनों के समझाने की विधि एक-सी है<sup>२</sup>।

कणावस्तु के अतिरिक्त उनके विकास में आये हुए वर्णित प्रसंगों में बाण की स्पष्ट हास है। राजा प्रोल्ल का मृगया-वर्णन बाण के शबर-मृगया-वर्णन से बहुत अधिक प्रभावित है। बाण की भाँति कौलेक की लाल लाल जीभ का वर्णन करना नहीं मुझे है<sup>३</sup>।

उन्होंने भी बाण की तरह शिकार के लाल जाते हुए लोगों के हातों में कार्यों का वर्णन किया है -- कुछ कुत्ते की भाँति लिख, कुछ वागुर चीरें शेर की शक्ति का किञ्चा, कुछ विविध सस्त्र आदि लिख हुए तथा वैशिक, बांस,पंटा, आदि बाजा बजाते हुए लोगों का वर्णन मिलता है<sup>४</sup>। शिकारियों द्वारा छार गए आतंकों का वर्णन भी हुआ है<sup>५</sup>।

विन्धाटकी के वर्णन का प्रसंग इस काव्य में भी है। बाण की ही भाँति उनके मौख्य और भयावह दोनों ही रूपों का वर्णन किया गया है। यह दूसरी बात है कि वहाँ बाण के वर्णन की-सी सरसता नहीं है<sup>६</sup>।

१- कैममुपाल चरित पृष्ठ ६८७-६९, कादम्बरी पृष्ठ ४५९-६५

२- सखियों का समझाना पृष्ठ ७० और विदुषक का समझाना पृष्ठ ५४, ७७।

३- (अ) कैम०- अतिदुरावलम्बितो भिरधिकमरुणिमानमु... जिह्वामिहय-  
शोभिताच्च । पृष्ठ २०

(ब) कादम्बरी -- उपजातपरि चर्यनुगच्छदिसः..... दारन्तोमि-  
जिह्वामि राकेष्मानलेदः किन्तुमुस्तया.... ।" पृष्ठ ६२

४- कैम० पृष्ठ ३२

५- ,, पृष्ठ २०-२१

६- ,, पृष्ठ १८२



बाण की भांति इन्होंने भी हाथी का वर्णन का विषय बताया है । बाण ने राजा हर्ष के महल के बड़े हाथी का वर्णन किया है । इन्होंने वेम<sup>१</sup> प्रस्थान के लिए लाने गए हाथी का वर्णन किया है<sup>२</sup> । कल्पनाओं में मालिका होने से केवल वर्णन-विषय के चुनने में अनुकूलि नहीं जा सकती है ।

बाण की भांति कवि ने हर्ष का भी वर्णन किया है<sup>३</sup> किन्तु वामन भट्ट बाण जब वर्णन को अपेक्षा सन्नि वर्णन में अधिक सफल हुए हैं । क्योंकि जब वर्णन में पूर्व कवियों की अनुकूलि परिलक्षित होता है । अन्य गण-कवियों की भांति गण-शु के वर्णन में दावाग्नि का वर्णन इन्होंने भी किया है ।

पुत्र के न होने पर पुत्रप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होने तथा पुत्रोत्सव मनाने की चर्चा का काव्य में भी है किन्तु पुत्रोत्सव में केवल राजा का धन छटाने पटहनाद होने, सुगन्धित पदार्थों के छिड़काव तथा नृत्य होने, रत्नों का भूमि पर गिराये जाने और आभूषणों की ध्वनि के अतिरिक्त कुछ भी वर्णन नहीं किया गया है<sup>४</sup> । यात्री का हाथ पकड़ कर चलाना, प्रतिक्लिब पैरकर उठे जाना स्पर्श कर बुलाना-- दो ही बाल कुंडलियों का वर्णन है<sup>५</sup> । यह वर्णन केवल गण-कवियों की परिभाषा का ही अनुकरण करना लगता है ।

बाण ने जिस प्रकार चन्द्रामोड़ को देखने के लिए उत्सुक नारियों का वर्णन किया है उसी प्रकार वामन भट्ट बाण ने भी किया है । वर्णन-विषय एक होते हुए भी काव्य की दृष्टि में दोनों का पृथक-पृथक् स्थान है । यहाँ पर विवाह करके लौटे हुए राजा प्रोत्स को देखने के लिए स्त्रियाँ बढ़ती हैं । उस समय कोई माला को गले में पहनने से देरी हो जायगी यह सोचकर अज्ञातकाल के समान हाथ में ही माला ले लेती हैं, कोई एक पैर में तूपुर पहन

१-वेम० पृष्ठ १२४-१२७

२- ,, पृष्ठ २०६-२०८

३- ,, पृष्ठ १६०

४- ,, पृष्ठ ११४

५- ,, पृष्ठ ११५-११६

कर द्वारों को हाथ में लेकर निकल पड़ते हैं, वीरों नेत्रों में जंजन लाते हुए जाने नेत्रों की क्षीयता को निन्दा करती हैं... इत्यादि का वर्णन करके उनकी त्वरा (जल्दी-बाजी) का वर्णन किया है<sup>१</sup>। उसके अतिरिक्त बाण को हों भाँति एक-दूसरे के ऊपर पड़ते हुए राजा प्रीत्य के प्रतिविम्ब को देखकर उठने वाले युवतियों के भावों का भी वर्णन किया है<sup>२</sup>।

उसी प्रकार चण्डिका देवी तथा उनके मन्दिर का वर्णन बाण और वामन दोनों ने किया है किन्तु दोनों के वर्णन में पर्याप्त भिन्नता देखी जा सकती है। बाण ने मंदिर की रत्नध्वजा, देवी का स्वारा महिष, पत्थर के बने महिष को चाटते हुए झूल-गण, पड़े हुए पूजा के फूल, उपहार स्नान पशुओं को हिंसा, दीपकों के धुं से आरम्भ वस्त्र का धूमिल होना, उसके अन्दर जंगली महिष, हाग, मूषक तथा जंगली कबूतरों का घूमना तथा देवी के स्वल्प वादि का वर्णन किया है। वैतालगाणों को केवल उमाने रूप में इस वर्णन-प्रसंग में लाना दिया है<sup>३</sup>। इसके विपरीत वामन ने वैतालों, भूतों, जाकनियों राजकनियों आदि के स्वर्णों और उनके कार्यों का वर्णन अधिक किया है। रत्न को देखकर उनका प्रसन्न होना, हडिडियों को माला धारण करना, भयंकर आवाज करना आदि का वर्णन करना ही कवि की यहाँ अभीष्ट है<sup>४</sup>।

राजा काम के वर्णन में यत्र-तत्र राजा शूद्रक के वर्णन की छाप परिलक्षित होती है<sup>५</sup>।

बाण के अतिरिक्त वामन अन्य गद्य-कवियों से भी प्रभावित हुए हैं। कण्ठी के दशकुमार चरित में मदिरा तथा उसके पान का वर्णन जैसे मिलता है वैसे ही वामन कवि ने भी वर्णन करके उस विषय को अपने काव्य

१- वैम० पृष्ठ ६७-६८

२- ,, पृष्ठ ६८

३- ,,--मृग्य काव्यधरी पृष्ठ ६३१-४०

४- वैम० पृष्ठ १८२-८४

५- ,, पृष्ठ ४, काव्यधरी पृष्ठ १५

का विषय बताया। मांदरा का सर्वप्रथम सामान्य वर्णन किया। बाद में उसका देवी के साथ संबंध स्थापित करके पुनः उसका महत्त्व बताया। इस दृष्टि से वामन का वर्णन से भिन्नता हो गई है। वामन के इस वर्णन के आंतरिकतः अन्य स्थलों पर भी उनको मॉरिक्ता दिखाया गया है। यहां मद्र पीने के पश्चात् होने वाली लोगों को दशाओं का चित्रण भूगारिक चेष्टाओं के साथ किया है। युक्त-युक्तियों के मद्र-विकारों का उल्लेख वर्णन किया है।

केलाओं के वर्णन में वामन भद्र दण्डों और भोज के आभारों हैं। उन दोनों का भांति उन्होंने भी केलाओं, उनको जनना तथा कुहिनियों का और उनके आवास (केशवाटी) का विस्तार वर्णन किया है। सुबन्धु, भोज, धनमाल का भांति उन्होंने भी सुद का वर्णन उत्साह के साथ किया है। अन्य कवियों की अपेक्षा उनका वर्णन अधिक सरल और काव्य-प्रतिभा परिपूर्ण है।

युक्त-भुक्ति के वर्णन प्रसंग के प्रति यह जोल्यवेव के भी आभारों हैं। जिस प्रकार गद्यचिन्तामणि में ऐसे स्थल पर 'रक्तनदा' की कल्पना की गई है वैसे इस काव्य में भी कवि ने कल्पना की है।

यह केवल कथावस्तु के विषय में न केवल गद्य-कवियों अपितु पद्य-कवियों में कालिदास तथा भवभूति<sup>के</sup> भी अनुगृहीत हैं। इन दोनों कवियों में कालिदास का उनके ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा है।

१- कैम० पृष्ठ १८३-१९१

२- ,, पृष्ठ १९४-२०४

३- ,, पृष्ठ १३३-३५

४- ,, पृष्ठ १३८, न० वि० पृष्ठ ७१, १४३

जिस प्रकार 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' में दुष्यन्त पेट्री का बाढ़ से अशिर्या के साथ दुष्यन्त को करता दुः शकुन्तला का देवता है वैसे ही राजा प्रौत्ल कुसुटों के बीच से फुला फुल्ला अनन्ता को देवता है । राजा प्रौत्ल को बहुत दुःख भनीइता राजा दुष्यन्त जैसा ही जाता है । दोनों हा कन्या को देखकर कर्म-स्मरण ज्ञा की सृष्टि का कारण करते हैं<sup>१</sup> ।

राजास को यतना भी 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' में जाते हैं । वहाँ पर शकुन्तला के मित्रों में आदुल दुष्यन्त की कर्तव्य मार्ग में उन्मुक्त करने के लिए मागति विदूषक को गकड़ देता है और विदूषक भयभीत होकर राजा को राजा के लिए पुकारता है, और वेमभुपाल चरित में राजा प्रौत्ल को वियोगावस्था तो है नहीं किन्तु काम बाधों में बहुत आदुल होने के कारण वर अन्य कियो कार्य के लिए उन्मुक्त नहीं हो सकता था जतः कवि ने राजास द्वारा आश्रान्त विदूषक की दमनीय प्रकार का वर्णन किया है<sup>२</sup> ।

काम पीडितशकुन्तला की शय्या की तरह राजा प्रौत्ल को भी कामपीडित अनन्ता की शय्या दिखाना देता है । दोनों में अन्तर यह है कि प्रौत्ल कन्या से विहीन शय्या देवता है और दुष्यन्त शय्या पर लेटी कन्या की<sup>३</sup> ।

इकारक दुष्ट हाथी के जा जाने की कल्पना कवि ने अभिज्ञान शकुन्तलम् से ले<sup>४</sup> है । दोनों में अन्तर यह है कि अभिज्ञान शकुन्तलम् में राजा दुष्यन्त तथा अशिर्या के साथ शकुन्तला सब एक साथ बैठे हैं, तथा दुष्ट हाथी जाता है और अशिर्या राजा की अनुमति लेकर शकुन्तला की आश्रम लिया ले जाती है

१-(अ)- वेम०--'उही पूर्वकृतस्य पुण्यस्य कर्मणः परिपारः ।... अनन्त्या क्यमीदृगव्यवनिर्माणकौशलम् घटते ।' पृष्ठ ३२ ।

(ब)-अभिज्ञानशकुन्तलम् -- १।१६, १।२०

२- अभिज्ञानशकुन्तलम् -- षष्ठ अंक, वेम० पृष्ठ ३७-४०

३- वेम० पृष्ठ ६५ अभिज्ञानशकुन्तलम्-- तृतीय अंक

४- ,, पृष्ठ ८८ ,, ,, -- १।२६

और कैमभूपालचरित में केवल सलियाँ के साथ कामपाँड़िया जनन्ता है, सलियाँ उखा उखार करती हैं, उखा खोच छाया जाता है और सलियाँ जनन्ता को ठे जाती हैं ।

वियोगावस्था में जनन्ता का चित्रफलक पर चित्र खींचना वियोगभोक्ति राजा दुष्पन्त से प्रभावित है<sup>१</sup> ।

कैमभूनाल चरित में विदूषकराजा से जब पूछता है कि कन्या ने उखली देना है? तो राजा के उत्तर में कालिदास का प्रभाव स्पष्ट परिचित होता है<sup>२</sup> ।

मणि मीठा के जुग होने को कलता सुवन्त से प्रभावित है<sup>३</sup> ।

जार० कृष्णमाचार्य के का दिग्विजय पर सुवन्त के खु को दिग्विजय का प्रभाव बताते हैं<sup>४</sup> । जार० कृष्णमाचार्य वामनभट्ट का निम्नलिखित पंक्तियों में भवभूति को पद्धति को हाप देते हैं । उन्हीं के शब्दों में --

वस्तुकहायनहरिणलोचना (पृ०६०), श्रीपर्वतरिचन्तित-  
रितीनाम् (पृ०१२०), कण्ठमलिनकपोलकपालकुण्डलामिः (१८३),  
अन्तर्दृष्टपरिवृष्टपातालविलप्रतिमल्लुत्तरितपुष्पलजिह्वामाय-  
बिर्लं व्याहतीमिः, विकटकुलीत्तरां ताण्डवितपुरिपुरीतत्प्रो-  
तवण्ड नुमुण्डस्त्रिभिः -- उत्थापन्निव ग्रन्थे भूमाणा  
वर्णावलिः शोभते भवभूतेः पद्धतिं चरणपथमुपनयति ।<sup>५</sup>

उन्होंने ही निम्नलिखित पंक्तियों में बाल्मीकि, इण्डो, कालिदास के मेषदूत और अमिज्ञानशकुन्तल का चरण किया है<sup>६</sup> --

१-कैम० पृष्ठ ८४ अमिज्ञानशकुन्तल च षष्ठं लंके

२-(अ) कैम०-- कथमिव नास्मवलीकितः । आवरविस्तुष्टमादी, ....

व्यसमीलितोपाणममुव । पृष्ठ ५३ ।

(ब) अमिज्ञानशकुन्तल - १।२०, २।२

३-(अ) कैम० पृष्ठ ४६

(ब) लेषास्थली यत्र विविन्वता त्वां प्रष्टमया नुपुरीकमुण्याम् ।

अदृश्यव, त्व चरणारविन्दविश्लेषदुःसाधिव कर्मानाम् ॥ (सुवन्त)

'नागनागोरु रित्यादिपद' (६७) — वात्सोकि

'शुक्लकालिमलयः सु तमः सुस्तादि' (१४०) — दण्डी

'फलसुः काकिंगीयाः' (१०४) और

'निरन्तराधुप्रवाज्जज्जनातेव नमयोर्न  
भवति नैदीयसी निद्रा ।' (८४)

'कुङ्कुमरागशीणात्—इत्यादिभिः श्यामलास्तव्य,  
मानुषीञ्जशृष्टिञ्ज कथयितुमुपपन्नैरुपमैभिः (७३)

अभिलान शाकुन्तल

देसने से ज्ञात जाता है कि वाग्मयदे ने अतुकरण के करके अपनी माँलिका नहीं ली थी है। गण-काक्य में इन्होंने ही विदुषक को स्थान दिया है जो राजा का मित्र बनकर कथावस्तु के विकास में सहायक हुआ है। दो बार विदुषक का वर्णन आया है। प्रोत्स का विदुषक विवाह कराने में सहायक होता है और केस का विदुषक राजारामपुरी के वैभव-वर्णन में अद्भुत सौन्दर्य लाता है।

राजा प्रोत्स और अनन्ता दोनों को वियोगावस्था में 'चन्द्रोपालम्भ' का वर्णन कवि को निजो विशेषता है<sup>१</sup>।

दूसरी विशेषता यह है कि अन्य कवियों की भाँति इन्होंने अपनी कथावस्तु को विविध कहानियों से बोधित बनाकर अस्पष्ट नहीं किया है। एक ही कहानी है। इन्होंने अपने काव्य की कथावस्तु में स्त्री-गर्भों को बहुलता भी नहीं रखी है। अनन्ता और अनन्ताम्भा महिषिणियों में तथा सखियों में जाँगन्धिक की ही स्थान दिया है। सामान्य स्त्रियों के वर्णन विवाह करके छोट कर आते हुए राजा प्रोत्स को देसने के लिए उत्सुक पुरवासियों की संभ्रमा का सरल चित्रण किया है। गणिका जाति,

(पृष्ठ २३० का अक्षिप्त)

५- केसुपाठ चरित—भूमिका—आर० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ६

६- " " " " " " " " पृष्ठ ६-१०

१- केसुपाठ चरित—भूमिका—आर० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ५७, ७४-७५ ।

वेश्याओं की जननी और कुटुम्बियों की जीवन-वर्षा बताते हैं ।

अक्सरीना से उदाहृत गण पूरु काचितना व्यापक और आरुषिक वर्णन इस काव्य में हुआ है, वैया अन्य काव्यों में प्रायः नहीं उपलब्ध होता है ।

वीर रस प्रधान काव्य होने के कारण कवि ने अपने नायक के दिग्बिजय वर्णन में विशेष रुचि देता है । अतः उनके कई युद्धों का तथा कुटुम्बियों का पविस्तर वर्णन भफलता के साथ किया है । युद्धों में पर्वतीय युद्ध तथा सामुद्रिक युद्ध विशेषरूप से अवलोकनीय हैं । इन युद्धों में परिस्थितियों पर विशेष ध्यान रखा है जिससे अद्वितीय आत्कार आ गया है ।

इनके नगर राजधानी, जनपद आदि का वर्णन अपने ढंग का है । इनके वर्णन में उनके वर्ण्य-विषय निश्चित है । <sup>उनकी</sup> नगरीवर्णन में प्रासाद, प्राकार, दुर्ग, जलाशय, उद्यान, आर्थिक समृद्धता आदि के वर्णन का विषय मिलता है । त्रिलिंग जनपद के वर्णन में तडाग, कैदार, उपवन, शिवालय को लिया है । किलाना के जानन्द और उनकी लड़कियों का पक्षियों के भगाने के लिए कौलाहल का वर्णन करके सुप्त दुःख का परिचय दिया है । <sup>५</sup> क्योंकि राजधानी के वर्णन में प्राकार, परिवार, दीर्घिका, कस्तूरों का कौलाहल, भवन, उपवन, सरावर, यज्ञ करने वाले ब्राह्मण और वार-विलासिनियों को स्थान दिया है ।

उन्होंने अपने कथावस्तु के विकास में केवल एक गिरि विन्ध्याद्वी को स्थान न देकर मलयपर्वत, हिमालय, कैलाश आदि अन्य पर्वतों को स्थान

- 
- १-कै० पृष्ठ १२६-३०  
 २- ,, पृष्ठ १३८, १५६-५७, १६२-६३, १४१ ।  
 ३- ,, पृष्ठ १३६, १५०, १५७ ।  
 ४- ,, पृष्ठ १६२  
 ५- ,, पृष्ठ ७  
 ६- ,, पृष्ठ १०-११  
 ७- ,, पृष्ठ १५४-५६  
 ८- ,, पृष्ठ १६५  
 ९- ,, पृष्ठ १७१-७३

देकर व्यापक वर्णन किया है ।

कहीं-कहीं पर कवि को उस सम्बन्ध में दुर्बलता भी परिलक्षित होती है ।

इस विषयों में केवल परम्परा का पालन किया है । जल झोड़ा आदि का वर्णन कथावस्तु से सम्बन्धित न होकर केवल वर्णन-विषय के रूप में ही स्वीकार किया है<sup>१</sup> । इसी प्रकार प्रारम्भ में जाठ श्लोकों में ईश्वर की स्तुति, काव्य का स्वभाव, बाणवादन्तै कवयः से पूर्व कवियों को जोर देकर करके अपना साहित्य प्रदर्शन, अपना तथा अपने नायक का परिचय देकर जनाद आदि का वर्णन करने के पश्चात् अपनी कथावस्तु में जा गये । कथा-विकास में न राजास द्वारा विदूषक के पकड़े जाने की घटना और न राजास की भविष्यवाणी विशेष स्थान रखती है । इस घटना के न वर्णन करने पर भी कथावस्तु का विकास अधिकिच्छन्न चल सकता है । राजा के कर्तव्यशील होने का गुण और किसी प्रकार से भी चित्रित ही सकता था । राजे वंश-वृष्टि की वाणी — वह भी राजास के मुख से निकलवाने की कोई आवश्यकता न थी । क्योंकि संतति के आव में देवाराधना द्वारा संतति की प्राप्ति सभी कवियों ने तथा उन्होंने भी जन्ता के जन्म में स्कन्ददेव की कृपा और वैशंपुष के जन्म में अरपति की कृपा का उल्लेख किया है ।

पुनरुक्ति दोष भी इस विषय में देता जा सकता है । कवि एक बार राजा प्रौल का जलेले मृग का पीछा करना, जग में पहुँच कर छिन्दौल गान सुनना, कन्या की देखना, उसकी अनिर्वचनीय दशा का होना, राजास से पीड़ित विदूषक को आवाज सुनना वर्णित कर चुका था किन्तु पुनः राजा के मुख से पुरा कृतान्त विदूषक को कवि सुनवाता है<sup>३</sup> ।

इसी तरह राजा के पुझने पर कवि के द्वारा जन्ता की दशा चित्रित करने पर विदूषक राजा को बड़ाई करते हुए उसकी कामुकता का चित्रण करता है जो उन परिस्थिति में उपयुक्त नहीं बैठता है<sup>४</sup> ।

- १- वैशंपुषाल० पृष्ठ १७६  
२- " पृष्ठ १-१६  
३- " पृष्ठ ४२-४६  
४- " पृष्ठ ७०



क्यों-क्यों समय का भी ध्यान नहीं दिया गया है। कनका का कियोगावस्था का आवश्यकता से अधिक लम्बा वर्णन हो जाने से नांरसता आ गई और कथावस्तु के विकास में भी बाधा पड़ी है।

एक चरित्र पर कवि को बहुत बड़ा कनकधाना लौ गई है। वह यह कि अन्य प्रिय राजातोग्रीव के विवाह के उपलक्ष्य में 'पहले मैं राधा<sup>१</sup> को नमस्कार करूँ -- भावना से ज्ञाते हैं और प्रतिहारों उन पर कण्ड-प्रहार करते हैं।'<sup>२</sup>

### रामकथा की कथावस्तु

हर्मि वाजुदेव कवि ने अपने गद्य-काव्य का विषय 'रामायण' से लेकर जगद-विख्यात राम का चरित्र लिखा है। उनकी कथा को संक्षिप्त रूप करके बनाया है किन्तु उनकी कथा के किसी अंश को छोड़ा नहीं है। राम के जन्म के पूर्व किसे गद राजा दशरथ के यज्ञ से लेकर उनके राज्याभिषेक तक की कथा को अपने काव्य का विषय बनाया है। स्वभाव कर्णों पर कथा में किया हुआ परिवर्तन परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ इस काव्य में शूर्पणखा के बार-बार कभी राम और कभी लक्ष्मण के पास जाने से सीता के द्वारा उसकी हँसी उड़ाई जाने पर जब शूर्पणखा अपना भयंकर रूप दिखाकर सीता पर कण्ड-प्रहार करती है तब लक्ष्मण ने उसके नाक कान काटे<sup>३</sup>— स्ता बताया गया है।

इसी प्रकार इस काव्य में स्वर्णिम मृग की भाँसा को जानते हुए भी राम के किवंदों के नष्ट होने का वर्णन किया गया है जब कि कवि ने राम को ईश्वर का अवतार माना है।<sup>४</sup>

१- कै० पृष्ठ ७२-६०

२- ,, पृष्ठ ६२

३- रामकथा पृष्ठ १६

४- ,, पृष्ठ २४

उसके अतिरिक्त रावण ने शक्ति फेंक कर लक्षमण की मूर्ति बनाई<sup>१</sup> -- ऐसा इस काव्य में आया है ।

कथावस्तु में कतत्र परिवर्तन के चक्कर में पड़ कर कवि ने उसके सौन्दर्य में बाधा उपरिष्ठा कर दी है । एक स्थल पर नाक का ही चरित्र ही गिर गया है । जिसे सीता के वियोग में राम कन-कन फिरे, जेकों कष्ट उठाये उन सीता से वह अग्नि में प्रवेश करने के लिए कठोर वचन कहते हैं । क्योंकि सीता का विशेषण 'परुषाक्षरविधा<sup>ता</sup>' दिया गया है ।

सौन्दर्य-वर्णन में कहीं-कहीं पर ध्यान का उपयुक्तता का ध्यान न रखने के कारण भी इनको कथावस्तु का विकास शिथिल हो गया है । क्योंकि रावण सब भाई, बन्धुजों के मारे जाने के बाद रण स्थल में पहुंच कर राम की देवता है तो ऐसे मग कवि को राम के पराजयी रूप का वर्णन करना चाहिए था किन्तु उनके सौन्दर्य का वर्णन करने लगता है<sup>२</sup> । जब वह उनके सौन्दर्य पर मोहित है तो वह राम के नाय उड़ाई कैसे कर सकता है ।

कहानी को आवश्यकता से अधिक संक्षिप्त कर दिया । छोटे-छोटे अनुसंधानों में कथा का एक-एक अंश प्रतिपादित कर दिया है । वर्णन की प्रधानता नहीं है अतः उनके काव्य में कोई आकर्षण नहीं है । प्रकृति-वर्णन की एक प्रकार से उपेक्षा की गयी है । दण्डकारण्य के वर्णन में केवल एक पंक्ति ही प्रयुक्त हुई है --

"प्राकृत लक्षमणमिव बहुलता व्याप्ति दुर्गम महेंद्रभवनमिव  
महापुण्य जनापिच्छितं कर्कशित की दण्डदण्ड मण्ड ल ली दण्डकारण्य<sup>मं</sup>विव" --

ये कवि का प्रकृति-प्रेम तथा काव्य-प्रतिभा का परिष्कृत हो जाता है ।

१-रामकथा पृष्ठ ४६

२- " ... पृष्ठ ५०

३- " ... पुरस्तात्परमण तेजसा दिवसा कर्मणः कुर्वाणम् अभिनवतमालदल-  
मनोहरकान्तिम् वाक्कटाभासुरीभांगम् अरुणसरसिबायतविलोचनम्,  
कीकारम्भाढविन्दसुन्यवत्कल्पनम् उज्ज्वलशरशरासनमासमान करारविन्दम्  
वानन्धनिष्यन्मसिल्लोकनयानाम् अंगमिव संगृहीततापकैः अनुपमगुणैः  
मन्दिरं रामवन्मकलोक्यामात ।" पृष्ठ ४८

४- रामकथा पृष्ठ १७

काव्य-प्रतिमा प्रस्त करने का क्वर मिलने पर भी उन्होंने नहीं दिया है । प्रायः सभी गद्य-कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति तथा स्तु-वर्णन को स्थान दिया है किन्तु उन्होंने इन दोनों को उल्लेख नहीं किया है ।

हर्म कवि ने न राजा कश्यप का और न तीनों रात्रियों का सविस्तर वर्णन किया । नर-शिल वर्णन करने की प्रवृत्ति भी हर्म नहीं है । केवल तीन रात्रियों का नाम गणना ही गई है । काशुला और सुमित्रा के वर्णन में केवल एक ही अंकार एक का प्रयोग किया है<sup>१</sup> ।

नायक के जन्म में देवी कृपा वर्णित अवश्य की है किन्तु जन्म के पूर्व होने वाले स्वप्न की विशेषता को नहीं बताया है । पुराणों के जन्म में नहीं तक कि नायक के जन्म में भी कवि ने कोई उल्लेख नहीं दिखाया है । नायक-जन्म का वर्णन इस सम्बन्ध में देता जा सकता है --

“उपगतवति मासि कनने, रजनिचरतिमिरनिकर काल्ये  
गच्छमार्गल्यमये समये, रात्रः प्रथममहिषी विगलितदोषानु-  
ह भंगम् अपात कर्कशुमेगम् अविरत विशारितते जसम्  
अपरमिव चन्द्रमसं रामनन्दमात्मर्जं जगामाह<sup>२</sup> ।”

यहाँ का कई बार वर्णन हुआ है किन्तु सर्वत्र सफलता मिली है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है । राम-रावणयुद्ध शुरू नायक का युद्ध था तथा उसको महत्वपूर्ण स्थान देने के लिए उन्होंने उसके युद्ध का सविस्तर वर्णन किया है ।

नगरों में उन्होंने ज्योध्या और लंका का ही वर्णन किया है । ज्योध्या-वर्णन में कवि अपने पूर्ववर्ती गद्य-कवियों से प्रभावित हुआ है । वर्णन की शैली बाण जैसी है उसके वर्ण्य-विषय उस नगरी की भविकता, धनसम्पन्नता, सूर्यवंशी राजा तथा सरयु नदी हैं । एक छोटे-से अनुच्छेद में यह वर्णन प्रसन्न समाप्त हो गया है<sup>३</sup> ।

लंकापुरी के वर्णन में केवल चन्द्रशाला, शिव, प्रासाद, हर्म, का एक संक्षिप्त में किया कोई शीघ्र ही वर्णन करके प्रसन्न समाप्त कर

- १- रामकथा पृष्ठ ३  
२-     ,,    पृष्ठ ५  
३-     ,,    पृष्ठ २

दिया है। उनके वैभव-वर्णन में भी केवल चन्द्रकान्त मणि का ही उल्लेख किया है<sup>१</sup>।

इसी प्रकार राजा प्रशास का वर्णन है<sup>२</sup>। क्यावस्तु के प्रारम्भ करने को विधि के लिए कहा गया है कि कवि गद्य कवियों की परिपाटी का अनुकरण कर रहा है। प्रारम्भ में चार श्लोक आए हैं। प्रथम में गणेश-स्तुति, दूसरे में आशुकाता आदित्यवर्मा और तीसरे में काव्य लिखने की प्रेरणा का उल्लेख करके जयधरा का वर्णन करके मुद्रास्था पर आ गए हैं।

इस प्रकार इनके काव्य में केवल कथा का प्रधानता है। उसके विकास के लिए कवि जिन-जिन वस्तुओं (प्रकृति वर्णन, ज्रीड़ा, जन्मात्मिका शिक्षा आदि) को अपनाते हैं उनको स्वीकार करता उन्होंने पसन्द नहीं किया।

'आसफ-विलास' में क्या बिलखुल ही नहीं है। इसमें केवल इतना-ही बात का वर्णन है कि शाहजहाँ काश्मीर जाता है जहाँ का राजा आसफ़ां लुका कहलाता है। इसमें केवल शाहजहाँ और आसफ़ां के गुणों एवं काश्मीर की प्रकृति का वर्णन किया गया है। यद्यपि राजा मुगलपात्र है किन्तु उनका वर्णन हिन्दू राजाओं की भाँति किया गया है।

इस काव्य की क्या की उत्पन्न शिक्षा-प्रता की पैदा कर कुछ लोगों का फलना है कि इसकी क्यावस्तु क्युरी है<sup>३</sup>।

इसकी वर्णन शैली बाण से प्रभावित है। इस काव्य का प्रारम्भ विष्णुविनायक के लिए की गई देवस्तुति से नहीं हुआ है। गद्य में केवल गणेश जी की सामान्य व्यक्ति के स्तान 'श्रीगणेशनाथ नमः' कर्तकर नमस्कार कर दिया गया है जिसे कोई सरलता नहीं है। इन्होंने अपने काव्य लिखने का कारण आदि में न देकर जन्त में दिया है।

अन्य गद्य-कवियों के स्तान हस्तिकेता, कवसेता का इन्होंने भी वर्णन आकर्मिक ढंग से किया है किन्तु वे वर्णन अधिकांशतः पद्य में हुए हैं।

१- रामकथा पृष्ठ ३२

२- ११ पृष्ठ २-३

३- पं०का० सं० --जयधरना पृष्ठ ४

इन वर्णनों में सब उन मौखिकता का भा परिचय मिल जाता है ।

इन्होंने उस और प्रकृति वर्णन को भी ध्यान दिया है किन्तु अन्य गद्य-कवियों को भाँति उनमें विशेष उल्लेख नहीं हुए हैं । इसका कारण इनके वर्णन-विषय का अत्यन्त सीमित-प्रायः है । इन्होंने अपने गद्य-काव्य में गद्य-काव्य की सभी विशेषताओं को ध्यान दिया है किन्तु संक्षेप के साथ ।

एक प्रकार अमरत ज्ञानिनी गद्य-काव्यों को यदि कथावस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो प्रायः सभी कवियों ने अपनी कथावस्तु का विकास बाण की पद्धति से किया । कुछ गद्य-कवि ही ऐसे हैं जिनमें ईश्वर वंदना, पूर्व कवियों को प्रशंसा, जितने को प्रेरणा आदि का वर्णन न हुआ हो । राजाजी, उनकी राजधानी, भाषणों आदि सभी का प्रत्यक्ष उल्लेख ही वर्णन है । पुत्राभाव में देवी कृपा को प्राप्त करने की कल्पना को है । बाण के महाशक्ती कृतान्त तथा पुण्डरीक और महाशक्ती के प्रथम-दृष्टिमाह-प्रणय को कल्पना से क्रमशः धनपाल और वामनभट्ट बाण बहुत प्रभावित हैं । बाण की देखा देती ज्ञानिनी गद्य-कवियों ने भी राजाजी अथवा राजकुमारों के भाँज, दिग्गज वर्णन, पुत्र-महोत्सव, दक्षिण, अश्व आदि का वर्णन उत्साह के साथ किया है । कई जन्मों की कथा केवल धनपाल के काव्य में मिलती है ।

उन गद्य-कवियों पर बाण के अतिरिक्त दुबन्धु का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । ओज्य-देव विशेषरूप से दुबन्धु से प्रभावित हुए हैं । त्वंश्वर मंडप की कल्पना करके वहाँ पर आर हुए राजकुमारों की मनोवशा के चित्रण में तथा श्रीशङ्कर की मेलने में दुबन्धु से प्रभावित हैं— देखा प्रतीत होता है । यह कथावस्तु की दृष्टि से बाण से बहुत प्रभावित हुए नहीं परिलक्षित होते हैं । कन्दुब श्रीशङ्कर तथा सुसंजरी के लौकिक-वर्णन में अवश्य दण्डी से प्रभावित हुए हैं -- देखा कहा जा सकता है ।

कुछ गद्य-काव्यों में देखाजी का चित्रण होने से उन गद्य-काव्यों को दण्डी के गद्य-काव्य से प्रभावित कहा जा सकता है । जैसा कि पीछे देखा जा चुका है कि हमें भीम तथा वामनभट्ट बाण जा जानें । भीम का पूरा काव्य

ही वैश्याजों की लोका-वर्ग ल भरा है ।

कलावस्तु के विकास में ये गद्य-कवि प्राचीन गद्य-कवियों के अतिरिक्त पद्य-कवियों से भी प्रभावित हैं । कलावस्तु के निरूपण में स्पष्ट है कि वाचनभट्ट का बाण पर महाकवि काठिन्या तथा भवभूति का भी प्रभाव पड़ा है ।

किन्तु हमारा मानना यह न है ऐसा चाहिए कि उनके साध्य को कलावस्तु के विकास में मौलिकता नहीं है । कहीं-कहीं पर तो कवि बाण आदि से प्रभावित होकर उनके ही तथ्य-विषय लिए हैं किन्तु उन्होंने उन्हें अपने कलात्मक-सहित में तथा कर्कारों को सुचित योजना करके वित्तीय साध्य का दिया है । कहीं-कहीं पर कलावस्तु में नवीनता लाने के लिए कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु उनके कथन-प्रसंग क्लिष्ट ही गये हैं । कहीं-कहीं पर कवियों की कलावधानियाँ भी मिली हैं मिली कलावस्तु लिखी ही जाती है । किन्तु ऐसे गद्य-काव्य का आकर्षण नष्ट नहीं हो जाता ।

द्वितीय अध्याय

गद्य-काव्यों की शैली

-०-

## काव्य-रचना की शैली

काव्य-रचना को समर्थन रहते हुए भी यदि कवि की शैली उपयुक्त नहीं होती है तो उसे काव्य-रचना में आधारभूत अफजला मिलती है। क्योंकि शैली अभिव्यक्ति का वाहन होती है उसके द्वारा वह अपने विचार प्रकट करता है। यदि उससे विचार स्पष्ट न हुए तो पाठकों के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और कवि को यह तीव्र पच्छा रहती है कि उसका काव्य, उसके विचार सहृदय के बीच मान्य हों। इसके लिए कवि को अपनी शैली को और विशेष ध्यान देना पड़ता है। शैली में कवि को भाषा शब्द-चयन, कर्तारों के प्रयोग छन्दों के प्रयोग की ओर ध्यान देना पड़ता है। उसकी श्रेष्ठ कानों के लिए औपस्थिता, लचीलापन, प्रौढ़ता, प्रभावशालिता लानी पड़ती है। शब्दों के चयन पर ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि प्रत्येक शब्द से भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। उदाहरणार्थ रुद्र शब्द का प्रयोग शिव के प्रकृतिकारी अथवा भयंकर रूप को कानों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसी प्रकार कवि को शब्दों की शुद्धता पर ध्यान रखना पड़ता है, अप्रसिद्ध, अप्रयुक्त, अस्मर्थ, अवाचक, अपुष्टार्थ, निहितार्थ आदि जैसे शब्दों से सावधान होना पड़ता है, वाक्य-विन्यास की भी शुद्धता, रोचकता, संक्षिप्तता, प्रभावोत्पादकता आदि की ओर ध्यान देना पड़ता है, समन्वयता लाने के लिए ग्राम्यत्व, अश्लीलत्व आदि दोषों से सावधान होना पड़ता है, कर्तारों की समुचित योजना करनी पड़ती है क्योंकि इसके द्वारा सहृदय के हृदय-मटल पर तत्काल एवं प्रभावपूर्ण चित्र अंकित हो जाता है तथा प्रसंगानुसृत ध्वनि-योजना करनी पड़ती है। क्योंकि सुमधुर स्वर-योजना रचनाओं में नाद सौंदर्य की अभिवृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त कवि को वृत्ति काव्य की आत्मा रस होती है अतः रस तथा भावों की सफल अभिव्यक्ति की ओर ध्यान रखकर शैली के रूप में परिवर्तन लाना पड़ता है। जो कवि इसका आस्वादन नहीं करा पाता उसका काव्य काव्य नहीं रह सकता। अतः कवि के लिए शैली की सार्थकता रसानुभूति कराने में ही होती है। कवि



शैली के माध्यम से कवि का काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करता है । अतः कवि को बली शैली में भाव पदा और कला पदा का सम्बन्ध रखना पड़ता है ।

संस्कृत आचार्य काव्य के 'शैली' तत्त्व का वे अनभिज्ञ नहीं रहे हैं । वे इसकी चर्चा 'रीति' और 'मार्ग' नाम देकर करते रहे । दण्डी और भोज ने इसे कवियोगन मार्ग बताया -- 'अस्त्वमेको गिरां मार्गः सुदममेवः परस्परम्' (दण्डी), 'रिदं गताविति' (भोज) जो स्पष्ट प से कवियों के अभिव्यक्ति प्रकार (शैली) को और संकेत करती है । डा० नगेन्द्र ने रीति और शैली में अन्तर नहीं माना है । उन्होंने शैली को व्युत्पत्ति 'शौछ' से बताया है<sup>१</sup> जिसका अर्थ 'स्वभाव' होता है और स्वभाव को व्यक्त करने वाली शैली होती है । दण्डी भोज सुन्तक आदि की दृष्टि से रीति में भी स्वभाव को अभिव्यक्त होती है । डा० नगेन्द्र ने शैली के दो प्रमुख तत्त्व-व्यक्तित्व और परस्तुतत्व बताते हुए कहा है कि रीति का 'परस्तु-तत्व' से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । क्योंकि शैली के जो छन्दस्वर छान्दित्य आदि गुण पाश्चात्य विद्वानों ने माने हैं वे सब रीति के वर्ण गुणों और शब्द गुणों के अन्दर जा जाते हैं । शैली के 'व्यक्तित्व' के सम्बन्ध में इतना ब्यर्थ कहा जा सकता है कि रीति में व्यक्तित्व की कल्पना नहीं हुई है किन्तु वर्तमान रूप में जो शैली के सम्बन्ध में 'शैली विचारों का परिधान है' उपयुक्त शैली का प्रयोग<sup>२</sup> 'व्यक्तित्व का प्रकार है' जादि कहा जाता है उर्ध्व 'व्यक्तित्व' की प्रधानता अधिक परिलक्षित होती है । इसी दृष्टि से ही डा० नगेन्द्र ने रीति और शैली में अन्तर देखा है अन्यथा नहीं<sup>३</sup> । डा० सुशीलकुमार डे ने जो दोनों में अन्तर देखा है उसको भी डा० नगेन्द्र ने इस आधार पर निरर्थक कर दिया<sup>३</sup> ।

संस्कृत आचार्यों ने काव्य में तीन प्रकार की शैलियाँ अर्थात् रीतियाँ को अधिक स्वीकार किया है । वे रीतियाँ वैदर्भी, गौडीया और पांचाली हैं । इनके नाम ऐसे पड़े— इस विषय के प्रति संस्कृत आचार्य मारम्भ से ही

- १- भा० का० शा० मु०— डा० नगेन्द्र पृष्ठ ५३  
 २- " " " " " " पृष्ठ ५३-५५  
 ३- " " " " " " पृष्ठ ५४

बड़े जागड़क रहे । भरत आदि को रीतियों के नामकरण में अपि प्रादेशिक आधार प्रतीत होता है किन्तु यह आधार फिर स्वीकृत न रह सका । बामन ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि उन रीतियों का नाम देशों के आधार पर नहीं है अपितु वैदर्भ, गौड और पांचाल देश के कवियों ने वैदर्भों, गौडीया और पांचाली रीतियों का वा तथिक हर्मों में प्रयोग किया है<sup>१</sup> । इस प्रकार तत्त्व रूप से रीतियों को पहले से कहा की --प्रदेशानुसार नाम बाद में पड़ा ।

डा० गणेश ने रीति को द्रव्य के स्मान कल्याय विशेष को उक्त नहीं बताया है ।<sup>२</sup>

रीतियों के इस आधार के अतिरिक्त रुद्रट और आनन्दवर्धन ने स्मास का आधार भी माना है । रुद्रट ने लघुस्मास वाले रीति को पांचाली, मध्यस्मासवाले को लाटीया और दीर्घस्मास वाले को गौडीया बताया । आनन्दवर्धन ने लाटीया को नहीं माना<sup>३</sup> ।

राजेश्वर ने स्मास और अनुप्रास को रीतियों का आधार माना--

वैदर्भों	पांचाली	गौडी
अस्मास	द्वेषद स्मास	स्मास
स्थानानुप्रास	द्वेषद अनुप्रास	अनुप्रास <sup>४</sup>

भोज ने गुण और स्मास को आधार बताया है और अग्निपुराण में रीतियों का आधार स्मास, उपवार और मार्यक बताया गया है<sup>५</sup> ।

कुन्तक ने कविध्वभाव को आधार माना और उसके नाम सुकुमारमार्ग, वैचिह्यमार्ग और मध्यमार्ग बताये ।

रसध्वनिवादी आचार्यों ने रीतियों का सम्बन्ध कथा और रस से करके उनका आधार वर्ण बताया । क्योंकि वे रीति को रस की अभिव्यक्ति का साधन और गुणों को रीति का आन्तरिक तत्व मानते हैं । अतः इन कवियों ने गुणों के वर्ण निश्चित कर दिए हैं । इन आचार्यों ने वर्णों के

१- मा०का०शा०भू० -- डा० गणेश से उद्धृत पृष्ठ ४१

२- " " " " पृष्ठ ४१

३- " " " " पृष्ठ ४५

४- " " " " पृष्ठ ४६

५- " " " " पृष्ठ ४६

विविध स्मार्तों को भी आधार बनाया । अर्थात् वेदों रीति में माधुर्य व्यंजक वर्ण तथा स्मार्तरहित वाचा छोटे-छोटे स्मार्तों को ग्राह्य बताया गया, गौडीया रीति में ओज्जुण व्यंजक श्टोर वर्णों तथा दीर्घ स्मार्तों को भी आधार को नहीं तथा पांचांगी रीति में वे वर्ण ग्राह्य बताए गए जो न माधुर्य के व्यंजक हैं और न ओज्जुण के, तथा स्मार्तों में पांच ः पदों तक के स्मार्तों को उपयुक्त बताया गया<sup>१</sup> ।

चूंकि माधुर्य जैसे गुण दुंगार, करुण, विप्रलम्ब और शान्त के लिए उपयुक्त होता है अतः वेदों रीति का रूनी से अधिक उपेक्ष्य होता है, तथा ओज्जुण वीर, बोधत्वा, रौद्र रस के लिए उपयुक्त होता है अतः गौडीया इन प्रसंगों में तथा गुर्दा के वर्णन में अधिक उपयुक्त होती है ।

संस्कृत गद्य-काव्य के लिए यद्यपि आचार्यों ने स्मार्तसुषिष्ट और ओज गुण को प्राण तत्त्व के रूप में लिया है किन्तु उन्होंने इसके बन्कर में पङ्कर भावों का अपकर्ष करना कवियों के लिए श्रेयस्कर नहीं बताया है । बाण ने सर्वत्र भावानुक्रम अपनी शैली रखकर असाधारण सफलता बसाई है ।

एक प्रकार से बाण गद्य-काव्य के जन्मदाता हैं । उन्होंने गद्य-काव्य को समासा, अस्मासा, अत्यन्तमासा और श्लोक-सन्वित शैली बताई है किन्तु चौथी शैली को गद्य-काव्य के लिए बहुत उपयुक्त नहीं बताया । अतः उनकी रचना में केवल तीन प्रकार की शैली मिलती है । श्लोकों को स्थान गद्य के बीच में नहीं मिला है । प्रारम्भ में श्लोकों का प्रयोग करना गद्य-काव्य की एक विशेषता ही है ।

किन्तु आर्यवीर गद्य-कवियों ने अन्तिम इस शैली को बहुत स्थान दिया है । इसका कारण यह था कि इन कवियों ने बाण को अत्यन्त कष्टसाध्य शैली का अनुसरण करना तो चाहा किन्तु उसका निर्वाह आदि से अन्त तक न कर सके । अतः इस प्रकार की शैली के अमान्य होते हुए भी वे वर्णन-प्रसंग में पदों को स्थान देकर उस शैली को अपनाते जा गए ।

उन्होंने बाण की शैली में से स्मार्तसुषुक्ता को लेकर अपने काव्य की श्लिष्ट बनाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया । यहाँ तक कि

के तत्र उन्होंने वर्णन को नोकर कर दिया । यद्यपि वह दुःखता बाण की  
 रचनाओं में भी है जिससे सिद्ध होकर उनकी रचना के लिए वेबर ने उनके  
 कवियों को उमा भवानक जंगल से जो भी किन्तु उनके काव्य में सरलता  
 नष्ट नहीं होने पायी है । उनके काव्य में यत्र तत्र पढ़ने से जो ऊब-सी  
 होती है वह प्रावण्यता से अधिक वर्णन के कारण ही होती है । वेबर ने  
 बाण की जो जालीकता की है वह स्वाभाविक भी है । क्योंकि पाश्चात्य  
 विद्वानों की दृष्टि में शैली के गुण स्पष्टता, स्वच्छता, लघुता, लालित्य,  
 उत्साह या प्रोत्साहकता, लय, मर्मरसिता आदि गुण माने गए हैं और  
 दोष समासों का बाहुल्य, अप्रचलित शब्दों का प्रयोग, दीर्घ, अनुपयुक्त और  
 अधिक विशेषणों का प्रयोग तथा दूरान्ध स्व अनुपयुक्त शब्दों के प्रयोग  
 माने गए हैं<sup>१</sup> । सरलता के ठीक विपरीत संस्कृत गद्य-काव्य को विशेषता मिलती  
 है । जो उनके यहाँ शैलीगत दोष समझा गया वह यहाँ अप्रचलित शब्दों का  
 प्रयोग तथा अनुपयुक्त विशेषणों का प्रयोग छोड़ कर काव्य को विशेषता के  
 रूप में अपनाया गया । यद्यपि समासों को इस काव्य में प्रधानता मिली है  
 किन्तु संस्कृत आचार्यों ने शैली का एक गुण 'प्रसाद' होना भी माना है जो  
 वेदों की रीति में पाया जाता है । उत्तुण को भी गद्य-कवियों ने अपनाया है  
 किन्तु अधिकांशतः भावपूर्ण स्थलों पर । वर्णनप्रधान स्थलों पर तथा प्राचीन  
 तथा अर्वाचीन सभी गद्य-कवियों ने विशेषण विशिष्ट समासाच्छन्न शैली का  
 प्रयोग किया है । अर्वाचीन गद्य-कवियों में कुछ गद्य-कवियों ने बाण की भांति  
 समास से धीरे-धीरे अस्मात् शैली में जाने का प्रयत्न किया है और कुछ ने  
 आदि से अन्त तक एक-सी शैली रखी है । कुछ स्थलों को छोड़कर भोज ने  
 जहाँ सौरी शैली अपनायी है वहाँ शैली में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं  
 किया है जिससे वर्णन प्रसंग में नोरमता आ गयी है । बनगाल की भांति यह  
 शैली मानसिक उद्वेग उत्पन्न करने वाली है । उन्होंने इस शैली का वर्णन  
 अधिकांशतः पर्वत, मठ, मन्दिर, गृह आदि के प्रसंग में किया है । वेसे वे  
 वेदों शैली को श्रेष्ठ मानते हैं । जोइयदेव की समासाच्छन्न शैली कहीं-कहीं  
 रस की चर्चणा में बाधक भी है ।

इन कविताओं की शैलीगत समानता को देखकर जालीबर्तों ने 'बाणवीरचरित' का 'सर्वर' कहना शुरू कर दिया जो बाद के गण-कवियों के लिए बड़े खतरा था। वामन भट्ट बाण ने इस चरित को दूर करने का यथेष्ट प्रयत्न किया और अन्य कवियों का अपेक्षा अधिक सफल हुए।

जिस प्रकार प्राचीन गण-काव्य में दण्डों की शैली भिन्न है उसी प्रकार अर्वाचिन गण-काव्यों में वाग्देव की शैली भिन्न है। वाग्देव दण्डों की शैली से अधिक प्रभावित है क्योंकि उनके काव्य में दण्डों के काव्य का अर्थ नहीं है।

### मौज की शैली--

मौज की शृंगार मंजरी को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बाण की शैली से बहुत अधिक प्रभावित है। राजा, नगरी, मन्ववारा-गृह, प्रकृति-वर्णन आदि में इनकी शैली वही है जो बाण की है। अर्थात् इन प्रसंगों में विशेषण विशिष्ट दीर्घ समायाच्छन्न शैली को प्रधानता है। बाण ने विशेषण विशिष्ट शैली बनाई अवश्य है किन्तु बहुत अधिक समासों के चक्कर में पड़कर अपनी शैली की विशिष्टता बनाकर वर्णन-प्रसंग की सरलता को नष्ट नहीं कर दिया है। उन्होंने अपनी शैली में उतार-बढ़ाव रखा है। वे प्रारम्भ में अवश्य दीर्घसमायाच्छन्न वाक्यों वाली शैली का प्रयोग करते हैं किन्तु उनकी शैली मध्य में अल्पसमास वाली तथा अन्त में प्रायः समास शून्य शैली हो जाती है। किन्तु मौज की शैली में इस प्रकार की विशेषता बहुत कम परिचित होती है। उनके अविर्काशतः वर्णन प्रायः एक ही ही शैली में रहते हैं जिससे उनमें पर्याप्त मात्रा में विशिष्टता आ जाती है और पाठक को मात्रिक पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है। एक प्रकार से बेबर आदि पारश्वत्य विद्वानों ने बाण की इस शैली के सम्बन्ध में जालीबर्तों की है वह मौज के लिए एक प्रकार से अधिक समीचीन प्रतीत होती है। क्योंकि इस काव्य के वर्णन प्रधान स्थलों में पाठक को फा-फा पर दीर्घकाय एवं विशिष्ट वाक्य की पंक्तियों का सामना करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रसंग नीरस हो जाते हैं।

एक काल में समाजाच्छन्न शैली के अतिरिक्त छुकावा वाक्यों में परिपूर्ण शैली मिलती है<sup>१</sup>। इस प्रकार की शैली उपदेशात्मक शब्दों एवं विषयमश्लेषा द्वारा कही गयी कथानियों के प्रारम्भिक शब्दों में अधिक उपलब्ध होती है। इस शैली का हम कुछ व्यौहिकित्त पंक्तियों में देना जा सकता है --

'वत्स, गौर्वं नामतिगहनन्वत्सः, दुःपरिहारं तर्ज्वप्राणिभिः।  
दुःसौल्यमदनः, त्वोन्मादैरायतनं च विभवः । नन्दिनादल निपतति-  
जलद्वय तल प्रकृतैव मनः । ... तन्माव वहितेन न्यया त्वानुवायिव  
धेय्या कथयतेभ्यः ।'

### अथवा

वत्सव्य सुपिनपुर नाम नख् । तत्र च मजायनः शौचिगो  
नहाव ब्राह्मणः लोमदती नाम । तेन च विजय नय्कमीप्रति-  
विधानेनाभोष्टायैव प्रथितास्माराद्य पश्चिमव्यति सुखाप्यत् ।<sup>३</sup>

किन्तु प्रत्येक कथानिका में अपनी शैली समाजों से आछान्त हो गई है। अधिकशतः जहाँ प्रकृति के कथा छत्त आदि के वर्णन जा है वहाँ कवि ने इसी प्रकार की अछलष्ट शैली अपनाता अधिक नसंद किया है। रविदत्त कथानिका में कान्त वर्णन, विक्रमसिंह कथानिका में कर्वा, माधव कथानिका में शरद् श्चु, सुरधर्म कथानिका में सुड, देवदा कथानिका में अश्व-वर्णन, लावण्य सुन्दरी कथानिका में हाथी तथा भूनादय चन्द्रादय, कुटुनावन्त कथानिका में ग्रीष्म, तथा विन्ध्याटवी, स्वानुरागकथानिका में रात्रि के वागमन तथा उसके अन्त होने, लभयानुराग कथानिका में ऐमन्त, सप्यकथानिका में कान्त, मलयसुन्दरी कथानिका में पर्वत, और मूलदेव कथानिका में ग्रीष्म श्चु का वर्णन इसी प्रकार का है।

कवि की समाजाच्छन्न शैली का हम व्यौहिकित्त पंक्तियों में देना जा सकता है --

१- शूणारो पृष्ठ १६, २६, २८, ३०, ३५, ४१, ५६, ६६, ७३, ७८, ८१, ८४।

२- ,, पृष्ठ १६-२०

३- ,, पृष्ठ १६

सद्वृत्तकामिनादामान कटकाकल्पन्तःपारवागाहितामो रक्षु-  
कुहर, अत्युन्नत शिखर कोटि संवत्तदधरविम्बता एजनिच्छत्र -  
धारिष्योत्तिष्ठापमाणधवलतपनमिवोफलस्मागम्... । इत्यादि ।

इन्हें देखें नहीं कि इन वर्णनाय ज्यों में कवि को सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का एवं काव्य-प्रतिभा का निहार देखने को मिलता है, एक-दो ज्यों को छोड़कर उनके काव्य में पुनरावृत्ति भी नहीं मिलेगी । कहीं-कहीं पर विषयों का पुनरुक्ति प्रतीत होती है किन्तु वहाँ पर भी वर्णन को नवीनता रहती है । उदाहरणार्थ कव्यन्तःपु का वर्णन कवि ने दो बार किया है और दोनों दो बार रात्रि के छोटे तथा दिन के बड़े होने का वर्णन किया है किन्तु एक नवीनता के साथ —

की हे नाम प्रयजन वियुक्तैः कामिष्यन्माकमायाति  
गह्वरति अतिरुपायेव कृत्स्मानभागात्<sup>१</sup> चन्तोऽङ्ग रज्जोऽङ्ग,  
जाः कर्मणंजाभवे निस्त्रिस्तुल्यामन्थमि मधुसमे जलदागमनारम्भे-  
उज्जातितरां दुग्न्ते धियोगिन इत्स्तुल्यादिवोफ्णाकमानसायप्रतरेऽङ्ग  
वासरेऽङ्ग ।<sup>२</sup>

ज्योत्स्नया प्रधाश्रानमालोक्य शश्वरीष्यैव प्रतिवासरं  
तरिमान्भागचन्तोऽङ्ग रज्जोऽङ्ग, अतिनिबिडतर तुष्टिना-  
तिष्यमगनादिव संकोक्तुत्तृजत्सु वासरेऽङ्ग ।<sup>३</sup>

इसी प्रकार शरदःपु का वर्णन में कविवीरकिर्णार्ण की उन्माधियोगिनी के देते समय जिन - जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है वे ही विशेषण कव्यन्तःपु वर्णन में भी लिए गए हैं किन्तु शरदःपु के वर्णन में उस धियोगिनी के उन्मा दो गया है जिसका स्वयंभू नष्ट हो गया है और कव्यन्तःपु में ऐसा नहीं है ।<sup>४</sup>

कहीं-कहीं पर कवि के शब्दमण्डार की व्यापकता भी दिताया देती है । उदाहरणार्थ कौलिलित उद्धरण में कवि ने 'प्रथम' शब्द के प्रतिपादक

- १- शृंगारः पृष्ठ ७८
- २- " " पृष्ठ २१
- ३- " " पृष्ठ ७६
- ४- " " पृष्ठ ६७
- ५- " " पृष्ठ ७६

कई शब्दों का एक वाक्य में प्रयोग करके जपना शब्दराशि का परिचय दिया है । --

मनुप्रभाकारे प्रभुत्करिणाकुं भुक्तुज्जनाधि, जनन्तरं  
जहकारकाननानि । ज्ञाद्येव जतमनोरथां त्वास्तिरागं  
कामिनोनां हृद-मुपदर्शयति, परञ्चावशोऽतर्ह (F. 125 B. )  
काशिकाः । प्रागेवाहुरागं अशाश् निकां प्रतिकामिनोनां  
नयनानि मुकुल्यति, तदनुष्मलिनोवनानि । प्रारम्भ एव  
विरक्तिणो हृदयानां मेघमातन्वाने, परतः खवोरुदगर्भान्यानाम्  
प्रुस स्वान्यकारो हुवंन्ति कामिणनहृदयानि, जवान्मधुकरकुटः  
कुमुकाननानि ।<sup>१</sup>

किन्तु ये सब होते हुए भी उनको भक्तिष्क की श्रेष्ठा देने वाली यह सखी शब्दों की अनुभूति कराने में बाधक बन जाती है । यही कारण है कि बाण की भांति कवि ने यहाँ भी गिन्ज्याटवी के रम्य ढाँच भयावह चीनों रूप जपनाया है किन्तु उनके दृश्य-निर्माण में स्वशेष उपाह नहीं हो पाया है । यहाँ पर हाथियों के मुख का वर्णन करने से उनका वर्णन कालील भी हो गया है ।<sup>२</sup>

कवि के वर्णन में अनु संकलन करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । रिपुदत्त<sup>३</sup> नामक हाथी तथा चारा नगरी के पुरवाशियों के वर्णन में कवि की यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा --

ग्रीष्म एव प्राप्यशुक्तिर्ममः , प्रवद समय (F. 5 \* B )

व्यादृष्टोऽग्रकरः, शरत् समय एव निर्मलान्धररुणिः, तुहिनतुरिव  
मदा समक्षिमापिकाः, शिशिर एव त्वंदा तापरश्चितः<sup>४</sup> ।

- १- शृंगार० पृष्ठ ७३  
२- " पृष्ठ ५१  
३- " पृष्ठ ४७  
४- " पृष्ठ ३  
५- " पृष्ठ ३



जिन शब्दों में कवि भाषण समासाच्छन्ने शब्दों के चक्कर में नहीं पड़े हैं वहाँ वे श्लेष व चित्र उपस्था करने में सफल हुए हैं । कवि ने प्रातःकाल लौकर उठे हुए मधिर्यों का स्वाभाविक चित्र उपलब्धा के साथ चित्रित किया है --

‘प्रसुत्तरितःतौक लोके हंस्तानां निद्राकौषीणो-  
न्निव कलमपमपुटतया किंचि पुन्नास्ति दृशां स्वाभङ्गुक्ति-  
गात्रप्रपरो लुक तथा च मुहुर्मुहोपेधुतवक्तिमावीनामुद्यो-  
मगच्छतां तप ह्युत्तानां धानाश्रयति तह रिसरान्तराणि<sup>१</sup> ।’

कवि ने काव्य में प्रभावोत्पादकता लाने के लिए संवादों का आश्रय लिया है<sup>२</sup> । जहाँ संवाद का आश्रय लिया है वहाँ ध्वनों का अच्छा निहार मिलता है । उदाहरणार्थ --

“लावण्यसुन्दरि । मार्गी मा प्राक्षीः । त्वं हि  
मम जनी भवसि ।’ या तु शकुलवादीव -- ‘रत्नदा ।  
किमेतव ?’ रत्नदावतां पुनरवादीव ‘किमन्य ? त्वं हि-  
मत्प्रमोदीराः , तदभवत्तु पूर्वै, उगविश्वताव ।’ ....<sup>३</sup> ।

‘उक्तं वेत्ता-‘प्रियंगिके । कुतो भवती ?’

प्रियंगिका-- उज्जयनीतः । अर्वागिके । भवती पुनः कुतः ?

उर्वागिका -- इतो ग्रामाव । ....<sup>४</sup> ।

इस प्रकार के संवादों में उनके काव्य में नाटकोक्ता जा गयी है ।

विभिन्न अलंकारों को अपने काव्य में स्थान देने के कारण कवि को श्लेष अलंकार भी कही जा सकती है । कहीं-कहीं बिना अलंकारों के भी कवि ने चित्रण सफल किया है किन्तु मकरन्दिका नामक केशवा की वियोगावस्था के चित्रण में इनकी अलंकारों से विहीन भावो श्लेष सफल नहीं हुई है । उस

१- शृंगार ० पृष्ठ ६०

२- ,, पृष्ठ ३०, ३५, ४८, ५५-६६ अन्यत्र भी ।

३- ,, पृष्ठ ६५

४- ,, पृष्ठ ३३

प्रयोग को कुछ संश्लेषण देना या बताना है --

उत्कृष्टमुत्कृष्टता, उत्कृष्टानि उत्कृष्टेण,  
रणरणवानि उत्कृष्टेण, रणरणवानि रणरणवेन,  
उत्कृष्टं तदुत्कृष्टितैः, निःस्वमितं निःस्वमितैः, ... । इत्यादि ।

इस व्यवस्था के निष्पन्न में उन 7 काव्य पुनरुक्ति दोष से आक्रान्त  
भी हो जाता है । जैसे --

दुःस्वपि दुःस्वपितं, जातिरप्यातिमुहति,  
स्वेदीऽपि विपत्ते, उन्नाशोऽप्यनुमप्यते, जलमप्यनुमप्यते  
पिबन्नापानान्नम्, स्वेदीऽपि विपत्ते, तदुत्कृष्टं ( F. 142 A )  
किरमुत्कृष्टरति, रत्नस्त्रीऽपि रत्नकिरुः रत्नस्त्रीऽपि  
रत्नस्त्रीः, <sup>2</sup> जाति का वर्णन पृष्ठ 22 पर भी आया है ।  
शब्द भी देखे जा सकते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य  
उपरोक्त उदाहरण में कवि के कुछ प्राकृत, <sup>1</sup> प्राकृत श्लोक भी आते हैं --

शिंशासंजरीं पाविकुण देवीं सारण्यं ऊण ।  
मयसंपाणम + + + ॥  
शिंशासंजरीं पाविकुण देवीं उग्रं वाणोर ।  
गौहन्ग-जग-वडाया + + + ॥  
+ + ऊणं जग कहियहु शिंशासंजरी उग्र ।  
पिय गौह(न्ग) वडाया + + + ॥  
(शिंशासंजरीं पावि) ऊणं वाणोर मणहाराये वि ।  
कण्णगवयंरगोहामी + + + ॥

"वाह र कुहुड वावर, रम्हु रियंतहुऊणउ नास" ।<sup>8</sup>

जबना जाणइ तथा जक्क जैसे कुछ देशीय शब्दों का भी कवि ने  
प्रयोग किया है ।

काव्य में अप्रयुक्त शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है ।

- 
- १- शृंगार० पृष्ठ 22  
२- " " पृष्ठ 23  
३- " " पृष्ठ 24  
४- " " पृष्ठ 25  
५- " " पृष्ठ 27  
६- " " पृष्ठ 28

उदाहरणार्थ वजा के लिए कवि ने 'पुणराके' शब्द का प्रयोग किया है --

'प्रपञ्च (पुणराके) अति-वर्णितः काः गला-मानैः ? ।'

जानना है कि 'रानी दाताम्' शब्द का प्रयोग सही है।

वाच्य गति पूर्वकाँ कवियों के ढंग पर नीज भा कर्तारियों के आदि  
रचना तथा कव्या क्त में छोटे-छोटे किन्तु आरामित वाक्यों के प्रयोग से अना  
रंता में मनोरंता तथा मन्वीरता है वाच्य है । उन वाक्यों को 'सूक्ति' भी  
कहा जा सकता है । वाच्य में वाच्य कुछ आकर्षक सूक्तियाँ अपोलित्वि है --

'स्य अथाप्रादिव प्रेम्णः भावमानता स्वदेवात्मा रक्षायाम् ।' (पृ० ११६)

'रामो वयाप्र ख दुरतः परिधारणोवः ।' (पृ० ७२)

'अतिमां शिलाः पुरुषाः कौपवशान् च तददित यन् कुर्वन्ति' (पृ० ७३)

'कमला हि पुरुषाः तन्नाति यन् कुर्वन्ति' (पृ० ७८)

'मिच्छो हि नाम क्रिमिकलाधनं सुखायुक्तं ज्ञातोऽर्थव्य तन्ततेऽथ  
मूलयुताः ।' (पृ० ८४)

'गाहैरुष्यं हि मितिला कर्तव्युत्तर ।' (पृ० ८४)

'यीकं नामासिाहनमन्वतमः दुष्परिहरं सुखीप्राणिभिः ।' (पृ० ११६)

'नलिना इजनिपतित जलवतरलं प्रकृत्येव मनः ।' (पृ ०१६)

'हुदान्निरिखदुर्धाराणि वैन्द्रियाणि ।' (पृ० ११६)

इस प्रकार मौज ने अपने काव्य में सूक्तियों को बहुत अधिक स्थान  
दिया है । काव्य के अध्ययन से जता जता है कि कवि मौज ने कर्तारों को  
व्यक्ति होने के कारण वैदर्भी तथा कर्तारों<sup>के</sup> अरहित तथा लुकाय वाक्यों का  
प्रयोग होने से वैदर्भी शैली को ही अपनाया है । जतः उनके वर्णन या तो  
अत्यन्त दुष्कर हो गये हैं अथवा अत्यन्त सरल । मध्यम स्तरा शैली का यत्र तत्र  
ही प्रयोग मिलता है किन्तु सौ प्रयोग अत्यन्त उत्तम हैं जिन्हें नहीं के बराबर कहा  
जा सकता है । बहुत कवि आरामपुमिष्ठ शैली के बनाने में सफल नहीं कहा जा  
सकता है किन्तु उनकी लुकाय शैली वर्णन में सफल हुई है । <sup>और</sup> उत्तरी कविके  
काव्य में सरलता जा गयी है ।

- १- आार० पृष्ठ ५०
- २- " " पृष्ठ २४

धनपाल शैली--

जैसा कि धनपाल के गण-काव्य 'तिलकमंजरी' की कथावस्तु में देस चुके हैं कि यह बाण से बहुत अधिक प्रभावित है। कथावस्तु में प्रस्तुत करने का ढंग बाण जैसा ही है बाण ही कवि को विन्तर के साथ वर्णन करने की प्रवृत्ति भी वहीं स्थलों में मिलती है। कहीं-कहीं ये वर्णन आवश्यकता से अधिक लिख्य हो गये हैं। ऐसे प्रसंगों में कवि ने बाण की समासाच्छन्न शैली अधिकांशतः अपनाई है किन्तु वह उम्का सम्बन्ध निर्वाह नहीं कर सके। वर्णन-प्रसंगों में समासों की अधिकता कथा-कथो उनके सौंदर्य को नष्ट कर देती है। इस प्रकार के वर्णन अधिकांशतः प्रकृति के सौंदर्य-वर्णन में जाते हैं। जैसा कि इस काव्य के प्रकृति-निर्माण के सम्बन्ध में वैशेषिक कर्कराजि के प्रयोग से कवि ने उसको आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया है किन्तु इस शैली ने उसके प्रयत्न पर पानी फैल दिया है। प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त यँदिर एवं मठ आदि के वर्णन में भी इसी प्रकार की शैली मिलती है। कहीं-कहीं इनके समासाच्छन्न वाच्य माधारण वाच्य न होकर आवश्यकता से अधिक दीर्घ हो जाते हैं।

शैली --

कृपाणचक्रप्रातपट्टिप्रायप्रहरणदुरालोकभिरा-  
लोक्यमानविविधध्वजच्छत्रामरीइडामराभिरनेकफ्या-  
णपीठपर्यककटकिरीटगर्भाभिर्विहारकालोपयुक्तवस्तु-  
संभारनिक्षेपपक्षपाभिरुभयता... दृश्यानाभिनवशाहा-  
गिरिसंस्कारमपुराणमप्युफलभ्यमानविविधवामनकिरातवरित-  
मुदंष्ट्रकांचनकलशचक्राङ्गान्ताकिटोग्रुटैस्तुषारगिरिशिरो-  
भिरिव ।<sup>१</sup>

कवि की इस प्रकार की शैली स्वाध स्वयं पर ही एकल कहा जा सकती है, अन्यथा कवि को इस शैली में कुछ विशेष सफलता नहीं प्राप्त ही सकी है। इस शैली से सर्वत्र वर्णन-प्रसंग लिख्य हो गया है। ऐसे वर्णन को पढ़ने के लिए पाठक को सावध करना पड़ता है।

स्वार्थों के अतिरिक्त अधीरार्थों के अभाव के कारण भा काव्य के वर्णन-प्रसंग कुछ ही गये हैं ।

कवि का यह विशेषता रही है कि कितने वर्णनाय प्रसंग का वर्णन केवल एक प्रकार की शैली में नहीं करते हैं । दीर्घमाताच्छन्न वाक्य अन्त में आते-जाते लघुकाय भी हो जाते हैं । काव्य श्यों पर काव्य अभाव भा मिल जाता है । वर्णन-प्रसंगों में एक प्रकार का परिवर्तन हो जाने से मञ्जिष्क को आराम मिल जाता है और वर्णन-प्रसंग में सरलता जा जाता है ।

चूंकि यह-काव्य का प्राण तत्त्व औषणुण माना गया है और उसमें स्वार्थों का अधिकता होती है । अतः कवि ने भी उस गुण को अपनाया जिसमें यह एक प्रकार से अकल रहा है, अन्वया कवि काव्य की रीतियों में वेदनी रीति को श्रेष्ठ मानता है और काव्य में त्रिष्टुप्-श्लेष को स्थान देना कित्तुलु कन्द नहीं करता । उनकी दृष्टि में काव्य में वे ही श्लेष प्रशंसाय होते हैं जो सहृदय के लिए मानसिक पीड़ा को देने के हेतु नहीं करते हैं । अतः कवि ने अपनी शैली में उन्हीं श्लेषों को स्थान दिया है । अतः उनके श्लेष न काव्य को कथावस्तु के बाधक करते हैं और न उनकी शैली को त्रिष्टुप् बना देते हैं । उनके विपरीतवेधन तत्र ध्वनि काव्य की पंक्तियों में केना अस्कार वर्णन-प्रसंग में हो जाते हैं । उदाहरणार्थ अधोलिखित उदाहरण में मलयकुन्दरो तपनवेग से कह रहीं है किन्तु उनके ध्वनि समरसेतु से भी कहते हुए निकल रही है --

‘क्रीकृतनायं नायकः । किंतुतिष्ठतु तावदावदहमिहाऽथा ।

अवधानसुखता तुकांभीमध्यगतं गृहीष्याम्येव ।’

इस प्रकार के वाक्य उसकी शैली को ध्वनि-प्रधान बना देते हैं ।

चूंकि कवि वेदनी रीति की काव्य में प्रमुख स्थान देता है अतः दीर्घकाय तथा समागच्छन्न शैली के प्रयोग के वर्णन-विषय निश्चित हैं । जहाँ

१- तिष्ठतु पृष्ठ २५६

२- ,, पृष्ठ २८०

कहीं भी कवि को मानसिक वन्तः<sup>१</sup>, पात्रों की अवस्थाओं, शोकपूर्ण स्थलों,<sup>२</sup> दार्शनिक तथ्यों के निरूपण तथा विविध भावों की अभिव्यक्ति करने<sup>४</sup> की आवश्यकता हुई है वहाँ कवि ने प्रसादनशील शैली को ही अपनाया है। इसके अतिरिक्त जहाँ मात्र एक-दूसरे को समझाने ही वहाँ उसी शैली को स्थान मिला है। इस शैली का रूप अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

भयात्तु किमिदानीं कर्तव्यम् । यदि तावदस्य वचनमनुवर्तमाना  
नरसतिकुसासेनं प्राप्यामि, ततः श्यामलदुर्विषयजनितोद्देगल  
गुरजनस्य कोपो ज्ञापनादर्धमः । जय विन्ध्यतो तस्मैऋषीरयापि,  
ततोऽस्य जातिमात्रव्यवहितस्य<sup>३</sup> चात्यन्तमरक्तं च राज्ञुतोऽस्मानना।

..... ।

कहीं-कहीं तो मानसिक दशा के चित्रण में कवि ने आवश्यकता से अधिक लघुकाय वाक्यों का प्रयोग किया है। जैसे -- कात्थ, स्वागता, स्व स्थिता, को मे देशः, के जातयः, किं माग प्रस्तुतम्, किमारब्धम्, इत्याजात-मृतिरश्रुवती शब्दमचेतनन्तो<sup>४</sup> अर्धमनुमजिधन्तो गन्धर... । इत्यादि ।

कवि ने मौज को धाँसि अपने काव्य में नाटकीयता छाने के लिए संवादों का भी आश्रय लिया है। कहीं-कहीं पात्रों के संवाद छोटे हैं। इस सम्बन्ध में विचित्रवीर्य, वीर्यमित्र और मध्यसुन्दरी के बीच होने वाले संवाद देखे जा सकते हैं।<sup>६</sup>

कहीं-कहीं पर संवाद अत्यधिक दीर्घ हो गए हैं। उदाहरणार्थ राजा मेघवाहन और विनाधर मुनि का<sup>१०</sup>, मेघवाहन और ली का<sup>११</sup>, वरान्तरीना, कन्या नाभिक और समरैतु का<sup>१२</sup> संवाद इसी प्रकार का है।

-----

१- तिलक० पृ० २५०, २८७-८०	७- तिलक० पृ० २८७
२- ,, पृ० २८७, ३५७	८- ,, पृ० २७७
३- ,, पृ० ३०७-६, ३३५-३६, ३३२-३३	९- ,, पृ० २७१-७३
४- ,, पृ० ३५६	१०- ,, पृ० २६-३२
५- ,, पृ० २७१, ३३६	११- ,, पृ० ५५-६२
६- ,, पृ० ३४६	१२- ,, पृ० २७८-८६

कहीं-कहीं पर कवि ने काव्य-परिहास संवाद के माध्यम से कराया है। कविराजा के विनायर मुनि का<sup>१</sup>, राजा मेघवाहन से श्री का,<sup>२</sup> अरसेकु से भाविक नारद का<sup>३</sup> और अरसेकु से वन्धुसुन्दरी का<sup>४</sup> परिहास वात्सलाय-प्रसंग में उल्लेख होता है।

ये संवाद प्रसाद गुण युक्त होने के कारण कुछ नहीं हैं किन्तु कहीं-कहीं कवियों के प्रभावशाली मोह ने कवि को घेर लिया है। इस प्रकार से कवियों की बहुलता मेघवाहन और श्री के संवाद में अधिक परिलक्षित होती है। इस सम्बन्ध में 'श्री' की उक्ति दृष्टव्य है<sup>५</sup>।

काव्य में कहीं-कहीं पर संवाद न होकर शायद की त्वरा लिखाने के लिए विभिन्न पात्रों को सम्बोधित करके कवियों वात्सलाय भी लिखार गये हैं --

वरुणि-के, वारुणिकटाद्यहाला रंशुषदुर्लभोत्कलम्बे।

कौकिले, विधेष्टि स्वविषया दुपेयुषः विन्तरराजकुलवारण-

कुलम्बे चरसंवेदविच्छेदम् । विहंगिके, १..... इत्यादि<sup>७</sup>

इस प्रकार की शैली बाण की रचनाओं में भी मिलती है।

बाण की इस शैली के अतिरिक्त कवि कपी की शैली में भी प्रभावित है। वरुणमार चरित में अपहारकर्मा द्वारा लायी गयी पत्नी को गारुड धन-पित्र जिस ढंग से कृतज्ञता प्रकट करता है उन्हीं ढंग से इस काव्य में गन्धर्वक जनों विवशता प्रकट करता है। इस सम्बन्ध में कुछ अधोलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं--

१-तिलक० पृष्ठ ३१-३२

२- ११ ११ ५८-६०

३- ११ ११ २८०-२८१

४- ११ ११ ३१७-३२८

५- ११ ११ ५६-५७

६- ११ ११ १३६-१४०, ३७२-३७३

७- ११ ११ ३७२-३७३

८- ११ ११ ५२





क्या लक्ष्यमु-यां होरागग्राः ), वादल के लिए कर्तु (सर्वतः संवृत्त-  
 शिष्यां भवते<sup>२</sup> ), बन्धना-त्मनि के लिए 'मृगांमणि (संयोजितमृगां-  
 मणिदारुनिर्मिता<sup>३</sup> ) मगोहरता के लिए 'वामर' (प्रतिवेत्तुद्रुमानक-  
 दण्डामरेण वामरः<sup>४</sup> ) मृत्यु के लिए 'संश्रिता (हूलधामया विवांशुजोयुताशरीरा  
 संश्रिता<sup>५</sup> ) जादि शब्दों का प्रयोग कर्ते वाच्य हैं मिलता है ।

किन्हीं शब्दों के प्रति कवि को विशेष रुचि परिलक्षित होती  
 है । जहाँ 'भगिति' और 'कर्' शब्द विशेष उल्लेखनीय हैं ।

कवि ने नादात्मक शौन्दर्य पैदा करने वाले कुछ शब्दों का भी  
 प्रयोग किया है । जैसे -- 'मधुरगन्धीरेण च रणयातभम<sup>६</sup> श्रवण संवाधितः<sup>६</sup> ।  
 'सरस्वतीवल्लणरुणारणेण' । मुमांमानम् ।

क्यों-क्यों पर वाच्यों में प्रभाव लाने के लिए क्रियाओं का सुन्दर  
 प्रयोग किया है जैसे --

'नमैव पृष्ठतो धाव वाव । शीघ्रं कुरु कुरु प्रगुणां करे  
 कृपाणिनाम् । क्षिन्वि-क्षिन्वि पुरतोऽसु मरुतीतीरशास्त्रिः...  
 कन्धरागाशम् ।'

- १- तिलक० पृष्ठ ७६
- २- " " ६८
- ३- " " ६८
- ४- " " १०५
- ५- " " ३२८
- ६- " " ३५, ४५, ४६, ५४, ५६, ६१, १५४, १८७, १६२, १६५, २१४, २४५,  
 २७४, २७६, २८०, २६८, २६६, ३०३, ३१०, ३२३, ३२८, ३३४, ३४६,  
 ३७६, ३७७, ३७६, ३८५, ४०५, ४१६, ४२२ ।
- ७- " " १३४, १३६, १३६
- ८- " " १५८
- ९- " " २२६
- १०- " " ३२५

एक ही शब्द पर काव्य में काव्य-ता दोष भी परिलक्षित हो जाते हैं। यत्र तत्र एक ही शब्द के प्रतिपादक एक से अधिक शब्द एक ही स्थल में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे -- 'पादुका भुवि शैल्योपरस्तुः प्राणिना नमनयोरा यामः' में विस्तारता के लिये 'वामनः' का जुड़ा था, अतः 'प्राणिका' शब्द की आवश्यकता न थी। इसी प्रकार -- 'शुभ्रं बुधुदित्तुः सजाकुलितकिंशुकमलाशिनि' में किंशुक और फलाश दोनों एक ही किन्तु उन दोनों का प्रयोग कवि ने किया है।

कवि ने एक के लिए अप्रयुक्त शब्द 'कशकत' का प्रयोग किया है -- 'कशकतं कृपाकारकर्मणामरणमक्षरानरत्नाङ्कुरेण'।

कहीं-कहीं वर्णन ने अनुपयुक्त विशेषणों का प्रयोग किया है जिससे ध्यान का बरिच निर जाता है। कवि ने मलयसुन्दरा के द्वारा हरिवाहन के जो विशेषण कहेलाये वे ठीक नहीं हैं।

इस प्रकार उनके काव्य में बाण की समस्त भुविष्ट दीर्घकाय वाक्यों से परिपूर्ण शैली मिलती अवश्य है किन्तु उका कहीं-कहीं दुरुपयोग हो जाने के कारण उत्तरे उत्पन्न रहज काव्य-सौन्दर्य नष्ट-ता ही जाता है। किन्तु कहा कि देता जा चुका है कि इस प्रकार की शैली के वर्णन प्रसंग निश्चित है। कथा-प्रसंग में इन्होंने वेदभा शैली की ही प्रयानता की है। बीच-बीच में यत्र तत्र दोनों शैलियों का मिश्रण ही जाने के कारण पाँचाली रीति का प्रयोग भी दिखायी पड़ता है।

बौद्धदेव की शैली --

बौद्धदेव की कृति भी बाण के शैलीगत प्रभाव से लक्ष्मी नहीं रही है। इन्हीं की भाँति उनके काव्य में विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति मिलती है। राजा कर्त्तवीर तथा रानी विजया का वर्णन इसी प्रकार का है।

-----

- १- तिलक० पृष्ठ २५२
- २- " " २६७
- ३- " " ३२१
- ४- " " ३६२

वर्णन करने का ढंग भी बाण जैसा ही है । जहाँ-राजा उत्सव के वर्णन में पहले दीर्घ समास शैली फिर धीरे-धीरे जमात-म-वस्था करने वाली शैली ही जाती है । वर्णनों में विविध अंकारों का उदाहरण देता है । राजा की शान-अवस्था में जिस प्रकार बाण ने परिवर्त्या अंकार का तथा राजा के वर्णन में तिलचोपना आदि अंकारों का प्रयोग किया है तथा देवताओं की उपासना बताया उसी प्रकार लोअदेव ने भी शान-अवस्था आदि के वर्णन में परिवर्त्या आदि अंकारों को ज्ञान दिया है और वर्णन-प्रसंग को दीर्घ बताया है ।

किन्तु विस्तृत वर्णन करने का प्रवृत्ति का यह है प्रारम्भिक अंशों में अधिक उल्लेख होता है । उनका काव्य विस्तृत वर्णन से युक्त नहीं हुआ है अतिसु कथावस्तु को ज्ञानना में हुआ है ।

इन्होंने बाण की अलंकृत शैली के अनुरूप समासयुक्त विशेषण विशिष्ट दीर्घ वाक्यों की शैली भी अपनायी है । इनके उदाहरण में दीर्घ समासाच्छन्न वाक्यों की प्रयुक्तता उल्लेख्य होती है । जयोज्या आदि नगरी-वर्णन में, युद्धवर्णन में, करुणा प्रसंग में, जोषधर के मित्रों के क्रोध में, उत्सव के क्रोध में, मन्वर्विदा के नत-शिर वर्णन में, कान्त और ग्रीष्म ऋतु-वर्णन में, अश्वमेधा वर्णन में, पानी तथा वायु आदि के वर्णन में उदाहरणों की शैली अपनायी गयी है । किन्तु कवि इस शैली का सर्वत्र निवाह संकल्पना के साथ नहीं कर सका है । इसका कारण इस शैली का अनुपयुक्त स्थल पर प्रयोग करना तथा समासाच्छन्न वाक्यों का आवश्यकता से अधिक दीर्घ बना देना है । पुलिन्दों के युद्ध के पश्चात् कवि उनकी मित्रियों का विहाय करार करुणा रस का आस्वादन करना चाहता था किन्तु पाठक वहाँ के समासों के जाल में फँस कर वहाँ उस रस का आस्वादन नहीं कर पाता है<sup>१</sup> ।

१- गो वि० पृष्ठ ४६-५०

वर्णन कहना-एक के प्रसंग में दोष का आलोचना वाचार्थ को ध्यान नहीं दिया जाता है किन्तु कवि ने यहाँ का जोर ध्यान नहीं दिया है ।

सुह-वर्णन में कवि वीरराज की अभिव्यक्ति करने के लिए यशोदा का श्लोक का प्रयोग करते हैं किन्तु ऐसे समय वे वर्ण-लौकिक का जोर न ध्यान रखते हैं न कि वे आता उद्देश्य केवल आना-उद्देश्य दोष वाचार्थ का रचना करना ही का लक्ष्य है । किन्तु जोड़वदेव ने ह वर्ण-शौकिक का जोर न ध्यान देकर केवल दोष-वाचार्थ का रचना का जोर ध्यान दिया और जो प्रसंग को अलिप्त कर दिया । पुलिन्दों के सुह तथा गंधर्वदत्ता के स्वयंवर के पदवाच होने वाले सुह का वर्णन उन्ही प्रकार का रखा जा सकता है । कुछ कौशिलितिक संश्लेषों में जो वर्णन के रूप का रचना उन्हीं प्रायः एकलता का अनुमान लाया जा सकता है --

.... कण्ठाक्षिधारासलपित्तवैतण्ड्युम्भूतपतदगिरस्युक्ताफण-  
पटल्लाज्ज्वलितापित्तमरुद्वत्कर, नासलप्रतिष्ठप्रतिभटकरमाळकपित्त-  
दंबोभवशोषपरिष्कापयुःशुक्र हृदयसुजा भवदनरपुरन्ध्रीनीरन्ध्रिताम्बरम्,  
निकृताभारमटल्लण्डुहरप्रणालीनिः सन्स्मानरुधिरात्तारुद्वैमितका-  
दशपातकर,.... उत्थित सुन्धराष्टिप्रोतविषय शिरः शोभकवच-  
ःडावामर- मरुदपतायमानवारविश्रुतारिभर, विक्रमजगदातंकजनकम्,  
वात्महयुद्धमर्तत ।

गन्धर्वदत्ता के नक्ष-श्लोक वर्णन तथा किमला की कन्दुक श्लोका में जो उस आना-उद्देश्य श्लोक का अनावश्यक मोह कहा जा सकता है । गन्धर्वदत्ता के नक्ष-श्लोक वर्णन में कवि ने अपनी काव्यत-प्रतिभा का परिचय दिया है किन्तु आना की रचनाता उनके सौन्दर्य को शिरोहित कर देती है ।

- १- गान्धि० पृष्ठ ४८-४९
- २- " " ५०-५१
- ३- " " ५०-५१
- ४- " " ६६
- ५- " " १२०

जहाँ कवि ने जो शैली के प्रति विशेष गौरव नहीं रखा है अपितु  
 उन प्रसंगों में शैली का विविधता रखी है तो वहाँ या शैली विशेष बाधक नहीं  
 बनती अपितु उनके विपरीत उन प्रसंगों में जीन्दी आ जाता है । जहाँ कारण  
 है कि अन्य युग वर्णन के प्रसंगों में जो निश्चिन्ता तथा नीरवता आ गयो है  
 वह अक्षय के अन्तःकरण के अभाव ही होने वाले युग के प्रसंग में नहीं आ पाएँ  
 हैं । उन युग में कविने वाली नदी ~~के~~ <sup>के</sup> वर्णन-भेदादि कवि ने समा-अवलोकन वाच्यो  
 के बौद्धिक बनाया है जो <sup>उसे</sup> ~~व्यक्ति~~ <sup>के</sup> भिन्नतांगन-भूति पुण्यवरंगिणो भातंग पोतांशिते  
 भावात्तयमि भरतार यथाधनभारावार <sup>उस</sup> ~~उस~~ यथा <sup>उस</sup> ~~उस~~ लक्ष्मणो तथा  
 नीनां नामव भरतिनाप्रमाणभू नीयानोत्तवारपेक्षानया तु विवक्षणात्,  
 नावनिमशांनकानयोशातात्मानवर्षणोभां गुणेषमुत्तया तु तत्रोऽपि दुःखवाच्यो<sup>२</sup>  
 को लु वाच्यो है तरह बनाकर परम बनाया है तथा वायुसंधानुष्का निषादि-  
 भिर्निषादिनः सादिमिः सादिनः सान्वतारोला युधिरे<sup>३</sup> जैसे वाच्यो के  
 अर्थ को स्पष्ट कर दिया है ।

जैसे प्रकार रीढ़ रख के प्रसंग में उनको असाधारण शैली अकृत हुई  
 है<sup>४</sup> । अपितु उन प्रसंगों में असाधारण दीर्घ वाच्यो को ही अधिकता है किन्तु  
 किन्तु ये युग वर्णन की भाँति प्रसंग को निश्चिन्ता बनाकर सरलता का नाश नहीं  
 करते हैं ।

राजा सन्धर तथा काष्ठांगार के ज्ञीघ-वर्णन में मध्यम स्मार  
 आर है जिससे वहाँ वेदों और गीत शैली का मिश्रित रूप भी मिल जाता  
 है । संस्कृत आचार्यों ने उन दोनों के मिश्रित रूपों को पांचाली कहा है ।

- १-गोवि० पृष्ठ १४२
- २- " " १४२
- ३- " " १४२
- ४- " " २५-२६, ४०-४१, २५, ११६
- ५- " " २५-२६
- ६- " " ४०-४१

अन्तर्गत अन्तर्गत शैली प्रेतनगर के वाचस्पति का के विषय में सुबुद्ध वर्णन गीला होने के कारण साक्ष्य है।

इस प्रकार वाचस्पति सुबुद्ध वर्णन का ग्रन्थ सुबुद्ध वर्णन में वर्णित कार्य वाचस्पति मिलते हैं। वाचस्पति वर्णन में सुबुद्धात्मक शैली ही गयी है। ग्रन्थ सुबुद्ध का वर्णन ही बार हुआ है। यहाँ बार कवि ने केवल मध्यमागत शैली रखी है। उन वर्णन में कौं वाचस्पति नहीं है किन्तु पुनः किंचिद् ग्रन्थ वर्णन में वाचस्पति के साथ अङ्कित शैली भी मिलता है। यहाँ वाचस्पति का अर्थ अन्त तक ही जाता है और वाचस्पति का रूप 'सौराष्ट्रवासी' मुक्ताधारशरीराणि राजद्वारा नाथ तेषांभिरुद्देशनीत्यादिनाः<sup>५</sup> जैसा ही जाता है।

सुबुद्ध अङ्कित शैली के वर्णन में भी इस प्रकार का अन्तर्गत शैली है किन्तु इस शैली के प्रति कवि को विशेष मोह परिलक्षित नहीं होता है।<sup>६</sup> ये वर्णन में अङ्कित शैली ही ही प्रधानता है। किन्तु वे प्रांग अङ्कारों को उचित नहीं कर किंचिद् ग्रन्थ अङ्कित प्रयुक्त अङ्कार आने नाम को अर्थात् सिद्ध करते हैं।

किन्तु इसे यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिए कि उन्होंने अपने काव्य में ऐसे ही वाचस्पति को अन्त दिया है और वर्णन को अङ्कित बनाने का चेष्टा कर ही है अपितु उन्होंने काव्य में उक्त वाचस्पति एवं प्रसादमयी शैली को ही अन्त दिया है। अन्तर्गत शैली वाचस्पति अङ्कारः वर्णन-मुद्रा-वर्णन में प्रयुक्त हुए हैं अन्यथा कथा-प्रांग में, उपदेशों में वार्त्तिक-वार्त्तारों को उचित व्यक्ति आदि में प्रसादमयी शैली है। अन्तर्गत शैली द्वारा जीवन में और

१- गी.वि.० पृष्ठ २०-२६

२- ,, ,, ७५

३- ,, ,, ८६

४- ,, ,, ६६

५- ,, ,, २७, ६२, ७६, ८४, ८६, १०६, १०७, १२०-२६, १३०-३२, १४६

राजलक्ष्मी के सम्बन्ध में जोरदार की किया गया उपदेश का शैली में है ।  
 उन्हें लंकारों का प्रयोग हुआ है किन्तु प्रकाश उनके बोधिल नहीं हुआ है ।  
 २०वीं की कवि ने इसी शैली के कारण का प्रकाश को बाण के अधिक उन और  
 केन वृत्तियों में शेष बताया है । उन्हीं के कवियों में -- इन्होंने बाण का  
 अनुकरण किया है, जो वात किङ्कल स्पष्ट है, जिसे ननापने कुत्ताप द्वारा  
 युक्त कन्दर्पापीत कोपिल का उपदेश को अधिक जल्दी लंग से प्रस्तुत करने का  
 प्रयत्न भी सम्मिलित है । अन्य केन कवियों जैसे गण-काव्यों के अन्तर्गत  
 पहुँचने का प्रयत्न भी नहीं करता है और वे कहीं तक विश्वर को पहुँच पा  
 नहीं पाती है ।

वास्तविक विचारों को आसन्नचित तथा उपदेशों में रस शैली के  
 अपनाने में कवि का विशेष उद्देश्य रहा है । क्योंकि उन का शब्द के अभाव में  
 रस प्रतीत होता है कि <sup>कवि</sup> लीनों को केन धर्म के प्रति आकृष्ट करना बताया  
 है, जो: यह पूरे काव्य में उस धर्म को विवेचना, अत्यन्त सरल शैली में करता  
 है । इसीलिए कुछ विद्वान <sup>२</sup> इनके काव्य में साहित्यिक पदा की गीण तथा  
 वैदिक पदा को प्रमुख बताते हैं ।

उन्हीं इस शैली में वर्णन-प्रकाश की स्पष्टता के साथ-साथ प्रकाश  
 रहता है ।

इनकी यह शैली नरकवास के वर्णन <sup>३</sup> में भगवान् रस की अधिष्ठापन  
 करने में सफल हुई है । अन्ध स्त्रियों में ही दीर्घ अन्धकार-वर्णन काव्यों को  
 बता मिलेगी तथापि पूरा वर्णन इसी शैली में है ।

विषय की कल्पना विज्ञान का चित्र इसी शैली में सजाया ही उला  
 है --

भुषितामिव मोहेन, श्रीतामिव कृशिय्या, वशीकृतामिव कुर्वी,  
 दुःखैरिवोत्थाताम्, व्यसनेरिवात्काविलाम्, तापैरिव पापिशाद्,  
 विन्तयैवाश्रान्ताम्, लेशैरिवावेक्षिताम्, ज्वालेरिवोविभक्तां नातसे ४

१- हि०आफ० सं०लि०--२०वी० की०, हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३६२  
 २-(क) ,, ,, -- २४०एन०दास गुप्त और २४०के० के पृष्ठ १३३  
 (ख) हि०आफ० अ० सं०लि०-- २४०कृष्णभावादी, पृष्ठ ६०६  
 ३- ग०वि० पृष्ठ १६१-६२  
 ४- ,, ,, १२०-१२१-

जैसे ही के प्रतिरिक्त उस कवि ने जो प्राचीन छ गण-कवियों की भाँति तथा नवीन गण-कवियों में गणाल की भाँति कार्य को स्वरा दिवाने के लिए विभिन्न पाठों को सम्बोधित करने का शैली छ जनाई है --

पुंगलौभने, मुगलकाहर, ताभूखीटापिर्वा गधुग्राथय ।....  
दुरंगलौभने, स्नापिर्गुर्ग जहुंनर्यागुम्भानारय ।... ।

दृष्टी तथा गणाल की भाँति कृतज्ञता प्रकट करने की शैली उनके भा है । जोर्वंधर को दृषा से हुने का यौनि से यत्त यौनि पाकर सुदर्शन जोर्वंधर से कह रहा है --

विमिह नया कर्तव्यं किं वा कलठम् । त्वा वा भवदनुभावं  
कवशिबुमलं पारसी । तथाकि निष्कारणभिर्दं मत्परित्राणमिधि अति  
कार्यण्यकारणै रित्तं वधः । दुष्टो मन्वाय मस्मिेति जिनराजल्लुकारणै ।

गणाल को तरह उनके भी जाव्य में पद्यों का बाहुल्य मिलता है । काव्य के प्रारम्भ में श्रुति तथा वेद आदि का परिचय तो उमा गण-कवि यत्र में देते हैं किन्तु सफल गण-कवि काव्य के कला-प्रसंग तथा मध्य में पद्यों को स्थान नहीं देते हैं । लेकिन जोह्यदेव ने सत्यंधर का स्कारक वैराग्य होना, हथियार का त्याग देना तथा पाष्ठांगार का उसे भार डालना, सामूहिक लूटाने जाने से अपने साथियों से बिल्कुल अछूटे शीका का संसार की अज्ञारता के विषय में सोचना गन्धर्वदगा और जोर्वंधर के बीजा-वादन के बीज, युक्त का गुणमाला की कामदशा का तथा उसके संदेश का कहना, जोर्वंधर

- १- ग०वि० पृष्ठ १४६-५०
- २- " " ७६-७७
- ३- " " २७
- ४- " " ५८
- ५- " " ६७
- ६- " " ६६
- ७- " " ८१



के पुनः राज्य के प्राप्ति कर लेने पर लोगों का कर्मवैचित्र्य पर विचार करना, जीवधर का चित्रच्युति मग में वर्णित किया है ।

यहाँ के अतिरिक्त अन्य शैली में अन्य कवियों की भाँति सूक्तियों (लोकगीतों) की भी स्थान मिला है । जैसे -- 'स्मिन्मिन्मत्तस्मिन्मिन् फणि-पते-सहर्षु मथो जनः' ।

'को नाम संजयः संजाननस्य वदनादभिप्रेता कुंभिलर्षीत ।'

'भवदेशवः शलः कुंजरानिशागो ।'

कहाँ मू जो शारा का शारा वर्णन छा सुचितमय प्रतात होता है

'को नामपादयस्मन्वमध्यावातः परशुता मूर्त्तन्मुल्लुन्मुल्लेत् ।'

को वा तरिष्यन्वारिधिं बन्धेण तत्रैव जात्मलिङ्गद्विषण्यनेत् ।'

को वा पिपासुः पानीयमप्यथ मापः पांचुरैः पुरयेत् । कृपण

धेनोरापोनभारेण क्षीरसन्धातं क्षीरेण पातकः संपादयेत् ।'

इनकी शैली में कुछ विशेष शब्द भी आए हैं जैसे किकटा के लिए

'शम्भा' (शम्भाविम्बिम्बाधरातिकरालोक्प्रावृतां) इन्द्रवज्र के लिए 'दम्भोलि' (काष्टांगार पर्यागनिर्वाणदवीकरव्य शिरसि दम्भोलिमिव पातव्य), वैश्य के लिए 'जरव्य' (सुत्वाकेनमूरव्युत्तमरीश्रिया क्षुरिमां नाराय), छाया के लिए 'वैतण्य' (वैतण्यवपदरोष प्रसारितकण्ठः), देवता के लिए 'निरिन्ध' (निन्दितनिरिन्ध्यामपीशोभ्य), कलक के लिए 'निरुह' (विक्रमालिभारा-संदेहिमुग्धवातकर्वु, सुम्भमाननिरुहनिहितमुक्तावरिण), मुष्य के लिए 'मोषवर्क'

१- ग० वि० पृष्ठ १४६	)	७- ग० वि० पृष्ठ १२१
२- " " १५६, १६७		८- " " १४२
३- " " ५२		९- " " ७०
४- " " ५२		१०- " " ७०
५- " " ४६		११- " " ६४
६- " " १३६		१२- " " ७२

(समाप्तोमैत्रेयः क्वनासगिचकभियानिर्भरः<sup>१</sup> ) शब्द के लिए 'ना' का  
 (प्रथिलिनी हूर्तिनामभारिना नागिना कौडनादिनादयानि<sup>२</sup>), प्रातःकाठ  
 के लिए 'गौरग' (गौरगिवात्नासुपःमभादानभिपतन्ना तत्र स्वर्ना...<sup>३</sup>),  
 मृच्छ के लिए 'देवाभव' तथा 'संगरौम' आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।  
 कुछ शब्दों के प्रयोग में उनकी विशेष रीति दिखायी जाती है । उदाहरणार्थ  
 'नयन', 'विगृह' , जैसे शब्दों का प्रयोग कई बार हुआ है । 'ल' प्रत्यय से  
 जो शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे 'वराळ', 'लक्षल', 'माळ', 'हकीरल'<sup>४</sup>  
 'गुहाल', 'प्रतरदुष्मलतरणनिरण'<sup>५</sup> इत्यादि । साथ शब्दों से पर अप्रयुक्त  
 शब्दों का भी प्रयोग हो गया है । जैसे 'नीत्रामणवारण'<sup>६</sup> ।

ऐसे शब्दों के प्रयोग से भाषा बोधगम्य नहीं हो पाता है । लेकिन  
 जहाँ कवि का दोष नहीं है क्योंकि उस प्रकार के प्रयोग प्रारम्भ से ही गण-  
 कवि करते आते हैं, या एक प्रकार का उनकी रीति हो गया है ।

उनके काव्य में यत्र तत्र पुनरुक्तिदोष भी परिलक्षित होते हैं ।  
 कहीं-कहीं पर तो प्रायः उन्हीं शब्दों का प्रयोग हुआ है । जैसे --

'पराजितपरतरपति करदीकृ तफनकीफलयटितेन'<sup>७</sup>  
'प्रतानविनतपरतरपतिकरदीकृतकरिकरटनिर्ग वविरलमदणतजम्बालिता'<sup>८</sup>

१-ग० वि० पृष्ठ ६५	१११- ग०वि० पृष्ठ ३८
२- " " ११२	११२- " " ८६
३- " " ११५	११३- " " ६६
४- " " ७०	११४- " " १४५
५- " " १२३	११५- " " ६
६- " " ६, १२, १८, २१, २३६	११६- " " ७
७- " " १७, १८, ६५, ८५, ६८, १२७, १३८	
	१४६।
८- " " २१, ३०	
९- " " २१, १६७	
१०- " " ६, ३१, ६६	

कवि ने अधिक सम्पन्न किताने के लिए 'कुबेर' के अन्तर्गत प्रायः

सर्वत्र कितानों हैं --

- १. कुटमलितकुबेरनगरत्नवर्गारवा<sup>१</sup> ।
- २. कदाचिदपरिण कुबेरनगरवैभव<sup>२</sup> ।
- ३. अपरितकुबेरमत्नवैभवं... ।
- ४. मलयदेशापदेशकुबेरकोशगृहपतिः<sup>४</sup> ।
- ५. पनदमपश्यः कुर्वन्सर्वगुण भद्रो<sup>५</sup> ।
- ६. कुबेरदेशोवैभवपतिः<sup>६</sup> ।
- ७. कुटमलितकुबेरसर्वगुण<sup>७</sup> ।
- ८. प्रसंगानकुबेरसा येन<sup>८</sup> ।

इसी प्रकार नाक के वर्णन में शब्दों का थोड़ा-ना परिवर्तन हुआ है अन्यथा उत्तम व ही शब्द हैं --

- ९. ललाटार्धवन्द्यविम्बविगलदमृतधारालदेह दायि न्या नाभिकला<sup>९</sup> ।
- १०. ललाटेन्दुनिर्गदमृत धारायमाण नानावर्ण<sup>१०</sup> ।

इन शब्दों के अतिरिक्त लावा कितानों की कल्पना कई स्थलों पर मिलती है<sup>११</sup>

सेनाओं का वर्णन तीन स्थलों पर हुआ है किन्तु वहीं जड़ों का फूल उड़ाना और हाथियों का मदवारि बलाना वर्णित हुआ है<sup>१२</sup> ।

१- ग०वि० पृष्ठ =	१०- ग०वि० पृष्ठ ६३
२- " " ३८	११- " " ७५, ७०,
३- " " ७२	१५९-५२ ।
४- " " ६९	१२- " " २९, २५,
५- " " १०९,	१३७-३८ ।
६- " " १०३	
७- " " १२३	
८- " " १३२	
९- " " १३	

'विशालि में जो कवि रहना चाहते' -- वे जाने का ही उत्सव  
और 'विशालि कोशिका' कहना ही है।

उसी प्रकार प्रज्ञा और 'विशालि' दोनों का विर-वर्णन कवि ने एक  
सा किया है।

क्यों-क्यों कल्पवर्षों में एक जाने के कारण का कुछ बड़ा आवश्यकता  
करना है जिससे आवश्यक दोष का गया है। कविनी ने हर्षों को मानवरीवर  
के प्रेमों के रूप में लिया है और 'क्यों' के रूप में ही दोनों के रूप में।

उसी प्रकार कवि ने कल्पवर्षों का उपपुत्रता का और ध्यान नहीं दिया  
है। 'विशालि' कृष्ण का उदार होता है न कि 'विशालि' पृथ्वी का। 'कल्पवर्ष' पृथ्वी  
के लिए 'पवित्र करना' उपपुत्रता है किन्तु कवि ने 'काष्ठांगारविरा-  
नुधावेन' 'विराणि' 'वाग्दलनिभ' 'विशालि' कहा है।

उस प्रकार उक्त में कहा गया जा सकता है कि कवि ने बाण को जो  
'काष्ठांगारविरा' शैली अपना है उन्हें वे कुछ ही 'कल्पवर्षों' में 'कल्पवर्ष' हो पाए हैं।  
उसी उनके 'वर्ण-विशालि' शिष्ट हुए हैं। उस शैली के अतिरिक्त उनके काव्य में  
बैक्यों और पांचाली शैली भी मिलती है।

वामनभट्ट बाण की शैली--

जैसा कि 'आश्रितान गण-कविनी' के परिचय में कह जाए है कि वामनभट्ट  
बाण ने अपने 'कैमपुत्राखरितम्' नामक गण-काव्य को जो रचना की है वह  
बाण की बढ़ती कोशिका को तथा बाण के बाद और कोई श्रेष्ठ गण-कवि हो  
नहीं सकता है -- इस किम्वदन्ती को भूलना करने के लिए ही। यद्यपि उन्होंने  
'मधुरगतरणी, जाल्वाकमय वाक्य विन्यास, गलाघनाय वर्णन कुशलता तथा

- १- ग० वि० पृष्ठ १६, ५७
- २- " " " ६९, ६८
- ३- " " " १०६-१०७
- ४- " " " १५१
- ५- " " " १४८

दुर्नामके दुर्लभा है बाण का प्रतिबन्धन करना बरता है पर अज्ञान रूप है  
 उन्होंने बाण का ही अनुकरण किया है<sup>१</sup>। जहाँतक गण-कवियों को कथावस्तु  
 को कियेना में हम देते हैं कि उनके ऊपर बाण का कितना प्रभाव पड़ा  
 है किन्तु एक बात में किये प्रकार का मन्देश नहीं किया जा सकता है कि  
 उनके काव्य में काव्य-प्रतिभा के नितार में किये प्रकार को क्या है।  
 उत्प्रेक्षाओं के वे आदर्श प्रभाव होते हैं। उन्होंने जहाँ 'काव्यं त्वादीप-  
 करणरुणमुपेय' तथा 'काव्यं हि तद्विराणां क्वचिन्न तदाश्रयणं क्वचित्' <sup>२</sup>  
 उक्तिओं को लागू कर दिया है। उन कवि के बाद अन्वय बाण के समता  
 करने वाला कौन कवि नहीं हुआ जहाँ संस्कृत गण-काव्यों में अन्तिम श्रेष्ठ रचना  
 उनकी ही है।

उन्होंने अपने काव्य में अलंकारों को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया  
 है। उनके काव्य में सर्वत्र अलंकृत शैली का उपलब्ध होता है। स्थापत्य-कवि को  
 छोड़कर काव्य में सभी वर्ण्य-विचित्र अलंकारों के माध्यम से वर्णित है। यह  
 नहीं कहा जा सकता है कि जहाँ अलंकारों का प्रयोग नहीं हुआ है वहाँ कवि  
 सफल नहीं हुआ है अतः जैसे एक ही काव्य को दृष्टि से प्रशंसनीय हुए हैं।  
 शिकार के समय राजा प्रौल्ल के साथ जाते हुए लोगों के वर्णन में कवि का  
 अलंकारों के प्रति मोह किञ्चुल दृष्ट गया है। कौटिल्यो को काठ बांध है कि  
 कवि ने केवल एक श्रेष्ठ पर उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है व अन्वय-कवि  
 पर नहीं किन्तु कवि उनका समाव विचरों को सफल हो गया<sup>३</sup>।

उन्होंने जहाँ क्वचिन्न अलंकृत शैली में विशेषरूप से उत्प्रेक्षा और  
 शिष्टीका अलंकार को स्थान दिया है। उत्प्रेक्षा अलंकार काही है। ही  
 उतना दुर्लभ नहीं बना है किना कि उनका शिष्टीका अलंकार।

- १- कै०-- भुमिका , आर०वी० कृष्णमाचार्य पृष्ठ २
- २- ,, उलौ० २
- ३- ,, ,, ४
- ४- ,, पृष्ठ २०-२१

सबका कारण है उनका चिह्नितोक्ता अंकार में अंग श्लेष को प्रकल्पपूर्ण मानना है। यहाँ-यहाँ जहाँ यह अंग श्लेष केवल भौतिक पौराणिक हो जाता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित उदाहरण हैं -

अन्वयः यत् उर्वरा-जातस्यैवः (उर्वरा, योः उणि श्राधि

भ्रम-प्राप्तिता इत्यन्वितः १), यत्परः यत् निरवधिका परवर्तिता-श्रायः

(निरवधः श्रायः रम्यः, योः निरवधिका श्रायः), ... प्राज

यत् बहुलप्रभवकृतः (लोहप्रभवकृतः ज्ञानः योः बहुलप्रभवकृतः ज्ञानः प्रभवः इतिः)

..... १

यह प्रकार अर्द्धचि राजधानी के वर्णन में यद्यत्तु इस प्रकार का अंग श्लेष चिह्नितोक्ता अंकार का प्रयोग हो सकता है।

किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनका अंग श्लेष अंग ही अंग को चिह्नित कर देता है और उनके अंग-सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। उदाहरण के वर्णन में इस प्रकार के चिह्नितोक्ता अंकार का सौन्दर्य देना जा सकता है।

कवि का श्लेषप्रिया ने यद्यत्तु उक्तों के लोकोपनिषद् शेष से ग्रहण भी करा है। क्योंकि कवि ने एक-एक पर फिका वर्णन साधारण अंग से कर दिया है उनके अंग का दूसरे अंग पर श्लेष के साथ किया है। यथा --

त्रिकपुरदिवसो द्वातकोनलकिह्याग्रसमर्षे पिकपरिणद्व्युचित-

ब्रूतवित्पिना में 'पिक' और ब्रूत वृत्त का उत्प्रेषण कर चुके हैं वे

किन्तु उन किन्तु दोनों को पुनः चिह्नितोक्ता अंकार के साथ उत्प्रेषण किया है -- 'चतुरस्र अधिकपिकचित्तैत तथा नलेनैव अक्षिरसाक्षतलत्विषा'।

- १- पैम० पृष्ठ ६-१०
- २- " " " २२-२५
- ३- " " " १२
- ४- " " " ११
- ५- " " " १२
- ६- " " " १२

इस प्रकार के दो पुरा षेना के वर्णन में वाचन वाचों का नाद प्रताश कालहरात, तलवार की नादी काचित, हासित, जव तथा विविध शब्दों के लेने वालों का वर्णन किया है । इनमें से कुछ का पुनः प्रिलष्टोपमा अक्षरार के गान किया है<sup>२</sup> ।

विशेष के समान ही उनका अनुप्रास प्रियता ने भी उनको शैली को उत्थान्त प्रिलष्ट का दिया है । क्योंकि अपने उनके काव्य में असात कुन्न दीर्घ वाच्यों को क्लृप्ता ही गई है और प्रत्येक अक्षर नया ही पाया । विशेष रूप से राजा प्रोक्त की दुर्जन वाली शैली के अष्टनाद तथा वैम की दिग्भ्रम्य के प्रिलष्ट प्रथान करने वाली शैली के अष्ट-नाद का वर्णन<sup>३</sup>, शिवाल्य का वर्णन<sup>४</sup> वधि आलय का वर्णन<sup>५</sup>, गृहभूमियों का वर्णन<sup>६</sup> इस प्रकार के दीर्घ वाच्यों के बौभिल है , इस विषय में अधोलिखित कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं --

परिणप्रताप्र बुद्धु ताताप्रनवाप्रस्तित्वाप्रित्तमदनवाप्राज्यविश्वानि,  
नवकुमुममुवर्षेभक्षिपानहक्षिकाभुकरपरिचदभुषितपुरावतह पुषित-  
जावष्वानि.... ।<sup>७</sup>

अनुप्रास के अभाव में भी समानाह्वान दीर्घ वाच्य मिलते हैं । कहीं कहीं इस प्रकार के वाच्य उपयुक्त वर्ण-योजना के कारण इस को अभिव्यंजना कराने में सहायक हुए हैं । उदाहरणार्थ गुर्जरों की लड़ाई में प्रयुक्त इस शैली में औज्युण के अनुप्रास वर्ण-योजना देती जा सकती है --

चलितरभौगिनिष्पिष्टपरणिपृष्ठम्, कबौदपतमुमट्टकृष्टनिष्टुर-  
कोदपमण्डलवण्डनिधौषमिदुरक्राणम्, कलौगर्वविधुतकरवालजालकालकरपटल-  
पाटिकाकालवैरातिमिस्र, मदविकटकरटिपटाकडोरुमस्तुदुदुनवणवणियिष्ट-  
वाडर्ण कस्र ।<sup>८</sup>

- १- वैम० पृष्ठ १२७-२८
- २- " " ४७
- ३- " " १२३-२४
- ४- " " १६४
- ५- " " १८०-१८१
- ६- " " १३७, १४१-४२, १५७, १६१-६३
- ७- " " १६४
- ८- " " १५७





ऐसी अत्यन्त सरल हो गयी है । ऐसी कवियों पर संस्कारों के प्रति काव्य का मोह  
 भा नहीं रह गया है । उदाहरणार्थ-- 'मुहुःपथानोपरि विमुक्तकल्लवेधभारा,  
 मुहुःपथा<sup>१</sup>मणिदवा<sup>२</sup>श्चिरविन्वत्तवान् सतपरत्वा, मुहुःपथायनदेशविनिहित-  
 वज्ञारविन्दा.... ।'

राजा प्रोक्त विद्वणक से जब कन्नडा के 'अवलीकन' विधि का वर्णन  
 करता है तो वहाँ भा<sup>३</sup> ऐसी अत्यन्त प्रशंसनीय हो गयी है । यहाँ पर कवि  
 के ऊपर काव्यिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है<sup>४</sup> । देवा मानता को देखकर  
 नायक वेम के हृदय में उठने वाले भावों का वर्णन भा<sup>५</sup> श्लोक में है<sup>६</sup> ।

भाववैश्व के प्रथम में तो अत्यन्त लघु वाक्य हो गए हैं । राजा  
 प्रोक्त कन्नडा को उचान भुक्ति न देखकर बहुत आश्चर्य हो जाता है और  
 वह कह उचिता है -- 'आः परं किं करौमि । न्व गवेषयामि । किं धार्यम् ।  
 न्व उपायः । का प्रतिपत्तिः । का दिग्गन्तव्या । कं पृच्छामि । कं नष्टाय-  
 मुपमि । का गतिः । हास्तोऽग्निः ।'

कहीं-कहीं पर भावों को लक्षित करना जरूरी है तावपूर्ण शैली काव्य  
 नहीं हो पाये है । शिव<sup>७</sup> और विष्णु<sup>८</sup> का स्मृतियों में भावों का विहीनता  
 है । राजा के भावोधार भक्त हृदय का परिकल्प नहीं दे पाते ।

कन्नड़ों को अपने काव्य में यहाँ को उचान दिया है किन्तु 'जागी'  
 ही हृदय में यहाँ का प्रयोग हुआ है तथा अन्य कवियों को उचान भा<sup>९</sup> ने  
 यहाँ का प्रयोग कम ही किया है ।

---

१-	वेम०	पृष्ठ	१७४-१७५
२-	११	११	५३
३-	११	११	२-६-११९
४-	११	११	६२
५-	११	११	१४८
६-	११	११	१५०

नके काय में धातु का तरह से गार्त मिलते हैं जहाँ यदि ने अ-  
र्ण को लैक वर्गों द्वारा लेक धार प्रकृत किया है । रैली को यह विशेषता  
निम्नलिखित वर्गों में दृष्टता है --

निदुममि मोलापेताम्, कुंभ्याक्वाकुलितार्, कोपनदाद्वी-  
रुमताम्, करणप्राज्ञा विभुताम्, तदव्याद्वीरुपिताम्.... नद-  
पवनाद्वीरुपिताम्,.... अमृतादिपुस्तिकाय,.... कनकालय री

काय का सुकाराभिक शब्दों के प्रयोग में स्वरोपहानि संरक्षण का  
होता है । जैसे मणिर्णों का ध्वनि है कि 'कणभणणात्कार', गजवार  
का शब्दांश के लिए 'खणात्कार', 'लौकादुल हांगता का शब्दांश है कि  
'फट्टकार', घण्टा की ध्वनि के लिए 'घनांगन', 'अर का शब्दांश के लिए  
'नात्कृत' इत्यादि ।

उनके गद्य-काव्य में कुछ ऐसे भा शब्द मिलेंगे जिनका आधुनिक में पार  
हुई है जिनसे उनका या तो उन शब्दों के प्रति विशेष मोह ज्यवा उनका काव्य  
राशि का दारिद्र्य प्रभाव होता है । इस सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रह्लर  
वॉर विह्लर जैसे शब्दों का उल्लेख किया जा सकता है ।

स्वाय चर्कों पर 'सुहृदां अमनाभ्युदयेण नविभागभाजो  
भवन्ति बहु उहृदः' जैसा सुश्रितियां भा मिल जाता है ।

- १- वेम० पृष्ठ ३२
- २- " " ३६, ६३, १०५, १६६, १६७, २० ।
- ३- " " २१
- ४- " " २१, २४
- ५- " " १२५
- ६- " " १४३
- ७- " " ६, ३०, १३७, १४५ । १२८
- ८- " " ११, २३, ३०, ३४, ५५, ११५, १४१, १४२, १५४, १२६, १८०
- ९- " " ४२

उनके पद्य-कवियों, संसारों और सतों के किण्वण कादि में प्राप्ति-फलता के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता । यदि जो कवि या कवि-समूह जो संसार पर चूट पड़ेगा है तथा वह अपने भाव-प्रधानता तथा काव्य के माध्यम-के-द्वारे अपने वाच्य के विषय में रुझाता है --

‘शुणान्कृतिभूता फलितविरिणं भृवाण भवदावा ।

काराति विमुक्तनु कुर्वित वाणाभिनाशाधुर्वर १ ॥

उन्होंने अपने को सूर्य और अन्य कवियों को सतों के शाश्वत काया है --

जानि कवि-भृवाणि दधति कविमन्भावान्वेऽपि ।

प्रवोताति सौ वां एषोणात्वा न दिं नु शेटमणः २ ॥

आर०वी० कृष्णमाचार्य ने यह कवि को प्रत्येक दृष्टि के बाण के मूल बताया है, किन्तु उनका क्या अतिरंजित है । यह ख्यात है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी वामनभट्ट बाण महाकाव्य बाण नहीं हो गए हैं किन्तु ऐसा कि जाने देंगी कि उन्होंने काव्य के सभी आवश्यक तत्वों का फलता के साथ निष्पन्न करके अपनी शैली को सशक्त काफिर अर्थात् नग-कवियों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया है । जो ज्ञान प्राचीन नग-कवियों में बाण का है का। स्थान अर्थात् नग-कवियों में जगता है ।

वायुदेव की शैली --

अर्थात् नग-कवियों में ‘रामकथा’ नामक नग-काव्य के रचयिता वायुदेव की शैली सब नग-कवियों से भिन्न है । उन्होंने बनाई शैली को

- १- वैश० पृष्ठ २१०
- २-    ,    ,    , २१०
- ३-    ,    , मुद्रिका--आर०वी० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ७

न लक्ष्यार्थों में बोधित किताबों में अत्यधिक आत्मज्ञान बोध वाक्यों से जाने वर्ण-विषय को दुहराया जाता है। जो प्रकार उन्होंने नम-कवियों को सर्वप्रिय विशेषण विविष्ट शैली को बहुत अधिक मानता था और न वर्णन-प्रयोग को शक्ति विवर के साथ बंधन करने का श्रेष्ठ होकर है। जो दृष्टि से उनको शैली काण के साथ अपना न राबर प्राधान्य कवि रूप को शैली के साथ समझा जाता है। जो प्रकार उन्होंने जाने काव्य में वैयर्थी शक्ति एवं उनके प्रवाद गुण को शक्ति नक्षत्रपूर्ण ध्यान दिया है। उन्होंने वाक्यों के स्वयं - निष्पन्न में अत्यधिक लक्ष्यार्थों से ही काम निकाला जाता है। आत्मज्ञान वाक्यों के प्रयोग हुए हैं किन्तु एक अनुबोध<sup>१</sup> को ही श्रेष्ठ शक्ति से अन्त तक पूरे अनुबोध का प्रकार के आत्मज्ञान बोधवाक्य वाक्यों से आत्मज्ञान नहीं है। उन्हें यदि बोध वाक्य हैं तो अनुबोध वाक्य को है। जो प्रकार वर्णन प्रयोग में दोनों प्रकार के वाक्यों को प्रानता होने के कारण दोनों का मिश्रित रूप भी देया जा सकता है<sup>२</sup>। उदाहरणार्थ --

‘तौ श्वेत् पुष्पमानयो रिक्षमानयो जीवितमानयोः काकुत्स्थस्य स्या -  
 न्यैरुधो रथो रक्षितान्तगोरक्षितमत्स्मात् । तथा संग्रहस्य  
 संग्रहस्योपसंभवावराहुतं जगिति सुभित्रासुतो सुवरासुतः -  
 लुप्तितौजसा बंदीकावरेण विगतो यितमानोव ।’

कवि ने यद्यपि आत्मज्ञान बोध वाक्यों का प्रयोग का किया है किन्तु यत्र तत्र वर्णों को उपसृष्टता को और ध्यान रखकर जो शैली का अकल प्रयोग भी किया है। जैसे राम के रम्य रूप वर्णन में कौमल वर्णों को ध्यान दिया है --

‘रघुलुप्तुमा रतनुतरतनुकामनो यकावलीक...’<sup>३</sup>

विनात्मन्तरिक्षु कान् अरतन्वा रघुमनि सुसामरत्नवत्तरात्तर-  
 मारिस्मन्मास्तपरिपोमानस्वेदा वन्दुन्दरमुत्तराविन्दो...<sup>४</sup>

- १- रामकथा पृष्ठ ३६
- २-    ”       ”    २, ६, ६, ११-१२, २३, ३५, ३६, ४३, ४५, ५० ।
- ३-    ”       ”    ४९
- ४-    ”       ”    ६
- ५-    ”       ”    ५०

गौर रावण के वध के लिए राम के रौद्र-वर्णन में कठोर वर्णों को स्थान देता है --

वर्णविशिष्टानामप्यन्योन्यहोतंगुणैश्चरानारभुङ्कर-  
शेषादिभिर्नामपुत्राण्यस्त्रकोदपुत्रप्रवाहभाषणामुदपुत्रौ  
कल्पकल्पकल्पकल्पनोत्कल्पमानयताः दण्डपरमाणाः... १

जो प्रकार कुछ परशुराम का वर्णन अंगुष्ठा-वर्णन तथा मुखिसर शैली में हुआ है ।

इस भागबद्धन शैली का प्रयोग सुत-भूमि के वर्णन में भी केते हैं । यानही गौर रावणों के युद्ध में तो यह शैली अत्यन्त ही गंभीर किन्तु राम-रावण के युद्धभूमि के वर्णन में ऐसा नहीं देखा जा सकता है । वहाँ प्रयुक्त भाषा में कोई प्रवाह भाषा परिशिष्टात्त नहीं होता ।

इस प्रकार के वर्णनों में शैली का जीना उनका श्रुत्यान शैली अत्यन्त ही-व्यर्थ लातो है और दृश्य को सजाय ब करता है । उदाहरणार्थ--

दाशरथिना निगुप्तैः पञ्च सव वानरपुङ्गवैः मरिसौ वरणा-  
कल्पमधिरौहदिभिः , मर्क्यदभिधानानि, पूरयदभिः परिवाः,  
पाटयदभिः प्राकाराव, दास्यदभिर्गोपुराभिः.... इत्येतादिभिः-  
मन्वमाच्यते ।

जैसा कि ऊपर कह चार है कि कवि प्रवादमयी शैली को श्रुत्यान में स्थान देना अधिक पसन्दि करता है । उन्होंने जाँझ में श्रुत्यान को शैली का निर्वाह किया है , यत्र तत्र दीर्घ वाक्यों के मोह ने घेरा था है किन्तु कवि कर्म कंस नहीं गया । यहाँ कारण है कि उनके काव्यों में

- १- रामकथा पृष्ठ ३६
- २- " " " ३९
- ३- " " " ४६
- ४- " " " ४२, ४३, ४५, ४७ ।
- ५- " " " ४२



प्राधान्य तथा स्वामित्व गण-कवियों की शक्ति उत्तरीयों का नापात्यक संदर्भात् शब्दों का प्रयोग किया है। वाक्यों के गठन के लिए (प्रचुरपनसगर्भ-निर्भर पनान्त-गतिरुभेदिकानुरूपेण<sup>१</sup>), शक्ति का समर्थन का आशय के लिए (द्वारान्तगतकठोर<sup>२</sup>)। रावण की मन-व्यति के अर्थ में स्वान के लिए (पनःपान्तव्येराणि<sup>३</sup>) एवं शक्ति का आशय के लिए (शुक्राण्यारख्यगामिन-वदितिविद्वधप्रकृतः<sup>४</sup>) शब्दों का प्रयोग किया है।

कवि ने अपने काव्य में कुछ अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे रावण के लिए 'आशर', बन्दर का आशय के लिए 'हिन्का' तथा प्रचुर शक्ति पाने के लिए 'जलिपानशक्ति' शब्दों का प्रयोग इस प्रकार का है।

शब्द-वर्तों के अन्य कवियों का प्रवृत्ति अवश्य परिलक्षित होता है किन्तु उन्होंने उनकी तरह अपनी शैली को दुर्बीण नहीं बना दिया। उन्होंने शैली को दृष्टि से अपने काव्य का आदर्श बाण को नहीं बताया, बण को हा बताया। शैली का सरलता के कारण उनके काव्य में क्लिष्टता केभाव भी नहीं आ पाती। इस काव्य के संपादक श्री० शंकरराम शास्त्री ने अपनी शैली को प्रभु प्रशंसा करते हुए बताया है कि हमें बाण और बण दोनों ही उत्तर गण-काव्यकारों का गण-शैली के गुण समन्वित रूप मिलते हैं। उनकी बाण की उत्पन्निक उत्कृष्टता एवं क्लिष्टता का सर्वथा अभाव है। हमें संदेह

१- रामकथा पृष्ठ २०

२- " " " ३६

३- " " " ३२

४- " " " ४६

५- " " " ४९

६- " " " ४२

७- " " " ४६

८- " प्रेमिका, " ११ प्रेमिका





कवि ने जना शैली को अलंकृत करने एवं आत्मज्ञान बोधवाचकों का रचना करने में जो साधनात्मक या त्रिस्तुतिय किया है। अतः कवि राम को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है किन्तु उस काव्य में उनकी एक प्रकार से उपेक्षा हुई है। लेकिन ऐसा कि उन्होंने काव्य का जो पक्ष रचना-सा-कृतिकामकः शब्दः काव्य' माना है उसके अनुसार जकाव्य में जो दर एवं लक्ष्य मनावली का अभाव नहीं माना जा सकता है।

उस प्रकार उपर्युक्त गण-काव्यों के अध्ययन के ज्ञान होगा है कि केवल बासुदेव को ही इकर प्रायः सभी गण-कवि बाण का आत्मभूमिष्ठ दार्शनिक तथा विशेषण विशिष्ट शैली से प्रभा वत है। उन्होंने उस शैली का प्रयोग प्रायः प्राकृतिक दृश्यों के निरूपण में अधिक किया है। कर्मा-वर्ण कवियों का इस शैली के प्रति आकर्षण नही रहने के कारण वर्णन-प्रयोग के यह अन्वय नष्ट हो गए हैं और ऐसे प्रयोग भी अलिप्त हो गए हैं।

कवि इस शैली के प्रयोग में अपने अफस नहीं हुए हैं बल्कि कि प्रवादमयी शैली के अपनाने में। उन गण-काव्यों के अध्ययन से ज्ञान होता है कि वामन भट्ट बाण को ही इकर प्रायः सभी गण-कवि वैद्यों राति को मुख्य स्थान देते थे। उन कवियों ने ध्या-प्रयोग में इस शैली को प्रधानता दी है। धनपाल ने रातिगो में वेदों राति को श्रेष्ठ माना है, क्योंकि वे वर्ण श्लेष को स्थान नहीं देते हैं किन्तु ये कवि एक ही बाण ने अत्यधिक प्रभावित होने के कारण और दूसरे गण-काव्य का प्राणतत्व अज्ञान मानने के कारण उस आत्मबुद्धि शैली से बच न सके।

अर्थात् गण-कवियों की शैली को विवेचना से यह भी स्पष्ट है कि उन गण-कवियों में न केवल धनपाल ने ही अतः धनपाल के बाद प्रायः सभी कवियों ने अपने काव्य में उनकी अपेक्षा कम किन्तु प्राधान्य गण-कवियों का जोशत अधिक गण को पर्याप्त स्थान दिया है।

वामनभट्ट बाण को रचना में पद्यों का बाहुल्य नहीं कहा जा सकता है। प्रारम्भ में तो कवि परम्परानुसार अपना परिचय आदि देने में पद्यों का प्रयोग किया है। कथा-विकास में अत्यन्त प्रत्येक उच्छ्वास में हृन्द आ गए हैं

किन्तु उनका संज्ञा अधिक नहीं है ।

गणेशराज ज्ञानाश्रम ने जो शर्तों का प्रयोग किया है वह ज्ञान-  
साधन-विषयक अत्यन्त शिथिल के तिर्यक हैं किन्तु वह गद्य-कवि पढ़ते हैं  
और छ ज्ञान में गद्य-कवि । ज्ञान-रचना के नाम उन्हीं गद्य-रचना ने अपनी  
आकृति कर लिया है ।

अर्थात् गद्य-शैलियों के तथा का शर्तों में गद्य की ज्ञान मिलने के  
कारण वह एक प्रकार की उत्तरकालीन गद्य-शैली का विशेषण बन गई है ।

पुस्तक - अक्षर

अक्षर विधान

-0-

## अंकार विधान

जैसा कि काव्य-मार्ग का विवेकना करते समय देना जा चुका है कि प्रारम्भ से ही ही काव्य का प्रमुख तत्व अंकार विधान तथा और काव्य लक्षण में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। अन्तिम स्थानों के पूर्व तक संक्षुप्त जानाया बिना अंकार के काव्यत्म को बरखाया हो नहीं कर सके थे। उन्होंने अंकार का क्षेत्र महत्वका अंकार कर दिया और उगी के अन्दर गुण रस ध्वनि तथा श्री चारुवाभास का कर अंकार के अन्दर कर दिया। अंकारवादिनों में रामानुज सर्वप्रथम ज्ञातार्थ है जिन्होंने गुण और अंकार में भेद देना। ध्वनिवादी ज्ञातार्थ भी अंकारों को महत्वपूर्ण दृष्टि से देखते हैं किन्तु वे उनके अभाव में भी काव्यत्व को बलता कर ड लेते हैं। क्योंकि उनका दृष्टि में वे काव्यात्मा रस के अन्तिम वर्ग होते हैं और शब्दाय का उच्चारण करके रस का परम्पराय उच्चारण करते हैं। अतः उनकी दृष्टि में अंकारों का उपयोगिता रसांगित्य पर ही निर्भर है। अतः अन्तिम वे अन्तिमों को भी अंकारों के अभावका प्रयोग करने के लिए आवश्यक करते हैं। उनका कहना है कि महाकवि अंकारों के प्रयोग के लिए प्रयत्नशील नहीं होते हैं अपितु अंकार स्वयं उनके पाँदे बने जाते हैं।

संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक कुछ कालों में कवियों ने अंकारों के प्रयोग में इस बात पर ध्यान रखा। भाव पदा को प्रधानता तथा कलापदा को नगण्य रखा था। सरल शैली थी, भावार्थवाद आदि के निरूपण में अंकारों का सुक्ति प्रयोग होता था किन्तु जब पाणिनीय प्रदर्शन का गुण आया तो कलापदा की प्रधानता ही गई और भावपदा नगण्य-ता ही गया। भाष, हर्ष, भारवि आदि के अन्तर्गत कवियों में अंकारों की अभावपूर्ण बहुता मिलती है और उनका उपयोग मात्र मात्र ही गया है।

मग-काव्य का भी प्रारम्भ ही अन्तिमों को अंशुत शैली में ही हुआ है। अतः उन्हें अंकारों की प्रचुरता मिलने में कोई आश्चर्य की बात

नहीं है। मगध-काव्य के उन्मूलनात् नर प्रकार ने दुबल्यु हा है उनके काव्य में अक्षरों की ही बहुता है। प्रत्यक्षर स्तूपनता रचना करने के कारण स्तूप अक्षर का विकास हुआतों ही अक्षा वा दुबल्यु ने फिना। बाण ने दुबल्यु द्वारा उदात्त मगध-काव्य का ही दुबल्यु को दूर करके अपने मगध-काव्यों में अक्षरों का समुचित प्रयोग करके कलात्मक और भावमय के अन्वय जाने का चेष्टा का। दण्ड ने अक्षा शैली को अपने पूर्ववर्ती उन दोनों कवियों के भिन्न रखा अतः उन्होंने अक्षा शैली को अक्षरों के बोधिल नहीं होने दिया जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि उनकी भाषा में प्रवाहात्मकता अन्य नान्य मगध-काव्यकारों की भाषा का लोभा सर्वाधिक है।

परन्तु मगध-काव्यकारों ने प्रायः बाण की ही मगध-काव्य-शैली को आदर्श मान कर अपने काव्यों का रचना का। अतएव उनके राजधानी, नगर, राजा, राजा, प्रकृति-वर्णन, नर शिल्प वर्णन आदि जहाँ कहीं भी वर्णन प्रधान अथवा जहाँ उन्होंने अक्षरों का प्रयोग रखा है। ये कवि सर्वत्र बाण की शैली के अनुकरण में विशेष सफल नहीं हुए हैं किन्तु अक्षरों के प्रयोग में उन कवियों के विचार में इस प्रकार की धारणा नहीं आई जा सकती है। अक्षर विषयक सफलता कवियों की कुछ ही श्रेणियों में मिला है। वर्णन-प्रधान अक्षर उतने बाधक नहीं हुए हैं जितनी कि शैली। अक्षरों में कुछ श्रेणियों को छोड़कर उन कवियों की कल्पनाओं में नवीनता भी मिलती है। 'राजकथा' के रचयिता वासुदेव ही कवि तक श्रेष्ठ हैं जिन्हें अक्षरों के प्रति कोई विशेष मोह नहीं है। भोज की शृंगारमंजरीकथा, कनकाच की तिलकमंजरी, जोह्यदेव का <sup>प्रद्य</sup> चिन्तामणि, वामन भट्ट बाण के कैमपुत्र चरित और जान्नाथ के आरुफ-विलास में पर्याप्त मात्रा में अक्षरों का स्थान मिला है।

शृंगारमंजरी कथा में अक्षर-विधान--

भोज ने अपने काव्य में बाण की ही शैली अपनाई है उनका ही भाँति दीर्घ समासच्छन्न विशेषण विशिष्ट वाक्य मिलते हैं, अक्षरों का बहुता भी मिलती है किन्तु अक्षरों के प्रयोग में कवि की रुचि विशेष



का नाम नहीं परिवर्तित होता ।

जब काव्य में अन्तःसंकारों का बीजा उत्प्रेषण संस्कार का शक्तिता मिलेगी । कर्ता-कार्य पर इस संस्कार का सामान्य रूप मिलता है जैसे--

‘प्रतिशिरसाक्युरापीक्षित निश्चित्य, दिशान्तापीडितविरागतम्,  
दिशान्तरकौर्गिनष्फादिकम्.... ।’ कल्याण

कल्याण

‘मालवितामिव द्यवदहन ज्वालासहस्रैः, सुमुनिवामिव  
पुण्ड्रकौर्गितभिरलक्षैः, पञ्चितादितामिव वाङ्मयी...  
करिदुर्लभैः.... ।’

अन्त्या काव्य-प्रतिभा में तरिसूणी इस संस्कार का प्रयोग मिलता है । अयोधिनिक संस्कारों में कवि ने शृंगारसंवरा के नवविश्व वर्णन में उत्प्रेषण संस्कार का प्रयोग अपनी मौलिक प्रतिभा के साथ किया है जिसमें कर्ता में संस्कार की, कपोलपञ्च में शशिमण्ड के द्वारा कर्त्तृ धोये जाने का, लावण्य में तैवक जन को उत्प्रेषण की गयी है --

‘सतमुच्छ्रिता वदत चन्द्रमगः परित्स्फुरत् कान्ति जालेन प्रसिद्धा -  
प्रहसन् प्रतश्चित्तिरनिकरमिव पञ्च<sup>त्रि</sup>कान्तिपूतानितीर्णं केजरासमुदहन्ता,  
.... कर्त्तव्यपाकर्तुं विधासूतेन शशिमण्डलैव कपोलफलक द्वयेन  
जीत्माना.... तन्वर्गिगानि वायुमकान्तिज्वाला इतिः प्रसूतेन  
लावण्येन तैवकजेनेव परितः तद्वैव परिवारिता.... ।’

कव्यानुसूप कवि की कल्पना होने के कारण कवि के अंतःसंकार-वर्णन में अद्वितीय सौन्दर्य ला देते हैं । इस सम्बन्ध में कवि ने जो विषयमहोला का बुद्धावस्था का चित्र खींचा है वह मुख्य का स्वीकृता ला देता है ।

- १- शृंगार० पृष्ठ ४, ५, ५२, ३७, ७ ।
- २-    "        "    ५
- ३-    "        "    ५२
- ४-    "        "    १२
- ५-    "        "    १५





जिसका यह भाव कवि ने दो बार उल्टा-सीधा करके उत्प्रेता अंकार का प्रयोग किया है। साथ ही यह उल्टा, अत्युन्दरा लक्ष्मीय में लगे आभास्य पर्यंत का परिणामी का विषय मान्य है क्योंकि यों उक्त अक्षर का उल्टा होने पर परिणामी के कारण के अर्थ में उक्त अक्षर का जोतना उत्प्रेता अंकार का रूप देने को मिलता है।

उसी प्रकार कवि ने अत्युन्दरा तथा अनुप को उत्प्रेता दो बार का निमित्त प्रयोगों में का है।

किसी के मन से भाग कर जाय लेने को उत्प्रेता काव्य में दो-तान बार लगी है किन्तु केवल अन्वयाराण्ड के वर्णन में। इस प्रकार का उत्प्रेता के अक्षरों का प्रयोग लगे --

..... परित्तमिदुष्ट प्रतिक्रियापूर्वित्तम दिव्यकरणाभिर्देवाभि-  
 सुकुमारार शरणागतान्तः प्रवेष्टारतादिवापषधमादधान् अनेक-  
 धारणकवक्राम्भातजन्मना परितः अमुत्सर्गता शैत्येतावरभाभगाद  
 दुरावेन प्रीत (दि. १००) (१) जो अन्वयाभ्युत्थानमिव०  
 प्रतिक्रिया कुर्वाणम् ... इत्यादि।

इस काव्य में कवि ने उत्प्रेता अंकार के बाद चिह्नोप्प्राकार को ज्ञान दिया है। उत्प्रेता अंकार के समान ही धारों के अन्वय वर्णन में इस अंकार के प्रयोग में भाव ज्ञानो सुख दृष्टि का परिकल्प दिया है। इस प्रकार में इस अंकार का प्रयोग अंगारसंजरी तथा अक्षर मां विषमसंज्ञा के ही मित्रण में अधिक हुआ है। जैसे अन्य धारों में भाव जाह है। वहीं उक्तान कि है किन्तु दोनों के अन्वय-वर्णन में उक्त कवि ने भिन्नता दिना दो है जो --

- १- अंगार० पृष्ठ ५१
- २- ,, ,, १०८
- ३- ,, ,, ३७
- ४- ,, ,, २, ६, १२, १३, २३, २६, ३०, ४०, ४७, ६०, ७४, ७५, ७८ ।
- ५- ,, ,, ५
- ६- ,, ,, ३, ४, ७-८, ३०, ४७, ६१, ७६





उदाहरण मयीत लीया --

प्रियतमैव शरत्कर्मणः सुसुखिभवास्तु आनन्दमुत्पन्नकान्तितु  
मुपात्तवन्तः समाप्तोवाच परमन्ताः सुसुखिनः कर्मणि चरन्तः  
प्राणिनाम् । ननु इति शीतभोग्युत्पन्नस्तु किमो गिनतीत्यतः  
प्रतिभाशानास्तु कर्मणो विविधाः ।

उदाहरण उम्मा कर्णार का प्रयोग पूर्व कर्तव्यपूर्ण का विधान में,  
नगरों के वर्णन में यहाँ का संस्कृतिक उदाहरण में, किट, कर्मकारिकार्य  
तथा यहाँ का उम्मा वास्तु में उक्त राजा शीत के कर्तव्य के वर्णन में हुआ है।  
इसका एक उदाहरण मयीत लीया है --

प्रियतमाभिरमताः प्राणाः... (१) रिष्यादुल्लाभाभरणमभ्यादनाय  
सज्जन्तुः सुखं तन्निदन्तीनास्तौ । अविदुः पातालान्करी  
भोगिभिर्मुनीः । अविदुः मरुतीनायते भावुगामिर्भिरुस्मिः ।

उम्मा के एक वेद मालीना कर्णार का प्रयोग केवल एक बार  
राजा के गुणों के वर्णन में ही हुआ है ।

उम्मा के बाद काव्य में उपक कर्णार का अधिकता मिलता है ।  
उत्प्रेक्षा कर्णार के अन्त यत्र तत्र एव कर्णार का नः ज्ञानान्य उप मिलता  
है, जो --

निवानं वृष्टेः, उद्गमः कर्णारः (रा) उम्मानाद,  
आवासमवनं सुवनः, प्रसवर्नं प्राणदस्य, ... ।

---

१-	शृंगारः	पृष्ठ	६७
२-	॥	॥	३
३-	॥	॥	६
४-	॥	॥	६
५-	॥	॥	६-१०
६-	॥	॥	५, ६, ७, ५३, ३८
७-	॥	॥	५-६

परम्परित्तु का के भा ७७ का का श में मिलते हैं जते --  
'राधासदांशुपुत्राजिज्जलज्जलानांशु-पुत्रागार ।'

'उन्मवलिखुम्भट्ट हृदाकान्तकरवालनकरो नृसिंहः,  
बालराजलक्ष्मीश्रेणकालाननुभुवाम्भः ।'

सांगोपक का प्रयोग शब्द तु के वर्णन में कवि ने नायिका के अवयव के साथ एक बांध कर किया है और शर्मा-तु के वर्णन में कवि ने उसका एक ही राधास के साथ बांध कर किया है जिसमें उका आभ, दांत, काजी कान्ति, धूसरित शरीर को लिया गया है । किन्तु बाद वाला सांगोपक विपुल एक अलंकार को शीटि में नहीं आता क्योंकि इसमें कवि ने उस राधास को आवाज से शर्मा के हृदा के कटने से निकले हुए रक्त के साथ बार बहूटियों के फैलने को कल्पना की है अतः यहाँ पर उन्मेषा अलंकार को भी कहा हो गई है । राधास का एक अंशकार के साथ भी बांधा गया है जिसमें चन्द्रमा के द्वारा उका नाश बताया गया है ।

इस अलंकार का प्रयोग शब्द तु को दण्ड देने वाले राजा से एक बांध कर भी किया गे गया है जिसमें बैतकी को चौर और प्ररों को लौहे को सुवृद्ध जंजीर बताई गई है ।

मणियों की माल्यविन्ध्य से पणियों को भ्रान्ति होना, अरुण-मणि पर पड़ी चन्द्रमा को किरणों का एक कमल को भ्रान्ति पैदा करना , पुष्पराग की कान्ति से कम्बुक तथा कमल को दिन की भ्रान्ति होना परकत

- १- शृंगार० पृष्ठ ६
- २- " " ६
- ३- " " २६
- ४- " " २७
- ५- " " ४४
- ६- " " ६६
- ७- " " २
- ८- " " ३

की शान्ति के नाशोत्कर्षों का विनाश, शरीर के फल में लगे प्रतिविम्ब की भङ्ग का शिखर मन्थना, मरुत का शान्त के बाइल लगा उल्लासावाज के शेष का गर्जना का भ्रम करने मयूरी का नृत्य करना तथा कृत्ति पुन्यभारती शर्मा का विनाश का शान्त के मन्थारा ३ के उल्लोचन पाता कवि ने शान्तमान् अक्षर के साथ वर्णित किया है ।

विरोधाभास अक्षर का प्रयोग अन्य अक्षरों की शोभा का है । शरीर के वर्णन में 'विधा' शब्द को लेकर इस अक्षर का प्रयोग कवि ने कई बार किया है --

'विधापि श्लेषाधिपिशाति, विधापि भवनानि, विधापि  
दुवलयु ( F. 2. A. ) शीतारिणि, विधापि वित्तवानि ।'

प्रयोग अक्षर का प्रयोग नायिका के शरीर वर्णन में तथा राजा की विधा शाने में हुआ है ।

कारण के पहले कवि को शिलाकर धर्मतु के वर्णन प्रयोग में कवि ने केवल एक बार शक्तिव्योचित अक्षर का प्रयोग किया है ।<sup>10</sup>

विविध भण्डारों एवं उपवर्णों के साथ अक्षर का विधिति बताते हुए कवि ने दोष अक्षर का प्रयोग किया है --

'वर्षां संवर्षते अस्तमधि बुद्धिः, विच्छिन्ने अटिक-  
प्रादनुमितिः, अक्षराद्वियते कनकाधोरुर्गः, नियोगते पौरा-  
रावनेन्दुनन्दितानिः, अप्यायते वातायनीदगतागुधुमपुमजाठः,  
उपनीयते इव उपवर्णः शिखीरव जयकुंजरवसनकिरण-किरः,  
निर्णयत अन्ध-नालमधिभूमिगुल्फेप्रतिरजितमः ।'

- 
- १- अक्षर ० पृष्ठ ४
  - २- " " " ६
  - ३- " " " ३, ४, २०, ३०, ३६
  - ४- " " " ४
  - ५- " " " २३, ४
  - ६- " " " ४
  - ७- " " " ७३
  - ८- " " " २

अतिरिक्त अक्षर का भी प्रयोग बहुत योग्य हुआ है । प्रायः  
 विचित्रता तथा नया शक्ति के वर्णन में किया है । विचित्रता के वर्णन में --  
 'मुल्लैवं सुहृत्तरं व्याहरति । शक्तिं शक्तिं भक्त्यात्मनिव्यञ्जति ।...  
 'नीमादित्यं नीमादित्यं नीमादित्यं नीमादित्यं ।

उन गीतकारों के कवि ने विचित्रता को उद्भूत बताया है ।

हास्य के वर्णन में --

'शक्तिं शक्तिं शक्तिं, शक्तिं शक्तिं शक्तिं, शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं  
 व तेजसा न्याकृतपुण्ड्रकर, व कृतं शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं  
 वामागो व्याप्यनिकरम् ।'

परिस्थिति अक्षर का भी प्रयोग केवल एक ही वर्णन में ही हुआ है  
 जिसमें अन्य विषयों के अक्षरों के अक्षरों द्वारा बताया गया है जैसे --

'लुप्यं वर्णनं प्रमाणं, निष्ठुरं सुरेशं न सुते ।' इत्यादि ।

इस प्रकार मौल ने उन अक्षरों का प्रयोग केवल पाच तथा साकृति  
 द्वारा राजधानी आदि के ही वर्णन में ही किया है । गीतों का  
 अभिव्यक्ति कादि कराने में अक्षरों का कुछ भी स्थान नहीं है ।

### तिलकमंजरी में अक्षर-विधान

तिलकमंजरी अपने पूर्वका कवि बाण का शैली से प्रभावित अक्षर  
 हुए हैं किन्तु अक्षरों ने अक्षर का प्रधानता नहीं रखी है । उनका दृष्टि  
 में यदि अक्षर नहीं है किन्तु वहाँ सुहृत्तर आदि गुणों का सत्ता है तथा  
 नाभुयं वर्ण वाली कवि को बाणों है जो वह अक्षर को अपना और उद्भूत  
 कर ही लेता है । यही कारण है कि उनके काव्य में जहाँ भी कोई वर्णन-प्रकार

१- अंगारो पृष्ठ १०

२- " " ४०

३- " " ३०

४- ~~विचित्रता~~ " " ७२

जाया वहाँ वर्णन जलारों का कड़ा नाम दिया है । अलंकारों को समान्य वर्णन में ही एक प्रयोग को असाध कर दिया है । काव्यों में कवि ने जगदीश्वर और कारकनकनकंभरा चार, राजारों में वैद्यनाथन का, अन्य भावों में विनायर सुनि, वैभक्ति, और वेताड का, अन्य भावों में मलामुन्दर, गिल्लजंकर तथा वाराणसीविधियाँ का, भावों में केवल केताह्य वर्णन का, सुदृ, अष्टमाशुतोषर, विद्यनाथन, यम्य - विरयतेन तथा मठ के प्रयोग में ही कवि ने अलंकारों का बहुला वर्णन है और वहाँ पर कवि का विशेष रसि जगरे प्रयोग में दिखाना देता है । काव्य नरेण कुमशेकर का वर्णन प्रथम 'अलापयप्रसूक्तसुनासुधो' करके एक बार व्यतिरेक अलंकार के साथ तथा 'सत्यदुः समागतलोभानां वदपंजरोभातानामुत्थमवध्मो निजवंशवेधनः' जादि कवि एक बार अलंकार का प्रयोग अवश्य किया है किन्तु वहाँ पर कवि का विशेष रसि अलंकारों के प्रति न होने के कारण उन प्रयोग को कुछ ही अलंकारिक पंक्तियों में इकर समान्य कर दिया है । वहाँ तक कि काव्य ने एक काव्य के नायक तथा उमायक के अन्वये वर्णन में वैसे अलंकारों का काव्य नहीं दिया जो वैन कि अन्य कवि किया करते हैं । इस प्रकार सुयास्य वन्दोदय आदि के वर्णन में सर्वत्र अलंकारों का बहुला नहीं मिलेगा । मध्याहन का वर्णन एक-दो स्थलों को होकर किना अलंकार का ही है । सुदृ यात्रा के छि नैत्रियों के साथ जाते हुए अमरकेतु के सुदृ पार कर लेने के पश्चाद सुयास का वर्णन इस प्रकार का है<sup>२</sup> ।

अलंकारों में जो कवि ने कुछ ही अलंकारों को काव्य में स्थान दिया है । जैसे उत्तरीका, जगा, शिष्टीयमा, शेष, अफ, वतिह्योक्ति, परिस्त्या, विशेपीकि, विभावना, व्यतिरेक, संदेह, अपह्नुति, यमक, अर्थांतरन्यास और पर्याय ।

१- तिलक० पृष्ठ ६७-६८  
 २- ,, ,, १२३-१२४ ।



उन अक्षरों में कवि को कुछ ही अक्षर विशेष प्रिय प्रकृत होते हैं। अतः उनका प्रयोग उनके प्रचुर मात्रा में किया है। उत्प्रेक्षा और उष्ण अक्षर जो कोटि में जाता है। कल्पनाओं में सर्व मौखिका का परिचय मिलता है। प्र के अभाव काय एक ही है। जैसे ऊँचा नारी के वर्णन में भगवदुम्बो प्रकार की चोंटा के सम्बन्ध में को गी इक्ष्मा भाग के शिष्टाण्ड का का कल्पना से प्रभावित है --

‘मयात्वं नानशितोत्प्रेक्षा प्राणरहितरेण त्वात्तत्वात्ता  
प्रस्तुत चादृशिव प्रक्षयवन्दनमाला इयाम् ताविकीपुरं विलम्बामाम  
वाचसुतेषु रविरणावर्षस्मिहणः ।’ (किल्क० पृ० ११)

‘कुतूहलेन जाडुपेत्य प्राकारमिह्या जहानिनिषिहः ।

रान्नरोदाद्भूमम्बुवर्षेवाजेन यन्ता बहिरम्बुवाहः ॥४१॥

(शिशुपालकाण्ड वृत्ता कर्ण)

किन्तु जहाँ <sup>वह</sup> पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित हुए हैं वहाँ उन्होंने दूसरे कवियों को भी प्रभावित किया है। परिवर्षा के जल में प्रतिबिम्बित प्राकार से मैनाक ज्वल के छूटने को उत्प्रेक्षा जिन प्रकार का काव्य में है, उष्ण प्रकार की १२ वीं शताब्दी में होने वाले हर्ष के नैषधोद्यवर्तिर में मिलता है --

‘मनोरथानामपि दर्विल्लयेन यत्कमानकस्मिन्नसुम्भासा षण्णो-  
निष्ठा जलप्रतिबिम्बितप्राकार ज्वलेन जलराशिक्रिया मैनाकमन्वीष्टमन्तः  
प्रविष्टस्मिन्नेव महता ज्ञातयत्ने वैचिन्ता ।’ (किल्क० पृ०=)

‘प्रमन्वुप्रतिबिम्बिकायतिर्महत्तरैस्तरुस्तट्टुनः ।

निमज्ज्य मैनाकमहीमृतः सारततान पदात्त ध्रुवतः न्यस्तताम् ॥१॥

(नैषधोद्यवर्तिर प्रकर्म)

कवि ने पार्श्वों के न्यून-वर्णन में प्राकृतिक दृश्यों के स्मय और भयावह रूप के चित्रण में दृश्यों का उज्ज्वल चित्र उपस्थित करने में, भाषाओं की अभिव्यक्ति कराने में तथा पाठकों को रस-स्थिति में पहुँचाने में जो अक्षरों का वाक्य लिया है और कवि पर्याप्त मात्रा में एकल भी हुआ है।

कवि को इस सम्बन्ध में यह विशेषता रही है कि परिच्छिन्नता तथा वातावरण के अतुल्य ही कल्पना का जाया और इस अलंकार का प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ विद्यापति के चरणों में छटपटा पुष्पा का माला से कवि भव-सागर में डूबे प्राणियों के उद्धार होने की उत्प्रेक्षा अधोद्विहित पंक्तियों में कर रहा है --

... रणकुमराग्निः समन्ततो जटिलोद्धृत

दुस्तरभक्कूपनिपतितप्राणि-सायोद्धरणार्थेभः प्रवर्तित-  
पुष्परञ्जनेव.... चरणद्वयेन योत्मानम् ।<sup>१</sup>

जो प्रकार मृत्युलोक में अवतार लेने वाले कैानिक के चरणों में लिपटते प्रवर्तों के सम्बन्ध में कवि उनके वियोग से दुःखी स्व पुनः शीघ्र जाने के लिए प्रार्थना करने वाली सुरांगनार्थी के अङ्ग से उत्प्रेक्षा करता है ।<sup>२</sup>

उद्यान में सड़े गन्धर्वक के हाथ से निकली कान्ति से कवि जलधारा की कल्पना करके वृक्षों के अ जालवाल के गिन्द को कल्पना करता है तथा पहले उसे चित्रकला में निपुण बताकर उस प्रसंग में उसके हाथ की मणि लचित अंगुठी से आकाश में चित्र निर्माण की कवि उत्प्रेक्षा करता है ।<sup>३</sup>

सुड्र में समरकेतु और मलयसुन्दरी के बूदने की घटना के गश्चाइ मलयसुन्दरी समरकेतु को देसती है । उस समय कवि ने उसके एार की उत्प्रेक्षा सुड्र में बूदने में लसी करने को उच्छा से उसके कण्ठ में ली नदियों के साथ अस्त्य है ।<sup>४</sup>

- 
- १- तिलक० पृष्ठ २४
  - २- " " ३६
  - ३- " " १६४
  - ४- " " ३१२

पार्श्वों के अनुभव इस अलंकार का प्रयोग होने से यह अलंकार  
रस को वर्णना भी करा देता है। इस सम्बन्ध में वेताल का वर्णन  
दृष्टव्य है।<sup>१</sup>

पार्श्वों के अतिरिक्त कवि ने समय-परिवर्तन में भी उत्प्रेक्षा  
अलंकार का प्रयोग परिचित के अनुसार ही किया है। उदाहरणार्थ  
मैघवाहन प्रजा के दुःखों के निवारणार्थ निम्नलिखित है उसका कवि ने  
मध्याह्न का वर्णन राधा से अपने दुःख का निवेदन करते हुए किया है --

ताव्रतिर्गार्ग्यकरनिपातोपतापितः त्वदुःखमाभित्याद्युखि  
प्रत्याश्लाघ मध्याह्नकमगः ।<sup>२</sup>

इसी प्रकार त्तरकैतु की आसुद्रयात्रा यात्रा को स्थापित के  
पश्चात् फैले अंधकार में कवि समुद्रयात्रा कर चुकने वाले यात्री को तथा  
फैली हल्की लालिमा में तारावर्षों की सैना मान कर उनके द्वारा घुल उड़ाने  
जाने की कवि सम्भावना करता है।<sup>३</sup>

प्रकृति को कभी महवरी कभी लहानुप्रति प्रकट करने वाला कभी  
मंगल विधान करने वाली के रूप में जन्माने में कवि ने इस अलंकार का  
आश्रय लिया है। वर्षाऋतु का पूरा वर्णन हरिवाहन को मान्त्वना देने  
में ही हुआ है और हरिवाहन की सौज के लिए जाने को तत्पर त्तरकैतु  
का मंगलविधान करने के लिए उत्सुक प्रकृति सूर्योदय के प्रलम्ब में जाई है।<sup>४</sup>  
इन प्रलम्बों के अतिरिक्त भी इस प्रकार की कल्पनाओं से युक्त उत्प्रेक्षा  
अलंकार के रूप देने को मिलते हैं।

१- तिलक० पृष्ठ ४६-४८

२- " " ६६

३- " " १५०

४- " " १७६-१८०

५- " " १९७-१९८

६- " " २५३, २५७

काव्य में उत्प्रेषण अंकार के दो रूप मिलते हैं । एक में विशेष काव्य-प्रतिभा का कलत्र न होने के कारण उसे सामान्य रूप कहा जा सकता है और दूसरे में काव्य-प्रतिभा होने के कारण उसे विशेष रूप कहा जा सकता है । उत्प्रेषण अंकार का सामान्य रूप कौलिक प्रशिक्षणों में देता जा सकता है --

उष्णानामपटुभूमिषु जम्बुद्वीपेषु, मागधेषु च भारतवर्षेषु,  
 वैशम्पतिषु जगन्निधौ; तामन्तभिषु पुनः ... ।

(वैशाख्यपर्यंत का वर्णन)

इस प्रकार का उत्प्रेषण कई स्थलों पर मिलता है । वहाँ- वहाँ का प्रकार का उत्प्रेषण अंकार वर्णन-प्रसंग में कथितान्वय जीव्य है आया है जैसे राजा के विविध गुणों के वर्णन में --

‘लवंगगरीरिवोत्पादितगाभ्यायः, ज्वगिरिभिस्त्रिधापि-  
 भावोन्वतिः, लवैवलनैरिव जनिताप्रतापः.... । इत्यादि  
 अथवा मलयसुन्दरी की ध्यान में मग्न शिवति के प्रसंग में --

‘काञ्चन लिखितानिवास्कीर्णमिषु नितातामिषु स्तम्भितामिषु  
 विभावमानाम् ।’

इस प्रकार के उत्प्रेषण अंकारों से कुछ तनाव ही उठे हैं । अतएव ही गोरक्षा एवं सुक श्रियाशालता कहाने में प्रयुक्त यह अंकार अथवा कथा कुछ जीव्य ही रूप रखता है --

प्रोत इव वृणोमुलेज, लिखित इव भाव्याम्, उत्कीर्ण इव  
 मुलेज, अतर्हित इव अणान्धो तुल्यकाञ्चलदयवु ।’

१- तिलक० पृष्ठ १३६

२- ,, ,, ११, १३, १४, २३, २५, ६०, १२०, २०३, २२५, २५१, २७६

३- ,, ,, १३-१४

४- ,, ,, २५५

५- ,, ,, ६०

नवीन कल्पनाओं से परिपूर्ण उत्प्रेक्षा कालार का प्रयोग कुछ ज्योतिषित नवित्तों में देना जा सकता है --

समुद्र में प्रतिबिम्बित दूरी तथा तन्द्र के सम्बन्ध में --

विषमवाहनविदारयुद्धय निज्जगन्नाष्ट्यं तुरंगमसमग्रता-  
जनितवेपथुय वात्मकवपुषः पीडयों कलामन्वीष्टमिव मसदृष्ट-  
दिग्धाः कर्णश्लेष शम्भाभ्यामहिनप्रहिनगमान्तिभ्यामनवरतकृत्कञ्जान्-  
ज्जनम् ।<sup>१</sup>

कैले के टेंढ़े-मेंढ़े पर्वों के सम्बन्ध में कवि कुल्हाड़ी से उत्प्रेक्षा करता है --

प्रान्तगतितमनादशैववाह्याः शपाविरतभिः  
परमथपरम्परामिरिव पत्रशजिभिः<sup>२</sup> ।

कवि उन कैले के सहस्र पर्वों से निकला कान्ति से उल में उदित का उत्प्रेक्षा करता है --

ओकसहस्रकल्पानामेकनोरुवर्णमिव विभवं दर्शमितुमु-  
त्प्रेक्षताम् ।<sup>३</sup>

काव्य में नवीन कल्पनारं है किन्तु कवि को ऊपर गिरा हुई चोख के साथ उत्प्रेक्षा करने की ज़ेरी -- 'ताण्डवप्रवृत्तताण्डवपुजवण्ड-  
मस्मैव रैसाकारेण पातितम्'<sup>४</sup> ज्यथा किता के भय ज्यथा परिभ्रम से सिन्न होकर वाध्य होने को उत्प्रेक्षा करने की ज़ेरी -- 'विषुत्कृतास-  
मयादिन्दुवन्डिकापटलमिव गलितम्'<sup>५</sup> प्रवृत्ति अधिक मिलती है ।

-----१

- १- तिलक० पृष्ठ १२१
- २- " " २२८
- ३- " " २२७
- ४- " " २३६
- ५- " " २०३
- ६- " " १३४, १५४, २०३, २१०, २१४, २१६, २१७, २३६, २४८, २७१, २७६ ।

मलयसुन्दरी के वज्रोत्सवित वर्णनकरण से बोधित प्रकीर्ण  
र्यं वर्णनाभूषण दोनों के वर्णन में कवि ने उल के बुद्धदे के साथ उत्प्रेक्षा  
की है<sup>१</sup>।

वर्णन-गुणों के सामान्य सौन्दर्य-वर्णन के अतिरिक्त कवि ने  
इस अलंकार का प्रयोग भावों को उत्कट अभिव्यञ्जना कराने में भी किया  
है। पुत्र के अभाव में अत्यन्त दुःखा मेघवाहन का चित्र लीकने में कवि उही  
अलंकार के जात्रय से ही लफल ही गया<sup>२</sup>।

संधि के रूप में वज्रागुप्त की चित्र जाने की बात से दुःखा  
मलयसुन्दरी की अवस्था के चित्रण में हूलैवनिदांरिमा वतासि, उपरिपर्यस्तैत  
गिरिणेव गुरुणा उमा कन्दितार ववियवैकु<sup>३</sup> से उत्प्रेक्षा अलंकार का  
प्रयोग किया है।

इसी प्रकार समरकेतु की कुशलता जानकर शान्त हुई मलयसुन्दरी  
के वर्णन<sup>४</sup> में, मलयसुन्दरी की देलकर समरकेतु की शृंगारिक वेष्टावों के  
वर्णन<sup>५</sup> में तथा किंपाक फल जाने के बाद मलयसुन्दरी के शिथिलांग के वर्णन  
में इही अलंकार का प्रयोग समलता के साथ हुआ है।

उत्प्रेक्षा अलंकार के बाद कवि ने उम्मा अलंकार को काव्य में  
अधिक स्थान दिया है। भावों को अभिव्यञ्जना कराने में कवि ने या तो  
उत्प्रेक्षा अलंकार को या उम्मा अलंकार को ही स्थान दिया है। उक्त्वात्  
प्राप्त शोकावस्था तथा प्रसन्नावस्था के चित्रण में उम्मा अलंकार का

१- तिलक० पृष्ठ १६०-६१

२- " " २०-२१, २७

३- " " २६८

४- " " ३४७

५- " " २७८

६- " " ३३५

अधिकांशतः प्रयोग हुआ है । उदाहरणार्थ मञ्जुशारार प्राप्त जाया का विवेचना से जहाँ अब राजकुमार प्रान्त ही रहे थे वहाँ कवि मलयसुन्दरा के वियोग से पीड़ित स्मरकेतु को उष्मा वारिभक्त एवं वनकरा लम्बमिथ्या-मिश्राप एवं वायुरकामात्प्रनष्टनक्तप्रहन्वाप्लेय इव गृहपतिः<sup>१</sup> से करता है ।

इसी प्रकार स्मरकेतु से मिलने की ताशा करने वाला मलयसुन्दर को जब अब की कुल्लता मिलता है और स्मरकेतु को नहीं तो उस समय उसकी अवस्था का निरापण कवि 'कमलिन्याय प्रवण प्रह्लिवता<sup>२</sup> हता' कहकर करता है । इस प्रकार को उष्मा उनके अक्षुण्णवित नैत्रों के उन्मथ<sup>३</sup> में तथा ज्वलनप्रम के वियोग में दुःखा प्रियसु सुन्दरा के वर्णन<sup>४</sup> में मिलती है । मलयसुन्दरी के वियोग में दुःखा स्मरकेतु को चन्द्र किरणें प्राण का तरह तथा वायु विष की तरह उष्मा अलंकार के साथ ही बताई गई है<sup>५</sup> । तिलकमंजरी का वियोग-वर्णन अधिकांशतः उष्मा अलंकार के साथ हुआ है जिसमें उसको उष्मा रात्रि में तिलने वाली (नष्ट निद्रा ) कुमुदिनी, भूमि पर सोने से स्थलकमलिन्या, फलमूल को खाने से श्वरी, शीतकान्ति होने से शिशिर की दिनलक्ष्मी से, अपने ताप से कमलों को सुरभा देने से शीतकालोन सूर्य की कान्ति से दी गई है<sup>६</sup> ।

वियोग-वर्णन के समान अकस्मात् प्राप्त प्रसन्नावस्था के चित्रण में कवि ने उस अलंकार का प्रयोग किया है जैसे हरिवाहन के वियोग में दुःखा स्मरकेतु बनमार्ग में अवानक गन्धर्वक को देखता है उस समय कवि ने उसकी अवस्था के चित्रण में -- 'प्रथमायीदाभिवृष्ट इव परा<sup>७</sup> स्थलाभोगः पार्वणे<sup>८</sup> दुबन्त्रिकापरिप्लावित इव शीत<sup>९</sup> कुमुदाकरः' में उस अलंकार का

१-	तिलक०	पृष्ठ	११२
२-	११	११	१२५
३-	११	११	२५८
४-	११	११	४००
५-	११	११	३२४
६-	११	११	४१७-१८
७-	११	११	२२२

प्रयोग किया है ।

सुदृगात्रा में अकामाव दिव्यध्वनि का कांतुष्ट वश अनुसरण करने के पश्चात् स्मरकेतु को जब उसका कुछ भी फल नहीं मिलता है तो कवि ने उसकी दुःस्वभावस्था का चित्रण -- 'कामान्मयामिष्याद्भुत्तुष्टरलितेन सहतेव तुर्यस्तुपसृत्य भावता शिशुनेव लघुतां परामात्मानोतः' -- कहकर इसी अलंकार के माय किया है ।

हरिवाहन को बूढ़ने के प्रति स्मरकेतु का लान दिवाने के लिए कवि ने 'करिक्तुर्भ्रूयैव दुरातिमिः पदैरध्वनि र्पती ,... मारुतेरिव क्रमेणोतोषे दुस्तारसिन्धोः , क्वाचित्तादग्न्वाहितादग्नेरिव शुष्कपादमारुपा- र्प्याश्रयिणः' आदि में इस अलंकार को ध्यान दिया है ।

दुःखी का भयंकर रूप तथा बैताल के बीमत्वा का विचित्र करने में इस अलंकार की लघुपर्यायिता देगी जा सकती है ।

राजा के वर्णन में देवता आदि को तो उपमान काया ही है साथ ही मयद् निष्पन्न शब्दों को भी उपमान काया है जैसे--

पृथ्वी<sup>अग्ने</sup> इव स्त्रीयै, तिग्मांशुमय इव तेजसि, सरस्वतीमय इव ववसि इत्यादि ।

अथ गत उपमा का अम सरोवर में प्रतिबिम्बित लाल कमल, विद्रुमलताजी और हन्दीवरी के वर्णन प्रसंग में मिलता है किर्त्त चार प्रहर की कल्पना की गई है --

'प्रत्युपायमाणं पद्मरागस्तोत्पल्लवकैः, उन्ध्यायमानमुन्मुद्र- विद्रुमलतापर्यः, प्रदोपायमाणमिन्द्रनीलैर्वावरगहनेश्चन्द्रोपयायमानमिन्द्र- कान्तकुमुदाकरैः ।'

१- तिलक० पृष्ठ १४८

२- " " " २०१

३- " " " २३३-३४

४- " " " ४६-४८

५- " " " १४

६- " " " २०४



इन शक्तों के अतिरिक्त भी उष्मा अंकार के प्रयोग के कई स्थल इस काव्य में पाए हैं ।<sup>१</sup>

इस काव्य में श्लिष्टोष्मा अंकार का भी प्रयोग हुआ है किन्तु जैसा बाण की भावधरणी कथा और दृंगासंजरी कथा में इस अंकार की प्रियता दिलायी जाती है तैसा इस काव्य में नहीं है । यद्यपि कई वर्णन-प्रसंगों में इस अंकार को कवि ने स्थान दिया है किन्तु कहीं-कहीं पर एक-दो पंक्तियों में इस अंकार के प्रयोग को उचित कर दी गयी है । परन्तु विधाधरमुनि के वर्णन में इस अंकार का प्रयोग कवि ने कई बार किया है । मुनि के स्वरूप ही कवि ने उष्मान के विषय बूढ़े हैं जैसे --

त्रयीमिव महामुनिसहस्रौपास्तित्वरणात्, विन्ध्यगिरिमेस्ता-  
मिवात्तमालोपशीमितात्, त्रिभुवनसृष्टिमिव प्रकटीफलशामाणज्जुवात्...  
नदीतटतरुमिव स्फुटीफलशामाणजटम्... अशैलमिव त्वयंपतितकल्पद्रुम-  
दुगुल्लवत्कलाधृतनितम्बर ।<sup>२</sup>

इस स्थल पर कवि ने दोत्राणित को उष्मान काकर अपने गणित विषयक ज्ञान का परिचय दिया है --

‘दोत्राणितमिव लम्बमुत्कण्ठैर्दभास्तिम् ।’<sup>४</sup>

वैसे इन्होंने श्लिष्टोष्मा में विविध शास्त्रों, महाभारत के पात्रों राम की कथा से सम्बन्धित किसी भी भी विषय को उष्मान रूप में स्थान नहीं दिया है । अरोवर के वर्णन में बाहं ‘सौमित्रचरितमिव विस्तारितमिलास्यज्ञोम्बर’<sup>५</sup> श्लिष्टोष्मा में उनके परवर्ती कवि वामन भट्ट बाण बहुत प्रभावित हुए ।

१- तिलक० पृष्ठ ७४, ७८, ७९, ८८, ९४, २३७-३८, २४७, ३५८ इत्यादि ।

२- ,, ,, २४-२५, १०२, २०४, २१२-१२, ३६८, ३७० इत्यादि ।

३- ,, ,, २४

४- ,, ,, २४

५- ,, ,, २०४

६- -- ‘लक्षणवर्णोद्गीर्णवर्णितमिलास्यज्ञोम्बरः’ । (कैमभूषण० पृ० १२)

राजा मेघवाहन के द्वारा की गयी स्मरणेत्तु का प्रशंसा में श्लिष्टीश्लोककार का उपर्युक्त रूप से विन्व उपमितता है --

‘सर्वद्वेषेण तव सर्वतन्त्रेण मेनाकस्य सर्वन्तवर्त्तर्षि उपजाती भूभृतां वाः’<sup>१</sup> ।

श्लेष श्लोककार का नाम इस काव्य में प्रयोग हुआ है किन्तु उसी अपने काव्य को कवि ने श्लिष्ट नाम का दिया । उनका श्लेष ‘नातिश्लेषयना श्लेषां कृतिर्त्तिपरिवारानुते’ तथा श्लिष्टश्लिष्टा यस्य कथा त्रैलोक्यन्दरी’ का संक्षिप्तों के प्रतिकूल नहीं है । इसके कारण उनका काव्य में संभ्य श्लेष को स्थान न देना है । उक्त श्लेष को ही अधिकता मिलती है जैसे --

‘सफलजातयः शोनिना गृहारानाश्च, हरिद्राशा-द्रु<sup>क</sup>स्यौ  
रागिणः सुवर्णचक्रस्तबकनिश्चयाश्च, प्रगुणविशिखा गृहनिवेशाः सुभटवाण-  
धराश्च, जावहमालिकाः प्रसन्नः प्रकृतकच ।’ इत्यादि ।

मलयसुन्दरी को सती बन्धुसुन्दरी से तारक के द्वारा कही हुई पूरी बात <sup>उपरि</sup> उक्त श्लेष श्लोककार में ही है ।

कहीं-कहीं श्लेष श्लोककार के प्रयोग से संक्षिप्तों ध्वनिप्रधान हो गई हैं । इस सम्बन्ध में एक उदाहरण पर्याप्त होगा --

‘यस्य केनवत्सफुटप्रसृतयशाट्टहास्मरितभुवनकुक्षिरंगीकृतगजेन्द्र-  
कृत्तिनीषणः प्रकटितानेक नरकपालः प्रलयकालविभ्रमेष्वाविमुर्षु संजहार  
विश्वानिशात्रवाणि महाभैरवः कृपाणः ।’<sup>७</sup>

१- तिलक० पृष्ठ १०२

२- “ “ “ ३

३- “ “ “ ५

४- “ “ “ २६०

५- “ “ “ २८३-८६

६- “ “ “ १४, २८, ३५०

७- “ “ “ १४

जन्म कवियों की भांति परिश्रमा अंकार का प्रयोग उन्होंने भी राजार्जो की शाप-व्यवस्था, उनके गुण बताने तथा शिकारों के सौन्दर्य-वर्णन में किया है<sup>१</sup>। इस अंकार के दोनों रूप— चित्रों शब्दों के द्वारा जन्म विषयों से व्यवच्छेद किया जाता है और चित्रों शब्दों के द्वारा अस्मत्त्वे न पिला कर क्या है द्वारा व्यवच्छेद कराया जाता है -- मिलते हैं। दोनों प्रकार की परिश्रमा के उदाहरण अधोलिखित हैं --

प्रणयः

‘प्रणयकल्पाः कलयः, नरकश्चयिन्वासाः शरीरामरणश्च,

प्रियावदनशतपत्राणि पानपात्राणि... चिकित्सासु प्रमदासु परिश्रमास्तौ समन्तादि शैवा तत्रामग्री सुसुकासुनिव्य ।’

‘बुद्धत्यागशीलो विवेकेन न प्रसोत्सेकेन, गुणानां वितोषिताज्ञाशासनौ भवत्या न प्रसुक्तत्या, स्वल्पपराश्च मुतः परमार्थासु न रसार्थासु, अमिताफहारी भालनेन न जालनेन, अकृतकारण्यः कारणेन न शरणे ।’

काव्य में एक अंकार अवश्य आया है किन्तु उसके कवि की विशेष काव्य-प्रतिभा का परिचय नहीं होता है<sup>२</sup>। जन्म काव्यों की भांति यहाँ पर भी अर्था में विदुष्यन, लोक में तरंग, ललाट में तट के आरोप करने की कवि की प्रवृत्ति परिशिष्ट होती है<sup>३</sup>। कैच न्युड के वर्णन में कवि ने कवियों में अमितारिका का आरोप करके सांगरूपक का प्रयोग किया है जो अधोलिखित है --

मुद्रितसुखंस्त्रुपुरस्मनाभिः त्यरितातिवशीत्कम्मानपुष्पयोधर-  
 तटाभिर्मुक्तवाचाल्लौकिकालामेखलानि पुञ्जिनकनकलाभिर्किन्तोमिरितस्ततो  
 वलितविलोखामरखीकाभिर्मखलैवलप्रवालकरसुरिकास्तकनठकितामि फंमलिन  
 नवनीखासता सुडुसावृष्वतीभिर्मुलानि विवृम्भिताभिनयमेवदुर्दिनेषु दिनेषुत्प-  
 केनागत्यागत्य निम्नामिशारिकाभिः<sup>४</sup> ।’

- १- तिलक० पृष्ठ ६, १२, १३, १५, २६०-६१ ।
- २- " " " २६०-६२
- ३- " " " १३
- ४- " " " २३, २५-२६, १२१, २४०, २६२ ।
- ५- " " " ३६
- ६- " " " १२०-१२१

काव्य में विरोधाभास, विभाषना, विशेषणोक्ति, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, ज्योतिरन्यास, अपह्नुति, तन्देह, पर्याय तथा एक अक्षर का प्रयोग हुआ है किन्तु इनके प्रयोग-स्थल की संख्या अत्यन्त अल्प है और कवि की विशेष रुचि भी इन अक्षरों के प्रति परिछिन्न नहीं होती है। एक, पर्याय तथा ज्योतिरन्यास अक्षरों का प्रयोग कवि ने केवल एक बार किया है। राजा मेघवाहन के शकुर्वो की स्थिति को कानने में एक, कज्रायुध तथा त्तरकेतु के बीच प्रभातान युद्ध में राजलक्ष्मी की स्थिति को कानने में पर्याय, तथा विद्याधसुनि के राजा मेघवाहन के पास आने के समय में ज्योतिरन्यास अक्षर का प्रयोग है।

अपह्नुति तथा तन्देह अक्षर के प्रयोग-स्थल दो हैं — हरिवाहन और त्तरकेतु के वाक्य में मिल जाने के पश्चात् सुयोधन के समय बहने वाला शीतल वायु तथा शरोवर की उत्कृष्टता कानने के लिए कवि ने अपह्नुति अक्षर का प्रयोग किया है।

गैरे वैद्यः सुषिरनिपतन्मास्तोतानवैणो

मृत्वाकोणं विरचितलयो वाक्यन्दन्तवीणाद ।

रात्री द्विः सह सहचरः त्वत्तद्विपदाः

किं कीर्तं नहि नहि महीनाथ हेमन्तशीतम् ॥

जीर झूरी स्थल में इस अक्षर का सामान्य रूप मिलता है जिसमें 'इच्छ' शब्द का प्रयोग हुआ है --

मन्थे नास्य मस्मान्मालीव्य संजातमत्पारा व वा नलजलेनान्तः-  
संतापसुदहन्तो भुवः प्रान्तैः प्रतिसृजन्ति जलधयः ।

१- तिलक० पृष्ठ	२३, २५, २४-२५, २०४, २४०, ३७०	२०० तिलक० पृष्ठ ०००
२-	२७८, ३६८	७- २०६, ३५८
३-	२०४, २२०, २२१, २७८	८- २०५, २४८
४-	८, २५, २६५	९- ६९
५-	२५, २०६	१०- ९६
६-	२५	११- ३५८
७-		१२- २०६

उन सब अंकारों में विरोधाभास अंकार का प्रयोग फिर भा  
 कुछ अंकारों में अधिक हुआ है ।

एक प्रकार इस काव्य का पूरा अध्ययन करने में ज्ञात होता है  
 कि कवि ने जगत् काव्य-प्रतिभा का विशेष परिष्कृत उत्प्रेक्षा और उपा  
 अंकारों के प्रयोग में ला दिया है । जहाँ दोनों अंकारों का प्रयोग ठीक  
 वृत्तों का स्वरूप बिलंबित किया है तथा पाठकों को स्तब्धता कराता  
 है । परिष्कृत तथा उल्लेख अंकारों की अधिकता है किन्तु उनके प्रयोग के  
 लक्ष्य अन्तर्गत हैं । काव्य में वाचक अन्त अंकार वर्णन-प्रकार में विशेष सौन्दर्य  
 के विधान <sup>की</sup> कर्त्त हैं ।

गणनिन्त्यामणि में अंकार विधान

बोध्यवैव ने काने काव्य में उत्प्रेक्षा, उपा, श्लिष्टोपा,  
 मातोपा, एक, विरोधाभास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति,  
 प्रलाप, उल्लेख, अन्तर्स्थास, अनुप्रास, प्रान्विधान, सन्देह तथा  
 परिष्कृत अंकारों का प्रयोग किया है किन्तु इन अंकारों में उत्प्रेक्षा,  
 उपा, श्लिष्टोपा, मातोपा और एक अंकारों का बहुत्व परिलक्षित  
 होता है ।

उत्प्रेक्षा अंकार का प्रयोग कवि ने नगर की सुन्दरता, सौन्दर्य  
 वर्धन भावों एवं रसों को अभिव्यक्त कराने में किया है । इस अंकार के  
 प्रयोग में स्वीय नवीकृत हो परिलक्षित होता है । कुछ अपौरुषित उद्धरणों  
 से उनको काव्यप्रतिभा का अनुमान लाया जा सकता है --

जिनाल्य में की किह के उक्त्य में कवि उत्प्रेक्षा कर रहा  
 है --

यं च दिशि दिशि दृग्मानाजिनाल्ललाङ्गनयवानाविहीकन-  
 चक्षिा इव गौतमीनकुम्भवारिणः॥१॥





दूर करते हुए कैलांगद जगद को देता है<sup>१</sup>। इसी से मिलता-जुलता वामनभट्ट  
बाण की कल्पना श्रुति-वर्णन के प्रारंभ में मिलती है जिसे सौंडे हुए लंघनियों  
का प्रभाव प्रतिविम्ब वृद्धा, केनभिष्य आदि से कराया गया है।

इसी प्रकार लोछ्यदेव को गौरी धान के मन्वन्त्र में का ग-  
उत्प्रेक्षा से मिलती-जुलती उत्प्रेक्षा हर्ष के नैषधोत्तरिण में मिलता है --

‘अभित्पाक्काशकणिस्मरविनमितशिरौभिरात्मरौहावकाश-  
दायिनीं मेकिनामभिवाद कानैरिव शाण्डिल्यश्चुम्भितज्ञात्मेन ।’

(गोविं० पृष्ठ ५)

‘गता यदुत्संगतले विहास्तां दुनाः शिरौभिरात्मरौहावकाशेण ताप  
कर्म न धात्रीभक्तिमाक्रान्तिः न सन्धमानानभिनन्दतिस्म तान्?’ ॥६५॥

(नैषध० प्रथम सर्ग)

जहाँ लोछ्यदेव ने नगर को श्रुति-वर्णन में मन्वन्त्र कावियों  
को प्रभावित किया है वहाँ स्वयं या पूर्ववर्ती कावियों से प्रभावित हुए हैं,  
जैसे --

‘यस्यां बभरितौभात्मानमगवदईवालयत्घनम्मादपहाय  
विहायस गतिमथः संवराण इव भवनमणिदुट्टिमेषु प्रतिमानिभेन  
विभाष्यते भानुमालोव<sup>२</sup>’ में जाई कल्पना माध के शिष्टपालकम्प के व्योलिखित  
श्लोक से मिलती जुलती है --

‘कुसुमैव ज्वाडुपेत्य प्राकारभित्त्या सहस्र निषिद्धः ।

रत्नरौपी इ मूलमम्बुवर्षव्याजेन यस्या बहिरम्बुवाहः ॥

(३/४१)

इसी प्रकार विजया तथा गन्धर्वदत्ता की नास्तिका-वर्णन में बाण की  
राष्ट्र ह्राप परिछिन्नत होती है --

१- गोविं० पृष्ठ ५

२- वेप्र० ११ १३३-३४

३- ग, नि. ११ ६

'ललाटार्धचन्द्रविम्बविमलसमूहधारा संवेहदाकिन्या नागिका'  
(गोविं० पृ० १३) तथा ललाटेन्दुनिषंदमूलधारापभायनासार्वभूम्' (गोविं० पृ० ६३)

'ललाटशोभामणि विहायशालित्तं कान्तिरतिरञ्जनीकोष  
द्राघीका प्रोणावलेन विराजमानम्' (गोविं० पृ० १३)

गुरसंजरा के लौन्दर्य-वर्णन में कवि ने जो कामदेव का समस्त  
सामग्रियों के समानों में उत्प्रेक्षा की है, वह वपुषी से प्रभावित है। एक  
प्रकार से पुरा वर्णन ही 'कस्तुरार चरित' के उत्तरा हुआ प्रतीत होता है--

'श्री मदनमहाराजविजयशायनानां समवाय उव योषिदेशा  
लक्षणे । तथाहि तस्य धनुर्यष्टिः शिव दूडते, मधुकसालामयाञ्जयेन नीलाञ्जलिः  
अन्वर्णवापांगविदोषाः, वैजयन्ती दुडूलमिव कशमगुरवजात्रलम्, प्रियसुहृदिव  
मलयानिली निःश्वानमारुतः, परभृतकल्पिवातिर्मज्जुलमालापित्तम्' इति ।  
(गोविं० पृ० १२०)

'धनुर्यष्टिर्मूलाभ्याम्, प्रसालामयी ज्जानीलाञ्जलिमिः  
वस्वाण्यपांगवोषितवृष्टिभिः, मदारजन अणपटांशुकं दन्तच्छमगुरव जाः  
प्रथमसुहृन्मल्यमारुतः, परिल मक<sup>से</sup>का निःश्वानमनेन, परभृतक-  
-तिर्मज्जुलैः प्रलापैः ।' (कस्तुरार चरित पृष्ठ २६-२७)

अन्य कवियों की भांति उन्होंने भी मय से किसी के शरण  
लाने की उत्प्रेक्षा कई बार की है<sup>१</sup>।

सामान्य लौन्दर्य निरूपण में तो कवि ने इस कलंकार का  
प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त विशेष उद्देश्य से भी इस कलंकार का कवि  
ने आश्रय लिया है। जैसे जीवंधर बुंकि राजा सत्यंधर का पुत्र था किन्तु  
उसका दुर्भाग्यवश जन्म श्मशान में हुआ था अतः उसके भविष्य में होने वाले  
राजगी रूप को बचाने के लिए कवि ने इस कलंकार को अपनाया है<sup>२</sup>। इस  
विषय में एक-दो उदाहरण फर्माएँ लौंगे --

-----  
१- गो विं० पृष्ठ ६, ११, १२, १६, ३०  
२- ,, ,, ३२, ३६, १४२-४३



उपरोक्त वाक्यों के सम्बन्ध में --

उन्नोहितनिर्गुणवन् व्यातिनि निजतेजसि विमनेने ति  
शुप्रवापात्निर्वापात्पुमिषु पृष्ठमिच्छर, ... नाविभर्तृभावावर्षोपिन्या  
मेदिन्येव विहारभूतं व्याजेनाङ्गितशरीरः ।<sup>१</sup> कल्पनादि

पात्रों का उदग्धा-वर्णन में तथा समय-परिवर्तन के वर्णन में परिच्छाति के कुट्ट उल्लेख अक्षर का प्रयोग इस की अभिव्यंजना कराने में सहायक हुआ है । अने पिता के का का कारण काष्ठांगार को जानकर कुत हुए जीवधर के रौंड इस का वर्णन अधिकांशतः इस अक्षर में हुआ है<sup>२</sup> । इसके अतिरिक्त पात्रों के क्रोध का वर्णन करके कवि ने इस अक्षर का प्रयोग रौंड इस की अभिव्यंजना में किया है<sup>३</sup> । जीवधर के क्रोध तथा काष्ठांगार के क्रोध में जो गयीं उल्लेखार्थों में समान्य समता भी मिलती है<sup>४</sup> । छाल नेत्र का उल्लेख जीवधर के क्रोध-वर्णन में भी मिलता है<sup>५</sup> ।

‘विजया को दयनीय उदग्धा’ मुञ्चितायिव मोहेन श्रुतायिव  
ब्राह्मिणा’ आदि में लकार ही उठी है<sup>६</sup> ।

समय-परिवर्तन के तीन प्रयोगों में आया उल्लेख अक्षर  
अंगार इस की पृष्ठभूमि तैयार करता है ।

उल्लेख अक्षर की भांति उदग्धा अक्षर का भी प्रयोग कवि  
ने नगरी की समृद्धता, पात्रों की बीरता, दुटिल स्वभाव आदि बताने के लिए  
तथा रसानुभूति कराने में किया है । यहाँ पर भी कल्पनाओं का नवीनता है ।  
उपमानों के चयन में कवि ने उल्लेखता की ओर ध्यान रखा है । जैसा नवजात

१-गोविं० पृष्ठ ४०-४१

२-    "    "    २६, ४७, ८५

३-    "    "    ४०, ४१, ४७

४-    "    "    २६

५-    "    "    १२२

६-    "    "    २७, ६४, ६७

शिशु जोधंधर का उष्मा कवि ने भू-गर्भ से निकले जंगल से, रण के लिए  
 निकले जोधंधर का उष्मा गिरिस्तरा के निकले वाले कपटीस्य से, उष्मा  
 में कुदने वाले जोधंधर का देवताओं के शत्रुओं को मारने के लिए उष्मा  
 कार्तिकेय, त्रिपुर राक्षस को मारने वाले शिव तथा अम्बुका को मारने वाले  
 राम से जो गया है ।

जोधंधर तथा काष्ठांगार दोनों के क्रोधित रूप को बताने के  
 लिए कवि ने एक ही उष्मा मतवाले छाया के पराशित होने के कारण कुछ  
 शिल्प शायक से तथा दूसरे का उष्मा कण पर प्रहार करने से कुछ शिल्प से  
 देकर कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का उल्लेख दिया है । एक में पात्र का  
 वारसा काशी है और दूसरे में पात्र का कुटिलता काशी है । एक उष्मा पर  
 कुछ काष्ठांगार को उष्मा मा शिल्प से जो गया है किन्तु भयंकर शिल्प से --

‘... विजृम्भितानपिनाशणवपुत्रमिव केसरिणश्च ।’

कवि ने जोधंधर के वर्णन में देवता आदि को उष्मान रूप में  
 ग्यान दिया है । अधोलिखित उदाहरण में विरोधाभास का संकेत भी हो  
 जा सकता है --

‘शकस्त्राणां त्वं बहुद्विगोपितः, शम्भुत त्वं दशितिकमुतः  
 चक्ररहितः त्वं चक्रपाणिः, लंगं त्वं लानंगः ।’

इस प्रकार व्यतिरेक के साथ उष्मा उल्लंकार का रूप विदेश उष्माद  
 के निवासियों के वर्णन-प्रसंग में मिलता है ।

१- ग० वि० पृष्ठ ३०

२- ” ” २६

३- ” ” १४३

४- ” ” ४०-४१

५- ” ” ४७

६- ” ” ८६

७- ” ” १४०-४१

८- ” ” १३४

भावों को अभिव्यक्तता में प्रयुक्त अपना अंकारों का कथ  
द्वय अव्योक्तिगत पंक्तियों में देना जा सकता है --

अकस्मात् पुत्र को प्राप्ति से प्राप्त होने वाले गन्धोत्कट का  
उपमा 'दुर्गत इव दुर्लभं धनं धरासांतनकमालोच्य' ।<sup>१</sup>

तथा राजा "लंभर के अतिष्ठ से दुःख किन्तु उनके द्वारा  
शान्त को हुई विजया को देना -- 'शरदिर-राजः शतैः प्रतापं  
प्रत्यभक्त' से दो है । एक प्रकार को उत्पन्न गन्धोत्कट का है ।<sup>२</sup>

भावों को कर्मोपाय तथा विरहावस्था के वर्णन में अन्य  
कवियों को भांति तुल्यारूप से नष्ट हुई महिमा अकसा काटा गे लेता  
आदि से तुलना करके अपना अंकार का प्रयोग किया है ।

एक पद्य पर अवस्था के निरूपण में प्रयुक्त अपना हास्यापद  
हो गई है जब कवि विरह-वर्णन के प्रसंग में मरणा को अपना तुल्य करता  
हुई मयूरा से तथा किल्ली से देता है -- 'प्रह्वतरपूर्वमात्रा धात्रोत्तल बुभिक्ष-  
ल-कानशिषि<sup>३</sup>कलापा वताभिनीव नृश्री<sup>४</sup>ता विष्ट्री<sup>५</sup>श्व मेघावली<sup>६</sup>वलयिका ।

भावों के निरूपण में इन दोनों अंकारों के अतिरिक्त कवि  
ने मातृभक्ता अंकार का भी प्रयोग किया है । पुत्र के वियोग से दुःखी  
विजया की अवस्था तथा पति के वियोग से दुःखी शैमकी को व्याकुला  
के चित्रण में एवं अकस्मात् पुत्र की प्राप्ति से उत्पन्न गन्धोत्कट की  
प्रसन्नता के वर्णन में यह अंकार सांगक हुआ है ।<sup>७</sup>

- १- गोविं० पृष्ठ ३०
- २- " " " २०
- ३- " " " ८१, ८६, १३२, १४२
- ४- " " " १८-१९
- ५- " " " ६२, ६८
- ६- " " " ६७, ६८
- ७- " " " ३९
- ८- " " " १०७
- ९- " " " ३२

संज्ञ

वैशेष्य का अङ्कार का प्रयोग जोर्वधर में झल्लः युवावः भा के जानें में एवं पात्रों के स्वभाव-विषय में इस अङ्कार का प्रयोग किया है ।  
 का सम्बन्ध में दो उदाहरण पर्याप्त होंगे --

राजकुमारं कुसुमिकान्धः क्रोडावतमिव कान्तकचन्द्रममिव  
 शरदागमः कुमुदाकरमिव कौमुदीप्रवेशः करिखलममिव मदीरामो यांकावताः  
 परं दर्शितात्तामनेकावः ।

काष्ठांगारस्तु कुंजर इव यमाननर, प्रतिवादाव त्वाहादिकाव-  
 दुग्म्, अपर्णण खोत्पर्णर, तत्कर श्वारकापर, गहाननाध्वमव लोत्थ-  
 न्नेनमतितरामनेकावः ।

पादौष्मा के बाद कवि ने त्रिलिङ्गीयमा अङ्कार का भी प्रयोग राजा के गुणों, निवासियों, शौन्दर्य-वर्णन, स्तु-वर्णन एवं युद्ध आदि के वर्णन में किया है । कुसुमि के वर्णन में स्थान देकर उन धर्मों के प्रति अपनी उम्मीदों का प्रकट करे है । राजा कर्णधर के वर्णन में कर्ण के अनुकूल आचरण करने वाले युवायन से उम्मा देकर कवि ने अपने मातृभारत विजयक जीन का परिचय दिया है । इन धर्मों के अतिरिक्त कवि ने कार्तिकेय इन्द्र बन्द्रशंकर, विष्णुपद, शतानन्द, जिनैश्वर, आदि देवताओं को उम्मान रूप में स्थान दिया है । शरद स्तु के प्रसंग में कवि ने 'कुमुदाध्यकत्व' को भी उम्मान रूप में स्थान देकर दिया है -- उमापति कुमुदाध्यकत्व इव जगत्कर्तृमानस-  
 तन्मार्गिकलंकारकंपत्नी । लक्षणा के लक्ष्य-वर्णन में -- मुनिजलमनोवृष्टिमिव  
 वरणरक्षताम् तन्ध्वरसम्पदमिव शुद्धशिष्याम् सुराज्यमिव पारुवर्णसंस्थानाम्  
 तथा नक्षत्रराजिमिव रुचिररक्षतामुज्ज्वलवर्णमुलां वः<sup>२०</sup> है कवि ने झल्लः

- १- प० वि० पृष्ठ ३६
- २- " " " २५, २४१
- ३- " " " ३६
- ४- " " " २४१, ३२, ६८
- ५- " " " २४२, ४३
- ६- " " " १०-११
- ७- " " " ११४ १०-११
- ८- " " " ११४ ११४
- ९- " " " ११४ १४२

मुनियों को वृत्ति, अथवा यज्ञ की सम्पत्ति, पुन्दरराज्य की विधिति तथा नक्षत्रों के प्रति जाने विचार प्रकट किए हैं । 'लक्ष्म्यवाह्यवाहमिव काष्ठांगारवर्धनाय' से कवि ने जोषंधर के साथ होने वाले काष्ठांगार के भावां युद्ध का और उल्लेख किया है । ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में कवि ने पौर तपस्या की उम्मान बताया, जिसमें जाना-पाना सब छोड़ दिया जाता है । 'राजहृदयानीव तेजोधिक-इषोत्पादीनि' से कवि ने राजाओं के हृदय के बारे में बताया है । शरद ऋतु के वर्णन में 'अराजवतिराष्ट्र इव मधुपेटपाशान्तो क्षुभितकिटपिनि' में कवि ने राजा से विद्येन राज्य की विधिति बताई है ।

इस प्रकार के उमानार्ता के अनिश्चित काव्य में दूर्य, वन्द्य, पारिजात, अपत्य पतित कर्म आदि भी उम्मान कने हैं ।

कवि ने उत्प्रेक्षा-उपमा तथा मातृगमा का भांति एक अलंकार का प्रयोग अन्य स्थलों में तो किया ही है साथ ही बीमत्स रस को चर्चणा कराने में भी इसकी अपनाया है और जहाँ कवि को विशेष सफलता मिली है । युद्ध में बहने वाले रक्त का नदी से स्पृक कवि ने दो बार बांधा है और एक बार युद्ध-भूमि का समुद्र से । एक स्पृक बीमत्स-रस को चर्चणा में कहाँ तक सफल हुआ है उसका क्लौलित उदाहरण से अनुमान लाया जा सकता है --

'काश्चुभुमर्षराचारुमिह्वामरे सारकि फेन पटलविभ्रमा,  
 शरदप्रकुलमित्रैरातमथैरासुभित पुण्डरीकषण्डाभरा, विडम्बितशिलापिक्वर्धमरेः  
 कबनिकयैः कल्पित ईवालविलासा, विलसदुदनिकरनिर्मलैर्भौलिमांलितप्रकरैः  
 प्रकटितपुलिनमौगा, हरिदिभकरषण्डानुकारिभिर्भुजैर्भुजैर्वैरिव तरदभितरलीकृता,  
 मूलपातितान्पादपानिव कबन्धान्कबन्नी, दिगन्तमूर्ककवा वात्सवाचिनो प्रावर्तिव

- २- न०चि० पृष्ठ ६६
- २-    "       "    २१४
- ३-    "       "    १०-११
- ४-    "       "    ६६
- ५-    "       "    ७९, १४३
- ६-    "       "    १४२
- ७-    "       "    ७९

बीभत्स उस के अतिरिक्त कवि ने इस अंकार का प्रयोग दक्षिण  
देश के वर्णन में <sup>इसका</sup> एक राजा से रूपक बांध कर किया है जिसमें राजा की  
शिक्षणता तथा उस देश की समृद्धता बताई गई है । जैसे --

विभ्रमशालिविधिविधुसुखपरिषदः पारुष्यमि रामरामा-  
ल्लुतत्यायत्नीपनतरत्नरत्नगातलजातसमृद्धिपदीरपिणः गण्डुपुण्डरीकोद्भासिनः  
सरिलान्दो रिशवारु, वामरवात्मरुतः.... विडम्बितलौणोपते दीक्षिण-  
वैशय ।<sup>१</sup>

पात्रों के गुणों, लौन्दर्य-वर्णन, नगरों की उत्कृष्टता बताने  
में कान्यक, ऐश्वर्य आदि की समरेखा के चित्रण में, कवि ने इस अंकार को  
जानाया है ।<sup>२</sup>

काव्य में विरोधामात्र अंकार का प्रयोग हुआ है किन्तु प्रचुर  
पात्रों में नहीं । इसका आकर्षक रूप विदेह जनपद के निवासियों के प्रसंग में  
देखा जा सकता है जिसमें उनको विभिन्न धर्मों के प्रति उदार दृष्टि दिखाई  
गई है --

पद्मालयापतिभिरप्यकृष्णैर्वृषभारिभिरप्यरुद्रैः क्लाथरिव्य-  
कलै रथिकवीरैरपि स्वयैन्द्रैश्चैवसदैहप्रायैर्निवारिणीशाश्रिताया विदेहाय  
इति विभ्रतं जनपदम् ।<sup>३</sup>

जहाँ पर कवि ने किसी राज से श्रेष्ठता बताने के लिए उत्प्रेक्षा अंकार अपना  
जन्य किसी अंकार का प्रयोग किया है वहाँ तो वह अंकार जाया हो है, <sup>४</sup> २५०-

किन्तु इस अंकार के भी काव्य में प्रयोग स्थल अधिक नहीं हैं । पद्मा के

१- ग०वि० पृष्ठ १००

२- " " ५, १०, २३, २७, २३, ४१-४२, ८५, १२७, १२८

३- " " ४३, १३३, १३४, १५४

४- " " १३३

५- " " ११, ६६, ६१

ती-कर्म-संपन्न में कतिरेक अक्षर के साथ बलक अक्षर का छुट भी देता जा सकता है --

प्रयासादि जन क्लामेकं कृ प वाच्य प्रवेति प्रतिवेकावृत्तभावि-  
शुमानप्रापला बहुत नाभिराथजाति लोभाउत्कृष्टकामेन लोकापिना-  
शर गल्लोद रेति व कर्माणा पदमां पदमा नाम ।<sup>१</sup>

चित्राँ के लौन्वर्ग-वर्णन में कथि ने प्रतीप श्लेष तथा श्लेष अक्षर का भी प्रयोग किया है । चारों श्लेषों का यह श्रौतिलिखित संश्लेषाँ में देता जा सकता है ।

प्रतीप अक्षर--

यदि कुन्तलानाम, हृसां शान्ति स्मरं अममकात्ति-  
चिन्तामणिभिः । ईदुं वैदाननमस्या प्रति यत्त मेष कुन्दिनापनिः ।  
..... ।<sup>२</sup> इत्यादि ।

श्लेष अक्षर --

यों के विषय से ग्रस्त पदों के लौन्वर्ग-वर्णन में --  
न वैमप्यारवः, न हि तस्याः<sup>३</sup> पत्नीकृतशोभः ।  
न वारुणं तदितरुता , न हि तस्या अप्येकमतिफेवांगोपांगलादिः ।  
..... ।<sup>३</sup>

श्लेष अक्षर --

मादुरकां पाणिपदावरी भौरि व, अचिक्वर्गां पद्मवति  
कुन्तलकलापे नाफलात्वे व ..... ।<sup>४</sup> इत्यादि

- १- १० वि० पृष्ठ ६१
- २-    "    "    "  १५२
- ३-    "    "    "  ६२
- ४-    "    "    "  १५४

उन कवियों के अतिरिक्त कवि ने ग्रान्थिमान, जलैस का प्रयोग नगर के वर्णन में किया है । निलालोक नामक नगर के वर्णन में मणियाँ को कनकाहट से जोड़कर भ्रम कराया है । किन्तु यहाँ पर जलैस का उतना आकर्षक रूप नहीं मिलता है जितना कलंकार के वर्णन में । इस कलंकार का कुछ रूप ज्यौतिषित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

'अतिव लपकटलक्ष्मिभिरावर्णिताः नैर्निभृतं विधुच्छिवुराश्रि-  
माणे विपिनदुःखैः वराहनिवहैः, ज्वाण्ड जलदण्डप्रमदप्रमत्तपुनः  
पलायनचिन्तैरुत्क्षेप वदुलपदासुष्टैः समामिती समारणे परः सु ह्यैः...।  
इत्यादि ।

परिचित कलंकार का प्रयोग कवि ने किया अवश्य है किन्तु इस कलंकार के प्रति कवि का विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है । अतः प्रयोग अन्य कवियों की भाँति शास्त्र व्याख्या तथा रीतियों के शीन्ध्य-वर्णन के लिए किया है ।

राजा की शासन-व्यवस्था के में विशेषोक्ति कलंकार का भी प्रयोग कवि ने किया है --

'यस्तु व दुःखप्रतापेऽपि सुतोपरो व्यता शौकुमार्यैः ॥ ध्यायैवृत्ति-  
रति गाल्लैः ॥ अलिङ्गनविः वस्यता विश्वभरावहनेऽप्यसिन्नता सततवितरणैः ॥ अ-  
क्षीणकौशला परपरिभवनमिलापैः ॥ मि प्रसारिभवादि छात्रे वि परमकारुणि-  
कता र्मवशरमारतन्त्रैः ॥ पाकशास्त्रिता परमदृश्यम् ।'

छन्दो के स्वरूप-वर्णन में कवि ने विभावना कलंकार का प्रयोग किया है --

'ह्यं व पारिजातेन सह जातापि लोभिनं वीरयो, शिशिकर-  
सौदरापि परुसतापविधिपरा, कां सुमणि साधारण प्रभवापि पुरुषोत्तम-  
हेषिणी... ।'

१-	गोविं०	पृष्ठ ७,	६७, ६०-६१, ६७
२-	॥	॥	२०१
३-	॥	॥	६७
४-	॥	॥	६०
५-	॥	॥	६१
६-	॥	॥	४३



उत्पत्ता के विचार के तैयारी में कवि ने काँकरी का विपर्यय किया कर अंतर्लोकित अंतर का प्रयोग किया है --

‘राजकुलं च कुलनागतेः प्रागेवागमनं मन्वादाह्वानमन्त्रणां  
पूर्वमेव सर्वतः श्लोकपूर्वात् तदनु नियोगं पुरस्तादेव स्वस्वव्यापारमन्त्रमन्तः  
करणवृत्तिं च मन्त्रितरतन्त्रा फज्जिमन्तत्कर्मात्तिकाः ।’

कर्म का विचित्रता कहाने के लिए कवि ने अर्थांतरव्याप्त अंतर का प्रयोग किया है --

‘एव पुत्र्यं राजपुत्रत्वं प्रेतवारी एव वा जनिः ।

एव वा राजपुत्रः प्राप्तिरही कर्मविचित्रा ॥’

अब सर्ल-कली पर शीत्य में अनुप्रास अंतर का सुन्दर उदा  
मा विनायी देता है, जो --

‘अथायं सुमतिः सुमतिभुवायां सुसंजवां सुमनोर्षज्यां चंवरोक

एव सक्तो भवन्मभिनकरपो आग्नेश्चित्तवामरदसुकलित्तयाः पुरतदीर्घालित्यं  
उल्लिखेष्टितं किमुल्लोक्य श्रेण तरुणनाम सतकीकलादुल्लोक्य सुभ-  
मपुरंवारुचितपंचरसमरंभ्या तया प्रह... ।’

स्वाय सर्ल पर कवि ने अंतर के साथ लिखाइ करता हुआ-सा प्रतीत होता है --

तावता सुपेत्य चुरपुरः तरमुत्वारितत्मा लोकात्पटवत्संवायः

एतन्वेसैन्द्राम्गोन्द्र इव जानुतः पानीः तानुजः जानन्वमद्युत्वा लीला-  
रुह यन्वद्यत्त्रिभिन्न एव... ।

१- ग० किं पृष्ठ १५०

२- " " १४६

३- " " १३२

४- " " १४१

किन्तु ऐसे कुछ काव्य में बहुत कम हैं। अधिकतर: अंकारों का अनुयोग हो चुका है।

मालोक्ति अंकार अपना जाता है किन्तु स्वतंत्र रूप से नहीं अपितु उत्प्रेक्षा अंकार के साथ। जैसे —

‘सुबोधविकलां विकसितकमलसुते चन्द्रसुतोनुलाबलीकरागादिव  
परागे रवां समासीदति।’

इस प्रकार पूरे काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने विशेष अंकारों में तो सफरला या परिचय दिया ही है साथ ही जो अन्य साधारण अंकार हैं उनके प्रयोग में या अपनी काव्य-प्रतिभा या परिचय दिया है।

### कैमभूपालचरित में अंकार विधान

कैसा कि इनको शैली के सम्बन्ध में देत चुके हैं कि कवि ने अपने काव्य में अंकुत शैली को ही प्रधानता दी है का: इस काव्य में अंकारों का बहुला होना सामाजिक है। अंकारों की प्रचुरता होते हुए भी यह नहीं कहा सकता है कि इन्होंने उसका दुपयोग किया है। वे काव्य में उद अंकारों को ही ध्यान दिये हैं -- ‘सत्कवि कृतिमिव सवलंकृतिस्मणी वाप।’ इन्होंने अंकारों के प्रयोग से कवि का काव्य-प्रतिभा की उलीकितता परिलक्षित होती है। मधुर स्वं नवान कल्पनाजी के वीतप्रोत होने के कारण उनका काव्य अर्वाचीन गद्य-काव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है और कवि को ‘बकिन्व बाण’ की पदवी से विभूषित किया गया है।

इनके काव्य में उत्प्रेक्षा, शिष्टीपमा उक्ता, मालोमा, उपक, अपनुति, वतिसयोक्ति, परिणंथ्या, किलोषोक्ति, विरोधाभास, व्यतिरेक, सलोक्ति, समासोक्ति, आन्तिमान् तथा अनुप्रास अंकार के प्रयोग स्थल मिलते।

१- ग०वि० पृष्ठ १७, ६२, ६४

२- “ ” “ ६२

३- कै० “ ” २६१-६२

अन्य कवियों की भांति उनके काव्य में भी उत्प्रेक्षा अलंकार को प्रधानता दी गई है। वर्णन प्रधान विचारों में इस अलंकार का अभाव कल्प देवल शिशिर स्तु ही कहा जा सकता है<sup>१</sup>। इन्होंने भी प्रकृति की मानवीय रूप देने के लिए उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है। ताम्रपत्रों नदी के वर्णन के में कवि ने मौज की भांति नायिकाओं को क्रियाओं को उत्प्रेक्षा को है, जैसे --

‘सर्वेपविन्दुमिव बहुलपाठीनविजतनजनुषा बुद्धनिकुम्भेण,  
सरोमांशामिव वोचिष्वनविकीर्णैः कमलभिन्वत्कविसरेण, सभ्रूंगाणिव तरणैः,  
शौचनशतामिव तल्लिकाकाठवनगजमदस्यन्दवन्द्रकैः, समुप-णरवामिव  
सारसारचितैः<sup>२</sup>।’

इसी प्रकार मलयमर्वत के वर्णन में उत्प्रेक्षाअलंकार के साथ मानवीय अवयवों का आरोप किया गया है --

‘सृष्टिमहाव्याधुसमिव गुहाभिः, सरिरालजालकमिव  
वन्दनलम्बिभिः पन्नगैः, सङ्कुलस्थानकमिव धातुभिः<sup>३</sup>।’

एक इस विषय को लेकर भी कवि उन्हें नवान वर्षेषु कल्पनाएं करके अतिथीय सौन्दर्य ला देता है। जैसे हाथों के बरते दानवारि के सम्बन्ध में --

‘अभिच्छिन्नमवज्ज्वारं सनिर्भरौद्गारकमिव विन्ध्यगिरिम्,  
अनवरतील्लिफतैःपरिकरशोकराजैः तत्पुः प्रताप्तपने प्रकाशयति मह्यं  
किमेव निष्प्रयोजनैति दिनकरतैश्च एव निर्वाप्यन्तम्, अभिषिञ्चन्तमिवा-  
त्मानमल्लिराजाधिपत्ये, ... अंतरान्तरा मदपरिणतिव्याजेन महीतले  
क्षितदक्ष्णलैस्त्रिन्या स्वामिनी विमतनूपविषयतीर्तिगाथामिव विलिखन्तम्<sup>४</sup>।’

- १- वैम० पृष्ठ १४२-१४४  
२-    ०    ०  १४३  
३-    ०    ०  १४४-४६  
४-    ०    ०  १२४-२५

जैसी प्रकार मलयप्रसन्न के वर्णन में उन्मुख से धायक होने की उत्प्रेक्षा यदि न दो बार की है किन्तु उसमें भी नवीनता देती जा सकती है—

‘वाक्यवप्रणयते पृथुःपटुविभ्राणि विभ्राणम् ।’

‘जालपल्लवप्रणयदनावाप्यमिव निर्भरजलविमुचन्तर ।’

परिस्थिति की और ध्यान देने के कारण उनके उत्प्रेक्षा कलंकार में अद्वितीय शौन्दर्य जा गया है । प्रस्तुत उदाहरण में शिव का मुक्ति हुई पदार्थ में है और यदि शिव के मणिलक्षित वर्णों में प्रतिबिम्बित आकाश के सम्बन्ध में उत्प्रेक्षा कर रहा है —

‘वर्णमणिभूषण प्रतिबिम्बिताम्बरलता घोरविष वितरण-  
महापराधशान्तये पादपतितं पयोधिमिवानुमापयन्तर ।’

कहीं-कहीं पर एक-ही ही कल्पना का कलंकार में मिलती है । पति के कियोग से दुःखी नायिका के मुञ्चित होने की तथा इससे मिलती-जुलती कल्पना काव्य में कई बार जायी है । इस सम्बन्ध में एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

‘वृष्णिदिरक्षोःकृहीतागलासुभ्रर्षी नाशिव मुहुतायासु सु  
सुदिनीसु ।’

जैसी प्रकार कलंकार का इस आकाश से रूपक बांध कर उसके नाश में उत्प्रेक्षा करने की कवि की प्रवृत्ति कई स्थलों में पितायी देता है ।  
जैसे —

‘सान्द्ररुधिरधियातिधिरनर्तवरजिह्वालीव काष्ठ उन्धारागः ।’

१- कै० पृष्ठ २५४

२- ” ” २५५

३- ” ” २५७

४- ” ” ५६, ६०, ७८, ७९, २४०, २७२

५- ” ” ६०

६- ” ” ५५, २४०, २६२, २७२, २७९

७- ” ” २७२

इत्यादि के समय फेरों, संख्या गौदावरी में प्रतिबिम्बित वृत्त के  
 २ तथा भावरा में पद्य संस्कार मूल्य ३  
 ठाठ-ठाठ पद्यों की ऊपर कवि ने जिह्वा से कई बार उत्प्रेषण की है ।

इसी प्रकार वृत्तों की प्रसन्नता में फिर छिछाने की तथा स्तुति  
 ५ करने की उत्प्रेषण भी कई बार आयी है ।

इस कल्पनार्थ पूर्व कवियों से प्रभावित है । जैसे नाक के सम्बन्ध  
 में 'बलिष्ठाशिनिर्यमृतभाराय्यापनापालताद' धिक्लि बाण तथा औद्यदेव  
 की कल्पना से समता रखती है ।

इसी प्रकार चित्रियों के औन्यय-वर्णन में औद्यदेव का प्रभाव  
 स्पष्ट है --

'यत्र च हरिणीदृशामाननचन्द्रमण्डलेष्वध्यै कर्णपाहनहन --  
 शंकासंकुल एव न क्वापि निविरतै ठाङ्गहरिणः ।' (कैम० पृ० १६)

'यत्र च निताम्बिनीवदन चन्द्रमण्डलेषु न निवसति क्वाचिद्ध्यै  
 कर्णपाहननित महनशंक एव कलंक रूपः सुरंगः ।' (गोविं० पृ० ६)

गद्य-कवियों के अतिरिक्त मणिश्रीला के चुप होने के सम्बन्ध में  
 कवि ने जो उत्प्रेषण की है वह महाकाव्य काठिदास से प्रभावित है --

लंघन के लिविर तमिश्रान्ताकिंकिणो निनदां मणिश्रीलां  
 तत्पूर्वक्या विरहव्यथेन बह्मनां विभावयद् ।' (कैम० पृ० ४१)

शेषात्कली यत्र विभिन्वता त्वां प्रष्टमया नूपुरमेकानुव्यापि ।  
 अदृशता, त्वच्चरणारविन्दमिष्टेषुःशापिव बह्मनाम् ॥ (काठिदास)

किन्तु काव्य में इस प्रकार के उदाहरण कम ही मिलीं । कवि ने इस  
 वर्णन का प्रयोग रसानुसृत स्थिति के निरूपण एवं भावों की अभिव्यंजना

१- कैम० पृष्ठ १७२

२- " " १५३

३- " " १८७

४- " " ६, २७, २६

५- " " २७, १५०

६- " " ४०

कराने में भी किया है<sup>१</sup>। जैसे प्रौढ का अनन्ता विषयक प्रेम धिताने के पहले उस उद्योग के वर्णन में प्रयुक्त उत्प्रेषण कर्णर के कुछ उदाहरण देते जा सकते हैं --  
 'तरलतालि न उतादिव नूतनमुकुटपुष्पजात मुदहन्तर, प्रति-  
 विम्बव्यापि मूलात् वात म्याति पुञ्जितवातामसीचक्रुमैलजदुरिवागमिनी <sup>४</sup> ~~प्र~~  
 मज्जन्तर... मूलात्वालाभति परिवरजतांगनाभिः सह संज्ञान्तप्रतिमत्या  
 तलिलीनामिवारक्यन्तर... ।' उल्थादि ।

इस प्रकार जैसे यहाँ में वाक्य अथवा नायिका के व्यवहारों के आरोप होने के कारण स्माधीनता को फलक में मिलती है ।

बीमत्सरर की वर्णना में यह कर्णर यहाँ तक सहायक है उल्था अनुमान अधोलिखित पंक्तियों से लाया जा सकता है किमें गीष मुक्तों की अतिरिक्तों की लेकर धर उधर घुम रहे हैं --

विमोदभट्टतात्रिकल्लरदितम्योञ्जितापिहित्मृशुञ्जसुस-  
 कृष्ण वृष्टामि ईन्ताव<sup>२</sup>र विरातनुस्ततिभिः स्वर्णिमिभर्ता शुराणां  
 निरात्मवाग्बसागिामिनामातन्मानहस्तावलम्बरजुस्तानमिव हस्तानामन-  
 धधिकानां योधानामपर्याप्ततया स्वर्वास्य नाकान्तरफलमाधिन्यरथमानवास्तु-  
 रचनासुत्रमिव च विपाञ्चमानम् ।<sup>३</sup>

इस कर्णर के बाद इस काव्य में काव्य ने शिल्पोपमा कर्णर को विशेष स्थान दिया है । काव्य में सम्भवतः कुछ ही वर्णन इस कर्णर से रहित मिलेंगे । इस कर्णर के उपमान के विषय अधिकांशतः वेवता, रामायण तथा महाभारत के पात्र कार हैं । उन्के अतिरिक्त शब्दागम वावाक वृत्ति, प्रकृष्या, ब्राह्मण जाति, शबर जाति वादि <sup>४</sup> ~~कु~~ विशेष जातियों, राक्षिण, कुनूपतिराज्य स्थिति, गन्धर्वविषा, उल्थातकाठीन रविमण्ड, राहु वादि <sup>५</sup> ~~को~~ भी इस कर्णर में उपमान के रूप में स्थान दिया है ।

१- कै० पृष्ठ २६, ३६, ७३, ७४-७५, ८४	६- कै० पृष्ठ २००
२- " " २६	७- " " १८१
३- " " १३७	८- " " १५६
४- " " ५, १०, १५, ३०, १०६, १०८, ११८, १२७, १३५, १५३, १५६, १६५, १८१, १८४, २००, २०८, तथा अन्य स्थल ।	९- " " १८१
	१०- " " १३

कवि ने इस अंकार का प्रयोग विन्ध्याटवी तथा बणिकाल्य के मयानक वर्णन में इस अंकार का प्रयोग किया है किन्तु उस रूप के वर्णन में कवि ने विशेष रुचि नहीं दिखाई है। विन्ध्याटवी के वर्णन में केवल उल्बणसिंह नादां ३ रण-भूमिभिवत्<sup>डि</sup>निप्रभिनवरिव रसहस्त्राणि वधानाम् तथा कुनाति राज्यस्थितिभिव कण्टकतसिलीकुताम् कह कर तथा बणिकाल्य के वर्णन में पितृपतिपुरभिव प्रेतकुलाध्यासितम्, त्रिविक्रमवरितभिव प्रकटितबलिभूमिनिगृह्य, नृसिंहभिव तुंगगणि स्तमलपुत्रप्रकाशम् कह कर इस अंकार का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट है कि यह अंकार इन दोनों स्थलों की मयानक स्थिति का स्वीय चित्र उपस्थित करने में सफल नहीं हो पाया है। वाण ने इसी अंकार से विन्ध्याटवी का मयानक चित्र रीखा है।

इनके काव्य में मा संज्ञा शिष्टोपमा मिलती है जिससे कि वर्णन प्रसंग शिष्ट ही गए हैं। जैसे -- 'दृष्णञ्जिद्वौरिव त्वंदारक्तिरुचिभिः' (खंडा बरराणि, खंडे दारेण), 'छला वलौरिव ललितवलीकान्तीभवननिव- है निरंतरा' (वलीकानि, वल्यः), 'शब्दायधेव कृवातुरंगशोभिता' (कृवातुः- कंशोभिता, कृवा तुरंग), 'कातवीयंतुरिव अदिरत्तरभाषिता' (करभाषिता, करभा) इत्यादि।

इस प्रकार का रूप त्रिलिंगा जयद तथा जयकि, राजधानी के वर्णन-प्रसंग में भी मिलता है। स्तव्य स्थलों पर यह संज्ञा शिष्टोपमा

- १- केम० पृष्ठ १८२
- २- " " १८४
- ३- " " १९-२५
- ४- " " ६-१०
- ५- " " १९-२५

जानी क्लिष्ट नहीं है, जैसे —

‘उत्सवमनांशुैरिव उर्विलासहितैः, संसारिभिरिवात्मजम्बाल-  
मुद्गलदिमः, पुनटेरिवानेकान्तरंगनतितैः, यतिभिरिव अधिष्मठस्थितिभिः,  
.... हरीशरसतैः<sup>१</sup> ।’

श्लिष्टोपमा अंकार के मान ही काव्य में रूपक अंकार के प्रयोग के लक्ष्य का है। प्रायः सभी श्रुतों का वर्णन इसी अंकार में हुआ है<sup>२</sup>।  
उन्में अधिकांशतः रूपक अंकार का व्योमितित्व ही मिला है—

‘मातंगमय कादम्बरी, कदम्बगौराकर्पणविद्या, वषाभुज-  
-लक्ष्मणार्धवाग्देवता, विरहिजन प्राणभीमरथा, पुराभारततफूत्कासुजा,  
रामराज्य साक्रियाणो.... ।’ इत्यादि

राजाओं का अन्य राजाओं के साथ उध्वन्व्य दिखाने तथा  
राजा प्रीत्य के शिकारी रूप को चित्रित करने के लिए कवि ने रूपक अंकार  
का प्रयोग इसी प्रकार का किया है। इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

‘समन शिरसा, हेवधिमानोरविः, लोमक्रीमत्वमीतुः, नागव-  
वधुवैषव्यदुधिभिः... ।’ इत्यादि

उपर्युक्त उद्धरणों के आरोप में विभक्ति की स्थान नहीं<sup>३</sup>  
मिला है किन्तु काव्य में कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ विभक्ति की भी स्थान  
मिला है<sup>४</sup>, जैसे —

‘कम्पत्पुरर्धस्य, कुजुर्ध विवानाथ, कूटस्यः स्तूलकाणार,  
घण्टासरणिः सत्यस्य, विपणिः पुण्यस्य.... ।’ इत्यादि

१- कै० पृष्ठ २२

२- ,, ,, २६-२०, २०७-२०८, २०६-२१०, २२०-२३, २४२-४३, २६० ।

३- ,, ,, २०८ वषाभुज

४- ,, ,, २६-२७, २०४, २७६ ।

५- ,, ,, २३

६- ,, ,, २७

७- ,, ,, २०४, २२०, २००

८- ,, ,, २२०



साध्य में परम्परित एक का भी प्रयोग हुआ है । जैसे --

‘करकलितशरुणि पदम्बकादीभ्यन्ता भ्रुवाणि राजहंस्य जगति **दूत**  
ज्जासद’ ।

‘आन्तव्यजितेन निर्वाणितारिणान्मुपलंगप्रवीत प्रतापप्रदोपेन  
भावापन्भुजगभवनादरुह, जगत्तानागिरीदानाम्बुभिः परुषकाकुम्भकरी तीक्ष्णं  
कद्रुमनाश्लाघ्यम् ।’

इसी प्रकार कवि ने शब्द में समन्वय का आरोप करने के लिए  
नट का आरोप किया तथा शब्द का अर्थ में पैदा संशय में लगे हुए का  
आरोप किया ।

इस प्रकार के रूप में कवि-कला कलाशैली का एक उदाहरण भी  
मिल जाता है । जैसे --

‘काण्णपटोभिरिव नभोमथिनप पत्न्य, क्युलोभिरिव विजयनागाध  
कादोमिक्कुलाटीभिरिव ककुब्जस्तपरिणाम ....’ इत्यादि ।

कुछ कलाशैली में कवि कल्पना पूर्ण कवियों के प्रभावित  
प्रतीत होता है । जैसे कीर्ति शैली में प्रवाल के जौक साधारण के फलक  
दूर होने की कल्पना तथा प्रवाणमल के नीराज्जा की कल्पना । शीघ्र के  
दीर्घ कल्पना के अर्थ; बाण की कादम्बरी तथा शीघ्र के वैशेषीय वरिष्ठ  
में मिलती है ।

एक अलंकार का प्रयोग उक्त अलंकार के साथ भी जाता है,  
जैसे --

‘स्रातमभि रतामुकलयने नमुकरागिध वीरुदमांभारज्यन्ताः ।’

- १- वैम० पृष्ठ १०१
- २- ११ ११ २०६
- ३- ११ ११ ५६
- ४- ११ ११ ४२६
- ५- ११ ११ ४, १००, २०६ कादम्बरी पृष्ठ १३
- ६- ११ ११ १०३, १५६ वैशेषीय श्लो० १।१०
- ७- ११ ११ १०४

परम्परित उपर के अतिरिक्त ज्ञान का भी प्रयोग काव्य में हुआ है। जैसे कपोलविला उदाहरण में रात्रि में कपोलिका का आरोप हुआ है जिसे कपोलिका का शव विशेषतः बताया गया है --

‘काञ्चुट गरुडराजसंकरज्ज्वालं त्तः कंचुलामुहन्त, निःशङ्कपुल-  
ताराशिकताया धारिणा वासवतिसनिकान रजोःकाण्डिका ।’

इन कर्ज्वरों के नाव काव्य में अपना कर्ज्वर को प्रचुर मात्रा में स्थान मिला है। इन कर्ज्वर का प्रयोग पावों के गुणों, सामान्य जीवनोपयोग में विशेष रूप से हुआ है। इन सम्बन्ध में एक उदाहरण यथावत होता --

वेद्या के स्वभाव-विवरण में --

‘शोभे सन्निभतास्मिपि बहुविधानं किमुका परा चाकलानव-  
लम्काना, उन्धोव प्रारन्धकिंवरणा तानतं नाकमयाने उधाना, अद्रवाह-  
निंक्षेव जलो माधा-प्रसाल्य सुवनं चामोह्यन्ता ।’ इत्यादि

जिसे प्रार वेद्या के काव्य-विवरण में उपर्युक्त विषयों से बुझा सके है तथा प्रार कर्ज्वर शर्मासु के वर्णन में कवि ने राम की लीला, प्रीतिका, राम, आदि को उदाहरण के तौर पर रामायण और महाभारत का कथा का उल्लेख किया है।<sup>4</sup>

इस अर्थ पर ‘सामिबुल्लयादी लो क्लेन सह विविधानि विदलानि विश्वर’<sup>5</sup> के अर्थान के नाव कृष्ण द्वारा बुद्ध्यापीत हाथों के गारे जाने का कथा का उल्लेख किया है।

१- पैम० पृष्ठ २०, ५९, २३०

२- ” ” ५९

३- ” ” ४, १६, ३२, ५८, ६६-६७, ७६, ९६, ९८, १०५, १०७, १०८, ११५, ११७, १२९-३२, १६८, १९९-२०० अन्तर्गत भी ।

४- ” ” १९९-२००

५- ” ” १०८

६- ” ” ४



एत का वर्णन कराने में प्राञ्जिमान् अङ्कार का भी कवि ने प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ अन्ता का सुप्रसन्न अन्ता के चित्रण में कवि ने 'परिजनयुवति पाणिरंजया परिसरन्तीमल्लबावलम्बाना' में इस अङ्कार को स्थान दिया है । यह अङ्कार बीमत्स एत की अभिव्यक्ति में भी लभ्य है --

'तरु पिरकण्ठ चैव लम्बानापरिसरन्तीः कवन्वैर्जन्मान्तरम्बतहस्त्रविप्रम्'  
अविरलशोपितपूरसंगतप्रतिविम्बितापारीविम्बमानाशिरुपरिस्रियदनिम्बगुणुत-  
विलास्य उदेठभार्णवपूरतरविभक्तक्रिमानाण मार्गं<sup>२</sup> अङ्कार ।'

इन श्लोकों के अविरल अङ्कार के वर्णन में भी इस अङ्कार का प्रयोग हुआ है ।

अन्य कवियों का जोश वाचकत्वं वाच्य ने मालोपमा अङ्कार का भी प्रयोग अधिक किया है । पुराणों के जन्मों ने नाक के महान् बंस का उत्पाति में , एवं अन्यश्लोकों में इस अङ्कार का प्रयोग है । उदाहरणार्थ -- नाच है सुशीभित के के वर्णन में --

'तेन लघुमुहस्तात्प्रतापेन शरत्समय एव कविका, दुःखे हेतिसुखरूपेन  
पशुपतिरिव फालग्यनाग्निना, यकलशिख्यमन्त्रोपाटनमदना सिंह एव नदरेण  
... व्यापित केममुपालः<sup>४</sup> ।'

काव्य में अतिशयोक्ति अङ्कार का भी प्रयोग किया गया है । कहीं पर आम्बन्ध में तम्बन्ध मान पर कहीं नेत्र में जोष दिताकर और कहीं 'यदि' शब्द का प्रयोग करके इस अङ्कार का प्रयोग कवि ने किया है । श्री --  
अशोभित उदाहरण में अन्ता के कविके वर्णन में राजा प्रौढ अम्बानों का

१-कैन० पृ० ७३

२- ,, ,, १३७

३- ,, ,, १६, १००, १०७, ११२, ११३-१६, १२१

४- ,, ,, १२१



इस प्रकार की साधुनि में व्यतिरेक अंकार उभरा जा बना है ।  
 उत्प्रेक्षा आदि अंकारों के साथ तो व्यतिरेक अंकार साथ ही है साथ ही  
 वह अंतर्गत भी होता है । कवि ने पैदकीमदुन्दु तथा राजाकेस के गुणों  
 के वर्णन में, मलयपर्वत की अन्व पर्वतों के उत्कृष्ट कानों में तथा ताग्रपर्वत  
 नदी की अन्व नदियों के श्रेष्ठ कानों में इस अंकार का विशेष सुखी प्रयोग  
 किया है । उदाहरणार्थ लघोलिखित पंक्तियों में कवि ने पैदकीमदुन्दु की  
 दानशीला के वर्णन में जो मेष, चिन्तामणि, कण आदि उभा के श्रेष्ठ  
 कानों हैं --

‘तथा हि-- अथः, नागशुभप्रकाशनम्, आङ्गन्दाय, अस्थानावर्जनम्,  
 भ्रमणसमुत्सृम्भण तत्त्वाण्डमानि च विक्रन्ते वितरणकाले मेषस्य । चिन्तामणिर  
 कठिन हृदयो सत्रालक्षिवान्तामात्रप्रदायी विभाव्यते । कर्णो पि सामजुषि  
 स्वफितरि कामस्य पुरको न बभूव ।’

व्यतिरेक अंकार के समान ही अन्तर्गमित अंकार उत्प्रेक्षा  
 अंकार के साथ जाता है किन्तु अब तब इस अंकार का अंतर्गत भी मिलता  
 है । जैसे --

‘पृथ्वीनो रणो कान्तरं विरलप्रकारितकरः पश्यते शिल्पशिताशः  
 पृथ्वीना पुष्पाः ।’

काव्य में विशेषगौरव के स्थल भी मिलते हैं, जैसे --

‘यस्य च रिपुरुधिरसस्त हरिचन्द्रनवकिरणशिशिरीपवारपीनः--  
 पुन्येतापि न प्रशाम शीर्योष्वा ।’

जयवा

‘यस्य च पुनरुनामनः प्रियंभावुक्त्वावस्य सार्वभौमस्यापि न  
 नृशक्ति मदी मानस्य । .... ।’

- १- कैम० पृष्ठ २०५-६
- २- ,, ,, २५२
- ३- ,, ,, २५४-२५५
- ४- ,, ,, २०५-२०६
- ५- ,, ,, २२२, २७८
- ६- ,, ,, २७८
- ७- ,, ,, २७
- ८- ,, ,, २२०

‘वारोधाभात अलंकार का प्रयोग कवि ने केम तथा माच के गुणों के वर्णन में किया है । दोनों राजाओं के वर्णन का कुछ पंक्तियाँ अंगीकृत हैं । केमभूषण के वर्णन में --

‘त्रिभ्रुवो पि मान्धाता, सुप्रतीको चसदः, प्रहो पि क्वातिः,  
नाभिरणि भद्रावः ।’

माच के वर्णन में --

‘शरव र्बभुवनवन्धः परमेधरो पि वृषसुमरि करोति । यः  
पुनरावाङ्गितारिक्कः पुरुषात्मो पि न भवति वृषविरोधो ।’

अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भी शासन-व्यवस्था के लिए परिभाषा अलंकार का प्रयोग किया है किन्तु केवल काव्य के नायक केम के वर्णन में ।

कवि ने शिल्पोष्मा अलंकार में श्लेष को ध्यान अवश्य दिया है किन्तु श्लेष अलंकार की कला ने कला नहीं मिलती है । शिवों के वर्णन में ‘केशधरे कृष्णभा’, ‘मध्यदेशे मन्दोदरा’, ‘उज्जुगले रन्ध्रया’ जैसा कर्णयोर्मणिक-  
णिका कण्ठे नासिका, वाणि नर्मदा अस्मा अशोक हृदयेन, पाटला अवरण  
अथवा कौस्तुभ स्वगिरा, विलासक ललिता’ आदि में शिल्प पर्वों का प्रयोग अवश्य हुआ किन्तु दोनों अलंकार न होने के कारण इन्हें न श्लेष का ही उदाहरण कहा जा सकता है, और न किये प्रकार उत्तम तुलना ही है जिससे कि उसे शिल्पोष्मा अलंकार का ही उदाहरण कहा जा सके । ये श्लेष के भी उदाहरण नहीं कहे जा सकते हैं क्योंकि इन्हें ‘वारोप’ का कोई भी महत्व नहीं है । चूंकि यहाँ तीनों अलंकारों की कला है किन्तु अलंकारों का निश्चय न होने के कारण इन श्लेषों को श्लेष अलंकार का उदाहरण कहा जा सकता है

कवि ने विपक्षी राजा का अन्त तथा सूर्यास्त का एक साथ वर्णन करने के लिए महोचित अलंकार का प्रयोग किया है । जैसे --

‘यस्तदा तद् तदीयै संकुचति स तारको ज्येष्ठः । शीघ्रैण तद्  
कुण्ठीकस्य कुमुदलवतीः ।’

१- केम० पृष्ठ १०१

२- ,, ,, १२०

३- ,, ,, १२६

४- ,, ,, १४

५- केम० पृष्ठ १०६

६- ,, ,, १६५

७- ,, ,, १६८

८- ,, ,, १४०

इस काव्य में समासच्छन्न वाक्यांशों का अधिकता होने के कारण अनुप्रास अंकार को कदा कहीं कहीं में उपलब्ध होता है । कहां-कहां का अंकार का इस्तेमाल भी परिलक्षित होता है जिससे वर्णन-प्रसंगों में क्लिष्टता न आये ।

इस प्रकार का काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि ने उपमा, शिष्टोपमा, उत्प्रेषा तथा अन्य अंकारों को विशेष रूप से अपनाया है । अन्य अंकारों का भी उचित प्रयोग किया है । सश्लोकित, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अंकारों को काव्य में स्थान दिया अवश्य है किन्तु उनका प्रयोग यत्र तत्र ही किया है । कुछ कहीं में पूर्व कथियाँ को क्लृप्ति परिलक्षित होता है तथा कुछ कहीं में काव्य-कल्पना को पुनरावृत्ति दिखायी देती है किन्तु काव्य में ऐसे प्रयोग स्थल बहुत कम हैं । अतः कवि ने जो अंकार के विषय में धारणा काई थी उन्हें सब फल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है ।

रामकथा में अंकार विधान --

अंकारों के प्रयोग की दृष्टि से रामकथा नामक गद्य-काव्य अन्य गद्य-काव्यों से बिल्कुल भिन्न है । समासच्छन्न वाक्यों का प्रयोग यत्र तत्र होने के कारण उसमें अनुप्रास अंकार को कदा कदा अवश्य परिलक्षित होने लगती है। कहां-कहां तो यह अंकार वर्णन में अद्वितीय सौन्दर्य भी ला देता है । श्री हन्द्रजित के युद्ध-वर्णन में --

‘तथा संप्रहर्त्त संप्रहार शीघ्रं मण्डोदरीयुतं धमिति सुमित्रापुत्री  
 सुवराभुजावसुधितानिशा वैडोक्तास्त्रेण क्लिप्त धीवितमकरात् ।’

सुमित्रा तथा कैकेयी के वर्णन में इस अंकार का प्रयोग हुआ है किन्तु उसकी उपयोगिता सुमित्रा के गुणों के वर्णन में देता जा सकती है --

‘निरूपकामिजलुणगरिमपरितोषितमित्रया सुमित्रया ।’

- १- रामकथा पृष्ठ ४७
- २-    "       "       "       "



कवि ने श्लिष्टोपमा, उक्ता, एक, उत्प्रेक्षा तथा याक  
 अंकार का प्रयोग किया किन्तु उनके प्रति एक प्रकार में उभेता दृष्टि हो  
 सकती है। किसी भी अंकार से उनकी वर्णन-काव्य-प्रतिभा का परिकल्प  
 नहीं होता है। चिन्मूढ के वर्णन में छंद कवि ने शब्दप्रारंभमिव विविध धातु-  
 गिकारविभ्राम्<sup>१</sup> तथा वपञ्कारण्य में प्राकृतधातुमिव बहुलताव्याप्रिदुर्गम<sup>२</sup>  
 प्रयुक्त श्लिष्टोपमा अंकार से काने शब्द प्रारंभ तथा प्राकृत लक्षण संख्या ज्ञान  
 का परिकल्प दिया है। एक अंकार अन्य अंकारों की वैसे ही फिर भी  
 आकाशक कहा जा सकता है। एक राना की शर्या के गुण को काने में  
 'असंननुपधिर्वासाशित्क्या कौशल्या' संकेत व्यक्त है। किन्तु जहाँ अंकार  
 कानेव राशर्यों के वर्णन --

रमजैकाभ्रगणितमुहाः धूनापुखाः झेण अराय निर्ययुः<sup>४</sup>

में विशेष सौन्दर्य का विधाक नहीं जाता है। सर और रावण को  
 वावाज के वर्णन में भी यह अंकार सामान्य झूटि का है।

एक बार राम का अनुसरण करती हुई सीता के वर्णन में दूसरे बार  
 राम के वर्णन तथा तीसरे बार कुम्भकर्ण के वर्णन में कवि ने उक्ता  
 अंकार का प्रयोग किया है। राम के सौन्दर्य वर्णन में धर्मावाक्य सुधोपमा  
 तथा धुणोपमा का भी रूप मिलता है किन्तु एक ही उर्ले बड़े ही कौं  
 सौन्दर्य-वर्णन नहीं है और दूसरे दुख के लिए जब रावण को दृष्टि है राम  
 के सौन्दर्य का वर्णन परिस्थिति के अनुसार न होने के कारण वह अंकार  
 कौं महत्व नहीं रखता।

१-रामकथा पृष्ठ १४

२- " " " १९

३- " " " ३

४- " " " ४४

५- " " " २०

६- " " " १४

७- " " " ४८

८- " " " ४५

सो प्रकार राम के वर्णन में श्याम-वर्ण और उत्प्रेक्षा अङ्कार  
का प्रयोग है ।

उत्प्रेक्षा अङ्कार जहाँ अन्य कवियों को विशेष प्रिय रहा है ,  
जहाँ कवि ने इसका प्रयोग तीन स्थलों में किया है किन्तु चरमा-वास वी  
-वैया ध्वन्य । रूपणका के कुटिल स्वभाव के वर्णन में -- 'दुरन्तदुरितकन्तसिरिव  
गुणगमूर्तिः' उत्प्रेक्षा कुछ मार्क कहा जा सकता है ।

अन्य अङ्कारों के जगाने पर अङ्कार का प्रयोग है जो निजावलोक  
विष्णुमाना शोभाभोपिहरणा स्तान् पुनः शराराभाभाभानराराविन्द  
पंक्तिगो में ही समझ कर दिया गया है ।

उक्त वाक्य के अध्ययन से लगता है कि कवि अपनी शैली में अङ्कारों  
को ध्यान देना सन्देह नहीं करता है । वह काव्य का काव्यत्व अङ्कार में न  
मान कर अभिव्यक्ति प्रणाली में मानता है । जिस वर्णन-प्रणाली को पाकर  
अन्य कवि अङ्कारों की झड़ल ला देते हैं उन प्रणाली में कवि एक-दो अङ्कारों  
का प्रयोग करके काम चला लेता है ।

### जायक-विद्यास में अङ्कार विधान--

पंक्तिराज जान्नाथ की दृष्टि में 'समणोजाय प्रतिपादकः शब्दः  
काव्यम्' है अतः उनके गद्य-काव्य में भी सुन्दर वर्णों को ढूँढा मिलता है ।  
वाक्य लम्बे हैं अतः उनमें अनुप्रास अङ्कारों की अधिकता होना स्वभाविक है ।  
इस अङ्कार के अतिरिक्त कवि ने उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लिष्टोपमा, विरोधाभास  
म्हं मार अङ्कार को भी अपनाया है । उत्प्रेक्षा अङ्कार में अन्य कवियों की  
पाँति उन्होंने पूरा फल के मार से मुझे वृत्तों में अतिथि-देवा करने की  
उत्प्रेक्षा की है । यत्र तत्र नवीन कल्पनावर्ती से दोत प्रीत उत्प्रेक्षा अङ्कार के

१-रामक्या पृष्ठ ४८

२- ११ ११ २६, २८, ४८

३- ११ ११ २८

४- ११ ११ २६

५- ११ ११ ४८

६- जायक-विद्यास पृष्ठ ८३

प्रयोग-जल मिलते हैं जो -- धीरे-धीरे बहते हुए ताम्बू को उत्प्रेषण--

‘पराधराशुनादिव रिंतां मर्तणानां संघट्टः ।’

अर्थात् वहाँ के जल के सम्बन्ध में प्रयुक्त उत्प्रेषण --

‘कटिनकरानिकर शंकायः शरणागती रिच तिभिरुद्ध-वेर-वुनिद्ध  
अधरापुरिताभिर्वाणीभिश्च ।’

कवि ने उक्त अंकार का प्रयोग कारुण्य की स्थितियों के सौन्दर्य वर्णन में तथा वहाँ के कष्टदायक किन्तु अन्त में प्राकृतिक दृश्यों का सज्जोया मिलने के कारण जानन्ददायक मार्गों के वर्णन में किया है । किन्तु उक्त अंकार का वाचक प्रयोग नहीं है । स्थितियों के वर्णन में उनका उक्त सांकेतिकता का भिन्नता है --

‘तयुतद्व्यागादन्तुरितव नान्तराभिनिर्क चोर्निकैशिलाततो  
स्वाभिताभिरिव कांका रेताभिः निबिद्धत सौल पर्यावभ्रैणानताभिरिव  
सौदाभिनाभिः ।’

मार्गों के वर्णन में चराचर तथा वैदिककर्मधारिणी को उपमान बनाया है --

‘विषमतरारौलावरोहभिः चराचरैर्भिरिव अस्त्रप्रचुरपरिणाम-  
मुताभिवैदिक कर्म धारिणिभिरिव पठतिभिः ।’

जातकहाँ के गुणों के वर्णन में विशेष रुचि होने के कारण वहाँ की अंकारों का प्रयोग एक-एक, दो-दो पंक्ति में कर दिया है ।

श्लोकादिष्टोपमा अंकार का रूप वहाँ देने को मिलता है विशेष कवि ने मलान् वृत्त, इन्द्र, मधु, शिवायु को उपमान बनाया है --

‘इतिरिव मधुरिव अलक्षुमनः प्रसादनी यि शिवायु रिव अललाक्षुमनः  
प्रसादनः । श्लोकादिष्टोपमा में विरोधाभास अंकार की कल्पना मिलती है ।

- १- जातकविलास पृष्ठ ८३
- २- " " " ८४
- ३- " " " ८४
- ४- " " " ८३
- ५- " " " ८४

वैसे द्वितीयाभागा अलंकार खजन्व प्रो भी बाधा है -- 'अमराकिंत्तः  
अमराचितः ।'

उन्हे गुणों के वर्णन में ही 'कार' अलंकार का प्रयोग हुआ है --

मार्कण्डेयवन्निष्ठा कलेष्वा समन्तेष्वा वाङ्मनयेष्विव राधकलाः  
वाङ्मनयेष्विव जतिः धनीष्विव रसो रणेष्विव भृंगारः..... ।

इस प्रकार उनके काव्य में अन्य कवियों को देखते हुए अलंकारों  
का विविध प्रयोग हुआ तथा उनके प्रयोग बहुत कम मिलते हैं । अनुप्रास अलंकार  
की बहुत बड़ा वर्तक है । उनका 'कार' अलंकार का प्रयोग नवान है । कवि  
इस अलंकार का प्रयोग प्रायः कम ही किया करते हैं ।

इस प्रकार पूर्वोक्त अमरा अर्थात् नव-कवियों में प्राप्त  
अलंकारों के अविचार विवेचन में प्राप्त होता है कि प्रायः सभी कवियों ने  
अपनी शैली को उत्कृष्ट बनाने के लिए अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग  
किया है । इस कथन के अन्वय में देखते हुए रामकथा के रचयिता वासुदेव कहे  
जा सकते हैं । कवियों ने अलंकारों का प्रयोग गुणों के सौन्दर्य-वर्णन के  
अतिरिक्त इस तथा भावों की तात्पर्य अभिव्यक्ति कराने के लिए किया है ।  
किन्तु भाषा ने इनका प्रयोग अधिकांशतः गुणों की स्मृतीयता के लिए ही  
किया है । गुणों के वर्णन-प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि इस कवि ने  
अलंकारों का उद्दीपक रूप वर्णित करके उनका प्रयोग रस की भूमिका के चित्रण  
में किया है । इन काव्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि प्रायः सभी कवियों  
ने उत्प्रेक्षा, उपमा, और श्लिष्टोपमा अलंकार को विशेषरूप से अपनाया है ।  
अपक अलंकार की अधिकता बामन भट्ट बाण में अधिक मिलती है । इन कवियों  
ने परिसंख्या अलंकार का अपेक्षाकृत बहुत अल्प प्रयोग किया है । धनराज ने  
अवश्य ही नगरों की स्तम्भ-व्यवस्था के चित्रण में इस अलंकार के उपयोग  
का प्रयोग किया है ।

१- कामकविलास पृष्ठ ८५

२- " " " ८४

महुने प्रवचन

रस-परिणाम

## रस-परिभाषा

क्या कि रस-वचन के विवेचन में देस चुके हैं कि रस काव्य का प्राण है । उसके अभाव में काव्य निष्जीव हो जाता है और गुण अलंकार आदि का कुछ भाग महत्त्व नहीं रह जाता है । जिस प्रकार मृत के गुण का कोई मूल्य नहीं रह जाता तथा आभूषणं हाव्याभूषणं हो जाते हैं उसी प्रकार काव्य में रस के विकलन होने पर गुण गुण नहीं रह जाते हैं और अलंकार भारस्वल्प बन जाते हैं । जिन संस्कृत आचार्यों ने अलंकार रीति, ध्वनि, वज्रोक्ति, आंचित्य आदि में से किसी एक को काव्य की आत्मा माना भी है तो वे भी रस के महत्त्व के विषय में कोई सन्दिग्ध दृष्टि नहीं रखते हैं । विश्वनाथ ने काव्य का स्वभाषायक 'वाचस्पत्यात्मकं काव्यम्' कह कर रस को ही बताया । जगन्नाथ यद्यपि विश्वनाथ के उक्त मत का संपन्न करके 'स्मरणोद्यार्थप्रतिपाद्यकः शब्दः काव्यम्' कहते हैं किन्तु स्मरणोद्यार्थ का सात्त्विक्य अन्तर्तांगत्वा रस से ही है । उन्होंने स्मरणोद्यार्थ का अर्थ जो लोकोपदेशलाभ जनकत्व लिया है वह रस में ही सम्भव है । जहाँ अलंकारों का अन्तकार रहता है वहाँ भी रस अज्ञात रूप में विद्यमान रहता है ।

अतः सभी कवि अपने काव्य में रसों को ज्ञान देकर अपने काव्य को सरस बनाते हैं । विविध कहानियों के अन्तः कथावस्तु को जटिल करके भी कवि रसों के सफल निर्वाह करने से काव्य में सरसता ले जाते हैं । कादम्बरी में तीन जन्म की कथाएं हैं, तिलकर्मजरी में दो जन्म की कथा कई पात्रों को श्राप ले बलीभूत होने के कारण अज्ञ-अज्ञ कथाएं हैं, गणविन्तामणि में भी पूर्वजन्म की कथा, विद्याधरों की कथाएं तथा जीवंधर के बाढ विवाह से सम्बन्धित कथाएं हैं, किन्तु ये सब कथाएं सरसता में किसी प्रकार कम नहीं हैं । रस<sup>सा</sup>त्मक

होगे वे कवि द्वारा प्रयुक्त होने के कारण पाठकों के हृदय को वे अत्यंत आकृष्ट  
 किए रहते हैं । जतः कहीं भी भाव वाक्य नहीं मिलेगा तबमें कवि ने उस का  
 वर्णन करना न करारें ही । का दूसरी बात है कि इन कानों में कवि को अग्रहणा  
 मिली ही या न मिली थी ।

प्राचीन मनु-काव्यों में देखा जाय तो उस का दृष्टि से ज्ञान का  
 कृतियां ही देखें हैं । क्योंकि सुमन्वु की वास्तवता सर्वप्रथम जान रज्जा होने के  
 कारण कथावन्तु को भाँति उस का दृष्टि के भाँति विविध रूपों आया । उपमा  
 का अङ्गुहार जोरस सुमन्वु की वास्तवता से उस को दृष्टि से भाँति देखें हैं ।  
 क्योंकि उन्होंने कथा रसों को अपने काव्य में आन नहीं किया है अन्य कारण  
 कवि को रसों के प्रति रुचि होने नही है । क्योंकि सुद के ज्ञान होने पर  
 कवि को रस को अभिभ्रंशना करा जाता था किन्तु कवि ने अब सब रसों का  
 का भी कुछ वर्णन न करके उपेक्षा दृष्टि रसों हैं । इसी प्रकार नरक का वर्णन  
 वर्णन करके भगवान्के रस की वर्णन करारें जा सकता था किन्तु उन प्रकाश की भाँ  
 की पंक्तिमें में वह कर प्राप्त कर दिया । राजान के वर्णन में ज्ञान कुछ छव तब  
 कीमत्स रस का आभास ही करता है । यद्यपि काव्य में विचारकों का  
 उपेक्षा किया गया है एवं तपसों आदि पर अत्यन्त कसे गये हैं किन्तु उन्हें भी  
 हास्य-रस की कौटि में नहीं रखा जा सकता । उन्होंने अपने काव्य में अद्भुत  
 घटनाओं एवं कर्मों का वर्णन करके अद्भुत रस तथा शृंगार-रस को ही आन  
 किया है । कवि ने शृंगार रस में भी एक पक्ष विशेष शृंगार को उपेक्षा की  
 है यद्यपि कवि ही इस शृंगार के वर्णन करने के कई अक्षर लिखे गये हैं । क्योंकि  
 राजकुमारों की राजकुमारों के प्रति आसक्त होने के बाद उनके प्राणों के तिन  
 बहुत प्रयत्न करने पड़े थे ।

इस प्रकार इस काव्य में रस का जितना संकुचित पैरा दिया गया पढ़ता  
 है । इसके ठीक विपरीत बाण की कृतियों में मिलता है । जो रसों को बाण  
 ने काव्य में अभिहित आन दिया है । आश्रम का पूर्णत वर्णन ज्ञान रस का  
 आस्वादन करता है , विन्ध्याटकी का वर्णन भगवान्के रस का, इतिहास का वर्णन  
 कीमत्स और हास्य का , राजाओं का पराक्रमी का, युद्ध तथा दिग्विजय के लिए

प्रधान करने वाले चन्द्रापाइ तथा उनकी कानियाँ के उत्साह का वर्णन  
 वार रस का, आकाशवाणी के न होने तक पुण्डरीक का मृत्यु पर किया गया  
 महाश्वेता वा किला, यशोमती तथा राजकी के राजे होने पर किराँ का के  
 इन्द्रज जाँड करुण रस का, इशान द्वारा काने बलाने गुरुकाँ के क्य फिर जाने  
 पर प्रभाकर चलने तथा लक्ष्मण के प्रीय भाव को अभिव्यंजना रोंड रस का चानन्द  
 पिलाता है । शृंगार रस के विषय में तो इह कहना ही नहीं । उस प्रकार <sup>इन</sup> के  
 पयों में नवी रसों को ज्ञान दिया हुआ है । अन्तर गद-कवियों ने शैला के  
 काम रस की दृष्टि से बाण का ही स्तुकरण किया है । अभिलाष रस गद-  
 कवियों के शृंगार रस <sup>की</sup> अभिव्यंजना में बाण का पष्ट भाव है । इसे चन्देह  
 नहीं है कि स्तुकरण करने वाले नवी कवि बाण को मानते नवी रसों का काने  
 काव्य में एक भाव निर्वाह नहीं कर पाए हैं किन्तु उन्हें इस विषय में आफला  
 हा मिला है, शैला नहीं कहा जा सकता । रामकथा एवं आनन्दविलास नामक  
 गद-काव्यों में कवि ने इस तत्व की ओर अपनी विशेष रुचि नहीं दिखायी है ।  
 रामकथा में तो फिर भी यह तत्र रस-निष्पन्न का प्रयत्न देखा भी जा सकता  
 है किन्तु आनन्दविलास में कोई भी रस नहीं है । वैसे नवी कवियों ने रस के  
 चन्देह में अपनी रुचि दिखायी है । भोज की शृंगार नवी <sup>कथा</sup> का प्रकार  
 की है । इसके काव्य में प्रयत्न: किये जो प्रकार के रस को ज्ञान नहीं मिला है ।  
 जो केशवार्जों को रति दिखायी गयी है वह शृंगार रस को अभिव्यंजना न कराके  
 शृंगार का स्तुभास कराती है ।

<sup>कथा</sup>  
शृंगारसंजरी में रसों का निष्पन्न

<sup>कथा</sup>  
 यद्यपि 'शृंगारसंजरी' के नाम से शैला प्रसिद्ध होता है कि इन  
 काव्य में शृंगार रस की अभिव्यंजना होगी किन्तु उनके विनोद उ में केशवार्जों  
 को जीवन-कथा, उनके डूट चार्ड, बुद्धि प्रेम किलाकर प्रेमियों का द्वारा धन  
 लूटता, धन के ज्ञान ही जाने पर उनको दुस्कार देना आदि का वर्णन होने  
 के कारण उस रस का स्तुभास ही प्राप्त होता है । स्तुभास इसलिए कहा  
 जाता है कि इमें चन्देह: रस का आनन्दन सक्षम नहीं कर पाता । यद्यपि



अर्थ भावों की अभिव्यक्ति उसी प्रकार की जाती है । जैसा कि रास में को  
जाता है किन्तु अन्तर यह होता है कि स्वाभाव में आधि-भावों का अर्थव्यक्ति  
रहता है । श्रीरिण स्वाभाव का अर्थ काते हुए वाग्देवताकार मन्मथ ने  
'तदाभागे अर्थव्यक्तिप्रवर्तिताः' कहा है<sup>१</sup> । यह अर्थव्यक्ति अंगार रस में पांच  
प्रकार में जाता है --

- १- उजासक में रति दिखाने से
- २- सुनि तथा गुरु मत्स्य विषयक रति दिखाने से
- ३- अनुनायक निष्ठ रति दिखाने से
- ४- दोनों में से किसी में रति न दिखाने से वार
- ५- तिर्यक् जाद में रति दिखाने से

इसी प्रकार रींद्र रस में यदि गुरु जाद के प्रति झोप दिखाया  
जाता है, हास्य रस में गुरु जाद की आलम्बन काया जाता है, शान्त रस  
में किन्तु नीच पात्र में शम आधिभाव दिखाया जाता है, वीर रस में क्रम-व्य  
तथा अक्ष पात्र में उत्साह दिखाया जाता है, भयानक रस का वीर क्रम पुरुष  
तथा करुण रस का वीरानी पुरुष तथा करुण रस का वीर पुरुष  
आलम्बन काया जाता है तो वहाँ अर्थव्यक्ति ही जाता है । इन रसों का  
पूर्ण अभिव्यक्ति न होने के कारण केवल उनका आभास एक काल भर मिलता  
है , जिसके कारण वे रस की संज्ञा न प्राप्त करके स्वाभाव की संज्ञा प्राप्त  
करते हैं ।

अंगार रस का आभास इस काव्य में पर्याप्त मात्रा में मिलता है ।  
अधिकारिता: रति एक निष्ठा दिखायी गयी है । तिर्यक् विनयवती है, विद्वान्निष्ठ  
मातृविका है , भावव कुलमावली है , उज्ज्वलिका का राजा विद्वान्निष्ठ  
तावप्यनुन्दरी है, सौम्यवत् कर्पूरिका है, विनयवत् अंगवती है , प्रताप सिंह

- १- का०प्र० चतुर्थ उल्लास पृ० ४६
- २- प्रथम कथानिका
- ३- द्वितीय कथानिका
- ४- तृतीय कथानिका
- ५- छठी कथानिका
- ६- सातवीं कथानिका
- ७- अंगार रस की कथानिका

मलयकुन्दरी ने प्रेम बताया है किन्तु उन सब को रति के शत्रु के प्रति विरक्त-  
 यती है । ये के शत्रु व-कुतः शत्रु नहीं मानता है किन्तु उनके धन लेने के  
 लिए अपना धुक्ति प्रेम प्रकट करता है । रतिदा और किङ्करी के बीच शत्रुत्व  
 का कारण धन छुट जाने पर अपना प्रेमिका समझ कर उनके पास जाने रहने है  
 और उन्हें प्रेमिकाओं का शत्रु के दुखार मिलाता है । काश्याओं पम्पारिक  
 काशिका ने कवि ने अपने नन्दरतिवशा नामक कथा का शिरोभाषणा  
 का शिरोभाषणा किया है किन्तु उनके अभिप्राय के अनुसार धन के कारण उनके  
 प्रेम के सम्बन्ध में कुछ निरिच्छा प भी नहीं मिला पा सका है ।

इस कथा में का शिरोभाषणा शत्रु के प्रति प्रेम था ही जाता है  
 किन्तु उनकी शत्रुओं उन्हें त्याग कर देते हैं और अपना धुक्ति के अनुसार  
 शत्रुत्व करने की कक्षा में और उन्हें कैसा करता रहता है ।

कवि ने कुछ कथाश्रितियों में उदा-निष्ठ रति का शिरोभाषा है  
 किन्तु कथा पर भी रतिभाव ही गया है । तैत्तिरि पुष्पाक और हावप्यकुन्दरी  
 रति-भक्तो है दोनों में प्रेम था है किन्तु वह अपने प्रति की राजा के पण्ड  
 के कथाने के लिए शिरोभाषणा शिरोभाषणा करते किङ्करी के प्रति धुक्ति-रति-भाव  
 प्रदर्शित करता है । रति का भाव का अभिव्यक्ति तैत्तिरि पुष्पाक के साथ  
 होता है जो कथा श्रुतार का ही जाता किन्तु उज्ज्वली के राजा किङ्करी <sup>सिंह</sup> के  
 साथ करने के कथा शिरोभाषा ही गया ।

इसी प्रकार उदक और अशोकता को कथा में दोनों में  
 रतिभाव दिखाया गया है किन्तु उदक के साथ उदक भाव का योजन कवि  
 ने न करके राजा द्वारा रति में अशोकता के साथ रहने के लिए भेजे गए  
 कुन्दरक के साथ किया है । रतिदा और हावप्यकुन्दरी को कथा में भी  
 उदा-निष्ठ रति दिखाया गई है किन्तु वह श्रुतार का ही कोटि में नहीं  
 पहुँच पाई है ।

- 
- १- श्रुतार ० एकादशी कथानिका
  - २- ,, उठो कथानिका
  - ३- ,, नवमी कथानिका

कवि के इस काव्य में जो हुंगार रस का रसमग्न विशाहं देता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वह पाठकों को हुंगार रस का आवाहन ही नहीं करा सकता है। भोज ही सर्वप्रथम इसे आचार्य है जिन्होंने सभी रसों का उद्गम हुंगार रस को ही बताया है। इस काव्य में वर्ण्य-विषय ही ऐसा नहीं है जिसमें हुंगार रस का वर्णना कराई जाय। कैलाशों, जकां मानाजों तथा पिटों आदि का सजीव चित्र उपस्थित करना ही इस काव्य में कवि को अभीष्ट है। चूंकि कैलाशों के लिए पुरुषों का मनोवृत्ति जानना परम आवश्यक है काः कवि ने राग के विविध भागों को विशद व्याख्या की है और उनके सम्बन्धित रौक्क कथानियां लिखी हैं। राग से सम्बन्धित अष्टांशतः उन कथानियों ४ के तात्पर्य हैं आंध्र नीली राग वाले रविदस, मंजिष्टराग वाले विक्रमसिंह, कुमुभराग वाले माधव तथा हरिद्र राग वाले सुरधर्म हैं। इसके अतिरिक्त कुछ धूर्त नायक भी हैं जैसे सोमदास, सुरधर्म माधव तथा विनयधर।

नायक-रसों के अतिरिक्त इस काव्य में नायिकाजों को जाठ अवस्थाजों में से कुछ अवस्थाएं यहाँ पर देखने को मिलती हैं --

अभिसारिका --

कवि ने जो स्वल्प एवम् सरस्वती कण्ठाभरण में बताया है 'पुष्पेज्ज पीडिता कान्तं याति या साभिचारिका' -- वंसा ही रूप इस गद्य-काव्य में देखने को मिलता है। यहाँ पर अभिसारिका के तीन रूप वर्णित हुए हैं --

१- प्रथम कथा ०

२- द्वितीय कथा ०

३- तृतीय कथा ०

४- चतुर्थ कथा ०

- १- (क) भाँचना रात में निपटने वाली<sup>१</sup>
- (ख) रात्रि में निपटने वाली<sup>२</sup>
- (ग) मध्याह्न में निपटने वाली<sup>३</sup> ।

२- यासवन्ता --अर को खजाने वाली तथा प्रियतम को प्रसाधा करने वाली नायिका का यहाँ उल्लेख है ।

३- मानिन्तू --मानिन्ता नायिकाओं के नाम को भी बताया गया है ।

४- विरिणिणी --वान्त में विराह, उदासीन, पीली और केवल स्मृति के आशुषण प्रकृतियाँ हैं । मानिन्ता का नाम ज्योत्स्ना में दूर होता है और विरिणिणी का वर्णन में ।

किन्तु ये नायिकाएँ दिव्य कहानी का नायिकार्थ नहीं बना हैं जिनसे प्रकृति-वर्षण के सम्बन्ध में उल्लेख उत्पन्न हुआ है ।

इस काव्य में नायिकाओं की सवियाँ दूता का काम भी करती हैं । अंगामिका रमिका के नाम जाकर विनयवती के प्रेम को बताकर उसे विनयवती के घर ले जाती है । इन्हीं कहानी में बहुश्लिषा तावण्युन्दरी के बदले नृत्य करता है और दो बार उसके प्रेमी रत्नवत को हूँद लाता है । दूतियों का काम एक-दूसरे के गुणों का बतान करना होता है किन्तु ये दूतियाँ इस काव्य में स्वतन्त्र रूप से ही वर्णित हैं । उनका रंग के कौटं भी सम्बन्ध नहीं है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके काव्य में शृंगार-रस का निरूपण नहीं हुआ है ।

हास्यरस का निवारण अवश्य वैश्याओं की माताओं को उगने में हुआ है । तीसरी कथा में माधव मुकुंदागुरा के द्वारा स्मृति चिह्न रूप में

- १- शृंगार० पृष्ठ ४४
- २- " " ७४
- ३- " " ८५
- ४- " " ४४
- ५- " " ४४
- ६- " " ४४, ५०



पहले रत्नदास और कैलास लावण्यसुन्दरी दोनों के बीच प्रेम था किन्तु एक बार रत्नदास लावण्यसुन्दरी को कैलास निकलेगा के घर तान विन के लिए छोड़ कर का जाता है । तब राजा उसे अपने पास नृत्य आदि करने के लिए बुलाता है वह वहाँ नहीं जाना चाहती है किन्तु निकलेगा के बहुत क्रूरता करने पर तब राजा से कह कर रत्नदास को जब उसका इच्छा छोटी वहाँ के नहीं जाया करीगा । <sup>वह उसके पास जाना इच्छा कर लेती है ।</sup> ~~सम्मान के लक्ष्मी को भी बनाने के लिए~~ तीसरे दिन जब वह रत्नदास से मिलने के लिए उत्सव उत्कण्ठित हो रही तो उसे बीच उसे राजा के पास नृत्य के लिए जाना पड़ा किन्तु जैसे ही उसे रत्नदास के आगमन की सूचना मिली जैसे ही नृत्यादि को छोड़कर उसके पास पहुँच कर जाता है । वह घेर घाँसे के लिए जैसे ही जागे बढ़ता है जैसे ही रत्नदास उसे 'माता' कहकर घेर घाँसे लीज लेता है । किनारा लावण्यसुन्दरी को कुछ समय में ही नहीं जाता है और वह उसका कारण पूछता है । निम्नलिखित पंक्तियों में लावण्यसुन्दरी का विवशता, रत्नदास का उसे घेर घाँसे से रोकने तथा लावण्यसुन्दरी के कारण जानने में लक्ष्मण-हृदय शोक से भर रहता है ३ और वह लावण्यसुन्दरी के प्रति सहानुभूति प्रकट करने जाता है --

'लावण्यसुन्दरि पापी मा प्राणीः । त्वं हि मम जना क्वचि  
ना तु भाङ्गमवादीष -- 'रत्नदास किमेत् ?' रत्नदासतां पुनखादीष --  
'किमन्वद ? त्वं हि मत्प्रभोवरिः , तदभवत्, प्रकृति, उपचिः खान् ।'  
सुन्दरक के साथ किए गए व्यागारों को सीखती हुई क्लेशमयी  
की स्थिति का निरूपण कारुणिक हुआ है --

'किं ममेतद कुत्सया... परया पाप्या विहितम् । क्वो  
दुर्लभ्या स्तविर्बिहितानां गतिर्गतिमप्योयान्क्वश्च नाध्यान्यप्रतिविषेया  
नियतिर्नन्दीय... त्स्वुरागस्यैव विधा परिणमतिः , तन्निवृत्तनुत्संभया  
नवितव्यता । तथाऽर्च्ये तुभ्यया मापकारिण्या नास्मि प्रतिदीयिता ।'

१- शृंगार ० पृष्ठ ६५  
२- " " " ७०

अधुन उस का निम्न पाँचवाँ अंग के अन्तर्गत वैश्वदेवता द्वारा चार्ण्य कई कथानों में मिलता है । उनमें वह एक गोड़े पर उड़कर आकाशमार्ग से एक पक्ष पर जाता है जहाँ वह निराम करके कुछ एक युक्तियों को देता है । गोड़े पर जो युक्त उसे लाया था वह वैश्वदेवता से उस युक्तियों से वापस मिलान कराने के लिए लम्बा है । इस बात से वैश्वदेवता कुछ ही जाता है युक्त उसके बाहुक जाता है । एक पर वैश्वदेवता विक्रमादित्य का स्मरण करता है । उसके नामोन्मूलन मात्र से ही वह युक्त से हाथ से छूट जाता है और अपने ही पक्ष पालर पिरा हुआ देता है । वह दूरी रहना जल्दों को गिटारो जाता है ।

अधुन की कथा में गोरे का अधुन उस का गया है ।

साधारण देवी का <sup>मूर्ति स्तम्भ</sup> स्तम्भ का प्रतिष्ठित करना केवल कालकार का प्रयोग है ।

विन्ध्याद्वी के भयानक का वर्णन करके कवि ने भयानक उस का निर्माण कराने का प्रयत्न किया है किन्तु विन्ध्याद्वी का भयंकर रूप केवल मातृ युक्तों के नामगणना से हीचने का प्रयत्न किया है । केवल आवाग्नि से भयानक कन्दर तथा मन्मथ हाथों का वैश्वदेवता से भयानक उस को दृष्टि होती है । कन्दर किस प्रकार चारों ओर जलती अग्नि को देखकर उनके कर्णों का उभाव्य दृढ़ता है, किस प्रकार दोन दृष्टि से देता है, किस भाँति मय से उनके नेत्र को बन्द कर लेता है किन्तु अग्नि का <sup>प्रभ</sup> शास्त्रता से स्फूर्क अपने कर्णों को देखने ला जाता है कि कहीं पक्ष तो नहीं गया है, किस प्रकार मन से कीत्कार करता है और एक वृक्ष को आकाशमार्ग से घुसने वृक्ष की शाखा पर जाता है -- इत्यादि का वर्णन करके युक्त दृष्टि का परिचय तो दिया ही है साथ ही भयानक उस का आत्मादन कराया है ।

१- आंगारो पृष्ठ =

२- ११ ११ ५०

यही प्रकार दावाग्नि से भयभीत हाथ हा वर्णन किया है । हाथों के बन्ने जलाने हुए हाथों को देख कर भयभीत हो रूकित हो जाते हैं और हाथों का हा कर उन्हें देखते हैं, हाथों से हाथों पर प्रहार करके भाषण आवाज करते हैं और हाथों से हाथ गर्जना करते हैं, बाहर निकलने के लिए ऊपर हाथ उठा कर देखते हैं, हाथों से उनके कान आच्छिन्न हो जाते हैं, पादों का भाग संक्षुब्ध हो जाता है, हाथों से हाथ उठा हो जाता है, हाथों से हाथ के भाग प्रकट होते हैं, जब दावाग्नि का आभता आदित्य होने लगती है तो फिर कुछ दूर कूट कर रूकित होते हैं और पराक्रमी हाथियों के मार्ग का अनुसरण करते हैं । इस प्रकार भाषण के काव्य में हाथ, अदभुत, करुण तथा भयानक रूप का वर्णन हुआ है । अन्तःकरण पर विरह-वर्णन या हुआ है ।

तिलकमंजरी में रसों का निष्पन्न--

धनपाल ने अपने रस का अर्थ में शृंगार रस को प्रमुख स्थान दिया है, अन्य रस गौण रूप में आये हैं । कतः कवि ने शृंगार रस के निष्पन्न में विशेष रुचि दिखायी है । ऐसा कि पहले देखा जा चुका है कि इस काव्य में दो कथाएं हरिवाहन और तिलकमंजरी तथा स्मरकेतु एवं मलयसुन्दरी की कथा आनान्तर चलती है । ये दोनों कथाएं शृंगार रस से जीत प्रोत्ते हैं । कवि की दृष्टि में विप्रलम्भ शृंगार अधिक श्रेष्ठ है कतः दोनों कथाओं में विप्रलम्भ शृंगार के ही स्थल बहुत मात्रा में मिले हैं । यद्यपि इस काव्य की नायिका तिलकमंजरी है और मुख्य कथा हरिवाहन और तिलकमंजरी की ही है किन्तु शृंगार रस का समग्र रूप से निवाह स्मरकेतु और मलयसुन्दरी की कथा में है । स्मरकेतु अपनी सुन्दर यात्रा में एक दिव्यात्मिका में सखियों से घिरी हुई मलयसुन्दरी को देखता है और मलयसुन्दरी स्मरकेतु के लज्जित स्मरकेतु को देखती है और दोनों एक-दूसरे के जीवनों पर मोहित हो जाते हैं । दोनों में कामधन्य विकार उत्पन्न होते हैं । मलयसुन्दरी के काम विकारों में



काय ने पतना जाना, रोमांच होना, रोत्कार करना, शून्य का सहारा लेना, उप-ज्व होना, उरी के रूप में स्थायु निरा होना, अवयवों का निष्पन्द होना, कुछ न जानने पड़ना, मुक्ति का होना, नाभिकेन्द्रिय का अपना काम बन्द कर देना आदि वर्णित किया है। अज्ञान होने वाला अपना इस वशा पर जो जाँच है। उसे वह नहीं समझ में जाता कि वह कौन है ? कहां जाँच है ? कहां लड़क है ? कहां जो रहने वाला है ? उतने जाने आप यह वशा बना ली है या और किसी ने बनाई है ? उसे वह नहीं पता चल पाता कि किस दृष्टि से उतने राजकुमार स्मरकेतु को देता ? स्मरकेतु के विकारों में काव्य ने उल्लास घेरे छूटना, तारक-तरक की दृष्टिक बेधार करना, स्टाक फेंकना, फल होना, अस्वरचित होना, आँसुओं का गिरना, मलयसुन्दरी के वपनों को पुनने में ले लेना, सूक्ष्मन्यम्क हो जाना, किण्वरक पर मलयसुन्दरी का चित्र बनाना तथा उसके अंग-प्रत्यंग पर दृष्टि डालना आदि का वर्णन किया है ?

इन विकारों के अतिरिक्त काव्य ने इन स्मन होने वाले चीनों की स्थिति का मर्मगर्ही वर्णन किया है। तारक स्मरकेतु से कहां से चलने के लिए कहता है और स्मरकेतु अपने शरीर की अवस्था का क्व कहाना करके कहां से न चलने के लिए कहता है। किन्तु तारक उसे कहां से ले चलने को होता है तो स्मरकेतु कातर दृष्टि से मलयसुन्दरी को देखता है जिसे देखकर मलयसुन्दरी झुञ्च ही जाती है और वह बयान्त केना से तारक को रोकने के लिए कहती है। वसन्द केना से क्वे हुए वाक्यों में उल्लास जाँच स्पष्टरूप से परिलक्षित हो रहा है --

‘सति निषिद्धोऽपि जालः प्रस्थितोऽयं जालिकः । कृत्वा  
 च पुरतः प्रार्थनामकृत्वा<sup>३</sup> स्व<sup>३</sup> भवति राजपुत्रः । तन्निवर्तयामिधाय यत्किंचिदती  
 (१) स्थिरीकृतं तावथावदेति प्रवेष्टमागोपदेष्टा<sup>३</sup> यो<sup>३</sup> च्यमुष्वादेवतायतनाय ।  
 अन्यथा महन्माहिन्यमायात्मस्याकर ।’

- १- तिलक पृष्ठ १७७-७८
- २-    ”       ”    २७८-७९
- ३-    ”       ”    २८२

दोनों ही स्व-दुःखों पर जासूस है । किन्तु दोनों को स्व-दुःखों से मिटाने में उन दोनों के भिन्न मध्यस्थ होते हैं । तारक स्मरैतु से मलयसुन्दरी को सर्वप्रथम प्रणाम करवाता है<sup>१</sup> । इस घटना से उत्पन्न होने वाली मलयसुन्दरी की मानसिक स्थिति का वर्णन कवि ने बड़ी सफरता के साथ किया है । वह प्रेम करता है किन्तु अपने विषय को नष्ट नहीं होने देता । उसे कभी अपने गुरुजनों के क्रोध का , कभी राजकुमार के अपमानित होने का तथा लज्जित होकर उसके प्राण लौ देने से उत्पन्न घाम का ध्यान आता है । चौड़ी देर तक वह किर्त्तव्यकिमुद्र की ही सड़ा रहती है<sup>२</sup> । उन्नी बीच तपनके द्वारा लाये हुए भूजा का तपनी तथा नृत्य के समय गिरे हुए पद्मराग की तपनके के हाथ में देकर वह स्थावर पर्यवर करने को बीच लेता है और तपनके से शिष्ट वचन कह कर स्मरैतु के सम्बन्ध में जाने विवाह सम्बन्धी श्ववार का कता देती है । तत्पश्चात् स्मुद्र की पूजा के काने हार स्मरैतु को पहना देती है । हार को पहनते ही कुमार का अनिर्वचनीय कथा हो जाती है । प्रसन्नता उ के रोम रोम से फूटने लगती है । यह भी तारक ने हार मलयसुन्दरी को पहनाने के लिए मांगता है किन्तु जैसे ही वह तारक ने मलयसुन्दरी के गायन होने की बात सुनता है तो वह खीर हो उठता है । तारक को समझा कर तथा बन्धुकी को सन्देश देकर स्मुद्र में डूब जाता है<sup>४</sup> ।

इस दृश्य को देखकर मलयसुन्दरी में होने वाली प्रतिक्रिया का वर्णन करना भी कवि नहीं भूला है । उसके स्त्री-सुलभ भावों एवं उसकी स्वामाविक क्रिया का ही वर्णन किया है, उन्ने कोई अतिशयोक्ति नहीं है —

निपतिते च तत्रास्त्राद्याकस्मरणाश्रयणात्सुद्रकानिमग्नाध्वेन-  
 मालिन्ध सफलीभूत जीविता निशिलदुःसायासीहं देहमिच्छत्सुजाभि इति  
 क्मावकातस्तया स्त्रीहृदयस्य द्रुमिमीलिनाति उगला ततः साकलशिरादुत्प्लु-  
 त्कृत्य कलनिषावात्मानममुकर । ५

- १- तिलक०पृष्ठ २८६
- २-    "       "    २८७
- ३-    "       "    २८८
- ४-    "       "    २९१

वज्रायुध को दिए जाने से दुःखी होने के कारण <sup>मलयसुन्दरी</sup> पाल्मुहत्या के लिए अगार गठ पाश से युक्ति होने के परवाह पुनः जब <sup>उस</sup> वैतनावस्था में जाती है और जाने समुल ~~क~~ कथमाद वाए समरेतु की कैली है तो उस <sup>उस</sup> जब कवि ने मलयसुन्दरी के हृदय में उठने वाले भावों का वर्णन करके अज्ञा के साथ किया है। उसके भाव व्योक्तिगत पंक्तियों में दृष्टव्य है --

..... किमेष पाल्मुहत्याया निविद्या-कन्दितान्मैव  
 हृदयानिनिःसृता बलिः, जय प्राकिताभिर्मदनुकल्पयादेकानिर्विद्वशकस्था  
 कुनीच्यमानोलः उत्तान्मदेव किञ्चित्प्रयोगमालोच्य गुण्येन प्रथितः,.....  
 अति पितृमान्ना ।

मलयसुन्दरी का वियोगावस्था के वर्णन में सहृदय विप्रलम्भ दुःखार का का-पावन धरणा है। समरेतु के वियोग में उसका कुसुम, ताम्बूल, वाधुषण, काराग के प्रति आकर्षित होना, नित्य ज्यु का प्रवाहित होना, चित्रफलक पर समरेतु का चित्र आना, पुष्पाँ से कामदेव को पूजा करना, प्रोषितभर्तृका की भाँति प्रियमानस के लिए कष्टसाध्य इतों का करना तथा जन्म राजकुमारों के साथ होने वाले विवाह के लिए माँ को रोकना आदि वर्णित है ।

इसके अतिरिक्त वियोग में मलयसुन्दरी का प्रकृति के प्रति सहानुभूति रखना भी वर्णित है। कभी वह विघटित हुए चक्रवाक के जोड़े को मिलाती है तो कभी झुक, चलीर, कोयल आदि विविध पक्षियों को जोड़ों के साथ पिंजड़े में बैठाती है तो कभी छोटी-छोटी लताओं से पल्लवों को जोड़ती है और कभी देवता-इन्द्रों को जला-जला प्रतिमाओं को एकत्र करती है ।

मलयसुन्दरी एक तो समरेतु के वियोग से पीड़ित थी ही दूसरे जब उसे यह मालूम होता है कि उसके पिता-मन्थि के रूप में उसे वज्रायुध

१- तिज्जा० पृष्ठ ३१२

२- " " २६६

३- " " २६६-६७



सरोवर में बहते हुए स्मरकेतु के पत्र को पाकर होने वाले उसके  
 बहुधात, निराशा, विन्मय, वितर्क, अस्पष्ट, प्रसन्नता आदि विविध भावों  
 को एकसाथ काल्पारिक ढंग से प्रस्तुत किया है, जो भाव शक्ति का उत्कृष्ट  
 रूप कहा जा सकता है<sup>१</sup>।

स्मरकेतु के मिलने को प्रतीक्षा में वह तपस्विनी वैश धारण का  
 लेती है<sup>२</sup>।

कवि ने केवल मलयसुन्दरी के भावों एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का  
 वर्णन करते अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। स्मरकेतु के युद्ध के  
 उपरान्त स्मरकेतु के पत्र आदि देने की घटना हरिवाहन को मालूम है--हरी  
 जानती हुई वह प्रसन्नता से शिष्ट उठती है, उसे स्वर्गलोक जैसी शान्ति  
 मिलती है निराशा से पुनः स्नागम को इच्छा होने से एक बार पुनः कन्दर्प  
 उस पर आक्रमण कर देता है, गीन्दरी विगुणित हो जाता है, नेत्रों में  
 विधवाभा टपकने लगता है, पुतलियाँ बँकल हो जाती हैं, जान-बाहु बलने  
 लगते हैं, रोमांच हो जाता है, शरीर में कंपन होने लगता है और स्वर  
 गदगद हो जाता है<sup>३</sup>।

एक एकल पर कवि को क्लेशग्रस्त हो जाने से मलयसुन्दरी का  
 वियोगपत्र कलंकित हो गया है। विन्मय हरिवाहन को उसके वैश पहुंचाकर  
 ऊँचे लौटता है और स्मरकेतु के न मिलने के विषय में बताता है तो उस  
 समय कवि को स्मरकेतु विषयक मलयसुन्दरी का शोक वर्णित करना  
 चाहिए था क्योंकि मलयसुन्दरी को हरिवाहन से स्मरकेतु विषयक आशा  
 बंध चुकी थी लेकिन कवि ने यहाँ पर मलयसुन्दरी का शोक हरिवाहन से  
 सम्बन्धित किया है<sup>४</sup>।

वैश मलयसुन्दरी का प्रेम अत्यन्त उत्कृष्ट है। हरिवाहन के  
 मुक्त से स्मरकेतु स्वस्थ है एवं वह उसे चाहता है, यह जानकर वह शान्त हो

- 
- १- तिलकमंथरी पृष्ठ ३३६
  - २- " " " २५४
  - ३- " " " ३४७
  - ४- " " " ३६२

जाती है और अपने त्रैलोक्यीय रूप को तपस्या कर देना चाहती है ।

कवि स्मरकैतु के वियोग-वर्णन में उतना उलझ नहीं हुआ है । वह कद्रायुध के साथ फिर गए हुए में दिव्य अंगुठी के प्रताप से पराजित होकर ज्योत्सना नरेश के राजकुमारों के साथ रहने लगता है किन्तु वह वहाँ पर भी मलयकुन्दरी की भूलता नहीं है । लतामण्डप में बैठकर जब अन्य कुमार किलो के 'काम-मंत्र' को पाकर जोक प्रकार को बर्बा करते हैं तो वह मलयकुन्दरी के शोक में डूब जाता है, उसके मुख को कान्ति प्राण्य हो जाता है, वीर्य निःस्वभाव बलने लगते हैं, बहु बलने लगते हैं और मुख नीचा करके वह अमान सोधने लगता है । काँची को और जाने वाले गन्धर्वक को मलयकुन्दरी के लिए मंत्र लिखकर अपनी कुशलता भेजता है और उसके पुनः आगमन की प्रतीक्षा अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ करता है, हरिवाहन को दूढ़ते समय गन्धर्वक को देखकर प्रश्नों की कड़ा लगा देता है ।

कवि ने स्मरकैतु के भावों को एक प्रकार से <sup>उपेक्षा</sup> ~~उपेक्षा~~ की है । हरिवाहन स्मरकैतु को मलयकुन्दरी का सारा कुतान्त बखिस्तार बता रहा है किन्तु उस कहानी के प्रारंभ के बीच स्मरकैतु के किलो भी प्रकार के भावों का वर्णन कवि ने नहीं किया है । पूरी कहानी सुन लेने के पश्चात् जो स्मरकैतु की स्थिति विचित्र की है वह अधिक आरुपिक भी नहीं है --

सुभ्र 'स तु न कांषिदेनाह , न किंभिदभाषत, न कथंभित्तवम  
भूणावु, न कर्यचित्प्रतिवचः प्रायञ्चव । केवलं वंनित इव, हरिश्च त्व, मुञ्चित  
त्व,..... तूष्णीक स्वातिष्ठव ।'

कवि ने स्मरकैतु का अपने ऊपर इतना अधिक शोक दिखाया है कि वह किलो के भावों को जागर की दृष्टि से देखता भी नहीं है । हरिवाहन तो उसकी वक्ता तथा मलयकुन्दरी को वक्ता देखकर उसी मलयकुन्दरी

- 
- १- तिलकमंथरी पृष्ठ ३४७-४८
  - २- " " " ३१९
  - ३- " " " ३७३
  - ४- " " " २२४
  - ५- " " " ४२०

के पास जाने को कहता है और समरकेतु को शर्मा में हरिवाहन ने कह  
देता है --

‘हुंमार, स्मिन्मावैद-यसि मे । यदि तदाहवा स्मै यत्नः ,  
प्रहिष्ठा कंचिदभ्यन्तागमनवार्ताहरं स्थानुवस्म । अहं तु कृतविप्रियः  
श्रिंश्वदाभावतः प्रभृति तस्यास्त्रमया न शक्नोमि शोक्षितुं वदनम् ।’

हरिवाहन और तिलकर्मजरी का कहाना में जिस हुंमार रस  
का विमर्षण हुआ है वह समरकेतु और मलयसुन्दरी के हुंमार रस की भांति  
नहीं है । इसमें चित्रकला द्वारा प्रेम-भाव का जागरण होता है और इसका  
प्रारम्भ नायक हरिवाहन को और नै होता है । मन्वर्वक हरिवाहन को  
चित्रकला पर चित्रिका तिलकर्मजरी के चित्र को दिखाता है जिसे देखकर  
हरिवाहन मोहित हो जाता है । मन्वर्वक उस चित्रकला पर राजा  
हरिवाहन का भी चित्र उन्हीं के सामने विक्रित कर देता है और तिलकर्मजरी  
के विवाह हेतु पिताने के लिए उस चित्रकला को ले जाता है<sup>१</sup> । यह घटना  
उसके प्रेम-भाव को और भी उद्दीप्त करती है ।

कवि ने यहाँ भी विप्रलम्भ हुंमार का वर्णन किया है किन्तु  
इसके चार भेद -- पूर्वराग, मान, प्रवास, और करुण में से पूर्वराग को  
हरिवाहन को वियोगावस्था के वर्णन में अपनाया है । मन्वर्वक के बड़े  
जाने के बाद तिलकर्मजरी के ही सौन्दर्य का स्मरण करना, प्रीति को  
सृष्टि को प्रशंसा करना, कन्या का भविष्य सोचना, अपना दुःख दुःख का  
न होना, तर्कशक्ति से काम लेना, पृथ्वी में विद्यमान अन्य-पक्षों सुवर्तिथों  
को लेकर कन्या के प्रति न आसक्त होने के लिए मन को समझाना, उसकी  
देहने के लिए दिनोंदिन उत्कण्ठा का बढ़ना, दुःख के साथ-साथ तिःश्वार्थी  
का कलना, निद्रा का उपहरण होना, उद्युक्त कहाना, निरन्तर उसी की  
चिन्ता करने के कारण दिग्भ्रमियों पर उसी के प्रतिक्रम्य देना,

-----

१- तिलकर्मजरी पृष्ठ ४२२

२-     ११     ११     २६५-२७०

गन्धर्वक के जागमन की प्रतापता में झोटासेल की चीटी पर चढ़ता और जन्त में निराश होकर तिलकर्मजरी के आगम की आशा होझा जादि कवि ने वर्णित किया है<sup>१</sup>।

उत्कं वियोग-वर्णन में तान श्रुं -- शीघ्र, वदत और शरद् श्रु का मो वर्णन हुआ है<sup>२</sup>।

दृष्टजने भावों की छिपाने के लिए मण्डल देखने के कहानेगृह से बाहर निकल जाता है<sup>३</sup>।

उनके वियोग-वर्णन में मृति को विशेष स्थान मिला है। हाथों द्वारा अशुभ-पारा शरीर में पहुंचकर वहां तिलकर्मजरी को देखा है किन्तु वह उस समय उसकी पहचान नहीं पाता है। उसके चले जाने के बाद वह उस मन्त्रा की निष्कलंक में चित्रित कन्या से तुलना करके उसे तिलकर्मजरी समझ कर उसी को उस समय की नयी विविध वेषधारों की भाष में शरीर रात जागते ही बिना देता है<sup>४</sup>। दुधरे दिन उठकर उसी कन्या की लोच करने आता है।

मलयुन्दरी से बात करते हुए भी ही हरिवाहन को तिलकर्मजरी की कामपीडित दशा के विषय में आत होता है उसको प्रान्नता इन वाक्यों में देता जा उकती है --

‘वरे हृदय, किमकीदापि ताभ्यति । किं च न मुंघति  
चिरंतनविषादम् । उदह परं परितांभमधुना । यस्याश्चिन्नमृगतैनापि  
श्लेष ताङ्गो पुरा किञ्चतां नोत्तमि... वा स्वत एव संग्रति विषेयतां  
गता जोषितं वैवी तिलकर्मजरी । उर्वया उर्व स्वया उर्वध्वम् , अक्षिता  
वन्मक्ता, निरस्ता दुस्त्वमश्चिन्ताभारः श्वीकृतं स्वतन्त्रत्वं<sup>५</sup> ।’

इस अमृतपूर्व मितो प्रान्नता में मो वह अपने विवेक की नष्ट नहीं होने देता किन्तु वह लोगों के बीच हास्यास्पद बन जाए। वह अपने

- |    |            |       |        |
|----|------------|-------|--------|
| १- | तिलकर्मजरी | पृष्ठ | १७६-७६ |
| २- | ॥          | ॥     | १७६-७६ |
| ३- | ॥          | ॥     | १७९-८२ |
| ४- | ॥          | ॥     | २५१-५३ |
| ५- | ॥          | ॥     | ३५६-२७ |



हृदय की आयतन करता है<sup>१</sup>। अपनी राजधानी में पहुंच कर जब वह समरसेतु को छूने निकलता है और रातों में कुरिशा द्वारा छाप गर तिलकर्मजरी के पत्र को फड़ता है तो उसकी अकम्पाव कफ़ीय दशा हो जाती है। दुःख जना पर लेता है कि उसे कित्ता बोज़ को सुब हो नहीं रहती है। उसे यह नहीं मालूम होता है --

'कोडल्प, स्वायातः, किमिमायातः, किं मया प्रस्तुतय, किमेतदिन्द्र, किं निशा, कोडयं कालः.... । इत्यादि

तिलकर्मजरी के पूर्वराग का तथा आपस में मिलने के अन्वय विमुक्त होने से उत्पन्न वियोगावस्था का वर्णन करके कवि<sup>२</sup> विप्रलम्भ धृंगार रस का आन्वादन कराया है। तिलकर्मजरी हरिवाहन की रघुपुर-चक्रवाल की सीमा पर बसते ही काम-बिह हो जाती है। धीजन के प्रति अरुचि, पीड़ा होने पर भी शीतोपहार के प्रति उदासीनता, अतिर्याङ्ग की अपेक्षिता, मानिता, मोठे वचन बोलने पर भी कुछ होना, जो उस तट से आ जाय उसी से बात करना, उसी को अपने पास बैठाना, उसी को बातों को सुनना<sup>३</sup> आदि का वर्णन उसके प्रथम दृष्टिनात-प्रणय से उत्पन्न तिलकर्मजरी की वियोगावस्था के चित्रण में किया है।

हरिवाहन के अयोध्या लौट जाने पर तिलकर्मजरी के वियोग-वर्णन में जिन-जिन स्थलों में हरिवाहन के साथ रही उसकी कृप्य तथा जादर की दृष्टि से देलना, कामवैष के मंदिर में वैष-गुजन के कहाने रत्न-बोणा का कहाना, चित्रकलक पर हरिवाहन का ही चित्र कहाना बार-बार गन्धर्वक से हरिवाहन का हाथ मुहना आदि वर्णित है।<sup>४</sup>

तिलकर्मजरी की त्राण त्याग करने के लिए प्रयत्नशील होती है<sup>५</sup>। यहां पर कवि ने हः महीने के विरह का केवल उल्लेख किया है।<sup>६</sup>

१-	तिलकर्मजरी पृष्ठ	३५७
२-	॥	३६७
३-	॥	३५५
४-	॥	३६९
५-	॥	४२७
६-	॥	४२७

उसके विरोग-वर्णन में उसका कवालिना वैश धारण करना, निद्रा का दूर होना, भूमि पर सोना, नल्लूल कन्द खाना, देह की कान्ति का क्षीण होना, हरिवाहन को प्रताप में ही जीवन का धारण करना, कभी एक-दुसरे को कन्दराजों के निर्करों में, कभी बहुष्टपारो शरीर के तट के समाभवती यन्धारागृह में और कभी वैशाख्य पर्वत के ताल कुशाँ की कुसुट में भक्तिकाजों द्वारा किए गसशिशिरोपहार का भा वर्णन है ।

इन दोनों के बीच निष्फि शृंगार रस में श्लोकाक्ष मों वर्णित है । इन दोनों का सर्वप्रथम मिलन बहुष्टपारानामक दिव्य शरीर के तट पर होता है (कवि ने दोनों को-दुसरे की पहचान नहीं पाते हैं, हरिवाहन उसके कहे जाने पर पूर्व दृष्ट चित्र का स्मरण कर उसे पहचान लेता है । ) उक्त स्मरण केवल तिलकमंजरी के अनुभावों का वर्णन किया है । उक्त स्मरण हरिवाहन के निष्कल दृष्टि से देखने के कारण तिलकमंजरी में कल्पित होना, जाँसी का फैलना, हरिवाहन के नगर के विषय में सुझने पर लज्जावश कुछ बौध न उल्ला आदि वर्णित किया है । मलयकुन्दरी के द्वारा तिलकमंजरी को हरिवाहन को और देखे जाने के लिए कहे जाने पर कवि ने उसके नेत्रों का विविध मुद्राजों का वर्णन किया है ।

हरिवाहन को पान देते समय तिलकमंजरी के उत्पन्न हुए विकार संयोग शृंगार रस को परिपुष्ट करते हैं । कुछ लज्जा आती है किंतु वह मुस नोषे कर लेती है, उत्पन्न हुए वाधस को दूर करती है, धैर्य का सहारा लेकर , कामावेश को बल में करके, अपने प्रभुत्व को तथा लज्जा के अचित्य को ध्यान में रखकर आगे बढ़ती है ।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ४१८

२- " " " २४८

३- " " " २६२

४- " " " ३६३

इसके अतिरिक्त वहाँ पर तिलकमंजरी का प्रतिक्षण हरिवाहन भी हो देखा, माणिक्यमण्डला का की शिला के तन्मूर्ति में तोत्कार करना, परिष्मण करना, शृंगारस्य परिष्ण कवितां पढ़ना, निजि-भागों पर विशाधर, पक्षि तथा मूर्तों के जोड़ों का काना, नृत्य करना, छाताओं का झोंझा, बन्दनलेप करना, अपने मुँह से बच्चे के मुँह में पान रखाना आदि संयोग पञ्च की ही पुष्ट करता है ।

इस पत्र में हरिवाहन को मनःस्थिति का एक तो वर्णन हुआ भी नहीं जो थोड़ा - बहुत यत्र तत्र देखने की मिलता है तो उन्में कवि की प्रतिभा का परिक्रम नहीं मिलता है तथा वहाँ संयोग शृंगार का स्वास्वाव भी नहीं ही वाता है ।

शृंगार रस की अभिव्यंजना नायिक तारक और प्रियदर्शना की कहानी में भी है । तारक की देखकर प्रियदर्शना में केवल साध्वस का होना पदस्थलित होना, बन्धुआँकल गिरना ही वर्णित है<sup>२</sup> । किन्तु गिरने से बचाने के लिए तारक जब उसे पकड़ता है तो प्रियदर्शना में खूब उठने वाले विविध भावों-- साध्वस का डूर होना, प्रालम्भा का जा जाना, समागम की तुष्णा जागरित होना, लज्जा जाना, भुमि का कुरेपना आदि का वर्णन करके कवि इस रस में अक्लुप्त सौन्दर्य ले जाया है ।

तारक भी उसके स्मरविकार से, उपहासपय से, करतलस्पर्श से तथा प्रकटित बुराग से अपने को भाँज्यहाली समझने लाइ जाता है और उसके ऊपर सर्वप्रथम न्याहावर करके उसी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है । कवि ने विवाहोपरान्त हास-परिहास, चाटुकारिता, कोप, प्रसाक्त आदि का वर्णन करके संयोग ३३ शृंगार का वर्णन किया है<sup>४</sup> । इस कहानी में विप्रलम्भ शृंगार की किंचिदपि स्थान नहीं मिला है ।

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३६४-६५

२- " " " १२७-२८

३- " " " १२८

४- " " " १२९

यह रस के उपरान्त जो काव्य में करुण रस की महत्वपूर्ण  
स्थान मिला है । यह रस अमरकेतु और मलयसुन्दरी का ही कहना में  
अभिध्व्यंजित है ।

मलयसुन्दरी अपने मरण का निश्चय करके अपने गृहोपान में  
जाकर अपने हाथ द्वारा लाये गये वृक्षों को जिस कातर दृष्टि से देखता है  
तथा पक्षियों को जिस प्रकार संदेश देता है वह सब बहुयय - हृदय की करुण  
रस में उभा देता है । जब वह अर्धांग वृक्ष को देखता है तो दुःख से निःश्वास  
होकर उठता है, छोटे-छोटे जामु वृक्ष के प्रति उसकी विषाद भरा दृष्टि हो  
जाता है, बहुलपत्रों को विकल समझने लगता है , छोटा-छोटा लताओं  
को देखकर आंसू बहाने लगता है , रस्ता के जोड़े जा-जाकर उनके मार्ग को रोक  
लेते हैं वह भी दुःख के साथ -- तात रक्ताशोक, लौकान्तरगतापि स्मर्तव्यान्मि।  
कमलदीपिके, दीपिकां लक्ष्मणमुभाकितापि निर्वृणया निदाघमज्जने<sup>१</sup> ।  
उत्पादि ककर पक्षियों से विदा मांग कर घर चला जाता है ।

कुसुमायुष के मन्दिर में पास से क्या मलयसुन्दरी को देखकर  
मलयसुन्दरी द्वारा किया हुआ क्लेश, उसके द्वारा दी गयी विधि की  
उल्लंघना, मलयसुन्दरी के जीवित होने की आशा से उसका पाश्र्विक को काटने  
के लिए कभी पैर पर चढ़ने का प्रयत्न करना , कभी शाखा को तोड़ने के लिए  
उसे फसड़ कर उसका मुक्कना, कभी पास को काटने के लिए समीप में किसी  
जख्न को दूढ़ना, कभी मूलभेदिका के अग्रभाग में पेरों को रखकर मलयसुन्दरी को  
साँझों के लिए अपनी मुजाओं को फैलाना, कभी उसे पास से मुक्त करने के लिए  
बाँध पर उसे रखकर उछालना तथा कभी मलयसुन्दरी के नेत्र कर्ण उसके द्वारा  
बार-बार लौटा जाना , उसका उदासीन दृष्टि से कभी कैलिदीपिकाओं का  
देखना, मुर्च्छित होना, मुर्च्छा <sup>हू</sup> होने पर जोरों से क्लेश करना, अपने को  
भिन्नकारना, कात्यायनी देवी से उसको प्राण-विदा मांगना, स्वयं दुनिया

१- कालिदासीय पृष्ठ ३०१-३०२

को मुँह न दिशाने को उच्छ्वा से मांस बांध कर आत्महत्या का निष्पन्न कर लेना आदि उसके कार्य किन्तु हृदय की करुणा से जाई नहीं कर देते<sup>१</sup> ।

उसी प्रकार मलयमुन्दरी के किंकाक नामक विशिष्ट फल के लाने पर कही गई तरंगलेखा की बातें हृदय-हृदय की जाई कर देती हैं । तरंगलेखा यह समझती है कि वह यों ही यहाँ आश्रम के आश्रित्य को छोड़ कर चली जाया है । अतः उसे सावधान करने के लिए सब उसी कहती हैं जब उधर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता है तब भी वह यही सोचती है कि उसके कठोर बचन की सुनने के कारण ही वह उसी नहीं बोल रहा है । वह उसे फकड़ कर उठाता है । मलयमुन्दरी किसी प्रकार कुछ दूर चल कर उस विषय का के कारण जाने नहीं बढ़ पाती है किन्तु तरंगलेखा तब भी उच्छ्वा कुछ हीना ही सोचती है और उसे पैड़ के नीचे बँटा देता है । उस समय तक उस विषय का उसके ऊपर प्रभाव ही हुआ था लेकिन वह यह सब कुछ नहीं समझ रही है और उसे मनाने में लगी है । उसके ये वाक्य --

‘मलयमुन्दरि, मलयमुन्दरि, किमेवमुत्सृष्ट सीष्टया तिष्ठसि ।  
किं च वारं वारमाहापित्तमपि मे वाचं न प्रयच्छसि । अपि न मुपितात्स्व ।’  
..... किमन्वोऽस्ति कश्चिन्मम तव ख्याने । किं द्वेषण निष्ठुरं त्वां  
तर्षयामि ।... ‘एषामलयमुन्दरी निमेषमपि न त्वयोपेक्षितव्या, रक्षितव्या  
च सर्वोपद्रवेभ्यः शरीरमिव मदीयमत्यादरेण’ । तेनैव मे प्रयत्नः । अन्यथा  
किमस्मैवं त्वां नियन्त्रामि ।.... <sup>२</sup> <sup>रत्यादि</sup> ममे का दर्शन करने वाले हैं । मलयमुन्दरी  
और तरंगलेखा के करुणारस के प्रसंग में अन्तर यह है कि मलयमुन्दरी मलयमुन्दरी  
की मरा हुआ समझ लेती है और तरंगलेखा उसे मरा जन्मा मूर्च्छित हुआ  
न समझ कर कुछ हुई समझती है ।

१= तिलकमंजरी पृष्ठ ३००-३०८

२= ,, ,, ३३६ २२५

अमरकेतु को युद्ध में मारा हुआ सीक्कर मलयसुन्दरी द्वारा किया गया विहाय करुण रस की उत्कृष्ट अभिव्यंजना करता है । उसका अमरकेतु का सम्बोधित करना, अमरकेतु से प्रार्थना करने वाली बन्धुसुन्दरी का अरण करना, मलयसुन्दरी की उषेता करके अमरकेतु के जले जाने पर और वहाँ मृत्यु हो जाने पर ईर्ष्या प्रकट करना, अमरकेतु ने उसके दुष्ट प्रेम को टुकरा दिया वादि सीक्कर दुःख होना, मृगोधान से आश्रम आते समय एक बात भी उसने नहीं की -- यह सीक्कर उन्का शीम प्रकट करना -- वादि वर्णन इस रस में अद्भुत अमत्कार है आते हैं ।

उन व्यक्तियों के अतिरिक्त करुण रस का प्रसंग राजा मेघवाहन के पुत्राभावमें है । युवावस्था व्यतीत हो जाने पर भी जब उनके पुत्र नहीं होता तो अभी राजा को धिक्कारने लगते हैं और झोंड़ झोंड़ कर भागने लगते हैं । देवर्षि उससे कहते हैं कि तुम अनृप्य हो, पूर्वव राजा के बाद भविष्य में होने वाली अपनी दुर्वशा की स्वप्न में दिखाते हैं, श्री (संपत्ति) अलग अपने माग्य पर री कर उसे उलाहना देती है, पृथ्वी उगने विनीत होकर होने वाली अपनी दुर्वशा पर कुमावृष्टि के लिए राजा से याचना करती है । प्रजा अलग प्रजावत्सल राजा के पास शरणगत होकर आती है, दुष्टिकर्म मय का सहारा लेकर नरक से अपनी रक्षा स्वयं करों कह कर -- मिलने वाले दण्ड से डर कर रहा है किन्तु राजा क्या करे । माग्य के विधान को तो कोई भिटा भी नहीं सकता । राजा के सारे गुण -- शरणगत की रक्षा, प्रजावत्सलता, श्री-रक्षा वादि सन्तान न होने के कारण नष्ट हुए जा रहे हैं और वह इस सम्बन्ध में कुछकर्य कर नहीं सकता ?

वीर रस का आव्यादन बजायुव और कुमुदसेनर के युद्ध-वर्णन में किया जा सकता है जिसमें कुमुदसेनर द्वारा की गयी युद्ध की तैयारी में उत्साह भाव की उत्कृष्ट अभिव्यंजना है । शत्रु की बढ़ाई हुनकर दुर्गा की समुचित

अथ वा करना, जलाशयों का निर्माण करना, दुर्ग के अन्दर जाने की सुक्ति व्यवस्था करना, दुर्गों को छोड़ देना या घाट देना, प्राकारों को दुर्ग बनाना, अनभिन्न पुरुषों का जाना-जाना रोकना, प्रांगण पर आश्रय पुरुषों का प्रबन्ध करना, प्राकार के अन्दर पत्थर फेंकने के लिए उद्योग स्थापित करना, जव पैनाजों का यत्र तत्र फैला देना, आधीन राजाजों के पास सहायतागर्ह दुर्गों का भेजना, पैनापतियों का गुप्तवर्तियों से हाथ मालूम करके तदनुकूल आचरण करना, गमनों का युद्ध के लिए आगे बढ़ना -- आदि काकर कवि ने युद्ध की तैयारी वर्णित की है । ~~दोनों उत्साह भाव होने के कारण वीर रस तो है ही किन्तु दोनों के बीच होने वाले युद्ध में वीर रस के आस्वादन की चरम सीमा मिलती है ।~~

दोनों उत्साह भाव होने के कारण वीर रस तो है ही किन्तु दोनों के बीच होने वाले घमासान युद्ध में वीर रस के आस्वादन की चरम सीमा मिलती है । दोनों ओर से उल्लासपूर्ण वक्ताओं का कला जाना, दुष्टों के सिंह-नाद से स्मरण का गूँजित होना, पाषाणों के निरन्तर फेंकने से आकाश को स्थल-सा का देना, तरली का बचना, सत्रों को बाँटार होना, गर्न-गर्न सेल फेंकने से पैदल सेना को विषटित करना, कुछ गौराजों का प्राकार के मुलों की तोड़ने के लिए प्रयत्नशील होना -- आदि का वर्णन उस प्रसंग में मिलता है <sup>२</sup> ।

स्मरकेतु के साथ किये गये युद्ध-वर्णन में वीर रस का आस्वादन होता है <sup>३</sup> । कुमुदेवर के साथ किए गए युद्ध के उपरान्त जब कज्राजुव के सेनानी जाराम से सौ रहे थे कि स्कास्म स्मरकेतु अपनी सेना के साथ कज्राजुव से युद्ध करने के लिए आ जाता है । उस समय काहली की ध्वनि, घोड़ों की खिखिनाहट, हाथियों की बिंघाड़, ~~छत्रों~~ <sup>आदि</sup> दलकों की ध्वनि, योद्धाजों की छद्मे के लिए उत्साहित करने लाती है । दोनों ओर से युद्ध छिड़ जाने पर

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ८२  
 २- " " " ८३  
 ३- " " " ८४-८५

शनिवारों का एक-दूसरे को मारने के लिए उधर-उधर दौड़ना, विविध शर्तों का फेंकना, शरीर को रगड़ से हाथियों का घंटा कना, क हाथियों का भा  
 श्रुतों हाथियों से लड़ाई करना, गोरों को मगद से इतमित शर्तों का  
 हिनहिनाना, रथों को बसराष्ट, रथों से फेंकते हुए बाणों को लकनाष्ट,  
 वेतारों के फीलाऊ, राधानों का लकान, रथनदों को प्रवाहात्मक धनि,  
 बाव-धोम में उठने वाली स्मर-वेदों को श्रावाज, वेतारों के दौड़ने से ऊपर  
 उठी अपार धूल जाति कुछ के मंडर का को उपभिक्ष कर देता है ।

दोनों के हत भयंकर युद्ध में एक-दूसरे को लकनार का भा धणित  
 है । एक-दूसरे को वीरता को प्रशंसा भी होता है किन्तु कोई भी जाने को  
 कितने प्रकार हीन नहीं सम्भला है । स्मरवैतु की अधीशिक्षित बाणों में  
 कज्रायुध को प्रशंसा तथा वनी वीरता दोनों ही नष्ट है --

जातश्च सहस्र संख्ये<sup>धनि</sup> विभिः सह शोणमः । तु जनित्मैवविधं  
 केनाप्यपरेण कौतुक्य । अतिवाधि<sup>धनि</sup> बपुरः करुणितकामुकेण काल स्तावान् ।  
 तदेतर्हि कृत्वा मनः गधि<sup>धनि</sup> नमानयानं प्रहरत्सर्वात्मना । विवेहि च स्वशक्त्या  
 मशात्मद, कात्मनी रसापेण<sup>धनि</sup> (व)मुच्यते ।

जपनी हार होती देत कज्रायुध दिव्य जंगुडी के प्रताप से उसकी  
 जीतना चाहता है तो स्मरवैतु कह उठता है --

रे रे दुरात्मद ! दुर्गुहीतयनुविधामदाभ्रातः<sup>गा</sup> विष्णु<sup>गा</sup>पम,  
 कथान कापनाक्रमगुती<sup>गा</sup> यथान् । अस्थान स्व किं हृष्यति । मरुय मरुम<sup>गा</sup>मि  
 संग्रति शस्त्रविनाकीशर्य ।

स्मरवैतु सेनानियों एवं रथों के नष्ट हो जाने पर भी उसी  
 उत्साह के साथ भूमि में उतर कर लकनार लेकर युद्ध करता है । जामने जाते  
 हुए कज्रायुध को देखकर ज्ञोय से अपने जीठ काटता है, मनुष्य को लेकर उते  
 बाणों से शिष्ट करने लगता है ।

कविने इन दोनों पात्रों का लड़ाई में कर्म को लड़ाई दिखायी है ।



दुःखों के दूर होने पर समस्त दुःखों को अपने पादों में धरकर भाँड़ में  
गिरा करता है। अतः शत्रु हार करने के लिए यत्न है ।

यह उद्गार का अन्त कवि ने अद्भुत ढंग से किया है । अन्त में  
दुःख को गिरा देने के लिए चारों ओर में धरकर धरने के लिए यत्न है । अतः शत्रु हार करने के लिए यत्न है । अतः शत्रु हार करने के लिए यत्न है । अतः शत्रु हार करने के लिए यत्न है ।

यह प्रकाश कवि ने दोनों ओर के चार यौगिकों का अन्तःसुषुप्त  
क्रियाओं का वर्णन करते हुए रस का ना वाचन कराया है । राजा मेघवाहन के  
दान वार में धर्म में भाँड़ रस का भ्रम भिन्न है । पैताल को जाना  
जाने के लिए धर्म पर धिमा किया परमानन्द के रस के लिए, अन्त  
वस्तु प्राप्त करने पर भाँड़ अद्भुत शक्ति के कारण तलवार नहीं चलता है जो  
यह निर्दोषता है तलवार को धर्म पर रखने लाता है ?

कवि ने कामल रस का चित्रण अद्भुत-भूमि में विशेष रूप से न करके  
राजा मेघवाहन के प्राण जाने वाले पैताल के वर्णन में किया है ।

कवि ने उसके अद्भुत, उल्टी वाली शक्ति, उसके दाँत के अतिरिक्त  
उल्टा कामल रस लीला है । पैरों में हड्डियों के तुर्रों का होना, जार्यों का  
धिराओं का अष्टरूप से दिलायी देना, जानुजाल में दाँतों मांस का होना,  
मन्त्र में गाढ़े रस से जाड़े शार्दूल की का गहना, लाल रोमावधियों से उल्टा  
हृषिकेश पाताल के सदृश लाना, एक हाथ में रस से बना तरङ्गाल और दूसरे  
हाथ में भोजन तलवार को लेना, काट-काट कर हड्डियों को खाना, ऊपर,  
नीचे, जाल-जाल जीम को घुमा-घुमा कर लाता है, निडुर, हॉट आदि के मांस  
का खाना, उसकी जलती हुई पीली-पीली दाँत आदि का वर्णन कामल रस के  
निर्वाह में अद्वितीय सौन्दर्य ला देता है ?

कामल रस के अतिरिक्त इस काव्य में भयानक रस का चित्रण  
भी मिलता है । अद्भुत तथा समस्त के मार्ग में पड़ा अद्भुत का भयानक वर्णन  
करके कवि ने भयानक रस का आभास कराने का प्रयत्न किया है किन्तु उत्तम

१- तिलकमंथरी पृष्ठ ५३

२- ,, ,, ४३-४६



बाद मुनि<sup>2</sup> की ही जाने पर उन्का काव्य<sup>3</sup> बन्धुसुन्दरी नामक दिव्य गराँवर में हुंका<sup>4</sup> वहाँ पर स्मरकेतु का पत्र मिलना, मलयसुन्दरी जिस का भवन में अपने को देखता है उन्का काव्यक नामक होना, मलयसुन्दरी ने कहे ही कि को' यहाँ का नहीं है जो हरिबाहन का दुःखता उ के क्युर्गो है कहे तो स्काए चुक का उपविगत होना आदि का काव्य का वाचनीयक घटनाएँ हैं जिनका रहना बाद में सुलता है ।

काव्य में वैराग्यमय उद्देश्यों का भाग्य का विदम्बना, स्वर्गात्मिका प्रकृता आदि का वर्णन अत्यन्त है किन्तु उन्हें शास्त्र रस को शीट में नहीं रखा जा सकता । गार्तों में न के वैराग्य विरहभावों अप में चिकित्त हुआ है और न उ के बाद होने वाले अनुभावों और संवारा भावों का वर्णन है, केवल कवि के विचार है । वैराग्यमय अथवा दार्शनिक उद्देश्यों को कवि ने काव्य में ध्यान दिया है पर कवि का उद्देश्य शक्ति रस को अभिव्यक्ति कराना बिल्कुल नहीं है । इस काव्य में हास्यरस नहीं है किन्तु कहीं-कहीं पर हास्य का पुट जा गया है । भास्व-बंधन ने मुक्त मलयसुन्दरी को देखकर तथा स्मरकेतु को उन्का त्रिप पात्र जानकर बन्धुसुन्दरी हास्य जोड़कर कहती है कि मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ इस पर स्मरकेतु कहता है कि मेरे पास तो कुछ है नहीं अपनी सखी से माँगो । उस पर बन्धुसुन्दरी हास्य में कहती है --

कुमार, कल्पान्त हास्यमय एव मिथ्यातरे निवारयति माम् ।  
 अनाकुलीकित्तु । न मयायामि<sup>१</sup>कद एवतेपुरः प्राप्तिर्जलिः । इदं मयाभिप्रेतम्...

वैमानिक मुनि तथा महिषी मदिरा और राजलक्ष्मी एवं राजा मेघवाहन के बीच कवि ने चरित्रास को ध्यान दिया है किन्तु वहाँ रस नहीं कहा जा सकता । बालक हरिबाहन के अन्नप्राशन, बलने का प्रारम्भ करवाने लोगों का उसे अपने पास बुलाकर चिपटाने, बलने समय उनकी रक्षा हेतु उनके

१- तिलकमंजरी पृष्ठ ३०७

- २- " " " ३३६
- ३- " " " ३३६
- ४- " " " ३४८
- ५- " " " ३५८
- ६- " " " ३२

गोहं-न के अन्तःपुर का विकाराओं के चलने, झाड़ावालों प्रसन्नता एवं कृषि नदियं के तटों पर घूमने शक्ति का कवि ने वर्णन किया है किन्तु उर्म विचित्रविधि का कार्य नहीं होने के कारण का अन्तःपुर का कोटि में नहीं पहुंचा है ।

स्त्री के अतिरिक्त भावों को भी कवि ने उत्कृष्ट अभिव्यंजना का है । इस काव्य में भावना अथवा अर्थों का माहुरा में मिली है । इस वर्णन में मलयसुन्दरी का लज्जा का वर्णन अपने अंग का लक्षण एवं नवान है । मलयसुन्दरी का भां गन्धर्वदत्त विचित्रवीर्य का पुत्र था जो नगरविभक्त के कारण अपने बन्धु वर्गों से अलग गया था । ज्योतिषज्ञों ने पुत्रा के विवाह के अन्तर पर गन्धर्वदत्त का लाले बन्धुओं से भेंट होना बताया था । मलयसुन्दरी विचित्रवीर्य से अविष्टता का देता है किन्तु जब उसे अपने विवाह के विषय में बताया होता है तो 'लज्जाविभक्त्यादांत' कह कर चुप हो जाती है । विचित्रवीर्य पुनः 'किमिति' के बारे में पूछता है तो मलयसुन्दरी तात, तन्मिन्दाणे मनात्प्रमानोवात्मसिद्धे' कह कर बहाना कर देती है और लज्जावत्त बताती हुई नहीं है । विचित्रवीर्य का मंत्रा की मंत्र मलयसुन्दरी के भावों को जानकर यथार्थ बात विचित्रवीर्य से कह देता है । विचित्रवीर्य पुनः मलयसुन्दरी से पूछता है तब भी वह कुछ नहीं बहती केवल मुत्त मीमा करके भूमि कुरीदने लगती है । जब कितो प्रकार विचित्रवीर्य उसके मुत्त से इस बात की पुनः किना जानता नहीं तो मलयसुन्दरी केवल बहती ही बहती है -- 'तात, कथितेवार्येण सर्वं प्रयावर्षितम्

इसी प्रसंग में मलयसुन्दरी द्वारा प्रस्तुत किये गये नृत्य कर्म की विचित्रवीर्य द्वारा उसकी प्रशंसा किए जाने पर भी मलयसुन्दरी का लज्जा में भूमि कुरीदना वर्णित है किन्तु वह भाव को कोटि पर नहीं पहुंच पाया है ।

विचित्रवीर्य के लोभ को भी कवि ने अलात्मक अंग से प्रस्तुत किया है । मलयसुन्दरी से यह बात होने पर कि गन्धर्वदत्त का पिता 'तामस' है (जब कि उसका पिता विधावर्य का राजा विचित्रवीर्य था ) उसे अत्यन्त

- 
- १- तिलकमंजरी पृष्ठ ७८
  - २- " " " २७३
  - ३- " " " २७३
  - ४- " " " २७३
  - ५- " " " २७०

दुःख हीन है । जो दुःख से उन्मुक्त हो वा अरुण भाव विध्वंसित कानों से भाव है --

जाने, दुर्वास्तव्या दुःखदावात्त्रिदशम्य भवति वा एव विरात्सुख्य-  
जन्मा भवत् कामन्तराहं संशोभ्य वाफ्रमपा नकरुणम विधिना समुमुदुतगतक-  
व्य मे मन्दभावा <sup>मा</sup> ~~म~~ न दः ।

वह बार-बार जानने यह कर ही मलयसुन्दरी से बातचीत करता है -- वही, दुष्टात्पत्ता नृं वाताः ।

मलयसुन्दरी का मया मलयसुन्दरी का सपनेभाव भाव वास्तुदृष्ट जगत्संशोभ्य है । पहले तो दुर्वास्तव्य के पीछर में गल्ल से क्या मलयसुन्दरी को देखकर ही करी क्यक का बार-बार के खिलाफ करती है किन्तु जैसे ही उसे मलयसुन्दरी को रोमने के लिए मया विख्याता दुर्ग मलयसुन्दरी को देखा है की ही वह क्रोध से पागल-गी हो जाती है । उके अशोभित्त वाच्यो में क्रोध और दुःख दोनों का सम्मिश्रण है --

भृगुवारिके, विरय । कि वारामि देवेन वारिता । विरलाह्य-  
प्रभृतिरोक्ताव । जनाकुलाग्रभायव साभिनेत्रमके । जन्मिन्ने वाहकारिकेऽथापि  
कः प्रतिबन्धः, प्र इति रोषाद्विषीदीये दिगुणमागुर्माणवाप्परुह गलानिर्घ-  
वागमगदगदा वा समुन्मुक्तमुञ्जाराकृन्दा.... ।

कजासुव के चंचल से बचने के लिए मलयसुन्दरी जारों का भाँति मृत्यु का निरक्य करके घर से बाहर निकलती है । उस समय उसका चिन्तित का विविध भावों से परिपूर्ण कारुणिक वपेन कवि ने किया है । क्या वह लोगों के देखने की शंका से मार्ग को छोड़कर दुधरे मार्ग पर चलती क्यो उसे पीछे आते हुए परिजनों की शंका होती, बिट्ठों में कपड़ा फेंक जाने उसे गलियों द्वारा पकड़े जाने का भ्रम होना, क्यो लोगों की दृष्टि से बचने के लिए कगाड़ियों में छिप जाती, <sup>और कभी</sup> ~~वपेन~~ पद-बाप से ही क्यो-क्यो भय होने लगता ।

- १- विष्कर्मजरी पृष्ठ २७१
- २- " " " २७२
- ३- " " " ३०६
- ४- " " " ३०३

समवेत ही निम्नो पात्र और जो काव्य समझ कर मलयकुन्दरी के विविध भावों का संकलन करके कवि ने भावशक्तता का वाचनशक्ता का है ।

इस प्रकार इस काव्य में विविध कथाओं को जटिलता रहने पर भी रसों एवं भावों का सम्यक् निरूपण होने से एक प्रतिपाद्य परतता का वर्ण है जिसे मास्त्रक छोड़े जाय परिसर करो पर भा पाठक आनन्द का अनुभव करता है ।

मञ्जिन्तामणि में रसों का निरूपण

मञ्जिन्तामणि में कवि ने जैन धर्म के सिद्धान्तों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया है , कर्त्तों का प्रधानता, भक्तिशक्तता, आचारिक वैधर्मों के प्रति विरक्ति, तीव्रता, तीव्रता, केवर्ग , मानसतन्त्र तथा राजकुमारी का निन्दा आदि विशेषरूप से वर्णित है । मुक्ति की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है-- कवि ने आर्यपर के चरित के माध्यम से बताया है । वाचिक उम्ब का नाम इसीसे 'मुक्ति शीलम्बौनानैकादशी उम्बः' दिया है । अतः इस दृष्टि से इस काव्य में शान्त रस का प्रधानता देखा जा सकता है । यद्यपि इस रस के विषय में बहुत वाद-विवाद है और कभी कभी यह अनुश्रवण का विषय का हुआ है किन्तु आनन्दशक्ति, धर्मनिरूपण, मम्मट और विश्वनाथ जैसे संस्कृत-साहित्य के शिरोमणि आचार्य इस रस को लग में किसी प्रकार का संदेह नहीं रखते । इन आचार्यों की दृष्टि<sup>से</sup> इस रस का व्यापि भाव 'श्म' या निर्वेद होता है । इस काव्य में इस प्रकार के उच्छ्वस हैं और यत्र तत्र ज्ञान की बातें मरी हैं ।

जब रानी को देखें गद न्यून से पुत्र की प्राप्ति और राजा सत्यंवर की मृत्यु का पता चलता है तो वह शोक से विह्वल हो जाता है । राजा को भी शोक होता है किन्तु भक्तिशक्तता की असीम शक्ति के समझ अपने को असमर्थ पाकर रानी को आश्रय देने लगता है<sup>२</sup> ।

काष्ठांगार के साथ युद्ध करते-करते सत्यंवर को अकामाद वैराग्य हो जाता है और वह अस्त्रों को छोड़ देता है । उसका निम्नलिखित पद्य वैराग्य

१- तिलकमञ्जरी पृष्ठ ३३६

२- ५५ पं० वि० , १६

भावों से जोतप्रोत है --

विषगात्रादीषोऽयं स्वयं विषाशुतः ।

आंग्रं वा विषप्रत्ये मुंवात्पन्विषोऽकृत्वात् ॥

विनाशर लोक में लौकपाल नामक राजा को वर्षाकाल में बाढ़ के एक टुकड़े को क्षणभंगुरता देखकर वैराग्य हो जाता है । सांसारिक वैभवों को जल के बुलुलुने के समान देखने लगता है, अहित का दुःख संसारियों को पुण्य के ज्ञान से नष्ट होते हुए उपाय प्रचार करने लगता है जैसे बुधा के नाशे अज्ञान का गढ़ पत्तों को राशि वायु के प्रकल भोकोर्को से खर-उखर किर कर नष्ट हो जाता है, वह सुखावस्था को धातक, जीवन को नखर तथा आई हुई वस्तु का शाना निन्वय है -- इस प्रकार जीके लगता है । इस प्रकार के विचार से उठते ही वह गार्ह-धूम-जीवन से विरक्त होकर तपस्या करने लग देता है ?

इस घटना में शान्त-रस विभाव, सुभाव और संसारिभाव से उष्ट होकर अभिव्यक्ति हो रहा है -- बालम्बन बाढ़ का टुकड़ा है, सुभाव-संसार को क्षणभंगुर यदि समझना है, अभिवारा-तप निर्वेद तथा ग्लानि है तथा अथाविभाव वैराग्यजनित निर्वेद है ।

जोर्बधर को माता विजया, वैश्वपति गंधोत्कट तथा उज्ज्वल पत्नी पुनन्दा अन्त में वैराग्य के कारण ही संसार से मोह छोड़ कर तपस्या करने चले जाते हैं । जोर्बधर को भी अन्त में जब अपने पूर्वजन्म का कुतान्त पता चल जाता है तो संसार को मिथ्या समझ कर अपने जीवन को धार्क करने के लिए तप करने के लिए तत्पर हो जाता है और अपनी पत्नियों को भी समुचित आदेश देकर उन्हें भी तप के लिए तैयार करता है । उनके उपदेशों में जोर्बधर के निर्वेद जित्त इस की अभिव्यक्ति होती है ।

इसी प्रकार शरीर की क्षणभंगुरता का उपदेश जोर्बधर ने क्रमशः ही छोड़कर जाते समय रास्ते में भिरी विनाशर की कामुक कन्या को दिया है

१- ग० वि० पृष्ठ २७

२- " " ३७

३- " " १६५-६६

जिसे जाँवधर का शरीर के प्रति विरक्ति परिलक्षित होता है<sup>२</sup>।

जब विजाधर कन्या की प्रणय-प्रार्थना तथा उस कन्या में अमृत उसे दृढ़ते हुए उसके प्रणयों की देकर जाँवधर के मन में राग विषयक जो भाव उठे है उनका बड़ा ही स्तब्ध विनाश उनका निम्न पंक्तिमें देखा जा सकता है--

ततः सखु रागपरवशी लीरः - बहुलं स्वशोभं च विभवं च विभवं च शीर्य  
 क्लीर्य च योरुषं च वेदामयेकवद खं गुण्य दा काय्यव्युपगच्छति । रागा-  
 न्यो ह्यसिद्धेन्द्रियेण तद्वदन्तादन्थापि नानन्वः ।.... ।

जाँवधर एवं जाँवधर की भाँति वेद-आमारी माँ मुड़ में सुखान  
 जा जाने से आकुरु यात्रियों की सम्भ्रानता है तथा माँय की विरक्ता पर  
 गय कुछ ही देकर उदासन होकर छे जाने के लिए कहता है और उगी में वह  
 शान्ति देलता है --

संसारारमावोड्यमहो साक्षात्कृतोऽपुना ।  
 यत्माद न्यदुपक्रान्तमन्दापतितं पुनः ॥<sup>३</sup>

इस प्रकार संसार को साधनमुस्ता, विषयों के प्रति उदासीनता,  
 दार्शनिक उत्तर्कों की विवेचना, जैन धर्म के विशेष सिद्धान्तों का निष्पण आदि  
 उस काव्य के प्रायः सभी उत्तर्कों में है किन्तु प्रथम और द्वितीय उत्तर्क में इन  
 विषयों की विवेचना अतीतकृत बहुत अधिक है । यह काव्य दार्शनिक काव्य  
 होने के कारण शान्तरसप्रधान ही माना जायगा । दूसरे जैसा कि ऊपर देल  
 चुके हैं कि इस काव्य में जितने भी उपदेश दिए गए हैं वे सब वैराग्य जनित  
 ही हैं । धनगल की तिलकंजरी में भी यद्यपि जैसी प्रकार की दार्शनिक बातें  
 मिलेंगी किन्तु इस काव्य में किसी भी वैराग्य नहीं हुआ है । जर्म प्रेम की  
 ही कहानी है किन्तु इस काव्य में कवि के इस <sup>कथन</sup> -- सर्वथा काष्ठांगरायते करशात्ता  
 प्रष्टफलः शास्त्रमृगः । वस्मजो नूनमच्छीटिततत्फलः स वनपालः । पलं तु  
 नन्मिन भोगायते ॥४॥ -- से उसके काव्य लिखने का उद्देश्य स्पष्ट ही जाता है

- |    |              |         |
|----|--------------|---------|
| १- | ग० वि० पृष्ठ | १६५     |
| २- | ॥ ॥          | १०६-११० |
| ३- | ॥ ॥          | ५८      |
| ४- | ॥ ॥          | १५८     |





काव्य ने हाथों के बजाए पड़ने के का कारण जोरदार ही जानकर काष्ठांगार के क्रोध का वर्णन किया है किन्तु वहाँ यह क्रोध-भावसे दशा को प्राप्त नहीं कर सका अभिव्यक्ति का शक्ति पर ही फुल्ल कर रहा है । यद्यपि वहाँ पर भी उल्लेख है, भाषण आकृति तथा विस्तृत प्रकृति का वर्णन जलकारों के साथ है ।

काष्ठांगार द्वारा सत्यधर को बंध को जाना मिलने पर सत्यधर के मित्रों के क्रोध-वर्णन में भी वही अंगार सद्गुण आँसों का लाल होना, स्तंभ बल्य करना, शरीर को भयावह बना लेना, शीतों का काटना, युद्ध के लिए शस्त्रों का ले लेना वर्णन किया है । किन्तु यह वर्णन सौंदर्य का वर्णन कराना है और न भावशक्ति पर प्रवृत्तता है । अन्य उद्धरणों में भी ये सब बातें वर्णित हैं किन्तु वे अगुटे टंग से हैं ।

वीर रस का निरूपण युद्ध-वर्णन के प्रसंग में अधिकतम हुआ है किन्तु सर्वत्र कवि को सफलता नहीं मिली है । काष्ठांगार के घेरे डालने को बात सुनकर सत्यधर क्रोध से पागल हो जाना है । वह अपनी व्याकुल महिषी की मदुर संत पर बैठा कर कलम गिजवा देता है और स्वयं हाथ में तलवार लेकर युद्ध के लिए निकल पड़ता है । विपक्षियों की उस समय कैसी ही दशा हो जाती है कैसी सिंह को देखकर हाथों के बल्लों की । यद्यपि कवि ने यहाँ राजा सत्यधर द्वारा हाथियों का मस्तक काटना , रथों का तोड़ डालना, योद्धाओं की भुजाओं का काट देना, अश्व सेना को रक्षित करना आदि का उल्लेख किया है किन्तु पाठक उससे वीर रस का आस्वादन नहीं कर पाता ।

सर्वरों द्वारा <sup>जाये</sup> सत्यधर के बुरा लिये जाने पर काष्ठांगार सर्वरों से युद्ध करता है । उस युद्ध-वर्णन में दोनों ओर से उत्साह दिखाया गया है । दोनों ओर से होने वाले भीषण कौलाहल, वसुध की टंकार सेनाधियों का गिरना

- 
- १- गार्धो पृष्ठ ८५
  - २- ,, ,, ११६
  - ३- ,, ,, २५-२६

निष्क्रीयता से भासे बालों का प्रान्त होना, हाथियों के मदकार के भूमि का निस्त होना, रत्न से हाथियों का लक्षण होना, किलब के पशुधर विभिन्न का छूटना, पृथ्वी का रक्तान होना-- यदि रात्रि के वीर रत्न का अभिव्यंजना से साता सुंजाते हैं । यदि <sup>ने</sup> क रत्न के निगण के अस्तु ही कार्य साता कहै रत्न असायी है ।

गन्धोक्तन से जर्बंवर को रत्न जात कर जब जर्बंवर विताह कर लेता है तब काष्ठांगार उल्ले <sup>युद्ध</sup> करने के लिए नीतार हो जाता है । उर युद्ध के वर्णन में यदि ने वीर रत्न का अभिव्यंजना का है । तथ्याओं की कक, हाथियों का मजक फटना, गोलियों का निरस्तार मसा, उल्ले गले से रत्न बचना, पशुधरों का टंकार, गेता द्वारा उड़ाई गई धुठि से आकाश का आच्छ होना, जारों और बायों का हा थियायीं देना, गेताओं का गोलारक, कन्धों का गिरना आदि युद्ध के प्रतापन <sup>रूप</sup> को बताते हैं । बाध-बाध में जारा हुआ बाधल वर्णन वीर रत्न का असाय हो जाता है ।

दुष्ट हाथी के वीमार गड़े के कारण काष्ठांगार जर्बंवर को जाधित पकड़ लाने के लिए गोलियों को आशा देता है । वे अब जानर उनके पिता गन्धोक्तन के घर को घेर लेते हैं । उले युद्ध हो वीर गेता का भांति जर्बंवर उलो युद्ध करने के लिए निष्ठ पड़ता है । उला वर्णन एक पंक्ति में किया है किन्तु उलो में कवि ने उत्साह को भाव कोटि में पड़वा दिया है --

गन्धोक्तनः जगुहान्निर्गत्य निरवधिरौषप्ररः केतरीव हरिण-  
 पूर्ण तरणिश्चक्रः रतीमं दावदहन इव वनतरुषण्डं प्रलयपवन इव पर्वतनिबलं  
 किरिकुम इव कवलीकाननं तलाणेन क्षापयित्वात्मजिपुतागतशेषं <sup>बलप्रभत</sup>

विशेषतः गोविन्द को कन्या लक्षणा के स्वयंवर के उपरान्त काष्ठांगार और जर्बंवर के बीच होने वाले युद्ध के वर्णन में वीर रत्न का आस्वादन किया जा सकता है । दोनों ओर से युद्ध को होने वाली तथ्या

- १- ग०वि० पृष्ठ ४८-४९
- २- " " " १२०-१२१
- ३- " " " ८५

वर्णित है । लम्बा रोश, पीठ रोश, खुर्चारी आदि शत्रु लेकर युद्ध के लिए  
 कटिबद्ध हो जाते हैं, बड़ा बूढ़ रसे जाते हैं, जीवन के प्रति मोह न रखकर ख-  
 पूरों को नारसे का हो योद्धा स्वयं का लेते हैं, खुर्चारी खुर्चारी से, पीठ  
 रोश (निष्पादिभिः) पीठ रोश से, रस पर चढ़े हुए सैनिक रस पर चढ़े हुए  
 सैनिकों से कत्तान युद्ध करते हैं, सैनिकों का दौड़-धूप से उठता कुठ से चारों  
 ओर केंद्रित हो जाता है, भाग्य आदि शत्रुओं से शत्रुओं के पट जाने से रक्त  
 का नदी बनने लगता है, दोनों ओर से सैनिकों का नाश होने लगता है, युद्ध  
 का समाप्तन परिस्थिति में निर्भीक जावंधर काष्ठांगार को उल्लासते हुए  
 युद्ध के मैदान में आ जाता है । उसके वीर रस को देखकर काष्ठांगार को सैनिक  
 का भाव हो जाता है, काष्ठांगार अपना सैनिकी शान्त करता है। एक बार  
 काष्ठांगार होकर जावंधर के भाग्य जाकर जामा मंगला है किन्तु जावंधर के जामा  
 कर देने पर भी वह अपनी भावत के वशीभूत होने के कारण पुनः जावंधर को  
 युद्ध के लिए उल्लासता है । परिणाम यह होता है कि जन्म में काष्ठांगार नाश  
 पाता जाता है और विजय जावंधर की होती है ।

इस प्रसंग में गया हुआ एक केंद्रित वीर रस की अभिव्यंजना में  
 सौम्य योग देता है । रक्त का नदी से एक बांध कर जो सोमत्स वर्णन  
 सगि ने किया है वह भी वीर रस की अभिव्यंजना में सहायक है ।

किस प्रकार सोमत्स रस वीर रस का पोषक होकर आया है वैसे ही वह  
 नरकवाह के भयानक वर्णन के पोषक के रूप में आया है । यहाँ का भयानक  
 वर्णन भयानक रस दशा को प्राप्त कराता है । किस प्रकार वहाँ पूर्व कृत्यों  
 का अरण्य दिखाकर कौन से पण्ड दिये जा रहे हैं उसकी सजीव चित्र नेत्रों के  
 लक्ष्य आ जाता है और सहृदय भयानक रस का आस्वादन करने लगता है ।  
 अव्यक्तित्त हुए संस्थितों इस विषय में दृष्टव्य हैं --

१- ग० वि० पृष्ठ १४२-१४४  
 २- " " " १४३



ने विशारं गुरुं उद्योगं, ज्वार धन दिया जाता कि उ के हाथों में न गया कर भूमि पर गिर पड़े, अश्विषाड होते, गुरु देवताओं को वृक्षों गुणा करता, देवः मविष्मताणां करते कर सब दूर ली गया । पुत्र का जन्म भी हुआ तो अभिमान में जो राता गिज्या को और भा विश्वक करता है । ज्वार को अभिमानों में जो नै विज्या का जन्म दे दिया है । एक और जाने को विश्वकारता में । क्या वास्तव्यता करने को जीवता है तो कभी नै के द्वारा ज्वार को अभिमानों को राता करना कभी अभिमानों में --

अथमातृक फाविशारणभावांमिष्कप्रतिष्ठि मननुतुनपुष्पविदुःसं  
विधावकनिं विदोप्यन्त्या न मे प्राणा प्रपान्ति । किमिह करोमि ।  
विं वा उवाहरामि । यदि स्वजांमि जाविं जाविनेः भववनलंनजन्मा महान्दो

जार्धर द्वारा दृष्ट उद्योग वाता विज्या के वर्णन में कवि ने उका दातीय स्वस्था का विवण किया है किन्तु वह रस क्या को नहीं पहुँच पाता ।

जार्धर ज्वार शब्दों के वाच होने वाले युग के उत्तरान्त गोप युवतियों का विलाप दिखाया गया है जिसे यथाःनत का हाथ से पाटना, जोरों से रोना, माँ का वास्तव्य में नै जब का जाने से विपनाता, जानों को बन्द कर लेना, दूना देना जाने के कारण नैत्रों को बन्द कर लेना, निरन्तर लड़ुओं का प्रभावित होना, बालों का किरना, वस्त्रों का कुशरित होना, कास्मिक करुण बालों का करना जादि वर्णित है किन्तु शैली को दुर्हमा ~~भै~~ से उरके (जावादन में बाधा पड़ती है । रसानुसूत शैली नहीं है ।

अन्य कवियों की भांति उन्होंने भी अपने काव्य में शृंगार रस को उपाय दिया है । जठ कन्याओं के साथ जार्धर के विवाह का वर्णन कवि ने किया है किन्तु उस रस को सफल अभिमानों नहीं कर पाये हैं । उन्होंने शृंगार के संयोगपदा के वर्णन में इस रस को जीवा देना है । जो रस में वर्णित वर्ण्य-विषयों का भी मविस्तार वर्णन कवि ने किया है । <sup>जार्धर</sup> ~~जार्धर~~ का वर्णन दो

- १- ११ ११ २७-२९  
२- ११ ११ २९  
३- ११ ११ २२०-२१  
४- ११ ११ ४९-५०

आर हुआ है। गन्धर्वदत्ता के विचार के बाद बालीत्व में प्रकृत का विकास  
 का है। गन्धर्वदत्ता को कथान में अंगार रा के भूमिका प्रकृति के माध्यम से  
 बांधी गयी है। उनके विचार के लिए स्वयं-अपना राता जाता है, देश-देश से  
 राजकुमार आते हैं, उन सब गन्धर्वदत्ता का शोभा, वाणान-नयन का सुभभा  
 उत्तम का वान करता है। उन सब गन्धर्वदत्ता को देखकर होने वाले उनके  
 मनोभावों एवं उनके वाणानावादन के अतिरिक्त उनके नैराश एवं वाणानावादन के  
 लिए प्रकृतगत होने पर मिली कथकला का वर्णन उस प्रकृत को शरव बताया  
 है। कवि ने वान पर खुद-नखा रात दिखाता है। आ: वहाँ एक यह प्रकृत  
 रागा का कथा का किन्तु एक गन्धर्वदत्ता और जावंधर का प्रकृत जाता है  
 जो वहाँ प्रकृत अंगार रा का ही जाता है किन्तु उनके विशेष कथकला उन्हें  
 मिली है -- ऐसा तबों का का कथा है। क्योंकि जावंधर को देख कर उठने  
 वाले गन्धर्वदत्ता के मनोभावों के वर्णन में कवि ने विशेष उल्लास नहीं दिखाता  
 है, राह बल्लो वर्णन कर दिया है। यह केवल का जीवता है -- वहाँ  
 लक्ष्यो भविः पराज्य एव जतान्मे परं धेयः १।

गन्धर्वदत्ता के मनोभावों का कवि ने जतना भा वर्णन किया है  
 जावंधर के मनोभावों का तो उतना भा नहीं है। यद्यपि वह गन्धर्वदत्ता को  
 पाने के लिए वार गौदाजों से लड़ा भी था। जावंधर के गन्धर्वदत्ता के प्रति  
 विशेष गये मनोभावों का तब गौड़ा-ता कथकल वर्णन कर दिया है जब नन्दाहु  
 उसे गन्धर्वदत्ता को चिढ़ता देता है और उसे पढ़कर जावंधर दुःखित होता है।

गुण-माला की कहानी में भी अंगार रा की भूमिका बल्लो खु-वर्णन  
 द्वारा तैयार की गई है। इसीलिए इसका वर्णन कवि ने उदीपन रूप में किया  
 है। जावंधर इसी बीच लड़ गौड़ा देवने अपने नाशियों के साथ जाता है वहाँ  
 पर वह हाथी द्वारा बल्लो गुणमाला को देवता है और उसका राता हाथी से

- 
- १- गौर्वि० पृष्ठ ६२
  - २- " " ६४-६८
  - ३- " " ६९
  - ४- " " ११६-११७
  - ५- " " ७५

करता है। जो घटना एक-द्वारे की प्रेरणा से बांध देती है। यहाँ पर दोनों का वर्णन वर्णित है। गुणनामा जाने शुक को जर्बंदार का भाव जानने के लिए गेजल है तन्नावाय दोनों और के गुरुजनों का सुमति से उन दोनों का विवाह ही जाता है।

गुरुजनों का जो विप्रतम्भावना का विवण कवि ने किया है। यहाँ पर गुरुजनों गुणनामा का भाँति शुक को नहीं भेजती है अतिसु जर्बंदार कयं पुरुष का वैश्व धारणा पर गुरुजनों के भाव जानने के लिए जाता है और रामदेव के मन्दिर में बुद्धिपेण को गहना के उन दोनों का मिलन होता है<sup>२</sup>।

जोयनाह नानक राजा की कन्या के पद्मा के विवाह के दिन होने वाले प्रातःकाल का तथा लता मण्डल का वर्णन लदोपन का में करके संयोग शृंगार का वातावरण उपायित किया है<sup>३</sup>।

जोयनाह पद्मा और दोमकी दोनों को दुहूँ दिना के लिए होकर चले गए एक समय कवि ने दोनों को वियोगावस्था का वर्णन प्रायः एक-ना किया है। रतिगृह में दोनों विजुम्भण को गहना से जनी पति<sup>की</sup> जाता चाहती है किन्तु जो न देकर एकदम से उठकर उसे छोड़ देता है शिवाय कय वह कहीं नहीं दिखाई देते हैं तो विलाप करने लग जाती है। इस समय दोनों के बाल बिखरे हुए वर्णित हैं। दोनों का वियोगावस्था के वर्णन में अन्तर यह है कि पद्मा नेत्रों को बन्द किए हुए अपने हाथ की पति को छूने के लिए फैलाता है जब वह नहीं दिखायी देता है तो गुरुज उठ कर शमगृह के चारों ओर देखता है, विद्वन् होता है, धर-उपर नाकती है फिरती है, पृथ्वी पर पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब को जोयनाह समझ कर भूमि का स्पर्श करती है और अन्त में 'हास्ताग्नि' बहकर जोरों से विलाप करती है<sup>४</sup>।

और दोमकी जाकर धर-उपर घूम कर आसत परे शरीर से, पाँचों उंगलियों से चक्कों को पीकती हुई, नेत्रों को मलती हुई पति को छूती है और न मिलने पर

१- ग० वि० पृष्ठ ८१

२- " " १२५-१३१

३- " " ६४

४- " " ६७-६८



दुःखित हो गीतियों के कताव है । शरीर में कम्पन, नेत्रों में ज्वभारा, वदन में कवण, नासिका में निःश्वास मुख में परिवेदना एक साथ सम्मनन कर देते हैं जिसे वह यज्ञाङ्गित ही सुचिन्तित स्वीकर गिर मड़ता है<sup>२</sup> ।

क्षेमता का किशोरावस्था का वर्णन औपमायुत अधिद मर्न का चर्चा करता है ।

कवि ने उस रस के अन्तर्गत भावों को वा सुन्दर अभिव्यञ्जना का है जिसे काव्य में प्रकटा जा गे है । गोविन्द का पुत्रा उत्तमा है विवाह के लिए रचित स्वयंवर में शह राजार्यों के मनोभावों का ,गन्धर्वदा के स्वयंवर में जैसे हुए राजार्यों के मनोभावों ने अधिक सुन्दर ढंग से वर्णन किया है--  
 कौंसे कन्या का प्राप्ति न होने से अचिन्तित हो कौंसे घर पहुंचा जायगा उर विन्ता से श्राव है, कौंसे पुरोहित ने लक्ष्य-भेद का शुभ मुहूर्त पुरु रहा है, कौंसे अपने को सर्वशान्ता समझ कर कन्या की प्राप्ति में किशो प्रकार का तन्देह नहीं कर रहा है, कौंसे यंत्र देखकर उसके निर्माण करने वाले का प्रशंसा कर रहा है, कौंसे अपने को स्वयं आसयी पाकर कामास्फन में ही जीवन व्यजात करने में शौक प्रकट कर रहा है, कुछ तो कलायान यंत्र पर बड़े किन्तु उस पर गिरने से हास्य के विषय हो रहे हैं<sup>३</sup> आदि ।

कवि ने उस स्वयंवर-वर्णन में मण्डप का शोभा, राजार्यों और कन्या की शोभा, कन्या तथा उसको दीर्घा का देखकर उठने वाले भावों का वर्णन किया है ।

इसी प्रकार उत्तमा के विवाह की तैयारी में गीतियों के वाताङ्काम में उर्ग माव की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति देती जा सकती है --

मृगलीजने, मृगमदमाहर । प्रगाधिके, नाधुप्रसाधधर । लज्जाभववाले,  
 ताम्बूलवीटीविधौ । कुंगलीजने, नाथपितुमंगलं कुंभु म्यासकुम्भानानय ।  
 चित्रकर, प्रातिवेश्मचित्रादतिविचित्रं चित्रया । कर्पूरिके, क्यूरौकलजाशानि  
 श्रुत्य ।.... ।

- १- गीतियों पृष्ठ १०६-१०७
- २- " " " १४०
- ३- " " " १४६-५०

उन रत्नों के अतिरिक्त का काव्य में हा-शरणा भा जाता है । जावंधर का कृष्ण रत्नर सुरमंजरी के पाठ जाता, उनके राने का उंग, बीरजे का उंग हा-शरणा पुट देता है । सुरमंजरी कामदेव के मन्दिर में जाकर वन शक्ति वशु की प्राणता करता है और का मन्दिर में फाटे के हा-शरणा देता हुआ सुरमंजरी करता है -- " लब्धव्यमिति वरम् । " -- जाता हुनकर वरों पर वह वृद्ध का जग उंग सुरमंजरी जावंधर के रूप में देलता है ।

दुने का यौनि के उरुनि का पाठ जाता, जावंधर के रूप का जाता मिलने पर रणे जाकाश नाग में है जाना, राना विख्या का भुर-यंत्र पर केकर उकाशान में उरुता, फिर राजा का मृषु होने पर अज्ञान में 'मयुर' का शरणा उका भुंजा जाता जाना, जग मन्दिर के शर का जावंधर विवेक का श्रुति के तुल जाना, वैराग्य के प्रेरित होकर जिन देवता का पूजा करने पर उकाश शरणों का उपासित होकर श्रुति का, नरकादि यौनिओं का और उनके पूर्वजन्म का विवेकना करना, प्रसिद्धा के जानने जावंधर के उह कहने पर कि " मैं प्रवृद्धा लेता हूं " और जाकाश शरणों का होने कि 'स्तिमेतद्' जादि है ये उह यद्यपि जाश्रुतात्मक घटनायें हैं पर अद्भुत रस की श्रुति नहीं करती हैं ।

इस प्रकार यद्यपि उनके काव्य में कई रत्नों की ध्यान मिला है किन्तु प्रधान रस के अतिरिक्त रत्नों में उनके रंग रस-निष्पन्न में सफलता जीवाकाश अधिक मिली है । शरणा होने के नाते शृंगार-रस की अवश्य अपनाया किन्तु रस-दुस्ते के मनोभावों का सूक्ष्म वर्णन न होने के कारण का क्षेत्र में उन्हें विशेष प्रशंसनीय ध्यान नहीं मिल सका है ।

### वैमनालवरित में रत्नों का निष्पन्न--

रत्नों उन्देह नहीं है कि वामन भट्ट बाण ने अपने उह गज-काव्य में बाण का अनुकरण किया किन्तु रत्नों भी उन्देह नहीं किया जा सकता है कि उन्होंने पर्याप्त मात्रा में मौलिकता का परिचय दिया है । बाण की अनुकृति केवल उही रत्नों हैं यत्र तत्र कथावस्तु के प्रस्तुत करने के उंग में है अन्यथा उनका काव्य अविधान गज-काव्यों में श्रेष्ठ ध्यान प्राप्त किए हुए है । इस काव्य में

काव्य की भाँति काव्य-रसियों का जो विवाह हुआ है, पाठ का रसों का वर्णन कराने में यह काव्य जना किंप्र-मान रखा है। राजा वैम ने काव्य की प्रशंसा की दृष्टि से की है और उसके उष्ण वाणी ने ही है--

"सुजातल्लुभा कर्णितरिधं भृवाण भवताया ।  
अथयति विभुनन्मुवरितवीणानि नादनायुक्ते ॥<sup>१</sup>

अर्थात्, दृष्टि में इस काव्य के लिए परमानन्दक तत्त्व है जिसे और कवि का ध्यान देना प्रसन्न करेगा है<sup>२</sup>।

अतः कवि ने अपने काव्य की विविध रसों से बरस बनाने का चेष्टा का है। इस काव्य का नायक आकाश राजा वैमभूम है अतः उनके हाँ चरित का वर्णन होने के कारण प्रधान रस तीर का जाना किन्तु कवि ने उस राजा की पूर्ण वंशावली का वर्णन करते समय काम-गाल के पुत्र राजा प्रौल्ल के वर्णन-प्रसंग में धृतर रस के प्रति विशेष रुचि दिखायी है। अत्र कारण संभवतः धृतर रस का रस-राजत्व है। क्योंकि यहाँ कवि किना उस रस-वर्णन के अपने काव्य को खूब ही समझते हैं।

वाण को भाँति उन्होंने माँ उस रस के निरूपण के पूर्व उपर्युक्त सुमिका तैयार की है। इस रस के लिए खूर्वा में सबसे अधिक उदात्त खू कवियों ने अत्यन्त खू मानी है। उसी खू को उन्होंने भी ब्रम्हाया है<sup>३</sup>। उस खू के अतिरि हरिण का पाला करते हुए राजा प्रौल्ल जिस उपवन में पहुँचा था उस उपवन का तथा जिस सह्यार वृक्ष पर झूला गल कर तुन्साखट्ट को कन्या अनन्ता भूञ्ज भुल रही थी उस वृक्ष का<sup>४</sup> भी कवि ने तदनुकूल वर्णन किया है। जिस प्रकार

१- वैम० पृष्ठ २१०

२- काम स्व जाति किमला वाचो रसोक्ततां कथाति ।

काव्य-प्रसंगदृष्टेर्या मूलं कवि विधातुलोकन्य ॥३॥ वैम०

३- वैम० पृष्ठ १७-१६

४- " " २८

५- " " २८-३०

महाश्वेता पुण्डरीक के कान में लगा गारिजात का मंजरी का पुष्पान्ध से आकृष्ट होकर पुण्डरीक के लीन्दों पर नुग्ध होती है उसी प्रकार हम काव्य में राजाप्रौल को गीत से आकृष्ट होकर सन्ता के लीन्दों पर नुग्ध ही जाता है ।

यहाँ पर कवि ने राजा को देखकर होने वाली कन्या सन्ता को दशाब्ध उदात्त रूप में यहाँ की प्रकृति का वर्णन करते हुए रति-भाव को और पुष्टि की है । राजा के भी कुछ तात्त्विक-भाव वर्णित किए हैं । लगन में एक-दूसरे को मिलाकर कवि ने पुनःपुनः कन्या का चित्रण किया है । जब ये दोनों एक-दूसरे के लीन्दों पर नुग्ध गे तभी राजा को द्वारा परिचित विदूषक को जाननाद राजा प्रौल को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । इस समय कवि ने राजा प्रौल को विद्योत का बड़ा नार्मिक चित्रण किया है --

"कलांगिनीं वृक्षं कथमप्याकृष्य तत्पंगतं हृदयमपि कलादादाय, तदवयवलावण्या  
कलोकनं स्पृहां शिञ्चित्स्त्रीभ्यः, तादृशीं तस्याः शिञ्चितिमपि शिञ्चित् यिलिञ्च, तदा शीप-  
विदोपविलासमंगीरपि मनसि संयम्य..." ।

प्रौल के विद्योत-वर्णन में प्रकृति उसके विरह को और भी उदात्त करने लगी है । विदूषक को जाकर पुनः डौला-बिहार भूमि में जाने पर कन्या को न देखकर प्रौल का बड़ाह्त होना, उस कन्या के गण्डूष से शिञ्चित बहुत वृक्षा से ईर्ष्या करना, प्रकृति के उपादानों में सन्ता के अवयवों को देखना बताकर उसकी उन्माद अवस्था का, राजभवन में आकर कहीं शान्ति न मिलने पर उत्कण्ठित होकर शीप पर चढ़कर <sup>डौला-</sup>  $\frac{1}{x}$  - बिहार भूमि में जाने के लिए प्रातःकाल की प्रतीक्षा करना, विरहाग्नि से शरीर का मलिन हो जाना, दूसरे दिन डौली-बिहार भूमि में जाने पर भी कन्या के न मिलने पर रोह-रोह केरों का हो जाना, विधि को उलाहना देना, बन्द्रीगालम्ब करना एवं मुच्छित होना आदि उसकी विद्योतावस्था के चित्रण में वर्णित है ।

दूसरे दिन सन्ता मण्डप में पहुँच कर जब राजा प्रौल कन्या को नहीं देखता है इसके विपरीत कन्या के विरह को जाने वाली शक्या को देखता है

जब यहाँ पर जो हुए विदूषक ३ हो देखा है तो उनका चिरह और भाव बड़ जाता है । यह कन्या के वियोग में जना भूला हुआ है कि उन्हें विक्रित किए को भा नहीं पहिचान जाता है अपितु विदूषक को पहिचानने के लिए दे देता है , क्योंकि विदूषक को चित्र देने के पहले उस चित्र को देखो समय जाता भायतासुमार भाग्यवर्ता पुष्पाँ से व्याख्या उनके चरोंर के सम्बन्ध में वर वेदविन्दु का, उभा निष्यदन्ता से (कन्या के) अवार्ता के प्रति श्वाग्रता का , अस्थान आचुरहने के कारण (कन्या के) नेत्रों से उनके हृदय पर गिरि गता हुंे हुए आँसुओं से विरहाग्नि के पुनसन्दल धारण करने का ताग भी प्रचार का कथा दक्षताई करता है ।

जब विदूषक चित्र में वर्णित युवक का वर्णन करते हुए कन्या कन्या के चिरह के विषय में जाता है तो प्रीरु का वियोग और भा बड़ जाता है । क्योंकि शश्या शदि के देने से उसे शशा संभ गया या किन्तु वह जानकर किया घटना विशेष से वह चित्र हूट गया है तो उका मिलो हुंे जाता भा जाता रहता है । यहाँ पर कवि ने उका मुर्च्छाविव्या का भा चित्रण किया है । विदूषक द्वारा उका शोभापचार करवाया है ।

राजा प्रीरु को मदनावस्था के वर्णन में कवि ने जो विदूषक के द्वारा विशेषणों का काड़ा लाा है उकी यहाँ कोई आवश्यकता न थी । वह उस प्रसंग में उपयुक्त भा नहीं बैठता है । उस समय कहे हुए विशेषण से लाते हैं जैसे कि कोई विवाह की बात चलाने निकला ही और उके गुणानुव ना रहा हो ।

इसके अतिरिक्त विदूषक से राजा ने दृष्ट कन्या एवं उका क्वलया का पुनः विस्तर के साथ वर्णन किया है जिसकी कोई आवश्यकता न थी । क्योंकि

- १- वैमभुवाळ० पृष्ठ ६६
- २- " " ६७
- ३- " " ६८
- ४- " " ६९
- ५- " " ७०
- ६- " " ४२-४६

दोनों स्थलों में एक-सा ही का वर्णन होने के अन्तर्गत पुनर्लिखित भी हो गया है, जो --

'मकरन्दविन्दुवर्षण शूभानुकम्पया वनलक्ष्म्या तत्कालाद्रिमायशिशिरोप-  
 नारिष विजमाना, कर्णवर्णकमलागन्ध ~~सुन्दरी~~ सुन्दरी चन्द्रा मधुकरेण कुमारी-  
 जना विजामपि प्रोपानुत्सुया कर्माभिराणैः सुदारुणोऽसौः स्रजः परिगुहस्ताभू-  
 त्ति श्रेयाणि मयत्र दुर्गे कर्णं च कम्पमाना ।'

'मदनशरणापमूर्च्छितवनार कुन्जमकरन्दवारिभिः शिबिता मलयमयनेन मधुकरणाव-  
 प्रसोष्मानेत नाभिः शरणाभिरभुजा ।'

भूछे पर भूछता कन्या को देकर राजा को मनःस्थिति का वर्णन कवि ने उसका आक्षेप नहीं किया जिसका अन्तर्गत का अर्थ (राजा को देकर होने वाला) निरव्यक्त है। उनके विभिन्न प्रकार के विकारों -- जाग्रत से जाँह फैलाकर देना, तन्मय एवं लम्पित होना, अन्य विकारों के प्रति तात्कालिक विरक्ति हो जाना, निःशवाणी का करना, लीनता, गिरि दुर्ग रत्नवत्त को मा न जानना अर्थात् सुख सुख ही जानना, श्वेद तथा पसीने का जानना, शमने राजा को देकर तरह-तरह का शिवाय -- कथा पुष्प का सुंफना, सहकार से करवाहिनो को मारना, श्वाहिका का बाध्य होना, कटाक फेंकना तथादि का वर्णन किया है। इसे अतिरिक्त उसका दयनीय अवस्था के विवरण में जो प्रकृति ताय देती है वह तो है हा ताय हा अन्तः के भावों को भी सुन्दर अभिव्यक्ता उस काव्य में मिलती है। कन्या स्वयं भूछे पर होने के कारण प्रे से ताय करती है किन्तु लप्या उसे पाँहें ताँकती है, वह राजा के पास पहुँचने को रुच्छा करती है, उसके शीन्दी से अनायास शिंका है, कामबाण के ताय को आह्वयता से उसके शीन्दी-सागर में डूब कर उस ताय को शान्त करना चाहती है, जाग्रत भी वायु से बँकट परलव लपो उंगलियाँ के भूछे से उसे उतारने का

- १- कै० पृष्ठ ३४
- २- ,, ,, ४६
- ३- ,, ,, ३३-३५

प्रयत्न करके उसका गलागा करवा वाहना है किन्तु लज्जा उसके गला गलाओं को रोक कर उसके नेत्रों को भुङ्कवा देता है<sup>१</sup>। उस पिछन के क्षण में आपसों लज्जा बाधक हो जाता है। उसना छोटे हुए भा वह कटावारी से राजा को भरी प्रहार से डेर लेता है। उसके नेत्रों को मुझारों का अप निम्नलिखित पंक्तिय में देना जा सकता है --

द्विधा

आदरमितृष्टमादी, <sup>द्विधा</sup> नमविलोकनपरै विवर्तितम्, अन्तरान्तरा  
 वर्येनदंकातिजस्यमतावालय अन्तरावकातिमदीभाणे सुवीडभासकमान्,  
 १-कव्यागिनि<sup>२</sup>सि मथि पुनरादिमानाणम्, <sup>३</sup>अर्थसोक्तिमःपाणमभूत् ।

कन्या का विधोष-वर्णन गृहदा-गृहदा काध्य है। राजा के वृत्तान्त से मनात सलियां उसे कन्यान्तःपुर में ले जाना चाहती है किन्तु उन्का मन राजा प्रौढ में आगत हो जाने के कारण ५ उन प्यान को छोड़ना नहीं चाहता। लेकिन सलियां भी उसे क्लेश ले हो जाता है उस समय प्रकृति उन्को कयतोव स्थिति के प्रति सहानुमति प्रकट कर उन वर्णन-प्रसंग को और भी रुचय बना देती है। छतारों फिर छिटा कर उसे ले जाने से मना करता है, वामभुजा किरण को अंगरियों से उन्के रोकता, कौमल कामदेव का आश्वासन करके उन्मुक्त वातावरण रचती है और प्रमर उन्को पुनः दर्शन का आश्वासन कान के पास जाकर देता है।

कन्यान्तःपुर में पहुँचते ही उन्को कयनाय अवस्था हो जाती है। उसे कौशल को डूक से -- मूर्ख राजकुमारो। तुम जाने प्रिय को छोड़ कर यहाँ क्यों पली आयो -- चिन्कारती हुई लाती जातः उन्के व्याकुल होकर विवश हो कनी उपधान (बिस्तर) पर लेटती जब वहाँ शान्ति न मिलती तो कनी गवाश का सिद्धिकियाँ को नाम हाथ से पकड़ कर सड़ा हो जाती, कनी हाथ पर गाल रखकर कुछ सोकने लाती और निरन्तर अनु बहाती रहती जिसे कि उन्के नेत्र ला हो जाते। राजा की भाँति उन्के विधोष में <sup>४</sup>चन्द्रोपास्य का वर्णन किया है।

- १- वैम० ३४-३६
- २- ,, ५३
- ३- ,, ७३
- ४- ,, ७४, ७५

कवि ने उनके विर-वर्णन का भाव वर्णन किया है। प्रारंभिक कवि  
 का कथ को जानते हैं किन्तु जन्मा है। उदाहरण में दुःख और उदाहरण है  
 किन्तु उदाहरण जानता है। वर्णन का वर्णन को रहा है --

विश्वकर्मादि दुर्गा वस्तु, जो निरन्तर प्रवाहका भीषण नयनयोर्न  
 भवति वैदिकानि नष्टा ।

जाना नाश काम-भा. त को शान्त करने के लिए दुष्कृत को भाति  
 जन्मा विष्णुकरार को प्रेम राजा प्रोक्त को विव्र बताया है। उदाहरण  
 उदाहरण उनके विचारों का वर्णन करके कवि ने उदाहरण को वृत्त मनोरम  
 कहा दिया है।

विशेष में जन्मा का न जन्माओं के अंतरिक्ष पर्यवेक्षण, मुक्ति  
 तथा मरणात्मान्य का भाव का भाव विव्रण किया है।

जिस प्रकार विदुष्य प्रोक्त का वृत्त विरहाग्नि को शान्त करने का  
 प्रयत्न करता है वैसे ही जन्मा को भी परिष्कार का विविध प्रकार से  
 कोतापवार करता है। शब्दा बनाकर लगामण्डप में उसे टैटाता है और उसे  
 साक्षात्पन्न देता है। विष्णुकरार विव्र बनाने के लिए उनके अस्त भावन को  
 उपस्था करता है। दुष्ट हाथों के हा जाने के भय से मरवा भावों में दुष्ट  
 को विव्रण करके उसे के लिए एक नयी लगामण्डप में जाता है। वहाँ राजा प्रोक्त  
 के मनोभाव को जानकर नया आपस में विवाह की अनुमति पा कर अपना सली  
 जन्मा को शुभ-सुवना देकर उसका विरहाग्नि को दूर करता है। इस प्रकार  
 कवि ने इस विरह का अन्त विवाह द्वारा करा दिया।

इसमें सन्देह नहीं है कि कन्या को विवाहावस्था तथा उसके उपचार  
 का आवश्यकता से अधिक वर्णन होने के कारण तथा उसके पर्याप्त मात्रा में  
 मौलिक प्रतिभा के परिशिष्ट न होने के कारण वह प्राण यव-वच उदाभानता  
 को ला देता है।

- १- वैम० पृष्ठ ८४
- २- " " ८४+८५
- ३- " " ७३
- ४- " " ८७
- ५- " " ८८



किन्तु कवि ने प्रेम का म वा मान्य न हैकर उच्छ्वोडि का लिया है ।  
विरहाग्नि से तन भोकर दोनों छुड़ होते हैं तलावार विधि-विधान से इन  
दोनों का विवाह होता है ।

नायक-नायिका की वियोगावस्था है विवश में कुछ बर्ने प्रातः उठना  
है । उदाहरणार्थ 'कडोनालम्भ' राजा प्रोल्ल के वर्णन-प्रसंग में हुआ  
है । कर्ण-कर्ण पर भी भावों को प्राग्दानना हो गया है ।  
उदाहरणार्थ जिस प्रकार विदूषक राजा को आन्वजन देता है उतने प्रकार  
शिर्या अनन्ता को आन्वजन देता है ।

किसी विषय पर कहा जा चुका है कि इस राज्य का प्रताप रण वीर हा  
था वाश्या । उगार रण का जो विषय राजा प्रोल्ल के वर्णन-प्रसंग में हुआ  
है वह ज्ञेय रूप में ही थाया है । राजा प्रोल्ल स्वयं एक शक्तिशाली एवं  
शिकारों राजा के रूप में विदित हुआ है । राज्य में जितने भी राजा आ  
हैं सब वीर योद्धा वीर योग्य शाक के रूप में विदित किए गए हैं । किन्तु  
इस रण का आन्वजन सभी राजाओं के वर्णन में नहीं मिल पाता है ।

राजा प्रोल्ल को मृगया में रण रण का अधाधि-भाव उत्साह पष्ट रूप  
से परिचित होता है । विविध शिकारों एवं शिकारों कुर्णों से सुगन्धित  
शिकारियों के साथ कर्म में पहुंच कर वहां के सभी जानवरों को मृत कर देता  
है । जानवरों का भगदौड़ मच जाता है । चरता हुए भोटी भाली गार्थ भयभीत  
हो उठे बहड़ों को दूड़ने के लिए उत्थन्त उत्कण्ठित हो जाती हैं । भर्णों के  
कठोर कर्णों पर तलवारों के गिरने से तलवारों को हननाष्ट होने लगती है ।  
शिकारियों द्वारा मारे गए युग्मति के शोक से विह्वल होकर हर्षियां विधाड़ने  
लगती हैं, शेष हाया निरन्तर बाणों के गिरने से उत्थाधिक भयभीत हो  
उधर उधर भागने लगते हैं, शिकारियों को डारिका से लकड़बन्धों (तरहु) के  
पेट विधाणे होने लगते हैं, भिन्दिपाल (एक डंडा जिसमें बंकड़ या पत्थर रखकर

१- (अ) विदूषक का राजा प्रोल्ल को आन्वजन देना, कै० पृष्ठ ४७, ४४

(ब) शिर्या का अनन्ता को आन्वजन देना । कै० पृष्ठ ७७, ८२ ।

को सुना कर रोका जाता है ) के हाथियों का बन्दूक कटने लगता है, बाणों को बाँधारों से ब्याधुल होकर निकल जाता कला रोक देते हैं और छिप जाते हैं, पने हुतारों से धारछाँवों काव्य होने लगते हैं । शिखारियों के अतिरिक्त राजा प्रोत्त स्वयं उ० नृणा में अद्रिभ भाग लेता है । वह शरभुक्तों के लिए मृत्युञ्जय होकर, लक्ष्मणों के लिए जगन्नाथ होकर, हाथियों के लिए विष्णु विभाक्त होकर, सिंहों के लिए भयंकर राज्याम (प्राणनाथ कामारत) होकर शरभुक्तों के लिए वृत्तवन्ता ( जयन का अन्तिम भाग ) होकर, भेड़ों के लिए प्रथम होकर भवों को जगु का अन्त होकर, पुत्रों के लिए मृत्युदायक होकर बन्दरों के लिए स्वयं होकर, कनर-भुक्तों के गले से निकलने रखा का मोटा देने वाले (बन्ना करने वाले) विष्णु के मृदुल होकर, वातावरण के लिए मानि-रोग होकर तथा रौद्रिज्यों के लिए जगन्नाथ (मन्द) रूप होकर लक्ष्मण के साथ शिकार लेला है ।

विविध जानवरों को मारने हुए राजा प्रोत्त के द्विधा-कलाओं में वीर रस को अभिव्यञ्जना होती है --

अन्तरात्मोपरिवर्द्धित मनोरिकुम्भकुटां पर्याप्तत मुक्ताफलधुन्वदन्धुरामु  
 शिखारिणिञ्जु इष्टिं बन्धु । कल्पमान एव तदी यन्माधिपत्यं नृणाणाम् ,  
 कर्णपुरायमाणकुण्डलितकौदण्डगुणध्वज शरमारवणों सरुणो जमान शिखार  
 शिष्टिं शिखनः । ... राजोवदन्धुरिख राजा रतिमभिरिव शैलभेदिभिर्भर्तृर-  
 न्धकारानिव मार्गस्थी हुलाव भालुमान् ।.... म कदाचिन्धुरिख हरिणो-  
 मपानयदवनितते । विष्णुरिव महावराहविग्रहमृदुलैव । युधिष्ठिर एव सत्यं  
 जयान ।" इत्यादि ।

राजा प्रोत्त के अतिरिक्त काव्य के नायक वैमपुपाल के युद्धों में वीर रस को अभिव्यञ्जना होती है । वह दिग्विजय के प्रस्थान के लिए छार गरु हाथी पर बैठकर हन्ति और अश्वसेनाओं के साथ सब राजाओं को जाने अधान के हेतु निकला है ।

- १- वैम० पृष्ठ २०-२१
- २- " " " २१
- ३- " " " २२-२३



राजा केन ने जो प्रसूत हुए विद्या केके नाम भर में परिभाषित उक्त  
के पूर्वर्ती को राजा को तर्क तथा दुर्भूषण का दूसरा रूप ही था --

विश्वभूषिणि-ह्यनानां भूर्गुराणाम् अथरत्नमितिभिः । तत्र भूर्गुरेत्यात्महा-  
प्रलक्षणैश्च । आत्मनिश्चिद्वचनाः । तदनुसरत ह्यनुर्गुराधिरानुकरदुर्गा-अनामसुतो  
भुवरायः सुरभिनिर्गतः सूरधुलोपतलाविकरणेन ।

इस प्रकार सर्वथाथ केना के साथ होने वाले रोमांकादी युद्ध के वर्णन  
में कवि को बार बार एक ही श्लेषरचना करना आया है । इस युद्ध में प्रति-  
वेना को विद्या के रक्षा है वह परम वीर, दुः-स्व-मर्षित, एवं विविध शस्त्रों  
के साथ युद्ध के लिए राजा केन के पास जाता है और राजा भी शस्त्र तथा केना  
के युवाजिह्व को लेकर उसकी ओर बढ़ता है । इस युद्ध का वर्णन एक पद्यादि न ही  
कर सम्भव है । इस युद्ध में दोनों ओर से कैकेय युव पत्न्यार, मुसल जादि  
को आवाज आया ही आया कर रहा है, ऊपर नाचे मारते हुए शस्त्रों में  
से अब शिवा और बाण को टकर होता है जो आग भा बीच-बीच में निकल  
पड़ता है, दोनों पैतृजों में आवाज कीलाहल है, दोनों ओर से एक साथ  
हाथी-कौर्णों फट्ट बज रहे हैं, दोनों घुमट युद्धों को तोड़कर उभो से प्रहार करता  
है, कुछ मोटा विष-कुंठे बाणों के फेके जाने से मुर्च्छित हो रहे हैं, हरबाण  
गणझोल फेके जा रहे हैं, दूसरे पक्ष के लोग भी जानी रक्षा हेतु पत्न्यार जादि  
को फेकते हैं ।

इस युद्ध-वर्णन में कवि ने पत्न्यारों के फेकने का कई बार उल्लेख किया  
है ।

- १-केन० शृष्ठ १५७
- २- .. .. १६२-६३
- ३- .. .. १६२-६३

सैन्यो रविरलक्षणेणो वाग्मलय स्वैतण्डुण्डामुसल कण्डा कालरटित-  
मुण्डितकण्डर... क्षिप्यमाणशिलानारावनिक्सार परनिष्पेष जनितैर्हत...  
प्रतिकल्पप्रत्नमौर्गीण्डुः सविफतवारणदुलविन्स्थानपदाक्षमणोक्षतवज्रवर-  
प्रदलनयमदिलो अयमु अनाममाणाना वधिप्रदिशाय ।

कवि ने जहाँ पर राजा को अर्पण किया है साथ किन्ने कष्ट उठाकर  
 किया मिला है-- जो आगरा पर राज की शक्ति की है। अन्ततः  
 बंगाल के राज का भी विचार हुआ है। बंगाल राज का वर्णन कवि ने  
 अर्धवर्णन: अर्धवर्णन है वर्णन के प्रयोग में किया है। काठिन्य के युद्ध में कवि  
 का मुख्य प्रयोजन राज राज के विचार में है। जो राज का अर्धवर्णन कवि ने  
 जो प्रकार के है -- राज की युद्ध पर विचारों में दूसरे युद्ध, पिछाड़, वेतार  
 भाव का प्रयोजन है।

काठिन्य-युद्ध के उपरान्त अर्धवर्णन में रोषांतरात् इतन उचित हो  
 जाता है। युद्ध जंगल में पड़े हैं, कुछ के प्राण निकलने वाले हैं, विविध  
 प्रकारों के प्रकारों के विचार का योद्धा को जॉन् स्ट गया है किन्ने का शक्ति  
 देखा ही नहीं है, किन्ने के जॉन् स्ट गये हैं किन्ने युद्ध भयानक हो गया है।  
 कुछ अर्धवर्णन योद्धाओं के शरीर रक्त में स्तम्भ है। रक्त जला बहा है कि  
 वहाँ एक नदी-नील बन गयी है जिन्ने राजाओं का भयानक बुद्धि का तरह,  
 तेरते हुए हाथियों का कटा कान अर्धवर्णन के शक्ति को शक्ति तथा उत्तम तेरता  
 हुआ उनका पूरा शरीर मगर के अर्धवर्णन जाता है, योद्धाओं का शिर, काँट तथा  
 अर्धवर्णन हुआ उनका प्रतिविम्ब इतनों के रक्त का नदी में निम्न (धात्रियों  
 के मारने में अर्धवर्णन) परशुराम की श्रुति कराता है। कुछ हाथियों का शिर  
 कट गया है किन्नु यह से अर्धवर्णन न होने के कारण वह लटक रहा है और रक्त  
 से जला हुआ है। रक्त की अर्धवर्णन से अर्धवर्णन होकर अर्धवर्णन अर्धवर्णन  
 जोरों से कर रहे हैं, अर्धवर्णन-उपर अर्धवर्णन हुए अर्धवर्णन के अर्धवर्णन अर्धवर्णन  
 से रक्तपान के लिए मृतकों पर प्रहार कर रहे हैं किन्ने उनका शरीर और भी  
 जल विफल हो रहा है, अर्धवर्णन और अर्धवर्णन भी जाकर उर्ध्व अर्धवर्णनता में  
 जाग दे रहे हैं, वेताल गोर्षों के शक्ति को छान कर ला रहे हैं और मृत  
 योद्धाओं की अर्धवर्णन को लेकर अर्धवर्णन-उपर भाग रहे हैं, उर्ध्व अर्धवर्णन  
 लाता है कि अर्धवर्णन जाने के कारण अर्धवर्णन में जाने के अर्धवर्णन अर्धवर्णन के  
 लिए अर्धवर्णन मार्ग वहाँ न होने के कारण वहाँ से जाने के हेतु वे अर्धवर्णन  
 अर्धवर्णन अर्धवर्णन कर रहे हैं और कुछ वेताल अर्धवर्णन पान से अर्धवर्णन होकर ताली  
 बजा-बजा कर नाच रहे हैं। इस अर्धवर्णन को देखकर किन्ने अर्धवर्णन के अर्धवर्णन में

घृणा के भाव जागरित नहीं होते और ये भाव वरम गोमा में पहुँच कर किन्ना  
 कृत्य ही रक्तवादन नहीं कराते ।

शामुद्रिक युद्ध में युद्ध का बाधना हम केवल एक पंक्ति में यह कह कर कि  
 है कि भारे गये घोड़ों का रक्तमान आदि मानुषकर्म कर रहा है -- 'श्रा-  
 हत विविधयथैव<sup>पुः</sup> ?' नात ज्ञात युतिगन्धिवारिषानविमुक्तीभवदम्मानुषकर्मक  
 कर्म का रक्त की वर्णन नहीं हो पाता ।

बण्डिकाल्य के वर्णन में मा बाधना रक्त का वर्णन हुआ है वहाँ धलि  
 के लिए गाँवर कर्कर काटे जा रहे हैं, उनके रक्त से भूमि मिच्छिल हो गई है  
 फिर घर बने से मिशान लड़बड़ा रहे हैं हैं किन्तु रक्त को देखकर जलने  
 कृशास से आकाश को गुञ्जित कर रहे हैं, कलवारों के द्वारा नरधलि को जा रा  
 है और राधास उनके बाजे गाँव की पाकर अत्यधिक प्रान्न हो रहे हैं, पुतण  
 अत्र प्रान्न हो रहे हैं । बड़े जोरों से गाँव लेता हुई दांतों से गठित मुणों  
 का तथा हड्डियों को माछा धारण करता हुई , मुँह फैला कर रक्तपान  
 करती हुई शकनियों केड तथा कैाल चिकों के निर्दय कार्य, पिशाचों का  
 मांस, मीवा, हसा, रक्त आदि के लिए चिल्लाना, भूतों का रक्त का आवादन  
 करना आदि का वर्णन करते कवि ने बाधना रक्त का वर्णन कराया है ।  
 किन्तु कवि ने यहाँ बाधना रक्त की अतन्त्र ध्यान न देकर उसे भयानक रक्त से  
 जो वर्णन के रूप में स्वीकार किया है । क्योंकि कवि को बण्डिकाल्य का  
 भयानक का वर्णन करना ही उभाष्ट है । यदि ऐसा न होना तो बण्डिकाल्य  
 का निम्नलिखित श्लोक से भाँति-भाँति की उभाष्टों के साथ कवि वर्णन न  
 करता -- 'पितृपतिपुरमिव प्रेतकुलाध्यासितम्, शिविभ्रमनरितमिव प्रकटित-  
 बलिभूमिनिग्रहम्, नृमिलमिव कुंभाणिस्तम्भनीकृतप्रकाशम्, अन्ववर्ममैःवर्यं  
 बण्डिकाल्यमपश्यत् ।' और राजा से श्रुति न कराता ।

- 
- १-कैम० पृष्ठा १४१-१४२
  - २- " " १८२-१८४
  - ३- " " १८३-१८४

शुक्ति भैरवा का प रींद्र हांगा है अतः उनके मन्त्रिक के साथ-साथ कवि ने उनके भयंकर स्वरूप का ही वर्णन किया है । मम का तिलक, सुपत्नी का आभूषण उ॥ की माता तथा कुंजुल के वस्त्र का उल्लेख इस सम्बन्ध में किया है । इस प्रकार शुक्ति वैशाल भूत ताकियां आदि उनके गण बड़े गये हैं अतः उनका वर्णन न ही वर्णन कर कवि उनके भयंकर भयंकर रूप को ही विचित्र करना चाहता है । वेम के साथ-साथ हृदय को रसा के तम उन देवा को प्रणाम करता है ।

भयानक रूप का रस-वाक्य विन्ध्याटवा के वर्णन में भी होता है ।

यथा भयानक वर्णन अधिकांशतः पशुओं का नाखाट, कर्करटों का बटु बोलियाँ, पैरुवृत्तों भर लटकते हुए अङ्गार जैसे मूर्तों से तथा उनका निःस्वाती से उल्लसित आवाजिन के वर्णन करने से , विषम मार्गों से , गिर्हों के मिनारों आदि से किया है । इनके अतिरिक्त शक्तिशाली लीट-डोटे हाथा के बन्ने(शरम) जाने दांतों से रोहित मूर्तों को मुचिंत करके, भूख से व्याकुल बन्ने अपने तीक्ष्ण नखा से मूर्तों को आहत करके तथा आ कष्ट से दुःख हो मृग को करुणा उकार करके, गिरि को बड़ेकाकियाँ के गस्तकों को जाने नाखूनों से विदारण करके भयंकर वातावरण उपस्थित करते हैं । गिरे हुए फलों को खाने के लिए उपर-उपर दाँजो हुए भासू, फेंके हुए काटे तथा वृक्षों को लपनना उस अटवा को और भी भयानक बना देती है ।

इस प्रकार कवि ने अपने काव्य को शृंगार, वीर, वीरमत्त और भयानक इन चार रसों से जोत प्राप्त कर रखा है । रसात्मक रादास का उपास्य होकर विदूषक को पकड़ने तथा अनन्ता की वियोगावस्था के वर्णन में अकस्मात् दुष्ट हाथी के जा जाने की घटना को अद्भुत रस की कौटि में नहीं रखा जा सकता है । वैसे जितने रसों का निष्पन्न कवि ने किया है उतने उते पर्याप्त गहलता मिली है और प्रारम्भ में जो उतने रस के सम्बन्ध में धारणा बताई थी उतका पूर्णरूप से निर्वाह किया है ।

-----

१- वेम० पृष्ठ १४४  
 २- " " १५६-१८२

## रामकथा में रसों का निःक्षण--

रामकथा में रस और वीर रस के प्रयोग अवश्य जाते हैं किन्तु कवि को उन रस में सफलता मिली है -- ऐसा नहीं कहा जा सकता । समुद्र के प्रति विश्राम रस के शोध-वर्णन में केवल 'इयति च सखीव तावदरजसकुशतारकाहुनि-रामा-वपनकीकनकर उदभटप्रकुटिराज्जटालफालातम अतिविहवदजनसंघष्टरत्तरुविरो-रुपुटर सत्कामपथिथिज्जटावन्यबन्धुरं शरीरं' ही कहा है किन्तु स्पष्ट है कि ये पंक्तियाँ न रस की स्थिति तक और न भाव का दौड़ तक पहुँचाती हैं ।

युद्ध-वर्णन में वीर रस का वर्णन करने का कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु कथा के नायक राम और उपनायक रावण के बीच होने वाले युद्ध में कवि इस कार्य में सफल नहीं हो पाया है । यह वर्णन में कवि ने उन दोनों का युद्ध-क्रियाशीलता का वर्णन न करके युद्ध भूमि का ही वर्णन किया है<sup>१</sup> ।

इसके विपरीत तो राम-रावण की सेना के बीच होने वाले युद्ध में वीर रस को अभिव्यक्त करके उंगलें डाली हैं । बानरों द्वारा युद्ध को छलकार, छलकार सुनकर राजसी सेना का निकलना, सत्यशत्रु दोनों के बीच घनामान युद्ध का होना वर्णित है । यहाँ पर कवि उनकी क्रियाशीलता का उल्लेख एवं अनुकारात्मक शब्दों का प्रयोग करके कृत्य का सजीवता ले पाया है<sup>२</sup> ।

गर्थापि कर्मों को युद्ध स्थल का वर्णन है किन्तु इस युद्ध में दोनों सेनाओं की क्रियाशीलता, प्रहार, शोध आदि विविध भावों का वर्णन मिलता है ।

जिसे प्रकार कवि ने इस युद्ध-वर्णन में बानरों की क्रियाशीलता का वर्णन रामानाथ-सौदागी की छलकारने के लिए किया था उसी प्रकार कुम्भकर्णी के युद्ध वर्णन में भी युद्ध के बीच होने वाली उसकी क्रियाशीलता का वर्णन किया है किन्तु वहाँ पर वीर रस का आस्वादन सक्षम नहीं कर पाता है<sup>३</sup> ।

इसी प्रकार हन्द्रित् के साथ होने वाले युद्ध-वर्णन में वीर रस की वर्णना नहीं हो पाती है<sup>४</sup> ।

१- रामकथा पृष्ठ ३८-३९.

२- " " " ४६

३- " " " ४२-४३

४- " " " ४५

५- " " " ४७



## रामकथा में रसों का निरूपण--

रामकथा में रौद्र रस और वीर रस के प्रयोग अवश्य आए हैं किन्तु कवि को उन सब में सफलता मिली है -- ऐसा नहीं कहा जा सकता । रसुद्र के प्रति किर गये राम के क्रोध-वर्णन में केवल 'अजनि च सहस्रैव तावदख्यदुग्धताकादुनि-रीपा-नयनकोकनद्व उद्भ्रमप्रकुटिराजटालफालतट्ट अतिविशददशनसंदष्टरक्तचिरो-स्तपुट्ट उत्कम्पशिशिलितजटावन्यबन्धुरं शरीरम्' ही कहा है जिससे स्पष्ट है कि ये पंक्तियाँ न रस की स्थिति तक और न भाव को कोटि तक पहुँचाता हैं ।

युद्ध-वर्णन में वीर रस को वर्णन करने का कवि ने प्रयत्न किया है किन्तु काव्य के नायक राम और उपनायक रावण के मध्य होने वाले युद्ध में कवि इस कार्य में सफल नहीं हो पाया है । इस वर्णन में कवि ने उन दोनों का युद्ध-क्रियाओं का वर्णन न करके युद्ध भूमि का ही वर्णन किया है<sup>२</sup> ।

इसके विपरीत तो राम-रावण की सेना के बीच होने वाले युद्ध में वीर रस को अभिव्यक्ति आकर्षक ढंग से हुई है । बानरों द्वारा युद्ध को ललकार, ललकार पुनकर राजसी सेना का निकलना, तत्पश्चात् दोनों के बीच घमासान युद्ध का होना वर्णित है । यहाँ पर कवि उनकी क्रियाओं का उल्लेख एवं अनुकारात्मक शब्दों का प्रयोग करके दृश्य को जीवना ले आया है<sup>३</sup> ।

यद्यपि हमें भी युद्ध स्थल का वर्णन है किन्तु इस युद्ध में दोनों सेनाओं को क्रियाओं, प्रहार, क्रोध आदि विविध भावों का वर्णन मिलता है ।

जिस प्रकार कवि ने इस युद्ध-वर्णन में बानरों की क्रियाओं का वर्णन राजसी-योद्धाओं को ललकारने के लिए किया था उसी प्रकार कुम्भकर्ण के युद्ध वर्णन में भी युद्ध के बीच होने वाली उसकी क्रियाओं का वर्णन किया है किन्तु यहाँ पर वीर रस का आस्वादन सहज नहीं कर पाता है<sup>४</sup> ।

इसी प्रकार इन्द्रजित् के साथ होने वाले युद्ध-वर्णन में वीर रस को वर्णन नहीं हो पाती है<sup>५</sup> ।

इस प्रकार कवि ने काव्य में केवल दो रसों -- रास और वीर रस को ही ध्यान दिया है किन्तु वीर रस के प्रसंग में केवल एक श्लोक को छोड़कर प्रायः उपेक्षा ही मिली है -- ऐसा ही कहा जायगा ।

### जासकविलास में रस निरूपण--

रामकथा में तो फिर भी रस को ध्यान मिला है किन्तु 'जासकविलास' में तो कवि ने उस तत्त्व को उपेक्षा ही कर दी है । यद्यपि पंडितराज जगन्नाथ ने 'जासकविलास' में ही 'सर्वभानवर्धयिषु स्वलेषु नामन्तेषु वाङ्मयेष्विव काव्यकलापः काव्यकलापेष्विव ध्वनिः ध्वनिष्विव रसो रसेष्विव शृंगारः...' कह कर काव्य में रस को महत्वपूर्ण तत्त्व माना है तथा उन्होंने इसका सफल निवाह अपना अन्य काव्यात्मक रचनाओं में भी किया है किन्तु जाने इस गद्य-काव्य में इसका निवाह नहीं किया है । सम्भवतः इसका कारण उनका केवल अपनी शैली को मधुर वर्णन से संयोजित करना ही रहा हो । यही कारण है कि कश्मीर की द्विर्वा का सौन्दर्य-वर्णन कवि ने किया है किन्तु उस वर्णन-प्रसंग को शृंगार रस की कौटि में नहीं रखा जा सकता है ।

इसी प्रकार कवि ने शाहजहाँ के दान तथा पराक्रम का वर्णन किया है पर उसे रस का नाम नहीं दिया जा सकता है । क्योंकि इन रसों के प्रसंग में कवि ने किभावों, अनुभावों तथा व्यभिचारी भावों का बिल्कुल विकास नहीं किया है जो इसकी स्थिति में पहुँचाने के परमावश्यक तत्त्व हैं । उन्हीं की सहायता से रस की सजा है, दोनों में अन्वय-व्यतिरेकि संबंध है ।

कवि ने राजाओं का जो वर्णन किया है उससे केवल उनकी वीरता का ही अनुमान होता है, रस का आव्यादन नहीं ।

इस प्रकार इन सभी उर्वाचीन गद्य-काव्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि सभी कवि काव्य के आत्म तत्त्व रस को वर्णन कराने में निरन्तर प्रयत्नशील रहे । कुछ कवियों को इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता भी मिली है । इसको

सकल अभिव्यंजना होने के कारण उनका काव्य दुःख होते हुए भी सरसता का दृष्टि से किसी प्रकार कम नहीं ~~है~~ है ।

रस का प्राण-तत्व जीवित्व होता है । जो कवि उस ओर ध्यान रखते हैं उनके काव्य में हृदय सम्बन्ध निर्वाह हो जाता है और सहृदय उस रस के आ-वादन में निमग्न हो जाता है । इस दृष्टि से तिलकमंजरी, गणचिन्तामणि और वैष्णुपाल बरिष्ठ उत्कृष्ट काव्य कहे जा सकते हैं यद्यपि इन काव्यों में भाष्य तत्र रस-विषयक दुर्बलता मिलेगी किन्तु वे रस वर्णना कराने में विशेष बाधक नहीं बनती हैं । जायफविद्या में कवि यदि चाहता तो रस को उत्कृष्ट अभिव्यंजना करा सकता था क्योंकि इसकी अन्य रचनाओं के पढ़ने से उसको उस विषय में प्राप्त अद्वितीय अफ़लना के विषय में पता चलता है किन्तु उसने इन ओर ध्यान न देकर रमणीयार्थ प्रतिपादित करने वाली मनोहर पदावली पर ही ध्यान दिया ।

इन गद्य-काव्यों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि अधिकांश कवियों ने अपने काव्य का मुख्य रस झुंगार को ही बनाया है । जिन कवियों ने झुंगार को नहीं भी बनाया है उन्होंने भी उसे जो रूप में ध्यान अवश्य दिया है और उसके निरूपण में विशेष रुचि दिखायी है ।

संक्षेप अध्याय

प्रकृति - निष्पत्ति

-0-

### प्रकृति-निष्पत्ति

मनुष्य का सम्बन्ध जादिकाल से प्रकृति से रहा है । जब इतनी अधिक सभ्यता नहीं बढ़ी थी, मकान आदि का निर्माण नहीं हुआ था तब वह प्रकृति के प्रांगण में ही विचरण करता था । उसी की गोद में फल कर विविध शिखारं ग्रहण करता था । उस समय प्रकृति उसका सारा कार्य माता की भाँति उसे अपना पुत्र समझ कर करती । उसकी शिखाओं को ग्रहण कर आज मानव सभ्यता की अद्वैतिका पर बढ़ा हुआ है । कोई भी कृतज्ञ मनुष्य प्रकृति के उपकारों को भूल नहीं सकता है । यदि कोई मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके उसके उपकारों को उपेक्षा कर दे तो ऐसे व्यक्ति को कृतघ्न के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । यह प्रकृति मनुष्य को जीवन को विविध आवश्यकताओं में सहयोग प्रदान करती हुई अनुभव की जा सकती है । वह कभी उसके साथ वार्तालाप करती है, कभी उसकी प्रसन्नता में हँसती है, कभी उसके दुःख से आँसू बहाती है एवं उसे सम्बन्धना देती है, कभी बन्दुओं से बिकट्टे रक्षाकी पथिक को पथ-भ्रवर्षित करती है, उसका स्वागत करती है, उसे जलाय मुक्त देती है एवं आगामी संकट से जावधान आदि कराती है । संसार में ऐसे उदार मनुष्य कम ही मिलेंगे । अतः जो शान्ति लहर-उधर मटकने पर भी मनुष्य को नहीं मिलता वही शान्ति उसकी प्रकृति की गोद में वही ही मिल जाती है जैसे शिष्य को माँ की गोद में बैठने से ।

कवि भी उसी मानव का एक अंश है । अतः वह भी प्रकृति से न अपने को अलग कर पाता है और न प्रकृति ही उसे अलग होने देती है । चूंकि कवि भावुक होता है, अतः प्रकृति भी भावुक बनकर उसका साथ देती है । यही कारण है कि कवि की प्रकृति तथा वैज्ञानिक की प्रकृति भिन्न-भिन्न दिशाओं देती है क्योंकि दोनों के दृष्टिकोणों में अन्तर है । वैज्ञानिक प्रकृति को बाह्य सोच करता हुआ ज्ञान्य पर पहुँच कर किसी एक निश्चित नियम का निर्धारण कर लेता है किन्तु कवि प्रकृति के बाह्य रूप पर ही मुख्य होकर सब सुन-सुन

तो बैठता है, उसी में अपने भावों का तादात्म्य कर देता है। वैज्ञानिक प्रकृति को निर्जीव दृष्टि से देखता है किन्तु कवि उसे जीव स्मरण के कारण बल्लै-फिरले मनुष्य के समान देखता है। <sup>कवि</sup> ~~कवि~~ के प्रकृति-वर्णन में भावना की प्रधानता के कारण हृदय की प्रधानता होती है और <sup>वैज्ञानिक कवरे के वर्णन</sup> ~~वैज्ञानिक~~ में ज्ञान की प्रधानता होने के कारण मस्तिष्क को प्रधानता होती है। एक को सौन्दर्यानुभूति अत्यन्त भी कर सकता है किन्तु दूसरे को सौन्दर्यानुभूति केवल मात्र वैज्ञानिक हो।

प्रकृति के बिना कवि अपने काव्य की श्रेष्ठ रचना कर भी नहीं सकता है। यह स्वर काव्य बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। डा० किरन कुमारी गुप्त का यह कथन कि 'प्रकृति के विस्तृत ~~सं~~ प्रांगण में विचरण करने वाले कवि हो ऊपर काव्य की रचना कर पाते हैं' <sup>१</sup> -- सर्वथा उचित जान पड़ता है। यद्यपि साहित्य का विषय मानव त्वं उसकी क्रियाएँ रहती हैं किन्तु उसका काव्य प्रकृति के सहयोग के बिना अधूरा रह जाता है। क्योंकि प्रकृति संस्कृत कवियों के काव्य की कथावस्तु का निर्माण स्वं उसके विकास के लिए स्फुटित वातावरण उपस्थित करती है। इसीलिए उनके काव्यों में राजधानी, नगरी, उपवन, वन, आश्रम, पर्वत, जल आदि वर्ण-विषयों के प्रति कवियों का उत्साह पर्याप्त मात्रा में मिलेगा। इन विषयों का वर्णन करने की कवियों की एक प्रकार से परम्परा बन गई है। संस्कृत कवि सौन्दर्यानुभूति बनाने में कुशल होते हैं। किसी भी वस्तु का वर्णन करना होता है तो उसे आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए वे अलंकारों का आश्रय लेते हैं। अलंकार कोई वाक्य वस्तु से सम्बन्ध न रखकर प्रकृति से ही सम्बन्ध रखते हैं। उपमा, प्रतीप, व्यतिरेक इपक आदि अलंकारों में प्रकृति ही उपमान बनकर जाती है। लिरियों का नल-शिल्ल वर्णन सभी काव्यों में मिलेगा। अतएव रस की प्रधानता होने के कारण उस नल-शिल्ल का वर्णन कवि विविध अलंकारों के साथ करते हैं। वहाँ अलंकारों में प्रकृति का स्थान रहता ही है इसके अतिरिक्त भी प्रकृति कई रूपों में जाती है।

इस प्रकार 'प्रकृति कवि के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भण्डार, कल्पना का अव्युत्त लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों को अदभुत श्रृंखला भी बन जाती है।'<sup>२</sup>

१- हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण -- डा० किरनकुमारी गुप्त पृष्ठ १४

२- साहित्यिक निबन्ध

-- गणपति गुप्त बन्द पृष्ठ ३३६

संस्कृत कवि प्रकृति को रम्य व भयावह दोनों रूपों में अपनाते हैं। इस प्रकार के वर्णन करने का अवसर उन्हें पर्वत, वन तथा समुद्र आदि जैसे विषयों में ही मिल पाता है। इनके काव्यों में प्रकृति कभी आलम्बन रूप में और कभी उदीपन रूप में भी परिलक्षित होती है। जहाँ आलम्बन रूप से तात्पर्य किसी स्थायी-भाव के जागरण में सहायक होने वाला विभाव न होकर किसी प्रकृति दृश्य को देखकर कवि के मन में जो भाव उत्पन्न हैं उनके वर्णन से है। चूंकि ये भाव कवि से सम्बन्धित होते हैं और काव्य में वर्णित पात्रों का दृष्टि से उनका वर्णन नहीं होता है। अतः कुछ विद्वान् इस रूप को स्वतन्त्र रूप भी कहते हैं।

जब यही प्रकृति पात्रों के भावानुसूल या किसी रस के पोषण के लिए वातावरण उपस्था करता हुई चित्रित की जाती है तब वह उदीपन की कोटि में आ जाता है। यहाँ जो प्रकृति पहले सुख के समय जानन्द देने वाली होती है वही वियोग-काल के दुःख के समय पीड़ा को बढ़ाने वाली सिद्ध होती है। इस प्रकार के वर्णन शृंगार रस के दोनों पक्षों में मिले। इसी प्रसंग में कवि अधिकांशतः शृंगार का वर्णन करते हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ पर मानव के सुख-दुःख को सम्बन्धित सहयोगिता होने के कारण प्रकृति कभी सहचरी और कभी सैविका के रूप में ग्रहीत होती है, कभी उस पर मानवीय विलासनी-इजाओं का आरोप किया जाता है और किसी स्थायी-भाव को जागरित कराने में सहायक बनकर जाती है।

यह आवश्यक नहीं है कि सहचरी एवं सैविका रूप होने के कारण प्रकृति का मानवीयकरण रूप उदीपन पक्ष में ही परिलक्षित हो अपितु आलम्बन पक्ष में भी प्रायः इसी प्रकार के रूप मिलते हैं। यहाँ पर प्रकृति कभी मनुष्य को कर्तव्य क्षेत्र की ओर ब्रूकर करती हुई, कभी सावधान करती हुई और कभी उपदेश देती हुई जाती है।

कवि काव्य में आलम्बन और उदीपन के अतिरिक्त-प्रकृति को पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं स्थितियों के सौन्दर्य-वर्णन में कभी मानवीयकरण रंग का या अन्य किसी रंग से अपना कर प्रभूत मात्रा में स्थान देते हैं। चूंकि गद्य-काव्य भी एक काव्य है अतः जो स्थान प्राकृतिक-वर्णनों का पथ में (विशेषकर महाकाव्य में) है वही स्थान गद्य-काव्यों में भी परिलक्षित होता है।

व प्राचीन गद्य-कवियों की परम्परा का अनुकरण करते हुए ज्ञानवीन गद्य-कवियों ने भी इसे काव्य का आवश्यक तत्व मान कर जताया है। कुछ कवियों ने इस वर्णन में काव्य-प्रतिभा का जलौकिक रूप दिया कर बाण के साथ अपने को भी प्रतिभात्मन् कवि होने की पुष्टि की है। इस विषय में राजा भोज एवं वामन भट्ट बाण की काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना कोई सहृदय रह नहीं सकता है। यद्यपि ये प्रशंसा शैली के कारण क्लिष्ट हो गई हैं किन्तु मानसिक परिभ्रम के बाद मिले आनन्द से मानसिक क्लेश दूर हो जाती है। लेकिन उनके विचारीत धनपाल का प्रकृति-वर्णन है जितने मानसिक परिभ्रम करने के प्रारम्भ भी तदनुसंग आनन्द नहीं मिलता जिससे पाठक शरीर स्थलों में नीरसता का अनुभव करने लगता है। ज्ञानवीन गद्य-कवियों में प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति की स्थान दिया है। केवल इसके अस्वाद रूप रामकथा के स्वयंसा वासुदेव हो रहे जा सकते हैं।

### झंगार पंजरी कथा में प्रकृति-वर्णन--

इस काव्य की कथा का आरम्भ ही प्रकृति के समर्पण वातावरण में होता है। मासम में वसन्त का अन्त और ग्रीष्म का प्रारम्भ है। राजा भोज विषयगत बन्धुजों के साथ उद्यान में बैठे हैं वहाँ उनके अनुरोध से वह कथा कहते हैं। कवि की दृष्टि में प्रकृति-वर्णन काव्य का रसास्वाद कराने में सहायक होते हैं। सरस्वती कण्ठामरण में उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है --

ऋरात्रिं दिवाकेन्दुदयास्तमयकीर्तिः ।

कालः काव्येन सम्पन्नो रसपुष्टिं नियच्छति ॥

जतः इन्होंने अपने काव्य में यत्र तत्र उन्हें महत्वपूर्ण विषय बनाकर उनका उल्लास के साथ वर्णन किया है। चूंकि यह काव्य केश्याजी के चरित्र तथा उनके अनुराग से सम्बन्धित है। जतः प्रकृति अधिकारितः उदीपन रूप में आया है। इस काव्य में जितनी भी ऋतु वर्णित हैं वे प्रायः प्रेमी के भावों की किसी न किसी रूप में उदीपित कराने में सहायक होती है। उदाहरणार्थ



पिता द्वारा जीवन से सावधान किए जाने पर भी रविदत्त वसन्त के मादक वातावरण से विनयवती के प्रति आकृष्ट हो जाता है ।

इनका ऋ-वर्णन काव्य में एक पृथक् स्थान रखता है । कवि ने न तो उसे ऊँकारों से बोधिल कर दिया और न उसमें कवि की उत्तम पशु-पक्षियों और वृक्षों की नाम गणना को और विशेष प्रवृत्ति दिलायी है। अपितु कवि ने अपनी काव्य प्रतिभा के अन्तर्गत वातावरण वर्णन में भी कर्तकार छे दिया है । इसमें उत्प्रेक्षा ऊँकार का आश्रय कवि ने लेकर प्रकृति का मानवीकरण रूप अवश्य ग्रहण किया है ।

इस काव्य में वसन्त ऋतु का वर्णन दो बार हुआ है । रविदत्त की कथा में इस ऋतु का वर्णन उद्दीपन रूप में अधिक हुआ है जिसमें कौयल की कुडू, माधवी छाया, कमल कन, किंशुक कन जशोक के कुडूमल, प्रमरों की गुंजार, तम्पूरी करणजि, वृक्षों के पल्लव, वायु सभी मादक वातावरण उपस्थित करते हैं । यहाँ की प्रकृति ही रविदत्त को विनयवती के लीन्दर्प की ओर आकृष्ट करती है । इसी उद्दीपन रूप के वर्णन में कवि ने प्रकृति का मानवीकरण रूप भी अपनाया है जिसमें कमलकन की विरहिणियों की व्याकुलता पर हँसते उड़ते हुए और निश्चिन्त करणजि की तरुण-पल्लव के अगुण्डन से सुशोभित नववक्षु बताया है । रात्रि के छोटे तथा दिन के ताप के बढ़ने के सम्बन्ध में भी कवि ने मानवीय व्यापारों का आरोप किया है जब वह कहता है कि रात्रि विरहिणियों के प्रति सहानुभूति रखने के कारण उसका जाना कोई पसन्द नहीं करेगा मानों यह लीचकर लीण हो जाता है और दिन वसन्त के सुखवाम होने पर भी हमारा आनन्द विरहिणियों के लिए कष्टदायी है मानों इस विचार से उत्पन्न दुःख के कारण तापग्रस्त हो जाता है<sup>१</sup> ।

रविदत्त की कथा में इस ऋतु का संक्षिप्त वर्णन है किन्तु सूर्यक्याणिका में इसका विस्तृत वर्णन है । यहाँ पर भी इस ऋतु का अधिकारितः उद्दीपन रूप मिलता है । प्रायः वही वर्णन-विषय है किन्तु कल्पना की नवीनता अद्वितीय लीन्दर्प छे देती है । इस प्रसंग में भी कई स्थलों पर वर्णन-विषय की समानता होने पर भी उसका पृथक् स्थान है । रविदत्त की कथा में जिन प्रकार रात्रि

के छोटे और दिन के ताप बढ़ने की कल्पना की है, उसी प्रकार जहाँ पर भी है --

‘ज्योत्स्नया प्रसाक्षाननालोक्त्य शश्वरसोऽथैवप्रतिवासरं तन्निमानमागच्छ-  
-न्तोऽणु रजनीऽणु, अतिनिबिडतरसु हिनर्ति व्यगमादिव संको चमुत्सुजत्सु वासरेऽणु’  
किन्तु उपरोक्त उद्धरण से कवि की कल्पना की नवीनता का परिचय मिलता है। यहाँ वर्णन आ प्रसंग में पुनः हुआ है --

‘प्रीडिमागच्छति महिनिभद्युप्रमवे शनैः शनैरलक्ष्यमपवायमानासु  
धामिनीऽणु शं ताकमलदीर्घिकासु च, तुहिन जश्मोपक्षितं रुजभाक्मवलक्ष्यमुत्सुजत्सु  
शश्वरकरेऽणु क्षितिस्तेऽणु च’ ।

किन्तु पुनरावृत्ति किसी भी दृष्टि से नहीं हुई है। एक बार साधारण-  
तः से कह दिया और दूसरी बार प्रकृति को मानवीकरण के रूप में।

इस प्रसंग में प्रकृति मानवीय रूप में अधिक <sup>आई</sup> बारी है। नायक-नायिका के  
व्यवहारों का आरोप कई बार हुआ है।<sup>३</sup>

इसके अतिरिक्त कवि ने नायिका के व्यवहारी का, अभिचारिका के  
व्यवहारों का आरोप करके प्रकृति को कई बार अपनाया है। एक स्थल पर  
उसे नतीकी के रूप में भी लिया है --

‘विचित्र कुसुमवण्णश्लिष धारिणीऽणु प्रचलकिल्लयासु तात्वेनेव  
मलयमारुतेन शनैः शनैरतिलस्मितं प्रनर्त्यमानासु करराजिऽणु’ ।<sup>४</sup>

यहाँ पर कान्त ऋषु को चक्रवर्ती राजा का रूप में लिया है जिसमें  
शरद्वर्षी राजा से व्रत पूरणी के दुःख से दुःखी होकर सब स्त्रियों का सम्राट्  
कान्त शरद्वर्षी राजा को परास्त करता हुआ बताया गया है जिसमें रजनी  
एत्र धारण करने वाली कनकर चन्द्रमा रूप श्वेत धातपत्र को धारण करती है  
वायु से झिल्ले कमल चामर का काम करते हैं और करराजि जशोक के किल्लय  
फैलाकर उसकी विजय पताका को फहराती है<sup>५</sup> ।

१- श्लोक ० पृष्ठ ७६

२- ,, ,, ७३

३- ,, ,, ७३, ७४, ७५, ७६

४- ,, ,, ७६

५- ,, ,, ७३

कवि-समय के माध्यम से भी इस ऋतु का वर्णन हुआ है। जिसमें कामिनियों के बटावा से तिलकदुम का सिलना, स्त्रियों के ताड़न से उद्यान के कुरवक<sup>एवं</sup> अशोक वृक्ष का सिलना तथा गण्डूष से केसर तरु का सिलना बताया गया है।

केरल, चौर, कुन्तल तथा हूण स्त्रियों के तौन्दर्य<sup>?</sup> को लेकर भी इस ऋतु का वर्णन किया गया है।

इस ऋतु के वर्णन में अन्य अलंकार तो हैं ही किन्तु उदात्त रूप के वर्णन में प्रयुक्त कारण से पहिले कार्य का होना बताकर अतिशयोक्ति अलंकार अपना अपूर्व योग देता है।

वर्षा ऋतु के वर्णन में प्रकृति मानवीकरण रूप में ही आयी है जिसमें एक स्थल पर उसकी तुलना राक्षस से की गयी है जिसमें किल्ली जीम, बलाक पंक्ति दांत, प्रबल वायु के फाँके से उठी धूल से घूसरित शरीर<sup>रथा</sup>, मेघ गर्जन आवाज बताई गई है।

मानवीय अवयवों के अतिरिक्त मानवीय क्रियाओं का आरोप भी कवि ने किया है। कदम्ब पुष्प मानव की भाँति जलधारा को देखकर पुलकायमान हो जाते हैं, कुटज वृक्ष मानिनी के मान को दूर होते देख उनकी दुर्बलता की संज्ञा उठाते हैं (भयान्ता को झोंड़ देते हैं), परलवित बन-राशि नायक की भाँति बादलों से भरी दिशा रूपो नायिका को देखकर अपना कुराग प्रकट करता हुआ उनके जल कणों के रूप में जड़ किराता है और नदी (नायिका) जलधर (नायक) को देखकर उत्कण्ठित हो जाती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर भी कुकुसुक्ता (शिलोन्वु) द्वारा इस ऋतु का राज्याभिषेक कराया गया है।

- 
- १- शृंगार० पृष्ठ ७४  
२- " " ७४-७५  
३- " " ७७  
४- " " २७  
५- " " २७

तथा अन्य कवियों को भाँति बापल को देकर मयूरी के नृत्य का भी उल्लेख किया गया है<sup>१</sup>।

शरद् ऋतु वर्णन भी कवि को काव्य-प्रतिभा से जीत प्राप्त है। इसका वर्णन माघव कथानिका में हुआ यद्यपि वर्षाकाल के बाद बादलों का स्वच्छ होना, इन्द्रधनुष का दिलायी न देना, राजहंसों का कमलों को ओर जाना, मेघों से रहित चन्द्रमा का होना, काष्ठ, बन्धुक, इन्दीवर बीजक एवं नवीन मृणालों का विकसित होना, नदियों का स्वच्छ होना, सारसों को मधुर ध्वनि से सुशोभित बाहू तट का होना, <sup>आदि</sup> ~~ए~~ <sup>२</sup>वर्ष्य-विषय सामान्य है, किन्तु कवि ने इन विषयों की कल्पना को तुलिका से चित्रित करके मनोमोहक बना दिया है।

शरद् ऋतु का वर्णन भी कामदेव का विजय हेतु हंस आदि के कार्य बताकर उद्दीप्त रूप में किया है। राजहंस उसको कीर्ति, <sup>तथा</sup> सूर्य-किरण दिन-प्रतिदिन उसको आज्ञा को चारों ओर फैलाता हुई काटते गई है। यहाँ पर उसकी उष्मा विरहिणी नायिका से लेकर भी वर्णन किया है जिसमें स्वच्छ बादल के सम्बन्ध में उसके पाण्डुरों हो जाने, इन्द्रधनुष के न दिलायी देने के सम्बन्ध में हाथ से बलय के गिर जाने की कल्पना की गयी है<sup>३</sup>।

जिस प्रकार कवि ने वर्षा ऋतु का रूपक बाँधा है उसी प्रकार इस ऋतु का नायिका से रूपक बाँधा है जिसमें चन्द्रमा, कलहंस की ध्वनि, बन्धुक पुष्प, इन्दीवर, चन्दन, मृणाल, नदी की तरंग, सारसों का ध्वनि, स्वच्छ तट, विकसित बीजक को लेकर उसका नल-शिल वर्णन किया गया है।

उभयानुराग कथानिका में कवि ने शिशिर ऋतु का वर्णन किया है। इस ऋतु में उसकी तीव्र ठंढक, शीतल वायु का बहना, लोगों का अग्नि तापना कोहरे एवं यज्ञ के घुंटे से गाँवों पर आच्छादित होना, कमलों पर तुषारपात होना, बर्फ का गिरना, सूर्य के तेज का समाप्त होना, हंसों की अधिकता,

१- शृंगार० पृष्ठ २७

२- " " २६

३- " " २६

४- " " २६

कर्मन्तु का किलना, सख्यों से पृथ्वी का सुशोभित होना आदि का वर्णन जलंकारिक ढंग से किया गया है<sup>१</sup>। इसका वर्णन कवि ने स्वतंत्र और उदीपन दोनों रूप में किया है। इस ऋतु में माननियों का मान दूर होना, पथिकों का असौ खिन्नियों का याद आना कई बार वर्णित है।

वर्षा ऋतु के आन यहां भी विरहिणी नायिका को दिया गया है --

प्रिय तमैनेव शरत्समेत इत्युज्जितासु म्लान मुह कमलान्तिष्ठ  
मृणाल कल्पमात्र मेवामरणमासकल्पन्तोऽपु तुलिनकणकलित जलतया  
पापिञ्जलमुदहन्तोऽपु श्री लोपमोग शुन्नासु वियोगिनोऽपि प्रविभारमानासु  
कमलदीर्घिकासु ।<sup>२</sup>

किन्तु जैसा कि वर्णन से स्पष्ट है कि यहां पर वर्षा ऋतु के आन नायिका दिशा न बनाकर कमल-दीर्घिका काई गई है।

इसके अतिरिक्त <sup>भी</sup> नायिका के रूप में यहां प्रकृति जाई है। अपने आनंद भूत सूर्य (पति) को अस्तप्राय (मृतप्राय) देखकर संकुचित होने वाली कमलिन को कवि शोक प्रकट करने वाली नायिका के रूप में लेता है<sup>३</sup>।

उस रूप के अलावा प्रकृति मानव को मांति कार्य करती हुई भी जाई है। उदाहरणार्थ कुन्वलतिकावर्ष में किलो हुई कलियों को देखकर कवि कल्पना करता है कि ये स मारे प्रिय-मुख्य को परागहीन होने के कारण उसे छोड़ कर प्रियगुलतावर्ष की ओर जा रहे हैं, ये कितने <sup>स्वार्थी</sup> भक्तकी हैं -- यह सोचकर कलियां विस्मित हो रही हैं, इसी प्रकार अस्त होते हुए सूर्य के सम्बन्ध में कवि यह कल्पना करता है कि सूर्य सौत के मय से हा दक्षिण दिशा का आश्रय ले लेता है। इसी प्रकार गांव में चारों ओर अग्नि जलने से उठे हुए धुं के सम्बन्ध में कवि कल्पना करता है कि गांव शिशिर ऋतु की ठंडकता से बकने के लिए कच्छ की ओर दूर हो<sup>४</sup>।

१- अंगार० पृष्ठ ६७-६८

२- " " ६७

३- " " ६७

४- " " २६

उसके अतिरिक्त चारों ओर फैली शरद्-अद्रिका कामदेव को कोपित  
करायी गयी है । इस प्रकार यहाँ पर पुरा शरद् ऋतु वर्णन उदीपन रूप में हुआ  
है । जिस प्रकार शरद् ऋतु का वर्णन विरहिणी नायिका एवं नायिका के अवयवों  
से तपक बाँध कर उदीपन रूप में किया है उसी प्रकार शिशिर ऋतु का वर्णन  
अधिकशक्तः विरहिणी नायिका से सम्बन्धित करके किया है ।

जन्म ऋतुओं के समान ग्रीष्म ऋतु का भी वर्णन आकर्षक हुआ है ।  
जन्म ऋतुओं की अपेक्षा यहाँ उदीपन रूप कम और स्वतन्त्र रूप अधिक वर्णित हुआ  
है । सूर्य का तेज होना, पशु-पक्षी जलो का डाला का आश्रय लेना वृद्धाँ में  
पत्तियों का कम होना, एक तरह से उनमें रुझावा का आ जाना, गर्म बालुओं से  
पत्तियों का पीछित होना, त्रिरीटिका की ध्वनि की प्रचानता होना, जल्दा-  
जल्दी दावाग्नि लगना, नदियाँ और तालाबों का जल सूखना, जलाशयों में पानी  
कम हो जाने से बगुलों का पानी में घुस कर मछलियों को पीछित करना, सेवाल  
मंजरी स्मूह में धूप से संतप्त होकर बगुलों का विक्रम लेना, बन महिषों का गर्मों  
से संतप्त हो कर जोरों से साँस लेना तथा पीठ को झुलाना, मृगों का वृद्धाँ या  
काण्डियों की शाय्या में बैठकर जुगाली करना, पृथिवी के भीतरी भागों में पड़ती  
सूर्य की ऊपर उठती किरणों से मृग वृष्णा की भ्रान्ति करके हरिणों का डबर  
उधर भागना, बन बराहों का सूर्य की तीव्रता से संतप्त होकर अपने ऊपर कीचड़  
झोझा -- आदि का वर्णन है ।

यहाँ प्रकृति मानव की भाँति कार्य करती हुई जायी है । चोरिटीका  
की आवाज किरणों से संतप्त बनखली की करुण प्रकार (पुल्कार) लगती है,  
सूर्य लम्बे दिन हो जाने के कारण निरन्तर चक्कर लगाने से धक्कर च्यास में  
ध्याकुल होकर सारे सरोवरों का जल पी लेता है और नदियाँ अपने पड़ोसी  
(तीरवर्ती वृक्षा ) के सौन्दर्य को सूर्य द्वारा नष्ट होता देखकर पड़ोसी होने के  
नाते उनके दुःख से कृशता को धारण करती है ।

मूलदेव कथनिका में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन उदीपन रूप में अधिक है ।  
यहाँ पर कामी, कामिनियों एवं उनके वासगृह को कामगिरियों का अधिक वर्णन है

एक स्थल में ही यहाँ पुनरावृत्ति हुई है । पहिले वर्णन में मृग पेड़ों के नीचे बैठ कर चुगली करते हैं और यहाँ चञ्चुवाक मिथुन आपस में झुल्ला कर इस का अनुभव करते हैं ।

किन्तु यहाँ के वर्णन में यत्र तत्र ही काव्य-प्रतिभा का परिचय होता है कनक केशकी के सम्बन्ध में किया गया एक सर्वथा श्लाघ्य है -- किन्तु प्रकार दुःसह प्रतापी राजा तब दूर सोने को बुराने के कारण चौर को लोहे की जंजीर से बंध कर कोष<sup>में</sup> बाहर निकालता है उस प्रकार कठोर ग्रीष्म जलियाँ काली लोहे की जंजीर से बांधकर नवान् तुषा के अमान इयामल लम्बी फली उपकोश से चौर रूप केशकी को निकालता है ।

इस प्रकार कवि ने ऋतु-वर्णन में प्रकृति को कभी मानव के रूप में, कभी विरहिणा नायिका के रूप में कभी सहानुभूति प्रकट करने वाली के रूप में ग्रहण करके तथा कभी कवि-स्वयं का प्रयोग करके, कभी विभिन्न देशीय स्त्रियों ( केशकी स्त्री<sup>आदि</sup> ) को उपमान बनाकर इन ऋतुओं का वर्णन<sup>किया</sup> हुआ है । पुरखासियों के वर्णन में ग्रीष्म, वर्षा, शरद् ऋतुओं का संकलन किया है --

‘ग्रीष्म इव प्राप्तवृत्तिर्गमः प्रावट्-स्वयं (स्फ० ५ बी० ) इवाट्टुष्टीग्रक शरत्-स्वयं इव निर्मला-वररुचिः, तुहिनतुरिव सदात्महितोपचितः शिशिर इव सर्वदातापरहितः ।’

ऋतु-वर्णन के अतिरिक्त कवि ने सूर्यास्त, सूर्यादय, चन्द्रास्त और चन्द्रोदय का वर्णन भी सफलता के साथ किया है । लावण्य-सुन्दरी कथानिका के प्रसंग में किर गद्द सूर्यास्त के वर्णन में पके धानों में कौल स्तूहों का झुल्ला तथा बरागाहों से लौटती गावों का वर्णन करना नहीं भूले हैं । सूर्यास्त के समय उल्टी परछाई का होना, सायंकाल को झुल्लाता जानना, पेड़ों से झनती हुई धूप से मुशोषित उपवन भूमि की विचरण करती हुई कन्दकताओं के आलम्बक से रंजित वरण-विहाराँ से उत्प्रेक्षा करना, लाल किरणों से मिश्रित जलाशयों के जल की सौम्य

१- शृंगार ० पृष्ठ ~~५५~~ ४५, २५.

२- " " " ५६

३- " " " ५

हो ही जाने वाले विश्वोदय से विदीर्ण बहुबाण मिथुनों के हृदय के स्वत से कल्पना करना कवि की मौलिकता है। कवि ने सूर्यास्तकालीन इन प्राकृतिक दृश्यों में पादपच्छाया की प्रतापी दिशा को और जाते हुए जोकितेश्वर का वियोग न सहन कर उन्मत्त के कारण उसी का अनुकरण करने वाली नायिका बताकर तथा संध्या की लाल किरण को तन्तु से लालवस्त्र किने वाला जुलाहा बताकर मानवीय रूप में प्रकृति की ग्रहण किया है।

इस कथा में चन्द्रोदय का वर्णन बहुत आकर्षक नहीं है। केवल उपमा अलंकार को ध्यान दिया है उसमें भी नवानता नहीं है। चन्द्रमा को केवल दिशा-रत्न। लला का स्वर्णम कणाभूषण, यामिनी ( रात्रि और लला ) के सुन्दर मुख का सुन्दर-रत्न निर्मित तिलकचिन्दु, चिम्बु का स्वर्णम दर्पण, आकाश रूप शरीर का विकसित स्वर्णम कपल, रति के हाथ की लालिमा से रंजित झीड़ा कन्दुक, कामदेव के राज्याभिषेक का कलश<sup>२</sup> आदि बताकर उन प्रसंग को समाप्त कर दिया है।

इस कथा में सूर्यास्त और चन्द्रोदय के प्रसंग में आकाश में होने वाले विविध दृश्यों का वर्णन न करके जात में होने वाले (चन्द्रोदय प्रसंग को छोड़कर) दृश्यों का वर्णन अधिक किया है। चन्द्रोदय में भी केवल चन्द्रमा के ही विविध रूप बताये हैं। एक स्थल पर अवश्य कवि ने अंशुकार की राक्षस से तुलना की है।

स्थानुराग में चन्द्रास्त और सूर्योदय का वर्णन है जिसमें आकाश की स्थिति का वर्णन किया गया है। यह वर्णन अलंकारों से रहित होने पर भी सजाव चित्र उपस्थित करता है। पीरेख पीरे अंशुकार के दूर होने, किरणों के फैलने, चन्द्रमा और तारों के क्षीण होने का वर्णन नाटकाय ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रातःकाल बोलने वाले मुर्गे की आवाज़ के विषय में कवि मांति-भांति की कल्पना करता है। कभी उसकी आवाज़ रात्रि के अन्त की बताने वाली, कभी दिन की लक्ष्मी के प्रवेश के समय बजने वाले मंगल पटह की ध्वनि और कभी

१-	शुक्र	०	पृष्ठ	४२-४३
२-	११	११		४४
३-	११	११		४४
४-	११	११		६०



मानिनी के मान को दूर करने वाले मंत्र के उच्चारण की ध्वनि लगती है<sup>१</sup>।

समय-परिवर्तन का वर्णन यहाँ अत्यन्त उत्कृष्ट हुआ है जिसमें कवि का प्रतिभा का निहार देखा जा सकता है। कल्पनाओं में किलो की अनुकृति नहीं है। यहाँ पर कवि ने प्रकृति को मानव के रूप में अधिक देखा है। प्रातःकाल विकसित कमल पर मँडराते हुए श्रमर आरपाह की भाँति रात्रि के समय कमल के अन्दर घुस कर (बन्द होकर) प्रातः काल उठकर सूर्य की किरणों तथा कुँजी से लड़नी के खिलास-भवन रूप पंख के द्वार खोलते हुए प्रतीत होते हैं, संकुचित हनुमिनो जलाहय (जलाहय) में उत्पन्न होने के कारण मूल की भाँति गुणानुसृत बँष्टा करती हुई प्रतीत होती है और लालविशा चिरप्रवान के अन्तर आते हुए पति(सूर्य) को देखकर प्रसन्न होकर अपने शरीर को सुकुम-राग से रंजित करके अद्वितीय शोभा को धारण करने वाली बधू की भाँति प्रतीत होती है<sup>२</sup>।

कवि ने प्रातःकाल के वर्णन में उल्लुखों के न दिखायी पड़ने का वर्णन सादा न करके दुर्जन से उफना देकर किया है। जैसे दुष्ट पुरुष को दुष्ट दृष्टि सामने प्रकाश के रखते हुए भी वस्तु को नहीं देख पाती है वैसे ही उल्लुखी प्रकाशित वस्तुओं को देखने में कमयी होता है<sup>३</sup>।

प्रातःकाल मन्द होते दीपक के सम्बन्ध में कवि कल्पना करता है कि पाँगी के समान वैराग्य को धारण कर वह निर्वाण(मौक्त तथा मुक्तना) को प्राप्त होता है<sup>४</sup>।

इस वर्णन में स्वतंत्र रूप से भी प्रकृति को कवि ने अपनाया है। प्रातः काल को कर उठे हुए पक्षियों का वर्णन उत्प्रेक्षा वादि कर्तकारों के साथ न करके उनकी स्वाभाविक मुद्रा का वर्णन किया है। जो कर उठने के पश्चात् कौन सी क्रियाएँ होती हैं, उन सब का वर्णन करके कवि ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है<sup>५</sup>।

इस सुयोक्ता के वर्णन में एक स्थल को छोड़कर पुनरावृत्ति नहीं है<sup>६</sup>।

१-	श्लोक०	पृष्ठ	६०
२-	॥	॥	६०
३-	॥	॥	६०
४-	॥	॥	६२
५-	॥	॥	६०
६-	॥	॥	६०, ६२

पर्वत वर्णनों में बाण का भाँति विन्ध्याटवी का वर्णन इन्हीं में किया है। उसके रूप और भयावह दोनों रूपों का वर्णन है। किन्तु शैली की दृष्टि से बाण के विन्ध्याटवी-वर्णन से पर्याप्त भिन्नता आ गई है। बाण के इस वर्णन में भी दुःखता नहीं आने पायी है उसमें लक्ष्य सौन्दर्य देता जा सकता है किन्तु बाण का यह वर्णन अत्यन्त विरह हो गया है। यह अवस्था है कि इन्हीं अन्य कवियों की भाँति पैड़ों को कड़ी नहीं लगा दी है। मरिचि, बलि, लवंग, पुग, लज्जूर, कोचक तथा ताड़ वृक्षों का ही उल्लेख किया है। कवि ने इस प्रसंग में एक वृद्ध बन्दर तथा हाथियों के समूह का सविस्तर वर्णन किया है। वावाग्नि से भयभीत बन्दर की अवस्था और भयभीत हाथी की अवस्था का प्रायः एक-सा ही वर्णन है। हाथी का वर्णन प्रायः पूरी एक पृष्ठ में हुआ है। सरोवर तट पर पहुँच कर पानी के साथ हाथियों की क्रीड़ाओं का वर्णन सविस्तर किया है। यहाँ स्थाव रथों पर ही कवि की काव्य प्रतिभा का परिचय होता है।

विन्ध्याटवी का वर्णन स्त्री का आरोप करके मोदिया गया है। इन्द्रकमय बांस(वेणु) के पैड़ों से स्त्री के रोमांच की, मन्द वायु से कोचक पैड़ के अन्दर से उठने वाली ध्वनि से उसके मधुर गान को, वायु से छिल्ले किसलयों से उसके नृत्य को, सूर्य से तथा शिला से निकले हुए जलरस से उसके पीने को, पवन से छिल्ले ताड़ी वृक्ष के पत्तों से उसके ऊपर फँसा छिलाये जाने को तथा पक्षियों के कलख से उसके बातुनी होने की कल्पना करके कवि विन्ध्याटवी के लक्ष्य सौन्दर्य को नेत्रों के समक्ष रखता है<sup>२</sup>।

कवि ने उसके भयंकर रूप के वर्णन में उसे कनरी, जापति और भय को लोभा काकर इन्हीं बातों को कर्त्त प्रकार से उपक अलंकार के साथ वर्णन किया है<sup>३</sup>।

मलसुन्दरी कथानिका में कवि ने एक और पर्वत का वर्णन किया है किन्तु उसके भयानक रूप का वर्णन न करके उसकी विशालता एवं समृद्धि का वर्णन किया। शिल्पायुष्मा और विरोधाभास अलंकार से उसे अलंकृत तो किया ही है साथ ही वहाँ

१- झुंगार० पृष्ठ ५०-५२

२- " " " ५२

३- " " " ५३

४- " " " ७८-७९

उत्प्रेक्षा अलंकार से कवि की उद्विग्न कल्पना-शक्ति का परिचय होता है। कवि कभी स्वयं वृद्धा से तो कभी चोटी पर दिलायी पड़ने वाले चन्द्रबिम्ब से स्वयं की कल्पना करता है। उसी प्रकार वहाँ को मणियों को कान्ति को नवीन कल्पना की दृष्टि से कवि कहे प्रकार से, कभी विविध रत्नमणियों को दिव्य जामा से चन्द्र की सार्धा से चन्द्रधनुष धारण करते हुए कभी नाल्मणि स्फटिक मणि और मकराग मणि को निकली विविध कान्ति से उदयाचल और अस्ताचल की सार्धा करने के हेतु विविध रंग-बिरंगे बाणों का निर्माण करते हुए, कभी नाल्मणि की कान्ति से बनबिहार से कभी मौलो-पालो शबर सुन्दरियों के विकास हेतु वंशावन का निर्माण करते हुए और कभी ऊपर उठता स्वर्णम कान्ति से पटुबन्ध का निर्माण करते हुए देखा है। वहाँ पर निर्भर से गिरता हुआ स्फुटित जल फेंक चुं सपुश और चोटी पर विद्यमान तारे तब से हिलने के कारण राड़ से टूटने से निकली हुई बड़ी-बड़ी मीतियों के सपुश लगते हैं।

यहाँ प्रकृति को बार मानवीय रूप में आगे है। एक बार पर्वत को प्रियतम और गगन लक्ष्मी को उमका पत्नी तथा दूसरी बार कनराजि को प्रियतमा बताकर, युवती के अंशों का आरोप करके वर्णन किया है।

यहाँ पक्षियों में तोना और दाह्युह जैसे पक्षियों को स्थान मिला है।

मोज ने समुद्र का वर्णन किया है किन्तु उसके बहुत से अंश अनुपलब्ध हैं। उसके प्राप्त अंशों से ज्ञात होता है कि वहाँ उठती हुई ऊँचा लहरें, बड़वाग्नि, उसके तट पर मधुर ध्वनि करते हुए झरनों से सुशोभित पत्थर, उसमें पड़े हुए डिण्डीर, चन्द्र स्वं सूर्य के प्रतिबिम्ब जादि वष्य-विषय को होंगे। कहीं-कहीं अलंकारों के माध्यम से वर्णन-प्रसंग को आकर्षक बनाया है। कवि उठती हुई लहरों से आकाश लक्ष्मी के आर्छित करने को उत्प्रेक्षा करता है, उसमें पड़े अनेक विदुम लताओं को कवि बहुत-सा रूप धारण करने वालो बड़वाग्नि के रूप में देखा है। बीच-बीच के वर्णन अज्ञात होने के कारण कवि को काव्य-कल्पना अस्पष्ट है।

धारा नगरी के सरोवर वर्णन में कवि ने उसके हंगने, नृत्य करने, कटाप फेंकने जादि का वर्णन करके प्रकृति को मानवीय रूप में अपनाया है किन्तु यह वर्णन

यह वर्णन-प्रसंग अन्य प्राकृतिक दृश्यों के समान न तो अत्यधिक सरल हो पाया है और न उन्हें विशेष नवीनता का परिचय होता है ।

इन प्राकृतिक वर्णनों के अतिरिक्त प्रकृति धारा नगरी के वैभव-वर्णन में भी जाया है । अलंकारों में जो स्थान उसे मिला है वह तो है ही साथ ही वहाँ सूर्य और चन्द्र की स्थिति का भी वर्णन किया है । इसी प्रकार विविध मणियों के सम्पर्क से उत्पन्न चन्द्रकिरणों का क्लान्ति के विविध रूपों का वर्णन है । सूर्य किरणों के सम्बन्ध में मणियों के सम्पर्क से विलीन होने की बात न कह कर विकसित होने की बात कही है ।

झंगार मंजरी के वर्णन में नेपाल-भूमि, उद्यान-भूमि, प्राग्ज्योतिष-दिशि कैलाश, नारिक प्रदेश, शीणाथर, किष्किन्ध गुफा, क्राँवगिरि, लिमांचल, कैलाश, अंजनगिरि, मंदर पर्वत की उपमान रूप में स्थान दिया है ।<sup>१</sup>

इस प्रकार इस काव्य में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में स्रु-वर्णन का अधिक तथा विस्तार के साथ वर्णन किया है । प्रायः सभी स्रुएं जायी हैं । समय-परिवर्तन का प्रसंग केवल दो बार ही जाया है । पर्वतों के कई नाम वैसे तो नल-शिल वर्णन में मिलीं किन्तु कल्पना-वैभव से परिपूर्ण वर्णन केवल दो पर्वतों का ही है । ये प्रकृति-वर्णन कवि की अद्वितीय काव्य-क्षमता एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हैं ।

### तिलकमंजरी में प्रकृति-वर्णन--

धनपाल ने अपने काव्य में प्राकृतिक दृश्यों को पर्याप्त मात्रा में स्थान दिया है । उतामण्डप, जलमण्डप, उद्यान, अरण्य, पर्वत, समुद्र, सरोवर एवं समय-परिवर्तन आदि का वर्णन इस काव्य में कई बार मिलता है । किन्तु कवि का उन <sup>सब</sup> दृश्यों के वर्णन में <sup>अल्प</sup> विशेष उत्साह परिलक्षित नहीं होता है । अतः उनमें काव्यात्मक अनुभूति होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसे स्थलों पर कवि को समास-भूमिष्ठ शैली का ही मोह परिलक्षित होता है ।

किन्तु काव्य में कुछ ऐसे नरक <sup>भी</sup> हैं जहाँ कवि को काव्य-प्रशंसा कुतकण्ठ से भी की जा सकती है। कहीं-कहीं पर जलवार नादि नहीं हैं किन्तु कवि का ~~श्र~~ परिस्थितियों पर विशेष ध्यान होने के कारण वे प्रसंग अतिशय सौन्दर्य ले जाते हैं।

इस काव्य में कालपरिवर्तन के प्रसंग कई बार आये हैं<sup>२</sup>। कई बार तो सूर्यास्त चन्द्रोदय आदि का वर्णन मात्र कर दिया गया है<sup>३</sup>। कहीं पर नारा के वैभव-वर्णन में सूर्योदय और चन्द्रोदय का वर्णन है। किन्तु उस वर्णन में कवि को निजी विशेषता कुछ माँ परिलक्षित नहीं होता है। यही ऊँचे प्रकार से रसालि गति होकर सूर्य की ~~स्तुति~~ स्तुति करना, मारुति लक्षण द्वारा रवि के रथ के घोड़ों का रोकना, और चित्रियों के मुख से लज्जित होकर चन्द्रमा का <sup>काला</sup> कलना होना ~~ले~~ आदि वर्णित हैं।<sup>३</sup>

स्मरकृत के रीतानियों के साथ समुद्र पार करने के पश्चात् जो सूर्योस्त तथा सूर्योदय का वर्णन किया है उसमें आकाशगत शिथिलि के परिवर्तन का वर्णन नहीं किया है। सूर्यास्त के समय समुद्र की पूजा तथा सूर्योदय होने पर प्रयाणपट्ट, तथा मंगल तुरही का बजना, लोगों का कार्य करने के लिए निकल पड़ना, सड़कों का चारा खनना, अग्नि का जलाना, साना पकाना, रीतानियों के बीच कौलाहल होना, हाथनी हौड़ने के पल्ले अच्छी तरह से उले देल लेना, आदि का वर्णन किया है<sup>४</sup>।

कवि द्वारा किए गए मध्याह्न समय का वर्णन यद्यपि इसी प्रकार है किन्तु उसमें उदयत सौन्दर्य जा गया है। इस वर्णन में अन्य कवियों को हाथ किंबिदपि नहीं ~~ले~~ देला जा सकता है। इसमें गर्म हवा का चलना, पेड़ों को हाथा में शान्ति मिलना, सड़कों पर सन्नाटा हाना, कुहों की स्तुति-माठ करना, हाथों का पुस्तक बन्द करना, ब्राह्मणों का सरकट पर नहाने जाना, ~~क~~ कौठों का साना देना, चौका समाप्त करके आंगन का छोपा जाना आदि दैनिक कार्यों का

१- तिलक ० पृष्ठ ११-१२, ६२, ६६, ७४, ६६, १२३-२४, १४१, १५०-५१, १७७-७८, १८७-८८, २३७-३८, ३२६-३०।

२- " " ६२, १७७-७८, १८७-८८।

३- " " ११-१२

४- " " १२३-१२४

५- " " १४१

अधिकांश वर्णन किया है ।

दो वर्षों पर ही कावि ने यहाँ पर काल्पनिक वर्णन किया है । एक बार दूसरे के दुःख का निवारण करने वाले राजा मेधवाहन के जात सूर्य-किरणों से नतमस्तक मध्याह्न का दुःख निवेदन करने के लिए जाना बताया गया है और दूसरी बार प्रातःकाल के कल्पवृक्ष हरिस्तुम्भ ( अंशुकार ) को लेकर तथा उदयाचल से तारा तथा पुष्पाँ को लेकर अरुण-नारायण से प्रेरित होकर सूर्य के आकाश-मार्ग में स्नान करने को इच्छा से आकाश के मध्यमार्ग में पहुँचने का वर्णन किया गया है ।

राजा के स्वप्न देखने के पूर्व वर्णित हुआ सूर्योदय यथार्थ संक्षेप में है किन्तु वहाँ स्थल-जगत् का वर्णन न करके एक स्थल की झाँड़कर प्राकृतिक सौन्दर्य का निरूपण किया है । यहाँ उसका काल्पनिक वर्णन होने के कारण प्रकृति का कल्पित रूप कहा जा सकता है ।

वज्रायुध और समरकेतु के बीच होने वाले युद्ध की समाप्ति के पश्चात् वर्णित रात्रि के अन्त में प्रकृति सहानुभूति प्रकट करती हुई तथा रस का पोषण करती हुई आती है ।

वज्रायुध की शारपालिका समरकेतु को दुःसमरी कहानी सुना रहा है तभी रात्रि का अन्त हो जाता है । उस समय रात्रि मानो समरकेतु की दुःसमरी कहानी सुनकर दुःस्वप्न से जाई दृष्टि क्लमन्नी वाली ( तरलतारका ) होकर क्षीण हो जाती है । वर्ग में जाते हुए वीर योद्धाओं का गाढ़ आलिंगन अप्पराहं करती है जिससे उनके हार बूट जाते हैं , उन टूटी हुई मोतियों की वर्णन गगन ओस के रूप में करने लगता है, रणभूमि के रक्त को देखकर चन्द्रमा बस्ताकल पर जाकर मुञ्चित हो जाता है, बालाहक नामक अंगूठा के प्रभाव से पराजित समरकेतु के अमान सूर्य से पराजित नक्षत्र-राशि पराजित हो जाती है, युद्धों के प्रहार शान्त

१- तिलक० पृष्ठ ६६

२- " " ६६

३- " " ६६

४- " " ६ ७३-७४

हो जाने से निर्वाक पक्षियों को जाने-जाने का अवसर मिलने लगता है, निरन्तर पहुँचते हुए योराजों से पूर्णपण्ड किन्तु <sup>जाता है</sup> जिससे उरते निकले हुए रक्तके रूप में सन्ध्या फैलने लगती है, रण के भयानक दृश्य को देखकर भयभीत हुई रात्रि भागने लगती है और सूर्य हल से पराजित हुए स्मरकेतु को देखने के <sup>कारण कुछ</sup> क्रोधित होकर सामने वा जाता है<sup>१</sup> ।

स्मरकेतु के सैनानियों के साथ समुद्र पार करने के बाद वर्णित किया गया रात्रि-वस्त और सूर्योदय का वर्णन कभी मानव्राणकरण रूप में और कभी अतीव रूप में हुआ है । इस वर्णन का प्रारम्भ कथावस्तु से सम्बन्धित करके किया गया है जूँकि स्मरकेतु अपना समुद्र यात्रा समाप्त कर चुका है, अतः अन्कार भी सामुद्रिक यात्री की भाँति (चन्द्र) किरण रूपी रथों का वाध्य लेकर चन्द्रनगरी से सम्पूर्ण आकाशरूपी समुद्र को यात्रा करके दूसरी (पश्चिमी) दिशा रूपी ध्यानपात्र से उतर जाता है और तारा समूहों के प्रस्थान से उठी हुई मूल से सन्ध्या-छात्रिणा आकाशरूपी मार्ग में छा जाती है ।

यहाँ पर सूर्योदय का वर्णन जूँकि समुद्रतट से सम्बन्धित है अतः इस और कवि ने विशेष ध्यान रखा है। समुद्र में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा के सम्बन्ध में कवि क कल्पना करता है कि वह अपने बंचल तारंग रूपी छार्थों से मन्दराक्ष द्वारा फेंके गए ~~क~~ क्षीमवस्त्र के समान चन्द्रमा को फकड़ लेता है और पक्षीगण समुद्र को जगाने के लिए गीत गाते हुए प्रतीत होते हैं<sup>२</sup> ।

इसके अतिरिक्त समुद्र में रहने वाले पक्षियों का बाह्यार डूबने के लिए निकलना, महबार्हों का नदी-तट पर जाना, वायु का धीरे-धीरे गमे होना, प्रभातकालीन वायु से शंखों का मुखरित होना, सूर्य की रोशनी देखकर बैंगलों का भागना आदिकी भी वर्णित है ।

इस प्रसंग में कवि ने एक स्थल पर आकाश को माप दण्ड (तराजू) भी बना लिया है जब वह वर्णन करता है कि उसका एक भाग (दिशा रूपी फलड़ा)

१- तिलक० पृष्ठ ६६

२- " " १२०-५१

३- " " १२०-५१

नक्षत्रों के भार से झुक जाता है और दूसरा भाग (पूर्व दिशा की फलड़ा) ऊपर उठ जाता है (दिशा विलोमी देने लाती है) ।

स्मरकेतु हरिवाहन को जेले डूबने का निश्चय कर लेता है उस समय का किया हुआ सूर्यास्त का वर्णन अधिकांशतः स्मरकेतु का मंगल विधान करने वाले व्यक्ति के रूप में हुआ है<sup>२</sup> । उसी प्रकार उचित होते हुए चन्द्रमा का वर्णन है<sup>३</sup> । यहाँ पर चन्द्रोदय तथा अंधकार के फैलने का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसमें विशेष गान्धरी नहीं है<sup>४</sup> ।

मंगलविधान के अतिरिक्त तिलकमंजरी के विधान में दुःस्ति हरिवाहन की गन्तव्यता देने एवं महातुमुति प्रकट करने के रूप में कवि ने सूर्योदय का वर्णन किया है । उसके अतिरिक्त हरिवाहन के काम-सोझ होने के कारण कवि ने यहाँ प्रकृति का उदीपन रूप भी वर्णित किया है किन्तु प्रातःकाल सरोवर तट पर सोने वाले सारस , कौच, कलहंस की विगन्तव्यापी ध्वनि को कामदेव द्वारा उठाई गई विषय पताका स्वप्न बताया गया है<sup>५</sup> ।

मलयसुन्दरी को कथा समाप्त पर वर्णित किए गए कालपरिवर्तन का प्रारम्भ क्यावस्तु से सम्बन्धित है । हरिवाहन की कुसुमता का संदेश उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाने वाले शुक के विषय में हरिवाहन मलयसुन्दरी से पूछता है और मलयसुन्दरी भी ज्ञाने अनभिज्ञ है, उसी समय सूर्यास्त हो जाता है और सूर्य नीले पंख तथा लाल कौच वाले शुक का क्रम से अपने घरे घोंड़े तथा हाथिया को जागे करके अनुकरण करता हुआ वाकाश में जा जाता है<sup>६</sup> । उसके अतिरिक्त इसका स्वर्ण तथा ध्वनि-प्रधान वर्णन भी किया गया है । कहीं-कहीं पर प्रकृति मानव की भाँति कार्य करती हुई वर्णित की गयी है । एक स्थल पर नायक-नायिका के व्यवहारों का आरोप भी किया गया है जब कवि वसुधाग्नि से जलते समुद्र की कड़ाही में अस्तावल से गिरते हुए सूर्य को पक्षिपत्तों के कलाव से लेकर प्रदीप का

१-	तिलक० पृष्ठ	१५०-५१
२-	॥	१६७
३-	॥	१६८
४-	॥	१६८
५-	॥	२५३
६-	॥	३५०-३५१



व्याकुलता से हयामवर्ण का ही जानावर्णित करता है । एक स्थल पर समय-वक्र को योग बनाकर उसके द्वारा मधुर ध्वनि करने वाले ध्रुवों से वेष्टित चरण वाले चक्रवाक के जोड़ों को आपस में मिलाने से रोकने के लिए कमल-पौ दायिका में बन्द करना वर्णित हुआ है । उसके अतिरिक्त चंद्रोद की ध्वनि, पक्षियों का गीत शरम पक्षी का ऊपर पर करना, उल्लुओं का दिखाया देना, चक्रे की नांद हरना वर्णित है । यहाँ फले हुए अंकार की समयता का सामान्य रूप ही लीखा है उल्लेखी कोई अन्वय नहीं है । हरिवाहन की दूधकर स्मरकेतु और हरिवाहन एक साथ बैठे हैं उन समय कवि ने समय-वक्र का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में किया है । यहाँ प्रकृति स्वतन्त्र-रूप के राग-हाथविनिम्न क्रिया-कलापों को करती हुई मानव के रूप में भी जाती है । स्वतन्त्र-रूप-वर्णन में चन्द्रमा की कान्ति का दूर होना, ताराओं का दायिनी बीच के सदृश लगना, अंधकार का मूषी की तरह प्रतीत होना, ज्योत्स्ना से विहीन चन्द्रमा का मकड़ के जाल में के सदृश लगना वर्णित है । चन्द्रम को एक व्यक्त मान कर उसका पैर(किरण) स्मेटना, सूर्य को धाँवर तथा बंधल ताराओं (पुतलियाँ) से युक्त अंधकार को मल्ली मान कर सूर्य का किरण स्पी पाले महलियाँ को फकने के लिए फेकना, त्रियामा (तीसरा पहर) को आक्रमणकारी मान कर उसका लाल किरण स्पी हाथों से हाथा मारना बताकर प्रकृति का मानवीय रूप कवि ने अपनाया है । अंधकार को राजा हरिवाहन का शत्रु बताकर सूर्य के द्वारा उसका नाश करना, चक्रे के जोड़े को मिलाकर सूर्य के द्वारा हरिवाहन की भी इच्छा की पूर्ति होते दिखाना, सूर्य के ताप के फैलने का वर्णन करके हरिवाहन के प्रताप के फैलने की कल्पना करना, तथा कमल का हरिवाहन को मुक्त-शोभा को देखने के लिए आना आदि का वर्णन करके कवि ने प्रकृति और मानव का सम्बन्ध दिखाया है ।

विरह-वर्णन में कवि ने प्रकृति का अधिकारितः उल्लेख किया है । यहाँ एक-दो पंक्तियों में उनका वर्णन करके उस प्रसंग को समाप्त कर दिया है । शरद-काळ का दो बार वर्णन हुआ है किन्तु दो पंक्तियों में ही । इसी प्रकार ग्रीष्म

१- तिलक० पृष्ठ ३५०-३५१

२- " " ३३७-३८

३- " " ८२, १८०-८१

शु का प्रसंग वी बार आया है । एक बार तो उसका उल्लेखमात्र कर दिया गया है, दूसरी बार उसका उद्दोषक रूप वर्णन करना कवि ने बाधा किन्तु उत्तम वह उपलब्ध नहीं हो पाया । केवल जो राजा हरिवाहन के तिलकर्मजरी सम्बन्धी विरह को उद्दोष्य करने वाला, दिन को बड़ा करने वाला तथा निरन्तर उष्ण वायु फैलाने वाला बता कर इस प्रसंग को समाप्त कर दिया है ।

वर्षा-काल का वर्णन अवश्य काव्य-प्रतिभा का योजक है । वर्षा राजा से महातृप्ति प्रकट करती हुई आती है । सम्पूर्ण विश्व का कल्याण करने वाली वर्षा ग्रीष्म और कामदेव दोनों ने एक साथ पीड़ित राजकुमार हरिवाहन के कष्ट को दूर करने के लिए आ जाती है और अपनी प्रबल धाराओं को पूरे आकाश में फैला देता है, उसके जल से हरी-भरी पृथ्वी उसके निरन्तर जागने से जड़ीभूत नेशों को शीतल करना चाहती है, सुगन्धित शीतल वायु उसके अंग के ताप को दूर करने का प्रयत्न करता है, मानसरोवर जाने के उत्सुक राजहंस राजा का संदेश लेकर तिलकर्मजरी के पास तत्र दिशा को जाने लगते हैं, कमल राजा के विरह को दूर करने में अमर्थ होने के कारण लज्जित होकर वर्षा से भी सररोवर में मुक्त छिपा लेते हैं, इत्यादि ।

इसके अतिरिक्त उसके सामान्य स्वरूप-वर्णन में कौयल और चातक की पुकार, मैदकों की टरंटर, अर्यादित नदियों की बलबल, बादलों की मड़मड़ाहट, बिजली का चमकना, कामुकों का धैर्य दूर होना, जादि का वर्णन राजा के भावों को उद्दोष्य करने वाला है । क्योंकि कवि ने राजा के विरह-वर्णन में इस वायु का वर्णन किया है ।

मलयसुन्दरी के विरह-वर्णन में कवि ने वसन्त शु का वर्णन किया है । अतः वहाँ पर कवि का उद्देश्य प्रकृति को उद्दोष्य रूप में ग्रहण करना ही है । इसमें कवि ने वसन्तकालीन वृक्षों का निकलना तथा पुष्पों का विकसित होना ही अधिकारणतः वर्णित किया है । अत्र तत्र रात्रि का कम होना, वायु द्वारा मनिनिर्वा का मान दूर होना जादि भी वर्णित हुआ है । यह वर्णन अत्यन्त अतिशय है

- १- तिलक० पृष्ठ २०५  
 २- ११ ११ २०६  
 ३- ११ ११ २०६-८०  
 ४- ११ ११ २०६-८०

और अलंकारों को किन्हींदपि स्थान न मिलने के कारण यहाँ प्रकृति का अलंकृत रूप नहीं है<sup>१</sup>। कवि-रस्य को इस प्रसंग में स्थान मिला है<sup>२</sup>।

स्मृद्ध का वर्णन कवि ने एक स्थल पर अपनी दृष्टि से और दूसरे स्थल पर मात्र-तारक की दृष्टि से किया है। कवि ने उसकी वाह्याकृति, जल में प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द्र, नदियाँ का गिरना, फेनराशि, तरंग, बावत, वज्राग्नि, ज्वार-माटा, तट पर बिलरी मोतियाँ, पानी पीते हुए बावल, उसकी नाली कान्ति आ का अलंकारिक ढंग से वर्णन करके अपनी काव्य-कल्पना की नवीनता का परिचय दिया है। इस वर्णन में बिलरी मोती के सम्बन्ध में कवि हरिष्यास के वनाःस्थल से दूटे हुए महाबराह के दांत की तथा सधु-कैटम से <sup>कुद</sup> ~~त्रैभिक~~ होकर विष्णु द्वारा बहार गग पञ्जन्य शंल से निकली मोतियाँ की कल्पना करता है<sup>३</sup>। कवि को स्मृद्ध कभी पाताल का पिधान, कभी त्रिभुवन की क्षुःशाला की मणिमयभूमि, कभी आकाशकुवलय का जन्मवाता -सरोवर कभी काल का साक्षात् रूप आदि क्लियायी देता है<sup>४</sup>।

कवि ने इसकी दुष्टपुत्र की भाँति वज्राग्नि से पीड़ित होता हुआ, वैत्र-यष्टि (बाँस के पैड़) को ध्वर-उपर घुमाने वाले क्षरपाल की भाँति वायु द्वारा दिशाजों में घुमाया जाता हुआ, नदी-प्रवाह से नृत्य करता हुआ तथा बसो वज्राग्नि रूप जीम से निरन्तर जल के पीने पर भी प्यास के शान्त न होने से फेनराशि के रूप में अट्टहास करता हुआ चित्रित करके उसे मानव का रूप दिया है<sup>५</sup>।

दूसरी बार स्मृद्ध का वर्णन तारक करता है जिसमें उसके म्मानक स्वरूप को अधिक चित्रित किया गया है। विशाल जलधर, मानपत्रों को उलटने में समर्थ ऊँची भँवर, स्थान-स्थान पर यात्रा के उत्साह को शिथिल कर देने वाले चत्पर, मकर, नग्न, शिङ्गार, मर्म, सिंघमकर, काले कमठ तथा तिमिंगिल महालियाँ आदि यहाँ वर्णित हैं<sup>६</sup>।

१-	स्मृद्ध	पृष्ठ	२६६-६७
२-	तिलक	॥	२६७
३-	तिलक	॥	२६६-२७
४-	॥	॥	२२०
५-	॥	॥	२६० २२३
६-	॥	॥	२४५

काव्य में कुछ सरोवरों का उल्लेख मात्र कर दिया गया है। कवि की विशेष रुचि कैवल्य अदृष्टपारा नामक सरोवर के वर्णन में ही रही है। यह सरोवर काव्य में प्रमुख स्थान पाए हुए है। नायक-नायिका, उपनायक-उपनायिका तथा अन्य सभी पात्र यहीं स्फुटित होते हैं। अतः प्रायः प्रत्येक पात्र की दृष्टि से इस सरोवर का वर्णन हुआ है। हरिवाहन द्वारा दृष्ट चित्रमट में बंक्ति इस सरोवर के सौन्दर्य-वर्णन में तथा जब वह स्वयं उस स्थल पर पहुँच कर उसका सौन्दर्य-वर्णन करता है तो उसमें कोई सौन्दर्य नहीं है। सामान्यरूप से वृक्षा आदि का उल्लेखमात्र कर दिया है। अरकेतु द्वारा दृष्ट इस सरोवर का वर्णन कहीं अधिक जाकर्षक हुआ है। वर्णन में विद्युत् है। यह वर्णन कवि और अरकेतु दोनों की दृष्टि से है।

कवि उसे त्रिलोकी-स्ता के जल से भरा जालबाउ, घात्री के नाभिमंडल, दिशा के दर्पण, अम्बरतल के प्रतिबिम्ब, फणोन्द्र के लीलाङ्गुल आदि के समस्त तो देखता ही है साथ ही उसे वह विशाल, चंचल तरंगों से तरंगित, मयूरी के देकारव से सुललित, शिखर के अन्दर विभ्राम करने वाले सारसों, विटपों को तोड़ने वाले हाथी के कर्जों, स्तावों को छिलते हुए वानरों, जल्पान से तन्मुष्ट जंगली जानवरों तथा उनके जल को धारण करने वाली मेघ पंक्तियों से सुशीमित महाड़ी भूमि से परिवेष्टित देखता है। उसके जल से ही सारा दिशाएं तथा वायु शीतल हो जाती है<sup>३</sup>।

इसके जल में प्रतिबिम्बित वृक्षों, ऊँची उठती लहरों की ध्वनि, विधाधर कन्याओं की जलझीझा, कमलों पर बैठे हंलों आदि का वर्णन भी काव्य-कला से परिपूर्ण है<sup>४</sup>।

कवि ने उसको पाण्डुकेन से हंलता हुआ, शिला पर पड़ती लहरों से बाबाज करता हुआ, ऊपर-नीचे उठती महलियों से कटाका करता हुआ, तथा पवन से छिलते कंठ के वृक्षों के साथ नृत्य करता हुआ क्ताकर सरोवर को मानव रूप प्रदान किया है<sup>५</sup>।

पद्मराग वाले कमलों से प्रत्युषकाल, विकसित विद्रुम स्ता से संध्या, हन्द्रनील कमल से प्रदोष तथा श्वेत कुमुदों से चन्द्रोदय क्ताकर इस वर्णन में समय-चक्र को स्थान दिया है<sup>६</sup>।

१- तिलक० पृष्ठ १६६  
२- " " २५०  
३- " " २०५, २०६

४- तिलक० पृष्ठ २०३-२०४  
५- " " २०४  
६- " " २०४

उसकी स्वच्छता को लेकर विविध देशों की दिव्याँ को उपमान रूप में ध्यान दिया है<sup>२</sup>।

स्मरकेतु उस सरोवर को कभी वैताह्यगिरि के चन्द्रकान्तमणि से निकला हुआ जल-प्रवाह, कभी सूर्यो के विष के भय से मलयाद्रि द्वारा रक्ता गया चन्दन का द्रव, कभी अमृत मंथन के लिए उगत देवापुरी से भागोत होकर समुद्र द्वारा छिटाया हुआ अमृत कौष तथा उले महान् संरक्षक के रूप में देखता है<sup>३</sup>। उसकी दृष्टि में वह सरोवर गगन से भी महान् है तथा जागर वक्रज्वाग्नि के रूप में उर्ध्व उगरी करता है<sup>३</sup>।

रत्नकूट पर्वत का वर्णन गाढा है। उसकी दृष्टि के सम्बन्ध में कवि राम को कथा का स्मरण करता है। उसको अत्यधिक स्मरणोक्ता बता देने के लिए कवि ने उसे अन्य पर्वतों के बीच ध्यान न देकर समुद्र का जलो गौद में ध्यान देना वर्णित किया है। इस पर्वत के वर्णन में कवि की काव्य प्रतिभा का परिक्रम नहीं होता है<sup>४</sup>।

सुवेल पर्वत का भी वर्णन काव्य की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता है। पग-पग पर रामायण की कथा सामान्य ढंग से वर्णित है क्योंकि उस समय चलते हुए लेखानियों की वहाँ पर घटित होने वाली राम सम्बन्धी कथाएँ वातछाप के विषय हैं। यहाँ पर क्लिष्टता आ जाने के कारण यह तत्र नीरसता आ जाती है<sup>५</sup>।

वैताह्यपर्वत की चोटी, जंगल तथा मध्य भाग का वर्णन अधिक सरल हुआ है जिसे कहना का माधुर्य देना जा सकता है। इस पर्वत का भी कथा की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। इसकी चोटी का वर्णन अत्यन्त सामान्य शीटि का है किन्तु उसके मध्यभाग का वर्णन काव्यात्मक है।

कवि ने उस पर्वत के मध्यभाग को स्वर्ग-सदृश्य, जम्बूद्वीप की पगडाँ, भारतवर्ष का मानसूत्र, गगन-रिन्धु का सेतु-बन्ध, पृथ्वी की लीमा, मन्दाकिनी का

१-	तिलक	पृष्ठ	२०३
२-	॥	॥	२०५
३-	॥	॥	२०५-२०६
४-	॥	॥	२३७-२३८
५-	॥	॥	२३४-२३६
६-	॥	॥	२०२

प्रवाह आदि बताकर वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त गम्भार गैरिक को तानों में लटकते सर्प, मण्डल को फैलते हुए हाथी, हाथी को मारते हुए सिंह, बिन्दरों को भगाते हुए जंगली महिष, एवं विविध वृक्षों का घनता से इस भाग का भयंकर रूप चित्रित किया है।

इसका रम्य वर्णन कवि ने सामान्य तथा अलंकारिक दोनों ढंग से किया है। सामान्य ढंग में वनों रहने वाले लहर, नदियाँ, जिह्वायतन, ऊँचे-ऊँचे तालबूझ, मणिशिला के गृह, लतागृह, मन्दरों को म्दिकारों, मधुरों का नृत्य आदि वर्णित हैं<sup>३</sup>। उस प्रसंग में उनके अलंकारिक वर्णन में प्रकृति का मानवीय रूप अधिक है। कवि उसे दोनों ओर से घिरे हुए समुद्र से उसे बल पीने को इच्छा से उसी में निमग्न होता हुआ अपनी कान्ति से दैलाश पर्वत की उपहास्य करता हुआ, बहुत स्त्रीतों में बहते हुए निर्कारों से हिमालय से स्पर्धा के कारण सहस्र गंगा को सर्जना करता हुआ, गुंजाजों से निकलती वायु से उमैरु की महिमा से हँथ्या करने के कारण निश्वास लेता हुआ तथा निरन्तर पक्षियों के कलरव से मन्दर पर अधिलेप करता हुआ देखता है।

इसकी अटवी के भी रम्य और भयावह दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। रम्य वर्णन में बीच-बीच में दिलायी पड़ने वाली नदी, वन के हाथी, जर्जरित भूर्ज बल्कल, मणियाँ को परीक्षा करने वाले पत्थर, जीषधि, गुंजाफलों से सुशोभित गुंजा, तपस्वियों एवं विद्यार्थियों से सुशोभित तट आदि का वर्णन स्वतन्त्र रूप से हुआ है। यह वर्णन सामान्य ढंग का है<sup>४</sup> किन्तु उसका भयंकर रूप अधिक आकर्षक है जिसमें उसे <sup>५</sup> लाल रूपा सर्पों का झीड़ागल तथा कालीय नाग को कान्ति से मुच्छित होती हुई तथा सर्पों को विषली वायु से उद्वेग को प्राप्त कराने वाले<sup>६</sup> उसके मार्ग आदि बताए गए हैं।

हरिवाहन को ब्रह्म के लिए जाते समय मार्ग में मिली एक अटवी का वर्णन काव्य में आया है जिसमें उसकी भीषणता का अधिक वर्णन है। उसके

- १- तिलक० पृष्ठ २३६  
२- " " २३६-२४०  
३- " " २३६-२४०  
४- " " २३६  
५- " " २३३-२३६  
६- " " २३३

दुर्गम मार्ग, वृक्षाँ को ऊँचाई से नृत्यज्ज्ञ अंधकार, काष्ठल पत्तों के कठोर रव, दावाग्नि से प्रज्वलित वंशीवन की चट-चटाहट, शिंछ के गर्जन से चकित मृग, ज्वार वर्ष की निःस्वागों से किल्ले वृद्धा, जंगली कुं, छत्रित चर्म को जाने को हल्ला करने वाले बहेलिये उन जड़टवी का भयानक कृत्य उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ की नदी शवर-कान्त आदि भी वर्णित हैं। कहीं<sup>कहीं</sup> पर जलमण्डप वर्णन अलंकारिक भी हुआ है। इस काव्य में उपवन के प्रसंग कई<sup>२</sup> पाते हैं किन्तु उनमें कवि को अधिकशतः प्रवृत्ति वृक्षाँ एवं पशु-पक्षियों के नामगणना में है। किन्तु इन वर्णनों में कवि को काव्य-प्रतिभा का अभाव नहीं है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप में मानवाय दोनों ही रूप मिलते हैं। सरयूतट पर स्थित<sup>३</sup> 'मालोकिष्ठ' नामक उपवन में निर्मित जलमण्डप के वर्णन में कवि ने विशेष उल्हास दिखाया है। यहाँ प्रकृति के स्वतन्त्र रूप में मनुष्य, हंस, वृद्धा आदि तो वर्णन-विषय हैं ही मगर ही इस जलमण्डप को जो भी विशेषताएँ होती हैं जहाँ अपनी शोचलता से मनुष्य को पीड़ा आदि को दूर करना, उनसे युक्त होना भी बताया गया है। इस प्रसंग में प्रकृति मानव के रूप में दो बार आयी है। एक बार जलमण्डप की कवि ने कनड़े से ठके ऊपर भाग वाले कलशों से शिर-वेदना के कारण शिर पर पट्टी बांधे हुए और दूसरी बार वहाँ के वृक्षाँ को हिलती हुई शाखाओं की परस्पर आर्तिलान करते हुए बताया।

प्रकृति का मानवाय रूप हरिवाहन को दूढ़ने के लिए जाते समय मार्ग में मिले उपवन के प्रसंग में भी मिलता है। वहाँ पर कवि फवन से हिलते हुए वृक्षाँ के सम्बन्ध में उपवन की शोभा से विन्मित होकर शिर हिलाने की, पुष्पित लताओं के सम्बन्ध में पुष्प लताओं नेत्रों से देखने की तथा इस प्रकार को अन्य कल्पनाएँ करता है।<sup>४</sup>

इसके स्वतन्त्र रूप वर्णन में कवि उसे मधुमाँ से गुंजित अपानगीष्ठा, कीरग्राम से (तोते के समूह) ~~४~~ सुशोभित कश्मीर मल्ल, बहुमुल्म(दूँठ) तथा श्यामलता (श्यामलता) से आक्रान्त वातरोग से पीड़ित व्यक्ति के समान देखा है।<sup>५</sup>

१- तिलक० पृष्ठ २६६-२००

२- ,, ,, ६, १०५-१०७, २१०-२११, ३०४

३- ,, ,, १०६-१०७

४- ,, ,, २२२

५- ,, ,, २११-२१२

अन्य वर्णों-स्थलों की भांति कवि ने यहाँ भी उसे वन्य का घर, अस्त-  
देवताओं का एक मन्दिर, त्रिलोकी का तिलक आदि बताया है<sup>१</sup>।

इस उपवन के बीच विश्वामान कहलारुं बूँकि दिव्य वृक्षा नाना गया है  
अतः कवि ने उसका वर्णन तदनुकूल ही किया है। यहाँ पर उन्ने अलंकारों को  
ध्यान नहीं दिया है<sup>२</sup>।

मलयसुन्दरी का गृहोद्यान का वर्णन भावपूर्ण होने के कारण उसके  
पृथक् है तथा वह विप्रलम्भ शृंगार रस के रसाभ्यादन कराने में सहायक होता है।  
विविध वृक्षा, कीर्षिका, मयूर, हंस, चक्रवाक, घुक्पात आदि यहाँ भी जास हैं  
किन्तु उनको अतिशय लंग से काव्य में ध्यान दिया गया है। इस प्रसंग में  
मलयसुन्दरी का उन वृक्षाओं तथा पक्षियों के प्रति प्रेम तथा पक्षियों का उसके  
प्रति प्रेम वर्णित है<sup>३</sup>।

वैताङ्ग्य पर्वत से रथपुर चक्रवाल तक जाने के बीच में मिले रम्भा गृह  
का वर्णन कवि ने सविस्तर किया है। उन्ने विभिन्न केलों के फलों से उत्पन्न  
नीली कान्ति, उसके टैढ़े-मैढ़े फले, बहती हुई वायु, बीच-बीच में विश्वामान  
पारिजात वृक्ष का अलंकारिक वर्णन किया है<sup>४</sup>। बूँकि वह रथपुर चक्रवाल को  
सीमा के अन्दर था अतः सामान्य रूप से उसे राजाओं, चारणों और प्रतिहारों  
से सुशोभित सर्व देशीय गानों से गुंजित होना कहा दिया है<sup>५</sup>।

उन स्थलों के अतिरिक्त भी कवि ने प्रकृति को ध्यान दिया है।  
समरकेतु अकेले ही अदृष्टपादों सरौवर में पहुँचता है जहाँ कोई भी मनुष्य नहीं  
है अतः राजकुमार का स्वागत करने के लिए प्रकृति ही आगे बढ़ती है-- राजहंस  
ही उसका गुणानुवाद तथा स्वागत करते हैं, सरौवर आनी ऊपर उठनी हुई  
सहर हरी मुजाओं से उसके चरणों को अर्प देता है, जाँघों को विश्राम देता है,  
वहाःस्थल का आलोकन करता है, पानी में उतरते समय आगे पहुँचती आया  
ही उसके मार्ग प्रवर्तन का कार्य करती है और स्नान करने में जल देवता उनका साथ  
देते हैं<sup>६</sup>।

१- तिलक० पृष्ठ २१३

२- " " " २१३-२१४

३- " " " ३०४

४- " " " २२७-२२८

५- " " " २२८

६- " " " २०६



इसी प्रकार स्मरकेतु उस नरोंवर से आगे बढ़ने को हुआ तो प्रकृति मंगल-विधान करने वाले व्यक्ति के समान उसका चारा कार्य करती है। स्मरकेतु के आगे बढ़ते ही कनकरिणी अपने कर्णों को हिलाकर उसी उत्तम ध्वनि ने ताल के साथ मंगल सुरजों बजाने लगती हैं, कनकतिर्गा हवा से गिरते हुए पुष्पों के बहाने से अज्ञात बालने लगती हैं, भय से आगे भागते हुए मरिचकाक्ष (हंस)मार्ग प्रदर्शन करने लगते हैं और घूम-घूम कर भुंक कर तृण खाते हुए स्त्रिये उन्हें प्रणाम करने लगते हैं।

इसके अतिरिक्त नरोंवर में ज्ञान करने के पश्चात् स्मरकेतु को गयी क्रियाओं में प्रकृति को स्थान मिला है। उसे कमलवन तोड़ने के कारण हाथी, कमल परान को गुंलने के कारण भ्रवरा कुमुद के पुष्प को तोड़कर भ्रवरी को निकाओं के कारण प्रदोष काल बताया है।

इन वर्णनों के अतिरिक्त नगरी, मंदिर, मठ आदि की शोभा-वर्णन में भी प्रकृति को पर्याप्त स्थान मिला है।

### गद्यचिन्तामणि में प्रकृति-वर्णन--

इस काव्य में कथावस्तु की प्रधानता होने के कारण अन्य गद्य-काव्यों की अपेक्षा प्राकृतिक दृश्यों का निरूपण कम प्राप्त होता है। यद्यपि तिलकमंजरी में भी कथाओं की प्रसूता है फिर भी वहाँ प्राकृतिक दृश्यों की स्थानता दिखायी देती है किन्तु इस काव्य में उस ओर कवि की विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है। चूंकि गद्य-काव्य में प्राकृतिक वर्णनों को स्थान मिलना चाहिए अतः इन्होंने भी उस विशेषता को स्वीकार करके थोड़ा स्थान दे दिया है। इसीलिए इनके काव्य में भी श्लेष वर्णन, सूर्यास्त-सूर्योदय आदि का वर्णन, वन, जलाशय, उपवन तथा नगरी आदि के वर्णन मिलते हैं साथ ही कवि ने कवि-स्मय का प्रयोग करके प्रकृति को स्थान दिया है तथा उसे कभी नावों को उदीप्त करने वाली के

१- तिलक० पृष्ठ २०६-२१०

२- " " २०६

य में कभी मानव के साथ सहानुभूति प्रकट करने वाली के रूप में भी लिया है ।

इस और विशेष महत्व न देने के कारण कवि ने काव्य में आरंभ हुए विजयार्धगिरि तथा विक्रूट पर्वत<sup>२</sup> का उल्लेख मात्र कर दिया है । अन्य कवियों ने विन्ध्याटवी का वर्णन किया है किन्तु इन्होंने दण्डकारण्य का । दण्डकारण्य में कवि ने केवल वहाँ के शाश्वत का वर्णन किया है किर्म यज्ञ की होनाग्नि का धुजा उठना, उससे वृक्षों के फलों का घूमिल होना, फलों के भार से वृक्षों का झुकना, रात्रि का समय सुगली छोड़ कर मूर्गां वा नीवारादि खाना तथा विहंगों का वेड़ के जालवाल से जल पीना ही वर्णित है<sup>३</sup> । आश्व की सामान्य बात कहकर उस प्रसंग को समाप्त कर दिया गया है । इसमें न कोई नवीनता है और न काव्य प्रतिभा का कोई अस्कार, जिससे कि वर्णन में भीन्दर आता ।

वन का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसके रम्य पक्ष को ही लेकर । उसकी बोहड़ता का प्रसंग रक्षाध स्थलों में ही आया है अन्यथा उस वन में कहीं प्रसर मंजरा रहे हैं, कहीं सरोवरों में कमल, कुमुद आदि लिले हुए हैं, कहीं सरोवर के तट पर हंस बोल रहे हैं, कहीं कुहरों ने अपनी लीन से किनारों को विभ्रमित कर दिया है तथा कहीं प्रदेह विविध पुष्पों से अत्यधिक सुरभित हो रहा है--  
इत्यादि वर्णन करके उस प्रसंग को समाप्त कर दिया गया है ।

उपवन का वर्णन दो बार हुआ है किन्तु बहुत आकर्षक नहीं है । हेमांगद नामक जनपद के वर्णन में आरंभ हुए उपवन के प्रसंग में कुहरों की अधिकता मिलेगी, कौकल से कुजित जामु, मधुकर से गुंजित चम्पक, कामिनो के गण्डुष से विकसित कुल, पदापात से प्रकुलित अशोक, आपस में गुथे कुक्कुड तथा शीघवी छताजों का उल्लेख है<sup>४</sup> । इस उपवन की अपेक्षा राजधाना 'राजपुरी' का उपवन-वर्णन अधिक उत्कृष्ट है । यद्यपि यहाँ पर भी विविध वृक्ष तथा कौकल से कुजित जामु का वर्णन है किन्तु उन्हें प्रस्तुत करने की विधि भिन्न है । यहाँ पनस के फटने पर बंदरी का क्रुद्ध होना एवं बन्दर का उसे मनाना, कुहतरों के उड़ने से

- 
- १- ग०वि० पृष्ठ ६२  
२- " " ६८  
३- " " १२०  
४- " " ६६-१००  
५- " " ३- ४

उत्पन्न हवा से पुष्पाँ का टूट कर पेटों के नीचे गिरना, चारों ओर उपवन की सिला देकर तथा अपनी मेहनत को भगुल जानकर लोगों का प्रसन्न होना, उत्की दिगन्त ठगामा-ताँदये, मधुकरों के आगवाहन से शिथिल वृन्त वाले चम्पक, पाटल, पुन्नाग, कैसर, कर्णिकार, तथा इन देवताओं के उषर के समान <sup>वन्य</sup> जौव तथा कुबक से लिपटी माधवी ज्ञा का वर्णन है<sup>१</sup>।

हैमांगद जनपद के वर्णन में कवि ने जलाशय का भी वर्णन किया है। उनके जल, जमें प्रतिबिम्बित वृक्षा, कमलों में बैठे हंस आदि वर्ण्य-विषय हैं। कवि ने जलाशय की प्रतिबिम्बित वृक्षा से सुड की जोतने की इच्छा से कल्पतरु का निर्माण कराया हुआ, ऊपर उठता बँकल जलराशि से मन्दाकिनी को बन्दो बनाने की इच्छा करता हुआ तथा कमलों से जनपद की शोभा को देने के लिए उहस्त्र नेत्रों को धारण करता हुआ ज्ञाकर मानवीय रूप दिया है<sup>२</sup>।

विदेह नामक जनपद के वर्णन-प्रसंग में भी वृक्षा तथा सैत जैसे प्राकृतिक वर्ण्य-विषय अपनाए गए हैं। यहाँ रुधिर्याँ की अनुकृति भी परिलक्षित हो जाती है। उदाहरणार्थ किनमृता प्रदर्शन हेतु सैतों का नीचे फुंकना यहाँ पर भी वर्णित है। पके रंस के वृक्षा के फटने से निकले मुक्ताफलों को देकर ताराओं से युक्त पृथ्वी को ज्ञाकर कवि ने नवोनता का परिचय दिया है<sup>३</sup>।

विशाखर लोक में विष्मान 'नित्यालोक' नामक नगर के वर्णन में कवि ने प्रकृति की विभिन्न मणियों को कान्ति से सम्बन्धित करके ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ वहाँ के स्कन्धावार का पाताल रूपी हाथ से बन्दूपा के कर्क को धोना, पद्मरागमणियाँ से बालात्प (उदीयमान सूर्य) की प्रान्ति पैदा होना, गारुडरत्न से जंघकार उपस्थित करके चक्रवाक पक्षियों को दुःखित करना, तथा सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले नीलोत्पल से रचित तट से कदली वृक्षाँ को ज्ञा पैदा करना इत्यादि वर्णित है<sup>४</sup>।

१- ग० वि० पृष्ठ ६-७

२- ,, ,, ४

३- ,, ,, १३३

४- ,, ,, ६०-६१

नरुशिल वर्णन के प्रसंग बहुत हैं। जाठ कन्याओं के साथ विवाह जो वंश का दिखाया गया है। कवि ने उन जाठ कन्याओं एवं रानी विजया संगो के जीवन का वर्णन प्रायः किया है तथा उसमें प्राकृतिक उपादानों की भाँ विविध अलंकारों के अन्दर ग्रहण करके स्थान दिया है। कवि का कंठ की कमत-नाल से, मुस की बन्द से, ललाट की अर्ध-बन्द से, नासिका की ललाट-बन्द से निकली अमृतधारा से, निचली अंगुली से, भू-लता की धनुष्याष्टि से, अवासानिल का मलयानिल जादि से उफान देना प्राचीन कवियों की अनुकृतिमात्र है। कुछ स्थलों पर नव-नता भी है। जैसे विजयदेव के देरार को बन्दन का वृत्त मान कर भुजाओं को गर्भ से तुलना करना तथा लक्षणा के प्रसंग में स्वैत बन्द को धारण किए हुए उनकी स्वच्छ आकाश में सुशोभित शब्द तु तथा तिलक से विभूषित उसे वनराजि बनाना-- नवीन कल्पना है।

इन उपर्युक्त विषयों में कवि को कोई विशेष सफलता मिली है ऐसा नहीं कहा जा सकता है किन्तु सूर्यास्त सूर्योदय जादि के वर्णन में ऐसी धारणा नहीं बनाई जा सकती। प्रकृति के विविध रूप अपना कर इन सब का कवि ने वर्णन किया है।

### जुब प्रहर

रानी के स्वप्न देखने के पूर्व कवि ने तुम्हारे का वर्णन किया है जिसमें जलौर के निरन्तर चन्द्रिकामान करने से चन्द्रमा का कान्तिविहीन होना अथवा निरन्तर जागने के कारण सोने को लज्जा से अस्तगिरि की गुफा में चन्द्रमा का जाना, सूर्य-तारधि अरुण से व्याकुल होकर अर्धाभिमण्डल का मुञ्चित होना साथ ही नक्षत्रों का नष्ट होना वर्णित है जो कवि की काव्य प्रतिभा के साथ साथ उनकी मौलिकता का परिचायक है।

इससे भी अधिक आकर्षक वर्णन इसी के आगे सूर्योदय के प्रसंग में हुआ है जहाँ याभिनी अपनी प्रेमिका रात्रि के अस्त होने से (नायक) उत्पन्न विरहजनित ताप को न सहन कर सकने के कारण अपनी तापपीडा को शान्त करने के लिए

१- ग० वि० पृष्ठ १३

२- " " १५८

३- " " १६-१७

अशाचल स्त्री सागर में स्नान करने के लिए चली जाती है, सूर्य-रथ के घोड़ों के धुरों के गिरने के भय से तारागण अलग हो जाते हैं, उसी समय विविध रूप में सूर्य उदित हो जाता है । कवि को सूर्य स्त्री गगन सागर के अन्तर्गत में लगी विदुमला के रूप में, कभी उदयाचल के प्रान्ताप्रदेशों पर लगी दावाग्नि के रूप में तथा कभी ऊषाकाल (प्रत्युष) के रत्न से बुझाई को लाल करना हुआ दिखायी देता है । सूर्य को देखते ही नायिका की भाँति कमलनेत्र सिल उठते हैं तथा अपने मित्र (चन्द्रमा) को पराजित करने वाले सूर्य को देखकर अर्धावश हनुव अपने पल सूर्योदय को बन्द करके सोने चले जाते हैं (संक्षिप्त हो जाते हैं) । यहाँ कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से प्रकृति को मानवगत रूप दिया है ।

इसी प्रकार राजा उत्तमिष की मृत्यु पर मानव की भाँति शोक प्रकट करते हुए प्रकृति सूर्यास्त वर्णन के प्रसंग में आयी है जो कल्पना रस में सहायक होता है । यहाँ कवि कल्पना करता है कि सूर्य इस दुःखद घटना को न देखने के कारण मानवी सागर में डूब गया, अपने पति (विशाखा का पति राजा कहा गया है) राजा की मृत्यु को देखने के कारण विशाखा को अत्यधिक शोक हुआ और वही शोकान्नि संख्या के रूप में प्रकट हो गई, वसुंधरा ने राजा को पत्नी होने के कारण सती होने के लिए ताराओं के रूप में लाल हार पहन लिया और अंबकार के बहाने बाल बिलौर कर विद्यागिनी का वेश धारण कर लिया तथा वह वायु के बहाने निःस्वास हो गई ली गयी ।

इस प्रकार सुरमंजरी की कथा के प्रसंग में जो सूर्यास्त तथा सूर्योदय का वर्णन हुआ है वह अंतर रस के पोषण में हुआ है । सूर्यास्त के समय सन्ध्या का लालिमा, कौटुके आदि का नोडों को जोर लौटना, अंबकार का फैलना आदि कुछ विशेषताओं को अलंकार (उदीपन रूप में हुआ है । चन्द्रमा सुरमंजरी की कामदेव की स्फटिक मणि निर्मितकान्तु, कामदेव का अभिषेक जल से मरा कलश इत्यादि प्रतीत होता है, फैली हुई स्यौलला आदि भी उसे कामोदीपक लाती है ।

१- ग० वि० पृष्ठ १७

२- " " २७

३- " " १२८-१३१

जगन्मोक्ष के मन्दिर में वर-प्राप्ति का वरदान मिल जाने के बाद जब सुरमंजरी वृद्ध के ध्यान पर अपने प्रिय जीवंधर को देखकर किंवदन्ध्य विमूढ़ हो जाता है उस समय होने वाले सूर्योदय के वर्णन में कवि ने प्रकृति-सौन्दर्य में विवाहकालीन कृतियों का आरोप किया है। उस समय सूर्य विवाहकालीन मंगल कलह के दोषक की भाँति उदित होता है, चूंकि सुरमंजरी तथा जीवंधर का मिलन हुआ है अतः बक्या-कथों के जोड़े भी मिल जाते हैं, हवन कुण्ड की तरह विकसित लाल कमलों (अग्नि) के सुशोभित शरीरों के शरीर दोषक (आरुण्यों का भाँति) अपने कुञ्ज के मंगल पाठ करने लग जाती है, उज्ज्वल मधुर गुंजार के साथ पुष्पाँ को गिराने के बहाने लाधा क्लेशों का कार्य करने लगती है। दोनों को आपस में मिलाने के लिए पद्मा क्लेश करने लगे हैं<sup>१</sup>।

एसी प्रकार लोकाल नामक राजा का कन्या पद्मा के विवाह के पूर्व वर्णित प्रातःकालीन वर्णन कवि ने उद्योपन रूप में किया है। ताराओं का अस्त होना, वायु का पुष्पित स्तारों का स्पर्श करना, कुसुमों का बिलना, ऊष्ण-राग का प्रकट होना, अरुणों का गुंजार करना आदि सब विवाहकालीन कार्यों से सम्बन्धित होने के कारण संयोग शृंगार के पौषक हैं<sup>२</sup>।

विवाहपर लोक से पृथ्वी तल पर जाने वाली गन्धर्वकथा के प्रसंग में जो सूर्योदय का वर्णन हुआ है वह गन्धर्वकथा से प्रकृति का सम्बन्ध कराकर, प्रीति प्रेमिका का आरोप करके तथा गन्धर्वकथा के वियोग में दुःखी प्रकृति को बताकर हुआ है<sup>३</sup>।

समय-परिवर्तन के वर्णन में प्रकृति क्लेश-न-क्लेशी के उपकारक रूप में आयी है। पद्मा को छोड़कर जीवंधर पुनर्वाप जाना चाहते हैं तो प्रकृति उनके अनुकूल वातावरण उपस्थित कर देती है अर्थात् पुष्पाँ अस्तावत् जाकर सर्वत्र अंधकार छिटका देती है वॉर जब जीवंधर कोमली को पुनर्वाप छोड़ कर जाते हैं

१- ग० वि० पृष्ठ ६४

२- " " " ७२

३- " " " ७२

४- " " " ६६

ती प्रकृति मूर्तों को आवाज़ से ज्ञानार्थी को आवधान करती है<sup>१</sup>।

रात्रि में सन्ध्या के साथ रह कर दूसरे दिन प्रातःकाल बुधनाप जोर्बधर के चले जाने पर वर्णित किस गद्य सूर्योदय-वर्णन में भी प्रकृति मानव के रूप में आयी है जिसमें सूर्य का बड़वाग्नि का निगलना, फेंके व्यक्तित्व के ज्ञान सूर्य का प्रातःकालीन वायु के रूप में उद्भववाह लेना, आदि वर्णित हैं। यहाँ पर फैली हुई अरुणिमा के सम्बन्ध में नायक-नायिकाओं के व्यापारों का भी आरोप किया गया है।

पद्मना की कहानी में आये हुए सूर्यास्त का वर्णन कवि ने स्वतन्त्र रूप से किया है। यहाँ एक स्थल पर प्रकृति सितिका के रूप में आयी है जब कवि लाल दीपों (अंधकार और ज्योतिष) से दूर रहने पर मा केवल वारुणा (पश्चिम दिशा तथा शराब) के सम्पर्क से सूर्य का अधःपतन (अस्त) होना बताता है। निशा कना मिशाबरी के द्वारा फेंके गए तीव्र झूल से सूर्य के हृदय का विदीर्ण होना बताकर कवि प्रकृति को मानव के रूप में काव्य में स्थान देता है। फैलते हुए अंधकार के सम्बन्ध में कवि कई प्रकार की कल्पना करता है। यहाँ पर अंधकार का वर्णन कवि की दृष्टि से तथा पशु-पक्षियों की दृष्टि से हुआ है। बराह का अंधकार को कीचड़ समझ कर उसमें लोट लगाने की इच्छा करना, हंस का उसे वर्षाकालीन मैघ समझ कर भय की दृष्टि से आरोवर को देखना, सिंह का उसे लोहे का कठोर पिंड समझ कर गुफाओं में घुस जाना आदि का वर्णन करके कवि ने फैलते हुए अंधकार के साथ जानवरों एवं पक्षियों की सन्ध्याकालीन क्रियाओं का भी वर्णन किया है।

इसी प्रसंग में कवि ने अंधकार फैलने एवं सूर्योदय के होने का उपमा क्रमशः तमोगुण एवं उसके नाशक ज्ञान से दी है जिसमें फैलता हुआ अंधकार धर्म की ओर उन्मुख तापस के हृदय से निकल कर तमोगुण के रूप में फैला हुआ बताया गया है और सूर्य सन्ध्यकत्व बल से निकाले गए तमोगुण से पुनः स्पर्श न हो इस

१- ग० वि० पृष्ठ १०६

२- ,, ,, १०८

३- ,, ,, १०९

भय से उसे जड़ से नष्ट करता हुआ बताया गया है<sup>१</sup>।

साव्य परम्परा का अनुकरण करते हुए उन्होंने भी ऋतुओं को ध्यान दिया है। जैसी साव्य-प्रतिभा काल-परिवर्तन में मिलती है वैसे ऋतु-वर्णन में नहीं। ग्रीष्म ऋतु का वर्णन तीन बार आया है। एक बार तो साव्य के अन्त में वर्षा, जोस ऐमन्त के साथ इसका उल्लेख कर दिया गया है<sup>२</sup>। अन्य दो स्थलों में इसका सविस्तर वर्णन किया गया है। एक स्थल पर ऋतु का वर्णन जंगल के दृश्य-निर्माण में हुआ है। वहाँ कहती हुई गर्म हवा, गर्म बादल, सूखी नदियाँ पानी के रूप में केवल हाथियों का मदकारि, घरों से विह्वल वृक्ष, सूखे पत्तों की मर्मर से गुंजित <sup>सुख</sup>दिशा, आग के रूप में केवल हाथियों के शरीर की आवा, ध्यास से व्याकुल हाथियों के रक्तपान से वृष्णा को शान्त करने वाले सिंह, एकटिक पत्थरों को चाट कर ध्यास <sup>भुङ्काने</sup> वाले हरिण, जल को झूठी तृप्ति देने वाली मृग-वृष्णा, <sup>भुख</sup> से व्याकुल जानवर -- आदिका उल्लेख मात्र करके उस समय का सामान्य चित्र चित्रित कर दिया है<sup>३</sup>।

दूसरी बार का वर्णन कितनी एक स्थल में सीमित न होकर व्यापक क्षेत्र में हुआ है और पहेले की अपेक्षा कहीं अधिक आकर्षक हुआ है, यहाँ अर्जकारों को भी ध्यान मिला है। यद्यपि यहाँ भी <sup>पत्तों</sup>मर्मरों की मर्मर, दावाग्नि, पानी के सूखने, ध्यास की उत्कण्ठा आदि वर्णित हैं किन्तु उन्हें सरस बनाकर वर्णित किया है तथा ग्रीष्मकाल में फल के पार से भुके आमवृक्षा, पेड़ों के नाचे बैठ कर फुगालो करता हुई गायें, दावाग्नि के भय से तेजी के साथ भागते हुए हरिण, सूखे सरोवर को देखकर पानी से निराश होकर झुड़ फटकारते हुए हाथी, पानी से रिक्त नौकर, मौज की इच्छा की कमी, हवा के लिए व्याकुलता -- आदि का वर्णन करके कवि प्रबोधित वर्णन से नवीनता ले आया है।

वर्षाकाल तथा शरद् ऋतु का भी वर्णन है किन्तु न उन्हें कोई सौन्दर्य है और न वहाँ कवि की कोई मौलिकता परिलक्षित होती है। वर्षाकाल का

१- ग० वि० पृष्ठ ६६

२- " " ६६

३- " " <sup>२६</sup>६६

४- " " ~~६६~~ ६६



केवल सामान्य ढंग से कवि ने वर्णन कर दिया है। मयूरों का नृत्य, चन्द्रधनुष का निकलना, राजाओं का यात्राओं का बन्द होना, विजयों का चमकना, सूर्य का तिरस्कृत होना, मेड़कों की टर-टर, झुलों का उड़ना, दिन-रात का कठिनाई से पता चलना-- आदि का वर्णन करके कवि ने यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है किन्तु उनके प्रशस्त करने के ढंग में कोई जाकर्षण नहीं है। उन्हें विविध कल्पनाओं से मण्डित करने की आवश्यकता कवि ने नहीं समझी। कवि प्रायः ऐसे प्रसंग अपनी काव्य-प्रतिभा को प्रकट करने के लिए ढूँढ़ते हैं किन्तु इन्होंने ऐसे प्रसंग को ग्रहण करके माँसलता परिचय नहीं दिया है।

शरद ऋतु के वर्णन में चन्द्रमा का दिखाना देना, सूर्य द्वारा वर्षाकालीन कोचड़ का उखाया जाना, आकाश में तारों का छिटकना, चरोंवरों का खच्च होना, नदियों के तट दिखाना देना (प्रवाहित होना), मधुकरों का पुष्पित वृक्षाँ पर <sup>फुल्ल</sup> ~~फुल्ल~~ के फुल्ल गिरना, मयूरों (मर्तमप्रिय) का नृत्य त्यागना, कौयल को झुक का उखाया देना, मधुमों का चरोंवरों में खिलना -- आदि का वर्णन अधिकांशतः उष्ण अलंकार के साथ किया गया है। किन्तु यह अलंकार वर्णन-प्रसंग को विशेष जाकर्षक नहीं बताता।

गन्धर्वदत्ता के विवाह के उपरान्त कवि ने वसन्त ऋतु का वर्णन किया है। कवि का उद्देश्य उसका उदीपन रूप में ही वर्णित करने का है। कौयल का पंचम स्वर, ध्रुवों की गुंजार, मंदवायु, सुरबक, चम्पक, आदि वृक्षा सब उसी रूप में हैं। वायु से छिलने के कारण वृक्षाँ से गिरते पुष्पों के सम्बन्ध में कवि अपने साथी के आगमन से प्रसन्न होने वाले व्यक्ति के समान लाजाँबलि के गिराने की कल्पना करके प्रकृति को यहाँ पर मानव के रूप में स्थान देता है। प्रकृति का मानवीय रूप वसन्तागमन के प्रसंग में भी अपनाया गया है जब कवि वसन्त को कामदेव के सहायक तथा सामन्त के रूप में वर्णित करता है --

विषमशरस्य साविध्यमिवारथयितुमाप्ताम जातो रु हरेरः

सैतरकिल्लयराशिमिरुप्लोमितकान्तो वसन्तः । प्रविशति पुष्य गृह्मनंगनुपतामन्ते  
वसन्ते पुण्याहमिवीञ्चारयांबधुवुद्भूतकलरकमुतरितकण्ठाः कलकण्ठाः ।

काल परिवर्तन तथा स्तु-वर्णन के अतिरिक्त प्रकृति भावों को उदीप्त करने में महाकवि के रूप में चित्रित हुए हैं। विधाधर लोक के राजा लोकपाल को आकाश में एक बादल के टुकड़े की नष्ट होता देखकर विराम्य हो जाता है<sup>१</sup>।

काव्य में स्वतन्त्र रूप से भी मानव की भांति महाभूमि रखती हुई प्रकृति जाती है। जोर्वंधर वर्षण में अलौकिक जा रहे हैं, महान होने के कारण यह अत्र अत्र धारणा करने योग्य है उनके शिर पर धूम नहीं पड़ती बाहिर यत्त चोकर मार्ग के वृक्ष सूर्य के ताम को शान्त करते हैं तथा उनको ऐसी अवस्था केकर निर्करों के बसाने से अद्भुत गिराते हैं<sup>२</sup>। इसी प्रकार जोर्वंधर के तैजो से चलने से जाय पाय के छिलते हुए वृक्ष भय से शिर छिलते तथा जोर्वंधर को पुष्पांजलि भेंट करके प्रणाम करते हैं<sup>३</sup>।

प्राकृतिक वर्णन-प्रसंगों में पक्षियों को स्थान तो मिला ही है किन्तु काव्य में उन्देश देने के रूप में भी पक्षियों का स्थान दिया गया है। चक्वा-चक्की पद्मा को जोर्वंधर से पुनः मिलने की आशा बंधाते हैं। क्योंकि पद्मा से जोर्वंधरके-प्रिये, फलय मनुवियांगेऽपि पुनस्तत्संगोगसंभुष्णतया विरहवहिष्णामि-माधु इति वाक्य सुनकर उसकी मां उग्र शान्त करती है<sup>४</sup>। इसी प्रकार इसी संत लेमली को जोर्वंधर से पुनः मिलने की आशा बंधाते हैं<sup>५</sup>।

उन्देश को ले जाने वाला शुक गुणमालिका की कथा में आया है<sup>६</sup>। यह जोर्वंधर से मिलाने में वृत्त का काम करता है।

### कैमभुपालवरित में प्रकृति-वर्णन--

यह काव्य जहाँ कथावस्तु रस अलंकार तथा काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से अपना अद्वितीय स्थान अर्थात् गणकाव्यों में प्राप्त किए हुए है उसी प्रकार प्रकृति-गुणमा के वर्णन में भी वह उच्च स्थान का अधिकारी है। यद्यपि कवि

१- ग० वि० पृष्ठ ३६-३७

२- " " " ८८-८९

३- " " " ५२

४- " " " ६८

५- " " " १०७

६- " " " ८०

के प्रकृति-वर्णन में बृहती के नाम गणन करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में मिली है जो कभी-कभी नीरसता ला देती है तथा उन्हें पुनरुक्ति दोष भी आ जाता है किन्तु यदि इस ओर ध्यान न दिया जाय तो सर्वत्र कवि ही कमनीय कल्पना काव्य में परिलक्षित होगा ।

प्रकृति-वर्णन में उन्होंने केवल एक निश्चित रूप को नहीं अपनाया है अपितु उनके काव्य को उसके विविध स्तरों से उल्लेख किया है जिससे कि काव्य में अद्भुत सौन्दर्य आ गया है ।

प्रकृति के काल परिवर्तन में कवि ने इस बीच में होने वाली आकाश तथा भूमि की स्थिति का विचार करके कवि ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है । इस वर्णन में प्रकृति कभी स्वतंत्र रूप में, कभी उदोपन रूप में, कभी मानवीय रूप में, कभी सहानुभूति प्रकट करती हुई, कभी रस के पोषण में, कभी नायिका के रूप में और कभी विभिन्न भावनाओं से सम्बन्ध रखती हुई हमारे समक्ष आती है । यह कोई आवश्यक नहीं कि कवियों के लिए काल परिवर्तन पूरा उदोपन रूप में ही दिखाया जाये । कन्या के प्रति आकर्षित राजा प्रीति उमकी विन्ता करता है किन्तु कवि ने काल-परिवर्तन का वर्णन सभी दृष्टि से किया है ।

१- कैमो(क) त्रिलोका जनपद में पृष्ठ १-६

- (जा)वसन्त वर्णन में ,, ११-१८, ११३  
 (ख) राजा प्रीति जिस उपवन में पहुँचे पृष्ठ २६-२७  
 (ङ) बाल तरुण्य के वर्णन में पृष्ठ २८  
 (ड) राजा प्रीति जिन स्त्रियों को देखता है पृष्ठ ६२  
 (ढ)कन्या के लिए निर्मित लता मण्डप में पृष्ठ ६३-६४  
 (ण) सुमुख शय्या के वर्णन में पृष्ठ ८७  
 (त) शरद ऋतु-वर्णन में पृष्ठ १२२  
 (थ)वर्षाकाल वर्णन में पृष्ठ १६२  
 (द)समुद्र के दक्षिणी तट के वर्णन में पृष्ठ १४०, १५१  
 (ब) पाण्डु देश के वर्णन में पृष्ठ १५०  
 (बः)मलय पर्वत के वर्णन में पृष्ठ १५६  
 (क) हिमालय के वर्णन में पृष्ठ १६४  
 (ख) गौदावरी वर्णन में पृष्ठ २०५

कवि जहाँ स्वयं वर्णन करने ला जाता है वहाँ प्रकृति व्यतन्त्र रूप में आ जाता है वहाँ पर कवि की अस्तावल को और जाता सूर्य कभी आकाश सौ फन वाले सूर्य की गिरी पश्चिमदिशा, कभी वरुण नगरी के गोपुर में स्थित मणिकुल, कभी पश्चिम दिशा में अशोक वृक्ष का पल्लव, कभी ताण्डव नृत्य करते हुए शंकर का गिरा जंगल, कभी कालपी इस्लाही से काटा हुआ दिन कभी बुद्ध का पश्चिम दिशा में गिरा फल फल -- आदि किताबों के हैं । अर्थात् उसे रात्रिकाल नदों के प्रवेश कराने वाली यवनिका तथा गगनपी कलाटी पर करने से कभी सोने की रेशम के समूह आता है । अंधकार कभी छाथियों का समूह, कभी वनवराह का भ्रमण, कभी कालकूट, कभी नीलौत्कल वन, कभी ताण्डव नृत्य करते समय शंकर का गिरा गज-कर्म, कभी काला आवरण और कभी हौम के धुरं का समूह -- आदि प्रतीत होता है । तारे अंधकार कभी कालिन्दी के बुबुबुदे, गगनफलक की रजतबिन्दु, रात्रिकपी सीपी के मुक्ताफल (अक्षय), कनकने वाले (जलने वाले) चन्द्रमा की त्रिनगरी से लगते हैं ।

इसी प्रकार सूर्यास्त के बाद तत्कालिक निकला लाल चन्द्रमा कवि की अंधकार कभी रात्रिक के समूह को नाश करने के लिए नारायण द्वारा फेंका हुआ चक्र लगता है । अष्टमिक मणिमय शिला पर श्री प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का कलंक हरिण समूह लगता है, माणिक्यमय प्रासाद पर पशुती चन्द्र किरण अपने को छुड़ करने के लिए अग्नि में प्रवेश करती हुई-सी प्रतीत होता है । अस्त होता हुआ चन्द्रमा कलाबी का निधि, अमृत का निधान, सज्जनों का अग्रणी होने पर भी वारुणी ( पश्चिमदिशा और शराव ) का सम्पर्क पाने से अपने स्थान से च्युत होता हुआ दिशायी देता है । पश्चिम दिशा को और जाती हुई रात्रि कपालिकी-सी दिशायी देती है । इसके बाद वैभक्तिकी संध्या आकाशपी रंगमंच पर जाने वाले नटकी सूर्य के लिए लाल रंग के पर्दे को धारण करती और कभी प्रातःकाल कभी मंत्रव को बलि देने के लिए अरुण (सूर्य ताराधि ) द्वारा अशुक्तों

कुत्ता जै से अंगार जगो भेने कौ नारे जाने से निकले रक्त से रंगी हुई दिखायी देती है ।

कवि ने आकाश के पथ्य होने वाले स्थिति का वर्णन करके जगत् में होने वाले परिवर्तनों का भी वर्णन किया । यह वर्णन स्वतन्त्र और उद्योपन दोनों रूप में हुआ है । सूर्यास्त के समय कौओं का नौडों का जोरक उठना, मधुकरों का झल-झोष में बन्द होना, अभिहारकाओं का निकलना, दीपकों का जलना, मृगों का सीना, हंकों का शैवालियों तट पर छटना आदि का वर्णन और प्रातःकाल के वर्णन में शीतलवायु, पक्षियों का कलरव, सुर्ग की बोलों, गौगांगनाओं का दधिमंगल, गृह-गृह में होमाग्नि का फुल्लवालि होना, कुमुदिनी का बन्द होना आदि का स्वतन्त्र रूप से वर्णन करके कवि ने सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है<sup>१</sup> । कुमुदिनी के वर्णन में उने प्रकृति का मानवीय रूप में अपनाया है । जब कवि झरों को लोच में छिपाये हुए तथा बन्द होता हुई कुमुदिनी की चन्द्रमा के विरह में विषयान करने के मुर्च्छित होते हुए चित्रित करता है<sup>२</sup> ।

कविने सूर्यास्त का उद्योपनरूप झरों का कामदेव को छिजपावलो गाना, चक्रवाक का कलरव से प्रेरित मनुकाओं का हृदय विदीर्ण करना -- आदि का वर्णन करके अपनाया है<sup>३</sup> और छत्रि के चन्द्रोदय का उद्योपन रूप -- रात्रि के समय कुमुद चकोर, नदी, वायु, झर, चक्रवाक, दीर्घिका आदि सभी को राजा की कामपीड़ा का वर्षक कताकर तथा चन्द्रोपाठम्न करवा कर स्वीकार किया है । चन्द्रमा यथिक-हृदय को विदीर्ण करने वाली, काम का बवल छत्र, मृत्यु सहायक, पापकारी, किरण लयी हाथों से प्राणों को नष्ट करने वाला, तथा विष सदृश बताया गया है<sup>४</sup> ।

प्रकृति के इन दो रूपों के अतिरिक्त कहां पर प्रकृति राजा प्रील्ल के भावों के साथ भी सम्बद्ध की गयी है । अस्तकालीन सूर्य की छालिमा, राजा

- १- कै० पृष्ठ ५१
- २- " " ६०
- ३- " " ६०
- ४- " " ५५-५६
- ५- " " ५५-५७

का अचरान तथा उसकी क्षीणता उसके विरहशोक का कारण बताया गया है ।  
इसी प्रकार रात्रि तथा चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण क्रमशः राजा का विरह  
निःस्वात् तथा राजा का निष्कलक दृष्टि से चन्द्रमा की कान्ति का पीना बताया  
गया है <sup>१</sup> ।

राजा प्रौल में आगत कन्वा जनन्ता के विरह-वर्णन करते समय वर्णित  
कि गः सूर्यास्त<sup>२</sup> और चन्द्रोदय<sup>३</sup> के वर्णन में कवि ने अधिकांशतः प्रकृति का  
मानवीय रूप बनाया है जिसमें कभी वह राजकुमारी जनन्ता के दुःख में दुःखी,  
कभी उसके दुःख को निरन्तर देखने के कारण मुर्च्छित होती हुई, कभी उसके दुःख  
का उपचार करती हुई, कभी महाभूमि प्रकट करती हुई और कभी पति के जाने  
से अत्यन्त दुःखी होने वाली नायिका की भाँति तथा अन्य कई प्रकार के आचरण  
करती है ।

यहाँ पर कवि की रुचि प्रकृति का स्वतंत्र रूप बनाने में परिलक्षित  
नहीं होती है । स्थाय च्छों पर ही इस प्रकार का रूप देखा जा सकता है ।  
उदाहरणार्थ, प्रातःकालीन वायु का बहना, वर्षादि मण्डल का कान्ति विहीन  
होना, सूर्य का उदय होना स्वतन्त्र रूप से वर्णित है <sup>४</sup> किन्तु उसमें काव्यात्मक  
शौन्दर्य नहीं है ।

विरह-वर्णन में यहाँ भी चन्द्रोपमालम्ब कराया गया है । अतः चन्द्रमा  
का वर्णन उदीपन रूप में होने के कारण प्रकृति उदीपन रूप में आयी है <sup>५</sup> ।

कालिदास के युद्ध के पश्चात् किम्ब गः सूर्यास्त का वर्णन भीमत्स और वीररस  
के पोषण में होने के कारण प्रकृति-रस के पोषक के रूप में आयी है । यौद्धार्जो  
की शूरगति से आकाश-मार्ग में चलने में बाधा पहुँचाने के कारण सूर्य का रथ लौटाने  
युद्ध भूमि के सब को लाने के लिए आने वाले अंकार रूपी राक्षस का जाना, रण  
के अदृश दृश्य को देखने से ताराजो के रूप में रोमांच का उत्पन्न होना, दीर्घिका  
का रण की भयंकरता देखने के कारण मुर्च्छित हो जाना, कवचों का नृत्य देखने

१- क० पृष्ठ ५०

२- " " ७७-७८

३- " " ७९-८०

४- " " ८०

५- " " ७८

के लिए चन्द्रमा हा वा जाना जादि वर्णित करके कवि ने प्रकृति को मानवीय रूप दिया है ।

सन्ध्याकालीन अरुणिमा के सम्बन्ध में योद्धाओं के ( मर कर ऊपर जाने से ) रक्त से आकाश के व्याप्त होने को कल्पना करके कवि प्रकृति को बीमत्स वर्णन में तलायक होने वाली के रूप में लेता है<sup>१</sup> ।

रात्रि के अन्त का वर्णन कवि मानव और प्रकृति का सम्बन्ध स्थापित करके करता है । वहाँ पर उलने रात्रि का अन्त विपत्ती राजा का नाश, अन्धकार का अन्त, कलिंग राज के प्रतापाग्नि के धुं के नाश<sup>और</sup> ताराओं का अन्त उसके <sup>यस</sup> कार्य का अन्त होगा बताया है<sup>२</sup> ।

कवि ने हिमालय पर्वत के वर्णन में सूर्यास्त से लेकर सूर्यादय तक के वर्णन में प्रकृति का स्वतन्त्र रूप लिया है जिसमें प्रकृति मानव को भाँति कार्य करती हुई अधिकारशक्तः बायी है । स्वतन्त्र वर्णन में धीरे-धीरे फैला हुआ अंधकार दिग्गजों के कर्णागार के छिलाने से भागते हुए झर्राँ के तटस्थ जाता है, अंधेरे में तारे कलरान के हैलाघर्षण से सुब्य कालिन्दी के प्रवाह का अचरणा करते हुए विलायी देते हैं, हिमालय की पद्मरागमणियाँ जे प्रतिबिम्बित चन्द्रमा नवीकित सूर्य का प्रम पैदा करा कर चक्रवाक को घौला देने वाला प्रताप होता है और प्रातःकाल  $\times$  तारे अंधकार तपी वृत्त के टूटने से गिरे हुए ड्रुम के समान महत्त्वहीन जाते हैं और फैली हुई लालकिर्णों का वृत्त के प्रवाल के तटस्थ प्रतिभासित होती है<sup>३</sup> ।

और मानवीकरण रूप में अंधकार के विषय में कवि कल्पना करता है कि विशार्य तात्कालिक उत्पन्न रात्रि के विरह-शोक के कारण काठे वस्त्र से जाना मुँह ढक लेता है, और सूर्यास्त समय फैली संध्या रक्तमान की हच्छा से लाल लाल जोम से अंधकार रूपी राक्षस को निगलने जाती है<sup>४</sup> । इसी प्रकार सूर्यादय के समय सूर्य-किरणों मृत्यु लोक में जाकर देवता के समान अंधकार रूपी

१-	कैम्पुपाल० पृष्ठ	१४०
२-	११	१४०
३-	११	१७१-७२
४-	११	१७१
५-	११	१७२

राजासों को नाश करने लग जाता है; पद्मिनी-नाथ (सूर्य) आशा के साथ (विश्वामै विलाया देने लग गई) धीरे-धीरे हाथ ( किरण ) फैलाते हुए पद्मिनी के हाथ वस्त्र (कमल) का स्पर्श करने लग जाता है । उसी प्रसंग में कवि ने राम की क्या का भी स्मरण किया है । जिस प्रकार राम ने हनुमान तथा बन्दरों के साथ लंका में जाकर तीव्र जाणों से राजासों का नाश करके पावक में प्रवेश करने से शूद्र सीता को ग्रहण किया था उसी प्रकार सूर्य ने अरुण (नारणि) और धौड़ों के साथ तैल से दीपा दिशा में जाकर अंधकार का नाश करके अग्नि में सम्बन्ध करने से शूद्र तैल (कान्ति) को धारण किया है ।

उस प्रसंग में किया गया सुसौंदर्य का वर्णन रात्रि का विलासश्रीडार्जों से सम्बन्धित है । यहाँ प्रकृति मानवीय रूप में आयी है ।

ऋतु-वर्णन में कवि ने चार ऋतुओं -- वसन्त, वर्षा, शरद और ग्राष्म-- को अपने काव्य में स्थान दिया है । ऋतु-वर्णन में प्रकृति की सुवभा के वर्णन में कवि ने विशेष उत्साह दिखाया है । विभिन्न ऋतुओं में लीन से वृक्ष तथा पुष्प खिलते हैं, लीन से नहीं, इस जोर कवि ने ध्यान दिया है । उसने अनेक ऋतु किन पक्षियों के लिए आह्लादकारी हैं, जिनके लिए कष्टकारक है तथा प्रकृति में क्या-क्या परिवर्तन हो जाते हैं-- आदि का वर्णन करके अपनी सुलभ दृष्टि का परिचय दिया है । ऋतुओं के वर्णन में कवि ने प्रकृति के स्वतन्त्र तथा मानवीय रूप की तो उपनाया ही है साथ ही उनके काव्य में उनकी प्रकृति विभिन्न ऋतुओं में होने वाले वृक्ष आदि की नाम गणना कराने में तथा कवि-समय के प्रयोग करने में परिलक्षित होती है । वसन्त ऋतु के वर्णन में गण्डूज से बकुल का, पदाघात से अशोक का तथा वनदेवतार्जों के गाने से बकुल का खिलना वर्णित है ।

वसन्त ऋतु के वर्णन में प्रकृति का उदीपन रूप अधिक वर्णित है क्योंकि राजा का शिकार खेलने के लिए जाने के पूर्व इसका वर्णन है जो कि जाने जाकर धुंजार रस की पूर्व भूमिका के रूप में सहायक होता है । (राजा प्रौढ हसी मायक

१- कामुपाठ० पृष्ठ १७८

२- " " १७९-१७८

३- " " १७-१८



शु में उम्रन में जाकर अनन्ता कन्या को देत कर उसके प्रति आकर्षित होता है) कवि कन्या शु के उद्दीपन रूप का वर्णन करने में सफल भी हुआ है। आत्र के वृत्तों पर बोलती कोयल, मधुकरों के गुंजन से युक्त वाङ्मि, बबुल, जलक, त्रिपाल वृक्षा की शोभा, सिलो माधवास्ता, कमलक-लक्ष्मी तथा वायु लो मिलकर एक भावक वातावरण उपस्थित कर देते हैं। विरहो-जल रूपो हरिणियों को मारने के लिए कामदेव का साथी वायु परागणी जाल को फैलता है, लाल-लाल किंशुक दुःखित चित्रों के हृदय से निकलते हुए रक्त से भिन्नित बाण तथा कान्त लक्ष्मी के मणिमय प्रदीप की तरह प्रतीत होते हैं। वायु अलग कामपीडा को बढ़ाता है। विरहोजल को मारने के लिए कामदेव धनुष की प्रत्यक्षा उठाकर उसकी ध्वनि से विशाजों को क्रुणित करता है। एक स्थल पर स्वतन्त्र वर्णन करते हुए कान्त को ज्वार का रूप देकर मलयगिरि को धौंकनी और पल्लव को जग्नि के रूप में कवि देखा है।

वर्षाकाल का वर्णन नवीन कल्पनावर्षों से जोतप्रोत है। किल्ली के विषय में कवि ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिक्षा दिया है। कभी यह बादल रूपी समरं को नर्तकी, कभी श्री आकाशपी कल्पने वाले पत्थर की कनक रत्ना, कभी समय रूपी योद्धा के बादल रूपी हृदय को काटने वाली तलवार और कभी आकाश रूपी आलम्ब भूमि में कल्पने वाली को चलाने वाले मेघ के स्वर्णिम लाम के लघुश विधायी देती है।

इस वर्णन में कवि ने राम, कर्जुन, ड्राफडी, चार्तराफ्र, सीता, शिव जादि को किल्ली-न-किल्ली रूप में लाने के कारण प्रकृति के मानवीय रूप में भी अपनाया है।

हरद शु के प्रका में भी कवि ने सिलने वाले पुष्पां, न सिलने वाले पुष्पां का, हंती के बिलायो देने, मेढकों के शान्त होने, कन्दपुत्रुष और किल्ली

---

१-	कामसुवात०	पृष्ठ	१७-१८
२-	११	११	१८-१९
३-	११	११	१७-१८
४-	११	११	१८
५-	११	११	१०७-१०८
६-	११	११	१०७-१०८
७-	११	११	१०८-१०९

कै न दिशाओं देने, राजाओं के स्थल करने आदि का वर्णन करके तथा उसे मयूरों के आनन्द का अपहरण करने वाला, चातक आदि का प्रसन्नता का धातक ब्या कर उसमें सैतों का उतराना, कावड़ का अभाव, झोंव को गुंजार आदि का वर्णन करके शुभ दृष्टि का परिकल्प दिया है। इस ऋ-वर्णन में फर कर शास्त्री ब्रह्म से आकाश में उड़ती हुई हुई का वर्णन करना नहीं भूठ है।

उस ऋ-वर्णन में भी बादलों के सम्बन्ध में वैश्वानर के मन्त्र होने की कल्पना में, बन्धुजातों के सम्बन्ध में बिजली को ~~कामुक~~ मेषः को पाँडे के ऊपर चातक मयूर से उनके निकले हुए रत्न का रूप में, ~~उपर-उपर मंतराते हुए~~ <sup>के ऊपर पावाभले की व्याख्या में; अलंकार</sup> हलों के द्वारा वज्रानल से पीछित आकाश को स्पर्श करने के कारण उसे धोवा मानने की कल्पना में, एवं अतियर विक्रमि को वेण्या के रूप में अपनाते में कवि ने प्रकृति का मानवीय रूप ही अपनाया है।

शिशिर ऋ-वर्णन में भी उस समय के सिलने वाले अथवा न सिलने वाले पुष्पों का उल्लेख करके, कवराह की पीड़ा, उल्लू का बौलना, रात्रि का क्षीण होना, धनिक लोगों का कम्कल आदि औढ़ना तथा सिद्ध कर बैठना, निरन्तर तापना, उँक से जूता जाना, कोहरा फैलना-- आदि का वर्णन किया है। एक स्थल पर शिशिर ऋ को वीणावाचक के रूप में बताया गया है -- 'जनतादन्तवीणावादनमहावैणिके'।

ग्रीष्म ऋ ऋण्य ऋणों के ज्ञान ही वर्णित है। क दावाग्नि, मंभावात नदियों का सूखना, रात्रि का क्य होना-- आदि के वर्णन से साथ-साथ मानवीय रूप में भी उसका वर्णन हुआ है। उस समय मंभावात से पुरित गुणाओं का प्रतिध्वनि से सूर्य से संतप्त होने के कारण पर्यंत विलाप करते हैं, ग्रीष्म ऋ सूर्य की किरणों से अपने विपत्ती फल के बाधाभुवों को जलाता है और अपने विपत्ती बादलों पर बुद्ध होने के कारण नदियों को सूखा देता है जिससे कि ~~क~~

- १- कैमुपाल पृष्ठ १२१-२२
- २- " " " १२२
- ३- " " " १४३
- ४- " " " १४३

वावट आ ही न पाए -- आदि ।

यद्यपि सभी नदियों का वर्णन आकर्षक रूप में है किन्तु सब तत्र विषयों की पुनरावृत्ति भी मिल जाती है ।

कवि ने अपने काव्य में कई नदियों को स्थान दिया है जैसे -- गंगा, यमुना, सरस्वती, रेवा, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा, मणिक्पर्णिका, तुंगभद्रा, तथा ताम्रा आदि । इन नदियों का कहां उल्लेखान है, कहां अलंकारिक वर्णन तथा कहां उन्हें समुद्र का प्रियती बताया गया है ।

कवि ने ताम्रपर्णी और गोदावरी नदी का सविस्तर तथा आकर्षक वर्णन किया है । ताम्रपर्णी नदी में प्रकृति मानवीय रूप में भी आयी है । उर्ध्व प्रतिबिम्बित गल्लव सूर्य की किरणों से मगनीत होकर उसके जल के अन्दर शरण लेने वाले अंधकार के समूह ज्योते हैं और प्रतिबिम्बित बूझों के लाल-लाल पल्लव मोठे जल की पोने के लिए बूझों द्वारा फैलायी गयी लाल जीभ प्रतीत होते हैं<sup>४</sup> । वह स्वयं शत रूपों पल्लवों से युक्त तरंगरूपी हाथों में सिन्धुराज रानी राजा पर फेनपटल रानी चानरी को छिटाती है और तरंगरूपी हाथों से सीफियां से मौलियां निकाल कर लुटे हुए समुद्र को देकर उसे पुनः बनादय बताती है<sup>५</sup> ।

नदी में नायिका के अवयवों का आरोप भी किया गया है । उर्ध्व चंचल लहरों से पड़ी आवर्त की बुद्बुदे स्वैद बिन्दु के समूह, तरंग की वायु से जल में फेले हुए कमल-पराग रोमांच समूह, तरंगी भ्रमंगिमा समूह और कारस की दूज भूषणों की ध्वनि के समूह प्रतीत होती है ।

गोदावरी नदी के वर्णन में कवि ने उसे समुद्र, कमल, कलहार से भरी, बह्वाक मिथुनों से शैवित, लहरों में प्रतिबिम्बित उपवन, जावलीमण्डल, तटवर्ती कारस, पानी में पड़े पुष्प, कल्लोल, जलविहार करते हंस, प्रतिबिम्ब चन्द्र से युक्त तथा स्वर्ण की

---

१-कैमभूषण० पृष्ठ	१६०
२- " " "	१३४
३- " " "	१०६
४- " " "	१५३
५- " " "	१५२
६- " " "	१५३

जीदी, पापनाशक आदि के रूप में देखा<sup>१</sup>। जल में प्रतिबिम्बित वृषा और फेन को प्रमशः छलाछल और जमूत के रूप में काँव देखा है। कवि नदी के तटवर्ती चारनों से धर्मापदेश तथा लहरों को कलकल ध्वनि से कल्लिङ्ग के पायों के नाश को घोषणा सुनता है<sup>२</sup>। उसी प्रसंग में कवि ने महाभारत की कथा तथा महावीर की भी उम्मान बताया है<sup>३</sup>।

यहाँ पर प्रकृति वण्ड विधायक के रूप में भी जाई है। कुसुमका को बन्द करने के अपराध में यह नदी अपने जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को बन्द करके तरंगों से पीटती है और चन्द्रमा उसी पीड़ा से खिलता हुआ दिखायी देता है। वह पुन्वरियों की गति बुराने के कारण राजहंसों को टूट कर फैला हुई कमल नाल बन्धुव तन्तुजों से बाँधती है<sup>४</sup>।

सरोवर का वर्णन केवल जबकि राजधानी के वर्णन में है। हंसों को मधुर ध्वनि, कोमल किंचित्क के साने की लम्बा से कुवलय पर बैठे कङ्काक लहरों में चलते बरटा और बराटक, कमलों की छाया में बैठे राजहंस, हंसों द्वारा तोड़े गए कुसुमपराग की सुगन्धि तथा कद्दूये से युक्त सरोवर का वर्णन है। हंस से सम्बन्धित प्रसंग हंसों अपेक्षाकृत अधिक है<sup>५</sup>।

समुद्र के वर्णन में कवि ने उसकी कल्लौल, गर्जन, शंख, पानी पीते बादल, आवर्त, समी नदियों का वहाँ पहुँचना, ज्वार भाटा आदि समी का जलकारिक ढंग से वर्णन किया है। यहाँपर भी महाभारत के पात्रों में कृष्ण, सुयोधन, भीम, जयद्रथ, अरु + लूह इसके अतिरिक्त देवताओं में शंकर, कार्तिकेय और पर्वत में वीनाक को उम्मान बताया है। आदि-पाराह और कुमावतार का भी उल्लेख हुआ है। कवि को समुद्र कभी घुड़शाला, कभी रक्षा डुई और कभी रंगमण्डप के समूह दिखायी देता है<sup>६</sup>। उसकी ऊँची-ऊँची लहरें मानव की भाँति

१- कैव भूपाल० पृष्ठ २०५

२-	११	११	२०५-२०६
३-	११	११	२०६
४-	११	११	२०६
५-	११	११	१२
६-	११	११	१३४

आकाश को जूमने की इच्छा करती है, समुद्र तिव की विषय देने के अपराध के कारण वस्त्राग्नि से अपने को तपाता है जिसका धुआँ बादल के रूप में ऊपर उठता है वह पारिजात के कियोग में ऊँचा-ऊँचा लहरों के कहाने निःश्वास होता है, वारुणों के रंगी कर्णों को दूर करने के लिए वह गंगा में स्नान करता है<sup>१</sup>।

कवि समुद्र-मंथन में जो पदार्थ समुद्र से निकल गए वे उनसे पुनः युक्त होते देखता है। कवि बृहार्ण के प्रतिबिम्ब से कल्पवृक्ष, फेनपिण्ड से अमृत, जलदेवता से लव्यारा, नभप्रतिबिम्ब से काञ्चूट, बादल समूह से त्र्यम्बकम, शंखाल मंजरी से रामेश, विद्रुम वृक्षों से शिराल की कल्पना करता है<sup>२</sup>।

समुद्र के वशिष्ठी तट का गारा सम्बन्ध राम-रावण का कहानी से है<sup>३</sup>।

उपवर्णों के वर्णन में कवि की प्रकृति वृत्तों के नाम गिनाने में अधिक परिचित होती है। इसके प्रसंग त्रिलिङ्गी जनपद तथा अर्द्धिकी राजधानी के वर्णन में भी आए हैं किन्तु वे उत्पन्न आकर्षक नहीं हैं। काव्य-प्रतिभा से परिपूर्ण उपवन का प्रसंग उस उपवन तथा सत्कार वृक्ष के वर्णन में मिलता है जिसमें अनन्ता कुल रही है। कवि ने उसका वर्णन अधिकशतः उदीपन रूप में किया है। यहाँ छिलती हुई शाखाओं से लताओं का कन-माधुरी की प्रशंसा करना, वृक्षों पर दौड़ते हुए अमरों का स्तुति-गान करना, वायु का राजा का सत्कार करना, कौकिल का कुशल पूछना, -- जादि की मानवीय करण ढंग से प्रस्तुत करके प्रकृति के आलम्बन रूप (स्वतन्त्ररूप) को वर्णित किया गया है।

यहाँ के बाल सत्कार का वर्णन उदीपन और स्वतन्त्र दोनों रूप से हुआ है जिसमें प्रकृति मानव के रूप में आयी है। स्वतन्त्र वर्णन में बाल सत्कार गीत सुनकर वृक्षी से शिर छिलाता है, निरन्तर जल में रत्न के कारण शीत से कांपता है और उदीपन रूप में मुकुट की सरलता (नायिका) के सम्पर्क से उत्पन्न

१- कैममुपाल० पृष्ठ १३३-३४

२- " " " १३३-३४

३- " " " १५१-५२

४- " " " २०-२८

५- " " " २६

पुलक के बहाने धारण करता है, तबन हाथा से अंकार उपस्थित करके छाती की वधु के लिए अभिरक्षण कराने की तैयारी करता है, बालबाल में प्रतिबिम्बित अन्य वृत्तों के साथ उनमें जलझड़ा करता है, कौशल क्षेत्रों का उच्चारण कराकर मकरन्द की पूत की अक्षमालिनीयों अग्नि में छाती की वधु के लिए आहुति डालता है और मल्लव की अंगुलियों तथा शालाकी भुजाओं को छिला-छिलाकर नृत्य करता है<sup>१</sup>।

कवि ने बाल सङ्कार के उदोत्तम रूप के उस वर्णन के ढंग के अतिरिक्त सामान्य वर्णन में छाती के पुष्पाङ्कुर को कामाञ्ज, मुकुल को पुलक, कुमुदपराग को कामवेव का वृषि आदि अन्तर्गत वर्णन किया है<sup>२</sup>।

बाल सङ्कार के स्वतन्त्र वर्णन में बाल सङ्कार को दिग्म्बर धारण करने वाले शिव, मैत्राहन्त्र को धारण करने वाले छन्द और गुणपराग का ज्ञान करने वाले शिव विष्णु के सदृश बताया है<sup>३</sup>। इसके अतिरिक्त देवताओं और दुराकारों द्वारा मथिला क्षीरसागर के कल्पद्रुम के सदृश कवि उसे देखता है<sup>४</sup>।

बाण का प्रसंग राजा प्रोक्त के शिकार तथा विन्ध्याटकी वर्णन में मिलता है। शिकार के लिए जाते समय अरण्य की भीषणता का चित्र न खींचकर शिकार के पश्चात् उस अरण्य में होनेवाली पशुओं की दुर्बल स्थिति का चित्रण किया है। यत्र तत्र वहाँ तलवारों से कटे पशुओं के निकलते हुए खून से सनी भूमि का वर्णन करके भीषण रूप चित्रित करने का प्रयत्न भी किया है। विन्ध्याटकी का वर्णन लीन्य और रौद्र दोनों रूपों में हुआ है। मगानक वर्णन ऐसा कि रस-निरूपण में देखा जा सकता है, पशुओं की मारकाट आदि से है और रम्य वर्णन वृत्तों, फूलों एवं पक्षियों से है। जानवरों में रौहित मृग, शरप, तरुण, हरिण, चमरीमूत, सिंह, हाथी, मालू, हारीत, सुबर आदि, पक्षियों में कपिचक्र, कर्कट, शुक, कलविक, भेरुण्ड, कपि, चिक्रीड, कर्पिक, लंबरीट तथा

१- कैममुपाठ० पृष्ठ २६

२- " " " २६

३- " " " ३०

४- " " " ३०

५- " " " २६

६- " " " २२

उल्लू आदि और वृक्षाँ में कस्तूर, पुरुष, ताल, क्वन, मालती, गायत्री, जमा, शोफल, कंकरी, वाणि, गुग्गुलु, गौशोर्ष आदि को लिया है। इसका भयानक वर्णन रस के पोषण में सहायक हुआ है।

बाण ने विन्ध्याटकी के प्रसंग में निषादाधिपति का सविस्तर वर्णन किया है और इन्होंने निषप जाति का किन्तु संक्षेप में।

कवि ने पर्वतों में केवल मलय पर्वत का वर्णन सविस्तर किया है। इस वर्णन में कवि ने उसकी अमरालय, मन्दर, विन्ध्य, कैलास आदि पर्वतों से उसकी उत्कृष्टता एवं समृद्धता बताई है। अतः इसका वर्णन उदीपन रूप में न होकर स्कान्ध रूप में हुआ है। ऊपररिक्त बादलों से उन्द्र-वज्र के द्वारा उत्पन्न धाव होने के कारण शिर पर पट्टी बांधने की कल्पना, अन्य पर्वतों की उपहासपूर्ण करना, तटपती चन्दनपत्तियों से सुद्रु की बह्मवाग्नि को शान्त करना, सैतु ज्यों झूठला से व्यथित होकर निःश्वास लेना, उन्द्र के वज्र की वेदना से मरने के बहाने बहू छोड़ना, नोल्मणियों की कान्ति से दूसरे आकाश की वृष्टि करना, मिर्किर की ध्वनि से सागरशायी नारायण की स्तुति करना, सागर की प्रतिध्वनि से हिमालय के आधिपत्य की लंघी उड़ाना, वासी करना -- आदि क्रियाओं का आरोप करके तथा गुफा को छुला हुआ गुंठ, चन्दन वृक्षाँ पर लटके हुए सर्पों की शिराजाल, धातुओं की कुँकुल का तथाकथित बताकर कवि ने प्रकृति की मानव की भाँति कार्य करते हुए अपनाया है।

इस वर्णन प्रसंग में कवि ने अन्य वर्णन-प्रसंगों की भाँति वृक्षाँ के नाम गिनाने नहीं शुरू किए हैं।

मलय पर्वत के समान हिमालय के वर्णन में कवि की विशेष काव्य-प्रतिभा का परिचय नहीं मिलता है। फूल, वृक्ष, पत्तों आदि की ही नाम-गणना मिलती है।

इन विषयों के अतिरिक्त शिखरों के नक्ष-श्लिष वर्णन में कवि ने अलंकारों के साथ प्रकृति को कई प्रकार से रथान दिया है। कभी उपमैय की नगण्य

१- कैमुपाठ० पृष्ठ १८०-१८२

२- " " " १८२

३- " " " १५५-५६

४- " " " १६४

करके प्रकृति को प्रकृत स्थान दिया है जैसे 'यत्र सूत्रं च पुनरभ्युपगच्छन्' , जमुत्कार-  
विष्कर... इत्यादि' कभी प्रकृति में मानवीय अवयवों का आरोप करके , जैसे  
'बिम्बाधर इति मल्लवं किमुत्तर , हरिप्रामिति पुष्पमलोकम्...' इत्यादि कभी  
मानव की भांति कार्य करने वाली के रूप में जैसे 'सुसम्पन्निकदधिर्' कलिरष्टुबिन्दव  
स्व सुलभन्ते... रामिलामगति चातुरीदर्शनलज्जामञ्जनावरति उल्लिप्तं हंसकुलम्...  
इत्यादि' और कभी वण्डविधाकर के रूप में प्रकृति को देखा है जैसे अनन्ता के  
वर्णन में --

मल्लव बुंकि उसके बिम्बाधर का समता रखने का साहस करते हैं जतः  
शुक उक्तो कृतर कृतर कर वण्ड दे रहा है, उसकी मोठी बीली से पराजित होकर  
कोयल आग्रा-आहित बुताँ पर कड़ी <sup>है</sup> <sup>है</sup> प्रतीत होता है कि उन्हें मानों  
वण्ड के रूप में अभिन में प्रवेश कराया जा रहा है, अवयवों से विजित लताओं  
को उसके ऊपर चढ़ने वाले बुताँ से बांधा जा रहा है , इत्यादि ।

कवि ने नल-शिक्ष वर्णन में कभी बुताँ और कभी नदियों को स्थान  
देकर प्रकृति को स्थान दिया है ।

स्त्रियों के नल-शिक्ष वर्णन के अतिरिक्त उनके सामान्य सौन्दर्य-वर्णन में  
प्रकृति मानव की भांति कभी सहयोग देती हुई, कभी सेवा करती हुई तथा कभी  
अन्य कार्य करती हुई आयी है ।

इस प्रकार कवि के काव्य में प्रकृति को पर्याप्त मात्रा में स्थान मिला  
है और उसके वर्णन में उसने अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है ।

### रामकथा में प्रकृति-वर्णन--

बाहुदेव ने अपने काव्य में केवल कथावस्तु को प्रधानता दी है । इस  
काव्य में न कलकारों की दृष्टा, न विविध रसों की अभिव्यक्ति और न प्रकृति की  
मधुर सुपमा रूप देने को मिलती है । केवल प्रसादगुणमयी शैली का ही सौन्दर्य  
है । यदि कवि प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करना चाहता तो इस कथा में कई शैली  
कृत्य वार थे जिनका वह वर्णन कर सकता था । राम का अधिकांश जीवन वन में

१-	वन० पृष्ठ	१५-१६
२-	११	६१
३-	११	१६७-६८
४-	११	४८
५-	११	१६५
६-	११	१०६



हो जाता था न जाने कितने जाशनों ने वे गद थे किन्तु कवि ने उन सब का उल्लेख मात्र कर दिया है। चित्रकूट<sup>१</sup> और दण्डकारण्य<sup>२</sup> के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि उनका उल्लेख हो चुका है किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनके वर्णन में कवि ने किलो प्रकार की रूचि दिखायी है। उन वर्णनों की रूचि पंक्ति में समाप्त कर दिया गया है।

राजासों से भयभीत जिग वाभ्रम का वर्णन किया है उन्हें भी कोई सौन्दर्य नहीं है। उन्हें केवल यज्ञ करने वालों का यज्ञ झौंझकर भगना, ब्रह्मचारियों के हाथ से डंडे का गिर जाना, स्व कोलाहल से ब्रह्माण्ड का व्याप्त हो जाना ही वर्णित है।<sup>३</sup>

एसी प्रकार समुद्र को सुताने के लिए रामचन्द्र के धनुषबाण उठाने पर कवि ने अन्य स्थलों की अपेक्षा ब्रह्माण्ड का अधिक विस्तृत वर्णन किया है। इसमें गार्गी समुद्र के प्राणियों का भयभीत होना, पाताल-लोक निवासी राजासों का धर्य डूटना एवं बाहि-बाहि करना, लीनों का असमय प्रत्येकाल की कल्पना करना आदि कुछ ही <sup>वर्ण-</sup> विषय हैं।<sup>४</sup>

अन्य कवियों ने अपने काव्य में समुद्र को स्थान देकर न जाने कितने प्रकार से उसका वर्णन किया है किन्तु इस कवि ने इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी। उसका केवल उल्लेख<sup>५</sup> करके ही जागे बहू गए।

अन्य कवियों<sup>६</sup> ने राजधानी आदि के वैभव का वर्णन करके अपने काव्य में प्रकृति को स्थान दिया है, इन्होंने यह भी नहीं किया है। वीं बार लंका का वर्णन हुआ है किन्तु एक में केवल कुछ मणियों को स्थान मिला है<sup>७</sup> और दूसरे में लंका की ऊंचाई से सूर्य को जोतने की उच्छा करती हुई तथा अनेक मणियों को कान्ति से सन्ध्या और मेघ की एक साथ करती हुई बताया है।<sup>८</sup>

#### १-रामकथा पृष्ठ १४

२-	११	११	१७
३-	११	११	८
४-	११	११	३६
५-	११	११	३५
६-	११	११	३२
७-	११	११	४२

सौन्दर्य के वर्णन में मध्याह्न सूर्य की जिन स्थिति का वर्णन किया  
था है, उसमें न कौड़ी नवीनता है और न सौन्दर्य ही । उसमें पूर्ववर्ती कवियों  
की अनुकृतिमात्र है <sup>१</sup> ।

यहाँ पर सरयू नदी का वर्णन भी कमल और कुमुद पुष्प से युक्त तथा  
पापनाशिनी बताकर ज्ञान कर दिया है <sup>२</sup> ।

पुष्प-युक्त के उपरान्त रक्त ने <sup>सनी</sup> ~~हस्ते~~ गौदावरी नदी का <sup>वर्णन</sup> ~~अवगत्य~~ कुछ  
दूरी तक सुन्दर वर्णन कहा जा सकता है --

निरन्तरप्रसूतसुखी रशरशकलितशर्कराचशरीरनिर्गतत्वरुधिराफा-  
लमेदङ्गिणितालेना <sup>तेषां</sup> गौदावरी विभांसुभावनावैदयितुकामेव लंकापुरपरमपरिसार्यै  
सरितामन्थे सत्वरतरं प्रावह्व <sup>३</sup> ।

३- राम के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने अवश्य उनके रौज से तिरस्कृत सूर्य,  
कमल एवं कमल की ज्ञान दिया है जिसमें कमल को नेत्र और हाथ के वर्णन में  
दो बार ग्रहण किया है । इसमें कौड़ी नवीनता नहीं है <sup>४</sup> ।

### जातकविलास में प्रकृति-वर्णन

संस्कृत गद्य-काव्य को नया मीडू देने वाले 'जातकविलास' के रचयिता  
जगन्नाथ ने अपने काव्य में प्रकृति के रम्य रूप को ग्रहण किया है । ऐसे महान्  
आचार्य एवं प्रतिभात्मन् व्यक्ति से इस विषय में जैसी जाला पाठक करता  
है वही उपलब्धि में उसे निरास होना पड़ता है ।

कश्मीर भूमि-सौन्दर्य की पराकाष्ठा कायी गयी है किन्तु कवि ने  
उसका वर्णन सामान्य रूप से कर दिया । वही पुष्पों पर झरनों की गुंजार,  
फलों के मार से नत वृक्षा, छिलते हुए कमलों से निकले पराग से पाण्डुरित चाँच  
वाली हंसियाँ से जुजाये जाते हुए हंस तथा फलाश्रय वर्णित हैं । वानों के उपवन  
के वर्णन-विषय साधारण वृत्त एवं वाणी हैं <sup>५</sup> ।

१- रामकथा पृष्ठ २

२- " " " २

३- " " " २०

४- " " " ४८

५- जातकविलास पृष्ठ ८३-८४

वहाँ के मार्ग एवं हिमालय के वर्णन के प्रति कवि की रुचि परिलक्षित नहीं होती है। मार्ग के लिए केवल 'विषमतरारोधावरोहाभिः स्वरावृत्तिभिरिव पद्यतिभिरनाकलितदुःखैशं कश्मीरदेशमज्जाय ६' कह कर तथा हिमालय के लिए केवल -- 'यस्मिन्नवरत्नपरिमितपयोदपटलपयांकात्प्राणैवपुंजफिंजरितेन परितः स्फुरतां रजतप्राकारेणैव गौरीकुरुणा स्मिगिरिणा' कह कर वर्णन प्रसंग को समाप्त कर दिया है।

फल के भार से भुके वृक्षों की अतिथि की सेवा में उत्तर हुए, मधुकरों के गुंजन से उन्हें विरुवावली गाते हुए तथा सूर्य की किरणों से वस्तु होकर अंकार की पानी के अन्दर शरण लेते हुए बताकर कवि ने प्रकृति को मानवीय रूप दिया है। किन्तु केवल भुके के पानी के सम्बन्ध में कवि ने जो कल्पना की है वह नवीन कही जा सकती है और अन्य सब कल्पनाओं में पूर्व कवियों की कल्पना की ह्रास परिलक्षित होती है।

इस काव्य में पण्डित राज जान्नाथ ने झरनों का कई बार उल्लेख किया है। १ ४

इस प्रकार जर्वाचीन गद्य-काव्यों में प्रकृति निरूपण के संबंध में देखा जा सकता है कि इस काल में भी गद्य-कवि प्रकृति को पर्याप्त मात्रा में स्थान देते रहे और उसमें उनकी काव्य-प्रतिभा का परिचय होता है। जर्वाचीन गद्य-कवियों में यदि कितने नै इस तत्त्व की उपेक्षा की है तो वासुदेव कवि ही कहे जा सकते हैं। अन्यथा इन कवियों ने प्रकृति की कभी स्वतन्त्र, कभी उद्दीप्त, कभी रसपौषिका, कभी शिक्षिका, कभी दण्ड-विधातु, कभी सेविका, कभी सहचरी और कभी इसी प्रकार के अन्य रूपों में अपनाया है। इस विषय में मीरा, धनपाल, जोष्यदेव तथा वामनभट्ट कवियों की विशेषरूप से प्रशंसा की जा सकती है। धनपाल का काव्य यद्यपि क्लिष्ट हो गया है किन्तु उनके काव्य में प्रकृति की विविध रूपता अपना विशेष स्थान रखती है। पण्डितराज जान्नाथ के काव्य में प्रकृति की विविधरूपता नहीं मिलती है। उन्होंने अपने लघुकाव्य गद्य-काव्य में प्रकृति की स्वतन्त्र रूप में ही अपनाया है। स्थाय स्थलों पर प्रकृति में मानवीय द्रव्या-कलापों का आरोप कर दिया है।

१-	जालकविलास	पृष्ठ	८३
२-	११	११	८३
३-	११	११	८४
४-	११	११	८३, ८४।

पक्षे अथवा

पार्श्व का चरित्र-चित्रण

-0-

## पात्रों का चरित्र-चित्रण

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि कवि अपने काव्य के अध्ययन से समाज को जिस ओर मोड़ना चाहें तथा उन्हें जो मो परिवर्तन करना चाहें बड़ी सरलता से कर सकता है । क्योंकि उनके काव्य में एक सरलता होती है जिससे सहृदय आकृष्ट होकर अथवा जिसके आस्वादन में विभोर होकर वह यत्न-चालित-सा कार्य करने लगता है । काव्य के दिए गए उपदेशों में उसे एक अद्वितीय आनन्द मिलता है जिन्हें वह निःसंकोच ग्रहण कर लेता है । अतः कवि में ही यह शक्ति होती है कि व्यक्ति को बुरे मार्ग से सन्मार्ग को ओर ले जाए यद्यपि यही कार्य शास्त्र आदि भी करते हैं किन्तु वे विषय ज्ञानी पुरुषों के लिए ही ठीक हो सकते हैं, अल्पज्ञ के लिए नहीं । फिर ज्ञानी पुरुष भी सरल मार्ग होने के कारण काव्य के द्वारा दिए गए सरल उपदेशों को अपनाना अधिक पसन्द करते हैं । अतः कवि का कर्तव्य ही जाता है कि अपने काव्य-को आदर्शमय बनाए । इसीलिए संस्कृत आचार्यों ने नायक के लिए विनम्र, मधुर भाषी, त्यागी, चतुर, लोगों का रंजक, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीन वंशी होना तथा उसमें बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, धर्मशास्त्र तथा कला-विषयक-ज्ञान, शूरता, दृढ़ता, तेजस्विता आदि गुणों का होना भी आवश्यक बताया है । यही कारण है कि संस्कृत काव्यों में चाहे वे नाटक हों या गद्य-काव्य सब में इसी प्रकार के नायक रचले जाते हैं । अधिकांशतः नायक राजा या राजकुमार हुआ करते हैं । उनकी महानता बताने के लिए कवि उनके जन्म में देवी विधान की कल्पना करते हैं । उपनायक को लाकर नायक को उससे बढ़कर दिखाते हैं । नायक की भांति नायिका भी उच्चवंशीय वर्णित होती है । कवि अधिकांशतः उसे सौन्दर्य की अधिष्ठातृ-देवी के रूप में चित्रित करते हैं । उसको अधिकांशतः विविध कलाओं में निपुण स्वं प्रेमिका रूप में ~~चित्रित~~ दिखाया जाता है और वे आदर्श प्रेम का रूप रखती हुई चित्रित की जाती हैं । कुछ नायिकाएँ प्रेमिका के रूप में न आकर पतिव्रता स्त्री का आदर्श अथवा अन्य कोई आदर्श रखती हुई वर्णित की जाती हैं । अर्वाचीन गद्य-काव्यों में गद्य चिन्तामणि की महिषी गन्धर्वदत्ता तथा रामकथा की सीता को कवि ने पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रित किया है ।

संस्कृत गद्य-काव्यों में नायक-नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र भी आदर्शों को स्थापन करते हुए वर्णित किए जाते हैं । यही कारण है कि इन काव्यों में उपनायक सर्वदा सरल रूप में नहीं दिखाया जाता है । नाटक में उपनायक को नायक की फलप्राप्ति में विघ्न उपस्थित करने वाला, नायक-शत्रु, लोभी, धीरोद्भूत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी की दृष्टि से देखा जाता है किन्तु गद्य-काव्य में इस रूप के अतिरिक्त साधु रूप में भी मिलते हैं । उपनायक का प्रथम रूप गद्यचिन्तामणि के काष्ठांगार पात्र में देखा जा सकता है और दूसरा रूप तिलकर्मजरी के समरकेतु में । समरकेतु सच्चे मित्र और उत्कृष्ट प्रेम का आदर्श उपस्थित करता है ।

संस्कृत गद्य-काव्य अधिकांशतः शृंगार रस प्रधान है और जो नहीं भी है उनमें इस रस को स्थान अवश्य मिला है (इस विषय में केवल शृंगार मंजरी कथा तथा रामकथा अपवाद-स्वरूप हैं) अतः उनमें नायक-नायिका का चित्रण अवश्य हुआ है किन्तु अर्वाचीन गद्य-काव्यों में एक ऐसा भी लघुकाय गद्य-काव्य मिलता है जिसमें कवि ने नायिका पात्र को स्थान ही नहीं दिया है। इस सम्बन्ध में जगन्नाथ का आसफविलार उद्धृत किया जा सकता है। उस काव्य के पात्रों में केवल दो पुरुष पात्र ही हैं। उसमें कोई भी स्त्री पात्र नहीं है केवल उनके सामान्य सौन्दर्य का संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है।

किन्तु कवि की सफलता अथवा असफलता काव्य में स्त्री-पात्रों के स्थान देने अथवा न देने में नहीं होती है अपितु पात्रों को इस ढंग से प्रस्तुत करने में होती है कि वे हमारे समक्ष सजीव रूप में आ जाएं और पाठक उनके सुख-दुःख का साभोगदार बन जाए। अतः चरित्र-चित्रण में कवि का कार्य केवल गुणों की सूची तैयार कर देना नहीं होता अपितु उसे काव्य में उन गुणों के सम्यक् निर्वाह करने में भी ध्यान रखना पड़ता है, पात्रों के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण करना पड़ता है, उनकी प्रकृति समझनी पड़ती है जिससे उन पात्रों के बीच किसी प्रकार की अस्वाभाविकता न आने पाए। इसी दृष्टि से ही कवि की चरित्र-चित्रण विषयक शक्ति का मूल्यांकन होता है।

संस्कृत अर्वाचीन गद्य-काव्यों को यदि पात्रों के चरित्र-चित्रण को दृष्टि से देखा जाय तो कुछ ही गद्य-काव्य श्रेष्ठ मिलेंगे। क्योंकि अधिकांश कवियों ने पात्रों के चित्रण में केवल अपार गुण राशि का बखान कर देना ही अपना कर्तव्य समझा है और उन गुणों को उनके जीवन में घटित होते हुए नहीं चित्रित किया है। कुछ कवियों ने किस समय पात्र में कौन से गुण बताने चाहिए, इस पर भी ध्यान नहीं रखा, जहाँ उनकी जैसी इच्छा हुई उसी रूप में वहाँ उनका वर्णन कर दिया। कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने अन्य पात्रों का तो फिर भी अच्छा चित्रण कर दिया है किन्तु नायक के चित्रण में उभेदा दृष्टि ही रखी है जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके नायक का चित्रण ही सम्यक् प्रकार से नहीं हुआ। वैसे अर्वाचीन गद्य-काव्यों के नायक महान और आदर्श रूप में चित्रित हैं। कुछ कवियों ने अपने काव्य में सभी पात्रों को एक आदर्श को लेते हुए चित्रित किया है। कुछ कवियों ने साधु और दृष्ट प्रकृति के पात्रों को रसकर अधर्म के रूप पर धर्म की विषय दिशा कर आदर्श की स्थापना की है।

#### शृंगारमंजरी कथा के पात्र--

अर्वाचीन गद्य-काव्यों में सबसे मिन्य प्रकार का गद्य-काव्य 'शृंगारमंजरीकथा' है जिसमें कवि ने अन्य कवियों की भांति राजाओं के सौन्दर्य गुण आदि का वर्णन न करके वेश्याओं का चरित्र खींचा है। अतः उनके काव्य में वेश्या-पात्रों का, उनकी माताओं का एवं उनके सम्पर्क में आने वाले पुरुषों का ही चित्रण मिलता है। प्रारम्भ में कवि ने पुरुषों के कुछ व्यक्तित्व के प्रकार बताये हैं तथा उनके रागों की चर्चा की है उनमें से कुछ प्रकार के व्यक्तित्व वाले एवं राग वाले पात्रों को लेकर कवि ने उनके स्वरूप की विवेचना की है। काव्य में वेश्याओं का सम्पर्क पाने वालों में से कुछ पात्र उनके रूप-माधुर्य पर सब कुछ न्योहावर कर देने वाले हैं जिनमें रविदत्त और विक्रमसिंह आते हैं।

क्योंकि ये दोनों क्रमशः विनयवती और मालतिका नामक वेश्याओं पर सर्वस्व न्योहावर कर देते हैं। कवि ने रविदत्त के स्वभाव में धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तन का वर्णन किया है। वह पिता के द्वारा दिए गए जीवन सम्बन्धी उपदेशों का पालन करता है, विनयवती के सौन्दर्य पर मुग्ध होने पर भी तथा विनयवती की रक्षी के द्वारा उसके पास जाने का प्रस्ताव रखी जाने पर भी वह एकदम से धीरे नहीं हो जाता। वह बहुत सौच-स्मरक का उसके प्रस्ताव को स्वीकार करता है। कवि ने पहले उसे एक आदर्श व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है तत्पश्चात् वेश्या के सम्पर्क से उत्पन्न नीचता रूप बताकर उसका अक्षयपतन दिखाया है।

विक्रमसिंह को कवि ने स्वभावतः विलासी के रूप में चित्रित किया है। यद्यपि उसके पराङ्गी और त्यागी होने की बात कही है किन्तु वे गुण क्रियान्वित रूप से घटित होते हुए नहीं दिखाए गए हैं। वह रविदत्त की भाँति वेश्या की ओर से जाने वाली, उसी की प्रतीक्षा नहीं करता है अपितु स्वयं अपने मित्र को मेजता है। कवि ने उसे कामुक के रूप में चित्रित किया है। अतः उसको सहनशीलता भी मालतिका की प्रतीक्षा में होने के कारण उसके इसी रूप को चित्रित किया-है करती है।

कुछ पात्र वेश्याओं की माताओं से परेशान होकर उन्हें स्मृति दण्ड देते हुए चित्रित किए गए हैं। माधव, सोमदत्त और विनयधर इसी प्रकार के हैं। माधव और विनयधर दोनों ही वेश्याओं की माताओं को उनकी नाक-कान काट कर दण्ड देते हैं। सोमदत्त के दण्ड देने का तरीका इन दोनों से भिन्न है। इसकी विधि में वह धूर्तता नहीं परिहसित होती जो उपर्युक्त अन्य दो पात्रों में होती है। वे दोनों पात्र एक प्रकार से धूर्त प्रकृति के चित्रित किए गए हैं और सोमदत्त इस प्रकार का नहीं कहा जा सकता है। वेश्याओं की फूट चालों को सर्वप्रथम समझने का जहाँ तक प्रश्न उठता है वहाँ कवि ने माधव की बुद्धिमान बताया है। क्योंकि वह लूटने के पहले ही सचेत हो जाता है, विनयधर लूट जाने के पश्चात् सचेत होता है और दण्ड देने के लिए उसे उधार लेना पड़ता है, सोमदत्त भी सब कुछ लूटा कर भाई का आश्रय लेकर दण्ड दे पाता है। अन्य दो पात्रों की अपेक्षा सोमदत्त अधिक बेवकूफ दिखाया गया है वह वेश्या की चालों में फँसकर धनप्राप्ति के रहस्य तक को बता देता है।

सूरधर्म को माधव की भाँति वेश्याओं की चालों को समझने की दृष्टि से तीव्र बुद्धि वाला कहा जा सकता है क्योंकि समुद्र द्वारा दिए गए दिव्य रत्नों को पाकर कहीं किसी से लूट न जाए तो वह पागल का-सा अभिनय करने लगता है। देवदत्ता नाम की वेश्या उस घर तरह-तरह के जाल डालती है किन्तु उसमें वह फँसता नहीं है।

सूरधर्म की जहाँ यह बुद्धि उसको वेश्या के जाल में न फँसने में सहायक बनती है, वहाँ उसकी दयालुता उसको वेश्या के जाल में फँसा देती है। देवदत्ता की मृत्यु का कारण अपने को जान कर वह उसके रोते-विकल्पते परिवारों को दिव्य रत्न देकर स्वयं मरने को उद्यत हो जाता है और देवदत्ता उस रत्न को पाकर कुछ दिनों बाद उसे घर से निकाल देती है।

काव्य में कुछ ऐसे भी पात्र आये हैं जिनपर वेश्याओं का मुग्ध होना बताया गया है। बाठवीं कथानिका का रत्नदत्त इसी प्रकार का है। वह स्वयं किसी पर आकृष्ट नहीं होता अपितु उस पर वेश्या लावण्य सुन्दरी आकृष्ट होता है और अपना सब कुछ



न्योहावर कर देती है ।

कवि ने यद्यपि उसे हपवान, विद्वान, शूतपट्ट, गज, अश्व आदि विविध शिखाओं में निपुण तथा वीर योद्धा बताया है किन्तु उसके गुणों का कथन ही कवि ने किया है उससे पात्र का कोई चरित्र चित्रित नहीं होता । केवल उसके संयमी रूप को चित्रित करने में कवि ने सावधानी रखी है । क्योंकि वह लावण्यसुन्दरी को अलंकृत एवं राजा के पास से आयी हुई देखकर तथा उसके पैर धोने के लिए उसे उधत देखकर केवल उसे 'मां' कहकर रोक देता है और उसे स्वामी को पत्नी बताता है ।

दोनों के वातालाप को सुनकर राजा सामने आता है तो वह शस्त्र लेकर सड़ा अवश्य ही जाता है किन्तु क्रांथावेश में निर्गल बाते कुछ नहीं करता वह केवल उससे वहाँ से हट जाने को ही कहता है । (आठवीं कथा०)

रत्नदा लावण्यसुन्दरी को चाहता है किन्तु कवि ने उसकी संदेहात्मक प्रकृति का चित्रण किया है और अशोकवती नामक वेश्या को चाहने वाले छद्मक के प्रेम में कवि ने इस प्रकृति को किंचिदपि स्थान नहीं दिया है । यहाँ तो राजा दोनों के प्रेम के बीच भेद डालने के लिए घृणित से घृणित कार्य करता है किन्तु कवि ने उसके ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव पड़ने नहीं दिखाया । इसके विपरीत उसे संसार के सनदा अपने सच्चे प्रेम का दृष्टान्त उपस्थित करते हुए चित्रित किया है जिसमें अशोकवती और छद्मक दोनों को मृत्यु हो जाती है ।

काव्य में वेश्याओं का सम्पर्क करने वाले सामान्य कोटि के पुरुष ही नहीं राजा तथा सामन्त जादि भी हैं । उरणपुर का राजा समरसिंह अशोकवती को अपनी और आकृष्ट करने के लिए घृणित से घृणित कार्य करने को उधत रहता है । (नवमी कथा०)

उज्जैनी का राजा विक्रमार्क देवदत्ता नामक वेश्या का सम्पर्क पाकर अपार धनराशि देते हुए चित्रित किया गया है । यहाँ यह एक चाटुकारिता का प्रेमी बताया गया है और देवदत्ता उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाने के लिए मनमदन्त कहानी रचती है । (पाँचवी कथा०)

विक्रमादित्य लावण्यसुन्दरी ( जो वस्तुतः वेश्या नहीं थी अपितु उसे परिस्थितियों के कारण बनना पड़ा था ) के प्रेम में फँस कर मातृपुत्र के द्वारा बार बार सावधान किए जाने पर उसकी परीक्षा लेकर और उसमें उसे सारा देखकर उसके प्रेम में किसी प्रकार का सन्देह नहीं करता है । यद्यपि वह उससे प्रेम करता है किन्तु कवि ने उसे एक आदर्श व्यक्त के रूप में चित्रित किया है जो एक बार बचन देकर फिर पीछे हटना नहीं जानता । लावण्यसुन्दरी से प्रसन्न होकर वह हस्ति आदि उसे दे देता है । लावण्यसुन्दरी जब अपना रहस्य खोलती है तो उसे बक्का अवश्य लगता है किन्तु वह उसकी इच्छा में किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालता । (सप्तमी कथा०)

मान्यसैत का छद्मरूप राजा लावण्यसुन्दरी के लिए उसके द्वारा कही गयी सभी शर्तों को बिना किसी संकोच के शीघ्र मानने को तैयार हो जाता है । किन्तु कवि ने इस राजा का चित्रण अन्य राजाओं के चित्रण से भिन्न प्रकार का किया है । उसके प्रेम में वह अन्य राजाओं की भांति अपने विवेक को नष्ट नहीं करता है । उसमें विलासप्रियता के साथ-साथ मानवता भी दिखायी गयी है । मानवता के नाते ही रत्न-दत्त का लावण्यसुन्दरी के प्रति किए हुए सन्देह को जानकर उसे अत्यन्त दुःख होता है ।



वह सच्ची घटना को बताने के लिए इन दोनों के सम्मुख जा भी जाता है। (आठवीं कथा)

प्रतापसिंह महेन्द्रपाल का सामन्त है वह लावण्यसुन्दरी से अनन्य प्रेम करता है। कवि ने उसे नर्मशील, क्रोधी और मदी आकृति वाला बताया है किन्तु काव्य में कवि ने उसकी अस्हिष्णु प्रकृति एवं क्रोधी स्वभाव का ही चित्रण किया है। कवि ने उसे नर्म-शील बताया है किन्तु हास्य में कही हुई बातों को भी वह सत्य मान कर क्रुद्ध होता हुआ वर्णित किया गया है। क्योंकि लावण्यसुन्दरी द्वारा परिहास में कही गयी बात से अपने प्रेम को क्लृप्त होने का अनुमान लगा कर वह उसको दुर्गत कर देता है। इस प्रकार कवि ने उसके दो विरोधी गुणों का चित्रण किया है जो स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है।

कवि ने उसे निर्भीक प्रकृति का होना भी बताया है। वह राजा के सामने भी अपने इस दुर्व्यवहार को कहने में किञ्चिदपि भयभीत नहीं होता। (स्कादशी कथा०)

काव्य में कुछ पुरुष पात्र वैश्याओं से नीचे सम्पर्क नहीं रखते हैं। जैसे सुन्दरक राजा का सेवक बताया गया है। अतः वह राजा को प्रसन्न करने के लिए घृणित से घृणित कार्य को करने में संकोच नहीं रखता। यद्यपि वह निम्नस्तर का पात्र है किन्तु ने उसमें मानवता चित्रित की है। अपने ही कारण अशोकवती की मृत्यु देखकर उसे अत्यधिक पश्चात्ताप होता है, वह राजा से कहता है -- 'देव । मया स्वीरत्नमिदमिदं विनाशितामिति मम स्थातुं न शक्यते । तदादिशतु मां देवस्तयोश्च प्रेषिण क्षीर नीर-योरिव नान्तस्मस्ति । किन्तु मया तस्याः स्वकांटित्येन मनोमोहमुत्पाद्य ईहपर्यवसानमु-त्पादितम् । तदिदानीमिदमेव ममोचितं यद् प्राणतः परित्यज्यन्ते'।

इसी प्रकार मूलदेव वैश्या से सम्पर्क न रखने वाला एवं स्त्रियों को बंचला, दाण विरागिनी और नीचानुरागिनी समझने वाला तथा विवाह को बेकार की वस्तु समझने वाला चित्रित किया गया है। वह इन दोनों विषयों को लेकर राजा से बहुत देर तक वाद-विववाद करते हुए चित्रित किया गया है। धूर्त एवं विदग्धों, चतुरों तथा कित्तवाँ को बेवकूफ बनाने में निपुण होने के कारण ही वह राजा के अनुरोध से विवाह कर लेने के पश्चात् भी अपनी पत्नी तथा राजा की महिषी के दोषों को पकड़ कर राजा से इसकी सूचना दे देता है और अपनी धारणा को सत्य प्रमाणित करता है (त्रयोदशी कथा०)

राजाओं में केवल त्रयोदशी कथानिका का राजा विक्रमादित्य तथा आठवीं कथानिका का राजा सुरधर्मा वैश्याओं के सम्पर्क में जाने वाले के रूप में चित्रित नहीं हुए हैं। विक्रमादित्य स्त्रियों को सुख की धाम, यश, अर्थ एवं संतुष्टि का मूल स्रोत समझता है तथा गार्हस्थ्य को निखिल वाञ्छ का प्राणतत्त्व समझता है। इसीलिए वह निरन्तर मूलदेव को समझाता रहता है। कवि ने उसे समदर्शी के रूप में चित्रित किया है। जहाँ वह मूलदेव की पत्नी को दण्ड देता है वहाँ अपनी महिषी को भी दण्ड देता है।

पुरुषार्थ को कवि ने विवेकहीन पुरुष के रूप में चित्रित किया है जो अपनी बुद्धि से काम न लेकर दूसरों की बातों पर शीघ्र विश्वास कर लेता है। डौण्टा की फूठी हो कहानी को सुनकर अपराधी को पकड़ने के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु उसके इस कार्य का निर्वाह कवि ने नहीं किया है क्योंकि वह उसे पकड़ना जयवा दण्ड देना भूल कर उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है। अतः कवि ने एक अस्थिर प्रकृति वाले पात्र के रूप में उसे काव्य में स्थान दिया है। (आठवीं कथा०)

इस प्रकार कवि ने अपने काव्य में किसी एक प्रकार के व्यक्तित्व को धारण करने वाले पात्रों को स्थान न देकर विभिन्न स्वभाव वाले पात्रों को स्थान दिया है तथा उनका वैश्यालों के सम्पर्क से किस प्रकार अधः पतन होता है इसी का चित्रण उन्होंने अधिकांशतः किया है।

पुरुष पात्रों की भांति इस काव्य में वैश्यापात्रों की भी विविध रूपता मिलती है। इस काव्य की नायिका वैश्या ही है। उसे कवि ने एक अद्वितीय रूपवती, विविध भाषाओं की ज्ञाता, वैश्यावृत्ति के अनुकूल शास्त्रों की विशेषज्ञ, काव्य आदि को रचना में निपुण तथा अन्य गुणों से युक्त बताया है। इस पात्र का काव्य में केवल माता के द्वारा कही हुई कहानियों के सुनने तथा बीच-बीच में अपनी उत्सुकता प्रकट करने के अतिरिक्त कुछ भी क्रियात्मक रूप देखने को नहीं मिलता है। अतः इस पात्र के चित्रण में कवि ने केवल उसके रूप और गुणों का ही बखान किया है। इन दोनों में भी कवि की विशेष रुचि उसके सौन्दर्य वर्णन में ही रही है।

जिस ढंग से कवि ने शृंगारमंजरी का रूप-सौन्दर्य वर्णित किया है उसी प्रकार उसकी मां विषमशीला का भी किया है। एक को सौन्दर्य एवं गुणों की दैवी के रूप में और दूसरे को बृद्धावस्था के कारण शिथिल अंगों से प्राप्त कुरूपता एवं अङ्गुणों को मूल स्त्रोत के रूप में चित्रित किया है। किन्तु काव्य शृंगारमंजरी की अपेक्षा विषमशीला के चित्रण में अधिक सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है। कवि ने इस पात्र का सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है। उसकी बृद्धावस्था का रूप कुछ अधोलिखित पंक्तियों में देला जा सकता है --

‘जराप्रसरजर्जरितमूर्तिः, काशकुशकुसुमसंकाशकेशा, द्विन्द्रिजिनविकसितशतपत्रजंजरस्फार-  
स्मारितपुरातनकान्त्थागन्तु(क)विटग्रासगृध्रुतयेव प्रतिदिनं विवर्धमाननं दधाना,....  
किंगलितदशनतया मुद्गमुहुर्जादगासगृध्रुमिव संवृष्वती,.... अतिबलात् पृष्ठपार्श्वयोः प-  
( स्फ० २५ बी )

तितान् तन्धीव स्वचरित्रापोपस्थानानीव बिम्बं दश्यन्ती ।’... इत्यादि ।’

इसी प्रकार उसके गुणों के वर्णन में --

घटयित्री दुर्घटानाम्, विघटयित्री सुघटितानाम्,.... पितृस्वसा पिशाचीनाम्,  
सहोदरी सर्पयुवतैः, सृष्टिः निकृष्टतायाः, भयस्यापि भीतिः, मार्या अपि मारी,  
घृष्टमपि घर्षयति, दत्तमपि दत्तपयति,.... मधुरा मुसे, कुटिलामनसि, प्रसन्ना वृशि,  
दारुणा वैष्टिते... ।’

१- शृंगार० पृष्ठ १४-१५

२- .. .. १५, १८

उपर्युक्त पंक्तियों से उसका सजीव चित्र पाठक के सामने आ जाता है । यह पात्र ही इस काव्य की तरह कहानियों की सूत्रधार स्वरूप हो है क्योंकि ये सब कहानियाँ अपनी पुत्री को सावधान करने हेतु उसे सुनाई गई हैं ।

विषमशाला द्वारा कही गयी कहानियाँ में सभी वैश्याएँ हैं किन्तु थोड़े-थोड़े परिवर्तन के साथ उनके स्वरूप-चित्रण में भिन्नता आ गयी है । कुछ वैश्याएँ ऐसी हैं जो पहले अपना अनुराग दिखाकर प्रेमी से सब धन लेकर उन्हें निकाल देती हैं । इस कोटि में विनयवती, मालतिका और चतुर्थ कथानिका को देवदत्ता आती है । विनयवती और मालतिका को अपने प्रेमपाश में बांधने के लिए बहुत अधिक प्रयत्नशील नहीं होना पड़ता है । विनयवती अपनी सखी को रत्नदत्त के पास भेजकर अपना कार्य सिद्ध कर लेती है, और मालतिका को तो यह भी नहीं करना पड़ता । अपितु उसके पास उससे प्रेम करने वाले विक्रमसिंह का रहचर आता है । देवदत्ता को इस कार्य के लिए कई चालें चलनी पड़ती हैं । वह सुरधर्म को अपने पास रख कर तथा कई प्रकार से प्रेम दर्शा कर उसे फँसाना चाहती है किन्तु जब उसमें नहीं सफल होती तो अन्त में वह कपट-मृत्यु की चाल चलती है ।

कुछ वैश्याओं का स्वयं का कोई-कौनो व्यक्तित्व नहीं है वह अपनी माँ के कथनानुसार कार्य करती हैं । कुवल्यावली भुजंगवागुरा के कथनानुसार माधव को प्रेम जाल में फँसाती है तथा उसका वहाँ से जाना सुनकर वह कृत्रिम रोने का नाटक रचती है । (तृतीय कथा०)

कपूरिका भी माँ के कथनानुसार कार्य करती है और सोमदत्त को धनप्राप्ति का रहस्य पृष्ठ कर उसे बता देती है। (सप्तमी कथा०)

कुछ वैश्याओं का राज्या प्रेम भी काव्य में वर्णित हुआ है किन्तु परिस्थितियों के कारण उनका सच्चा प्रेम स्थिर नहीं रह पाया है । लावण्यसुन्दरी रत्नदत्त को हृदय से चाहती है । कुटनी के द्वारा बहुत रोके जाने पर भी वह उसकी बातों पर ध्यान न देकर जाते हुए रत्नदत्त का ही अनुसरण करती है । वह आदर्श पत्नी की भाँति उसके मार्ग में सौ जाने पर उसका सिर अपने गोंद में रसती है, बाहर से रत्नदत्त आता है तो उसके पैर धुलाने के लिए स्वयं आगे बढ़ती है । वह सञ्चरित्रा है किन्तु राजा के आधीन रहने के कारण उसे राजा की आज्ञा भी माननी पड़ती है किन्तु वह अपने चरित्र को उस समय भी कलंकित नहीं होने देती । वह राजा के सम्मुख नृत्य करती रहती है किन्तु जैसे ही वह रत्नदत्त का आगमन सुनती है वह जल लेकर उसके पैर धोने के लिए आगे बढ़ती है किन्तु रत्नदत्त उसे रोकने से एकदम रोक देता है । उस समय लावण्यसुन्दरी को जो दशा का चित्रण किया है वह श्लाघ्य है । लावण्यसुन्दरी के रत्नदत्त । किमेतत् ? में कितनी व्यथा है -- स्पष्ट रूप से फल रही है ।

तैलिक घुडाक की पत्नी लावण्यसुन्दरी वैश्या नहीं है किन्तु उसको अपने पति को राजा के द्वारा दस दण्ड से मुक्त कराने के लिए वैश्यावृत्ति धारण करनी पड़ती है और इसके लिए उसे कई परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । (द्विती कथा०)

कवि ने कुछ केश्या पात्रों में प्रेम का सच्चा आदर्श उपस्थित किया है। अशोकवती हसी कोटि में जाती है। घोड़े में जाकर सुन्दरक के साथ कुर्म करती है किन्तु अपने हस कर्म पर उसे क्षीम होता है --

किं मयैतदकृत्यग्रास... परया पापया विहितम् । अहां दुर्लभ्या हतविधेर्विलसितानां  
..... तन्नियतमनुल्लंघ्या भवितव्यता । तथाऽर्धलुब्धया पापकारिण्या नास्मि प्रतिबोधिता  
उसके सच्चे प्रेम की पराकाष्ठा उस समय देखने को मिलती है जब वह 'तिरकम्प' के द्वारा अपने प्रिय की मृत्यु ( जो कि वस्तुतः मरा नहीं था, चाल चली गयी थी ) के सुनते ही स्वयं प्राण को छोड़ देती है।

पांचवी कथा की केश्या देवदत्ता को कवि ने चाटुता करने वाली के रूप में चित्रित किया है जो राजा को प्रसन्न करने में झूठी कहानी को रच कर उससे अपार धन प्राप्त कर लेती है।

इन केश्याओं के अतिरिक्त काव्य में उनकी माताओं का भी चित्र मिलता है जो दुष्टा, पुत्रियों को सावधान करने वाली एवं कुटिल चाल चलने वाली के रूप में वर्णित है। मकरदंष्ट्रा कर्माय पदार्य मिलाकर धनप्राप्ति की स्त्रोत स्वल्पा कपोतिका को निगल लेती है। मुजंगवागुरा वस्त्र लेकर माधव की हंसी उड़ाना चाहती है, नवी कथानिका का ढोण्टा रत्नदल पर मिथ्या अभियोग लगा कर राजा सुरधर्मा से उसे पकड़वाना चाहती है, दमवी कथानिका की कुटनी विनयधर को अत्यधिक परेशान कर डालती है। पुरुषों ने इनसे तंग होकर किस-किस प्रकार से उन्हें दण्ड दिया इसका भी वर्णन काव्य में कवि ने किया है। शृंगारमंजरी की मां विषमशीला का स्वल्प वर्णन यद्यपि दुष्टा के रूप में अधिक हुआ है किन्तु काव्य में उसको एक शिक्षिका के रूप में कवि ने स्थान दिया है।

इस प्रकार कवि भोज ने अपने काव्य में अन्य कवियों की भांति आदर्श की स्थापना करने वाले तथा राजवंशी पात्रों को नहीं लिया है। जो राजवंशी हैं भी तो उन्हें विलासी के रूप में ही चित्रित करना कवि ने अधिक पसन्द किया है, उनके जो अच्छे गुण बताये हैं वह पाठक को अपनी ओर अधिक आकृष्ट नहीं करते हैं। कवि ने केश्याओं की क्रियाओं एवं मनोभावों के चित्रण में तथा उनके सम्पर्क से मनुष्य की क्या गति हो जाती है, उसके निरूपण में ही अपनी रुचि रक्ती है और उसमें उसने पाठक का व्यतिरिक्त मुझे उनसे बचने के लिए सावधान किया है।

तिलकमंजरी के पात्र --

धनपाल ने मीज की भांति अपने काव्य में निम्न स्तर के पात्रों को न लेकर राजवंशीय पात्रों एवं विधाधरों को लिया है। इस काव्य में कई कहानियाँ होने के कारण कई पात्र आए हैं, जैसे मेघवाहन, हरिवाहन, कुसुमशेखर, चन्द्रकेतु, स्मरकेतु, विचित्रवीर्य,

१- शृंगार नवमी कथा०

गन्धर्वक, महोदर, चित्रमाय, तिलकमंजरी, मलयसुन्दरी, उनकी मातारं, दासी एवं सखियां आदि । यद्यपि ये सब पात्र अपने कार्य में दक्षिण एवं पाठक के समक्ष आदर्श उपस्थित करते हैं किन्तु कवि ने चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कुछ ही पात्रों का विशेष रूप से सफल चित्रांकन किया है ।

राजा मेघवाहन अयोध्या का नरेश तथा नायक का पिता है । एक योग्य शासक के लिए जिन गुणों की कल्पना की जाती है, कवि ने उन सभी गुणों का उसमें समावेश किया है । अर्थात् कवि ने उसे वर्णश्री धर्म का व्यवस्थापक, विद्वान्, पशुण प्रयोक्ता, विवेकी, प्रतापी, दृढ़ राज्य का संस्थापक, सदाचारी, हूटनीतिज्ञ आदि सभी बताया है किन्तु उन गुणों का केवल उल्लेख मात्र कवि ने उसमें कर दिया है । कवि ने उसके कुछ गुणों की दृष्टि से उसके चरित्र को ऊँचा भी उठाया है । काव्य में उसे महान् त्यागी के रूप में अंकित किया गया है । वह दूसरों के हितार्थ अपने प्राण तक न्योछावर करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करता । शी को आराधना में लगे हुए मेघवाहन से वेताल ताजे मांस खाने की इच्छा रखता है किन्तु वह एक ऐसे व्यक्ति के मांस खाने की इच्छा करता है जिसमें निरन्तर युद्ध में विजय पायी हो, जो कभी युद्ध में विमुक्त न हुआ हो और शत्रु के समक्ष कभी फुका न हो । उस समय राजा के लिए वेताल की इच्छापूर्ति हेतु कोई अन्य पात्र मिलना दुर्लभ था क्योंकि उस मन्दिर में एक तो कोई अन्य पात्र थे नहीं और दूसरे वेताल द्वारा वांछित इन गुणों से युक्त पुरुष का मिलना दुर्लभ था । अतः वह स्वयं ही अपना शिर काट कर उसे ताजा मांस देने को तत्पर हो जाता है । वेताल जब उसके शिर को काटने के लिए तलवार निकालता है तो राजा मेघवाहन वेताल से " वह अपना शस्त्र अपने पास रखो, इसके लिए उसे कष्ट करने की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं अपना शिर काट कर उसे अर्पित करेगा " कह कर सहज अपनी तलवार से शिर काटने लगता है । उस समय उसे अपने शरीर के प्रति कुछ भी मोह नहीं रह जाता, असाधारण धैर्य एवं अपार साहस उसके रूप की भव्यता को और भी दिगुणित कर देते हैं । उस समय की अवस्था का चित्रण कवि की अयोलिखित पंक्तियों में सजीव हो उठा है --

अथ भीमकर्मावलोकनौदमीतिरिक् स्थायिभिरपि शौभ्यगुण्यसाप्रभृतिभिः परित्यक्तधीः  
असाधारणधैर्यदर्शिना दाहितग्रीडैरिव सात्त्विकैरपि स्वरवेष्यविपथुस्तम्भादिरिमास्तसंनिधिः,  
अव्याजसाहसावजितमनावृत्तिभिरिव व्यभिचारिभिरव्यस्यमद हर्षगवाग्रितापुरैः सरैरालि-  
मितः स्वर्गिणु भावैः ।" ?

जब अदृश्य शक्ति के कारण उसकी तलवार जागे नहीं बढ़ती है और मेघवाहन अपने प्राणों की इच्छा-भूति नहीं कर पाता है तो वह डूब्य हो जाता है और

१- तिलक० पृष्ठ ५२

२- " " ५३

निर्दयता से अपने शिर के ऊपर तलवार चलाने लाता है<sup>१</sup>।

कवि ने जहाँ उसे त्यागियों में महान् बताया है, वहाँ उसे विनम्री भी बताया है। वैताल ने जिन गुणों से युक्त पुरुष के मांस की अभिलाषा प्रकट की थी वह सब गुण मेघवाहन में थे किन्तु कवि ने राजा के मुख से अधोलिखित वाक्य कहला कर उसके विनम्री स्वभाव को चित्रित किया है --

प्रेतनाथ, नान्याथोदितं भवता । तथ्यमेवेदम् । कृताः शतकृत्वो मया संग्रामाः ।  
हताश्चैतल्यातीताः क्षत्रियद्रोणीपतयः । किं त्वनेकराजकार्यं व्यापृतत या कदाचिद्-  
कुर्वता • दिव्यकार्यपर्यालोचनम्, अतीन्द्रियज्ञान विकलतया स्वयमनावेदितम्, अजानता •  
परोषां हृदयगतमर्थम्... अल्पमपि न कृतरत्नत्वपालानां संग्रहः ।.... अथ न सह्यः  
कालातिपातः, तदिदमेव मे स्त्रीकुरु शिरः<sup>२</sup> ।

कवि उसके विनम्र स्वभाव का चित्रण वैताल के प्रसंग में तो सफलता के साथ कर सका है किन्तु विद्याधर मुनि के प्रसंग में जो उसकी विनम्रता दिखायी है वह अधिक हृदयग्राही नहीं प्रतीत होती है। विद्याधर महान् तेजस्वी चित्रित किए गए हैं किन्तु कवि ने जो मेघवाहन का अतिथि-सत्कार करना तथा अपना राज्य, पृथ्वी, वन आदि सब कुछ उन्हें अर्पित करना आदि वर्णित किया है<sup>३</sup> उसे न मेघवाहन की विद्याधर मुनि-विषयक श्रद्धा का और न अपना सर्वस्व न्योहावर करने में उसकी विनम्रता का सफल चित्रण ही पाता है। यद्यपि कवि उसकी यहाँ पर इन्हीं दो रूपाँ में चित्रित करना चाहता था।

मेघवाहन त्यागी एवं विनम्र होने के साथ-साथ वाग्मट्ट के रूप में भी चित्रित किया गया है। पुत्र-प्राप्ति का वरदान • देने के लिए जायी हुई लक्ष्मी से वह स्पष्ट शब्दों में अपनी अभिलाषा न प्रकट कर अधोलिखित वाक्यों में प्रकट करता है --

यथाहमेषामशेषभुवनवन्दितावदातचरितानां चतुरुदधिवैलावधेर्विधुंधरामुजाम...  
पश्चिमो न भवामि, यथा च देवी मदिरावतो जगदेकवीरात्मजप्रसाविनीनामस्मत्पूर्व-  
पुरुषमहिषीणां महिमान्मनुविधेते, तथा विधेहि<sup>४</sup> ।

यद्यपि राजा लज्जावश इस प्रकार की वचनमंगिमा को अपनाता है किन्तु वह अपने आत्मसम्मान पर धक्का लगते हुए नहीं दैस सकता। लक्ष्मी के द्वारा इस वचनमंगिमा का कारण 'राजा का अन्य रानियों से मङ्गीत होना' लिए जाने पर राजा स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि उसने ये वचन मय के कारण नहीं अपितु लज्जा के कारण कहे हैं।<sup>५</sup>

इस प्रकार कवि ने उसे <sup>वात्मसम्मान</sup> सुषण्डवर्णी के रूप में भी चित्रित किया है- पाठकों के समक्ष रक्ता है।

१- तिलक० पृष्ठ ५३  
२- " " ५१  
३- " " २६

४- तिलक० पृष्ठ ५८  
५- " " ५६



कवि ने उसे गुण पारखी के रूप में भी चित्रित किया है । स्मरकेतु उसके शत्रु का पुत्र है किन्तु अपने लेनापति के साथ किए गए युद्ध में उसकी वीरता को उनकर वह स्मरकेतु पर मोहित हो जाता है और वह उससे मिलने के लिए जातुर हो जाता है और एकदम ही विजयवेग से पूछ उठता है --

‘क्यास्ते स सिंहलेश्वरसुतुः । कदा च सोऽस्माद् द्रष्टा (दय) ति ।’ उसकी देखते ही स्नेह के साथ अपने मास जुलाकर उसे ‘वत्स’ शब्द से सम्बोधित करके उसे अपना पुत्र तुल्य बताता है और पिता की भांति उस पर गर्व करता है<sup>३</sup> । इतना ही नहीं, उसे अपने पुत्र हरिवाहन के समान अपना दूसरा पुत्र समझता है और उसे अपने पुत्र से भी अधिक श्रेष्ठ समझता है । वह हरिवाहन से कहता है -- ‘एष स्मरकेतुर्गुणैः समधिकं समं चात्मबन्धु-वर्गे प्रधानगुरु-भमपश्यता मया तवैव सहवरः परिकल्पितः ।’<sup>४</sup>

कवि ने राजा मेघवाहन के इन गुणों के अतिरिक्त उसकी मानव जाति में रक्षभावतः उठने वाले पुत्र-प्राप्ति की प्रबल इच्छा का भी बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है । उस इच्छा के चित्रण से कवि ने राजा मेघवाहन की दयनीय स्थिति के स्वल्प निरूपण में अमृतपूर्व सफलता पायी है । उसकी उम्र डलती जा रही है किन्तु उसे पुत्र नहीं हो रहा है । देवर्षि, पूर्वज, ऊर्मी, पृथ्वी, प्रजा आदि सभी उसको धिक्कारते हुए तथा अपने कर्माँ पर राते हुए चित्रित किए गए हैं । धर्म उसे ‘पुनायु नरक’ प्राप्ति का भय दिलाते हैं । राजा स्वयं चाहता है कि उसके पुत्र हो किन्तु देवी-विधान बड़ा प्रबल होता है । वह क्या करे, उसे कुछ नहीं समझ में जाता । वह अपने तेज को ही निरर्थक समझने लग जाता है उसे वैभवों से विरक्ति सी हो जाती है<sup>५</sup> ।

सब सुतों के रहते हुए भी पुत्र के अभाव का शोक इस प्रकार की विरक्ति यदि मनुष्य में ला देता है तो यह कोई अकाम्य बात नहीं है । कवि ने अपने काव्य में पहले उसके विविध विलासों का वर्णन करके बाद में पुत्राभाव को कमी से उनके प्रति विरक्ति तथा ईश्वराराधन की ओर प्रवृत्ति करायी है, उसमें कवि ने एक क्रम रक्खा है । क्योंकि विषयों से विरक्ति होने पर ही लोगों का ईश्वर की ओर ध्यान जाता है ।

किन्तु कवि ने इसकी विरक्ति सन्नासियों की विरक्ति की तरह नहीं वर्णित की है । मेघवाहन अपनी काम-सिद्धि (पुत्रप्राप्ति) के लिए विषयों से मुल मोड़ कर, कठोर तप करके श्री की आराधना करता है और इच्छा की पूर्ति हो जाने पर पुनः पूर्ववत् कार्य करता है ।

राजा मेघवाहन के पुत्र हरिवाहन को कवि ने राजकुमार के रूप में चित्रित किया है किन्तु उसे उसके पिता के समान मविष्य में होने वाले एक योग्य शासक के रूप में चित्रित न करके कला तथा वीणा का प्रेमी, रसिक, विद्वान् तथा तिलकमंजरी का प्रेमी एवं स्मरकेतु का सच्चा मित्र बताया गया है । इस प्रकार यहाँ यह एक धीरललित नायक के रूप में चित्रित हुआ है । कवि ने एक ही बार स्मरकेतु के मुल से हरिवाहन के द्वारा कुछ ही दिनों में विद्यावर राज्य को प्राप्त कर लेना कहलवा दिया है किन्तु कवि ने

१- तिलक० पृष्ठ १००  
२- ” ” १००  
३- ” ” १०१

४- तिलक० पृष्ठ १०२  
५- ” ” २०-२१  
६- ” ” २७१

इस राज्य की प्राप्ति के लिए हरिवाहन से कोई संघर्ष नहीं कराया जिससे उसकी वीरता का परिचय होता । इसके विपरीत कवि ने उस राज्य की प्राप्ति उसकी कठोर तपस्या के द्वारा प्रकट हुई देवी लक्ष्मी की कृपा का फल बताया है । जिस जगह का राज्य उसे मिला है उसका राजा विक्रमबाहु स्वयं ही विषयाँ से विमुख होकर राज्य छोड़ना चाहता था और उसके मंत्री ने पहले से ही इस राज्य को हरिवाहन को दे देने का निश्चय कर लिया था<sup>१</sup> ।

कवि अपने काव्य में हरिवाहन को वीर रूप में चित्रित न करके कला प्रेमो के रूप में ही चित्रित करना चाहता है और कवि नायक के इस गुण के चित्रण में सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है । हरिवाहन ने अपनी वीणा के द्वारा जिस हाथी को बश में कर लिया था उस हाथी का मयानक वर्णन नायक के इस रूप के चित्रण में अद्वितीय सौन्दर्य ला देता है । क्योंकि कवि ने हाथी का भयंकर रूप चित्रित करके तथा हरिवाहन के उसको फँसने के लिए आगे बढ़ने पर उसके मित्रों द्वारा रोके जाने का उल्लेख करके नायक की वीणावादन-कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है<sup>२</sup> ।

वह कला का प्रेमी बताया गया है किन्तु केवल वीणावादन तथा चित्रकला का ही । कवि उसके वीणावादन की कला के चित्रण में सफल कहा जा सकता है किन्तु चित्रकला के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता है । हरिवाहन को चित्रकला के सम्बन्ध में यद्यपि "चैनमागत्यागत्य नगरनिवासिनो वैदेशिकाश्च लोकाः कलासु शास्त्रेषु शिल्पेषु च प्रकाशयितुमात्मनो विचक्षणतामनुक्षणं पश्यन्ति आदि उक्तियाँ कही गयी हैं किन्तु गन्धर्वक के चित्र को देखकर जो उसने प्रशंसा की है तथा उस चित्र की कमी दिखायी है वह चित्र-कला-विशेषज्ञ की दृष्टि से अधिक प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती । इस प्रकार कवि ने उसका वीर रूप में चित्रण न करके उसे राज्य आदि की चिन्ता से मुक्त कराकर ~~कवि~~ वीरललित नायक का रूप दिया है । उसकी विलास-प्रियता ही कवि ने अधिक चित्रित की है । एक जायाँ को लेकर कवि ने हरिवाहन के मुख से उसकी जो व्याख्याएं करायी हैं, उससे उसकी रसिकता ही परिलक्षित होती है ।<sup>४</sup>

वह रसिक है, तिलकमंजरी के चित्र मात्र को देखने से ही उसके प्रेम करने लगता है किन्तु कवि ने उसके प्रेम में गम्भीरता दिखायी है । उसका तिलकमंजरी विषयक विरह उगी तक सीमित रहता है, अपने काम-जन्य विकारों को किसी के समझ नहीं प्रकट होने देता, जब वह अधीर हो जाता है तो अन्य मित्रों के साथ नगर की सीमा में घूमने के बहाने से राजभवन से निकल जाता है, तिलकमंजरी के अपने प्रति प्रगाढ़ प्रेम को जानकर भी वह किसी प्रकार की अधीरता नहीं प्रदर्शित करता अपितु जब उसके पास जाने का प्रश्न आता है तो वह अपने हृदय को किसी प्रकार की असावधानी न करने के लिए सावधान करता है, क्योंकि वह लोगों के मध्य हास्य का विषय नहीं बनना चाहता । वह प्रेम के आगे अपने कर्तव्य को भूल नहीं जाता । तिलकमंजरी को पाकर भी अपनी राजधानी में आकर अपने मित्र स्मरकेतु को न देखकर उसे ढूँढ़ने के लिए निकल जाता है, अंगरति के हितार्थ की गयी तपस्या में भी उसका तिलकमंजरी विषयक प्रेम किसी प्रकार की बाधा नहीं उपस्थित कर पाता है ।<sup>५</sup>

१- तिलक० पृष्ठ ४०१  
२- " " " १८३-८४  
३- " " " १६३

४- तिलक० पृष्ठ १०६  
५- " " " ३५६-५७  
६- " " " ३८८



उन घटनाओं को रखकर कवि ने हरिवाहन के प्रेम में किसी प्रकार की कमी नहीं जाने दी। चित्रपट में चित्रित चित्र मात्र के देखने से ही इसका प्रेम निरन्तर बढ़ता ही है, कम नहीं होता, तिलकर्मजरी से मिल कर अपने बन्धुवर्ग के पास जाकर सोए स्मरकेतु को दूढ़ने के लिए निकल जाता है उस समय मार्ग में मिली तिलकर्मजरी की जला से उसका पत्र प्राप्त करके वह अनिर्वचनीय दशा को प्राप्त करता है तथा विद्याधर-राज्य की प्राप्ति के पश्चात् अस्तव्यस्त <sup>१</sup> दशा में गन्धर्वक को देखकर तिलकर्मजरी की अवस्था का अनुमान करके व्याकुल हो जाता है।

इस प्रकार कवि ने उसे एक जादूरी प्रेमो के रूप में चित्रित किया है और उसमें वह सफल हुआ है।

हरिवाहन काव्य में एक सच्चे मित्र का आदर्श सपस्थित करता है। स्मरकेतु उसका अन्तरंग मित्र है। मित्र की हंसी उसे जलाह्वय है। उद्यान में प्राप्त 'आर्या' को व्याख्या से वहाँ सब राजकुमार मनोरंजन करते हैं किन्तु स्मरकेतु उसमें भाग नहीं लेता, इसपर कमल-गुप्त उसको छोड़ी उड़ाने ला जाता है तो तुरन्त ही स्मरकेतु का पत्र लेकर वह उससे कहता है -- 'कमलगुप्त, किम्यमस्थाने विप्लवप्रपन्नः'। इसके अतिरिक्त विद्याधर लोक से अयोध्या जाकर और अपने इस मित्र को न देखकर सब कुछ त्याग कर उसे दूढ़ने के लिए निकल पड़ता है<sup>२</sup>।

पिता के समान इसे भी दूसरे के उपकार के लिए कष्ट उठाते हुए कवि ने चित्रित किया है। वह अंगरति को विद्याधर राज्य दिलाने के लिए बिना किसी संकोच के कठोर तपकरने लगता है।

यहाँ पर कवि ने उसके द्वारा दूसरे के हित के लिए कठोर तप करवा कर उसके चरित्र को ऊँचा उठाने की चैष्टा की है किन्तु एक स्थल पर वरदान के लिए आयी हुई देवी से उसका यह कहना -- 'यत्तु प्रियमिहाप्यवस्थायां तदहमात्मनैवात्मनः करिष्यामि। किं मया पृष्टेन। अयमनुयुज्यतामनंगरतिनामा द्वारवतीं विद्याधरयुवा यदर्थमेष प्रस्तुता मन्त्रसाधन-विधिः' उसके चरित्र को नीचे गिरा देता है। इस कथन से उसको घृष्टता ही परिलक्षित होती है। अतः उसके इस कथन को सुनकर देवी के द्वारा 'अहो महासत्त्व' कहना भी उसके चरित्र के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता।

कवि ने काव्य में उसकी परोपकारी प्रकृति के अतिरिक्त दयालु प्रकृति का भी चित्रण किया है। वह अपने कारण किसी को दुखी नहीं देखना चाहता। मलयसुन्दरी से परिचय करने की इच्छा से वह इ उससे पूछना चाहता है किन्तु उसे राता देखकर वह उसे शान्त करता है, उसका मुँह धुलाता है, उसकी दुःखमयी कहानी को ध्यान से सुनता है, स्मरकेतु की कुशलता को बताता है तथा अयोध्या पहुँचकर स्मरकेतु के न मिलने पर वह बिना दूढ़े उसे अपना मुख दिखाने का साहस नहीं करता है।

१- तिलक० पृष्ठ ११३

२- ,, ,, ३८८

४- तिलक० पृष्ठ ४००

५- ,, ,, ४००

समरकेतु काव्य का उपनायक है वह एक और सच्चे मित्र का आदर्श रखता है और दूसरी ओर आदर्श प्रेम का । वह अपने मित्र के लिए सब प्रकार के सुख एवं वैभव को छोड़ने के लिए तत्पर रहता है । हाथी से स्कास्क हरिवाहन के गायब हो जाने पर उसके अन्य मित्रों एवं बन्धुजों की अपेक्षा कवि ने उसकी परेशानी के चित्रण में विशेष रुचि का परिचय दिया है । उसके वियोग में वह खाना पीना सब कुछ छोड़ देता है । पहले लोगों को दूढ़ने के लिए भेजता है फिर स्वयं तत्पर हो जाता है । उसे सब कोई रोकते हैं किन्तु वह किसी की नहीं सुनता, बस, उसे दूढ़ने की लगन ही लगी रहती है । उस समय न मार्ग की बौहड़ता उसके गन्तव्य मार्ग को रोक पाती है और न जंगल की भयानकता उसे भयभीत कराने में समर्थ रहती है । उसकी इस तत्परता का चित्रण कवि की अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है --

करिकलमस्यैव दूरपातिभिः पदैरध्वनिर्षर्पितो, यावत्सस्यैव वारं वारं लङ्घितमहेला-  
धरस्य, मारु तेरिव क्रमेणोत्तोरुदरवतारपिन्धोः, कदाचिद्गन्याहिताग्नेरिव शुष्कपाद-  
रमारण्याऽपिणः,.... कदाचिन्नुनेरिव फलमूलकन्दकल्पिताभ्यवहारस्य,.... कदाचिद-  
द्रेरिव शीतलैः प्रस्त्रवणवारिभिः स्वयंघातफादस्य,? । इत्यादि

लौहित्य नद में प्राप्त हरिवाहन की चिट्ठी से यह आशय लेकर कि हरिवाहन ने समरकेतु को व्यर्थ के कष्ट से बचाने के लिए ही अपनी कुशलता का समाचार दिया है तो इस पर उसे हरिवाहन के प्रति प्रेमभरी भुंफलाहट आती है --

अहो मूढतास्य । जानाति स्नेहनिर्भरा मदन्तःकरणचृत्तिम् । न वेदमकाच्छति यदुत  
मत्परोक्षे कथंचिदध्येष न गृहे स्थास्यति । अविविताश्रयश्च मदर्शनाश्रया समुद्रपर्यन्तां पर्यट-  
न्तटीमतिमात्रमायासपात्रं भविष्यति ।"

हरिवाहन के समान इसका भी प्रेम एक आदर्श रखता है । उसके प्रेम में भी गहराई है । वह अपनी समुद्रयात्रा में मलयसुन्दरी को देखकर उसमें मोहित होता है किन्तु अपने मित्र तारक के द्वारा वहाँ से चलने के लिए कहे जाने पर केवल शिर के दर्द का ही बहाना करके वहाँ से हटना नहीं चाहता है । तारक जब उसकी वहाँ से ले जाने को होता है तो वह शब्द से कुछ न कहकर कातर दृष्टि मलयसुन्दरी पर डालता है । वह तारक से स्वयं कुछ नहीं कहता अपितु तारक दोनों की चेष्टाओं को देखकर उनके प्रेम का अनुमान लगा लेता है ।

वह मलयसुन्दरी से प्रेम करता है उसके जभाव में अपने को निष्प्राण-सा समझता है किन्तु कवि ने उसे कायर की तरह कन्या का हरण करने वाला चित्रित नहीं किया है मलयसुन्दरी को सखी बन्धुसुन्दरी इस प्रकार के कार्य के लिए उसने कहती है तो वह इस कर्म को अपने कुल के लिए तथा मलयसुन्दरी दोनों के लिए लज्जास्पद बात कहकर उसकी बात को काट देता है । वह इस प्रकार के निन्दनीय कार्य करके अपने प्रेम और चरित्र को कलंकित नहीं करना चाहता ।

१- तिलक० पृष्ठ २०१

२- ,, ,, १६६

३- ,, ,, ३२६

कवि को इस पात्र के प्रेमोद्भय के चित्रण में एक स्थल पर अनावधानो हो जाने के कारण असफलता मिलती है। क्योंकि हरिवाहन से आशातीत मलयसुन्दरो की कहानी सुनते समय कवि ने उसके विभिन्न भावों का वर्णन बीच-बीच में नहीं किया। जो उसकी अवस्था का चित्रण किया भी है तां उससे केवल उसकी दिक्कतव्यकिमुद्धता का ही परिचय मिलता है, उसके प्रेमो-हृदय का परिचय नहीं हो पाता।

इन दोनों रूपों के अतिरिक्त कवि ने उसे एक वीर योद्धा के रूप में भी चित्रित किया है जिसके चित्रण में उसने अमृतपूर्व सफलता प्राप्त की है। उसको युद्ध सम्बन्धी क्रियाओं का, ललकार का, उस समय राजलक्ष्मी की अवस्था का चित्रण करके कवि ने उसको युद्ध-कला की प्रवीणता का परिचय दिया है। कवि ने उस दृश्य की सजीवता नेत्रों के समान उपस्थित कर दी है। छोटे-छोटे वाक्य कवि की इस अभीष्टपूर्ति में अपना अद्वितीय सहयोग देते हैं। अधोलिखित कुछ पंक्तियाँ में उसको युद्ध सम्बन्धी तत्परता एवं उसके उत्साह का रूप देता जा सकता है --

.... तत्र प्राणे प्रांत इव तूष्णीमुत्सेष्टु, लिखित इव माँव्यामि, उत्कीर्ण इव पुंसेष्टु, अवतंसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत। वामेतरः पाणिरविरलशरासारत्रारितु हंसीव मेघागमे पत्वल्म नवश्लोकिताश्रयविसंस्थुला सैन्यपतिवत्ता स्थममुंबत। इत्यादि।

मुच्छीपरान्त सवेत होने पर अपने शत्रु वज्रायुध को देखकर भी उसे ठुसका न नारना और उसका व्रज। विश्रब्धमेहि। न तावत्प्रहरामि यावच्च त्वया न प्रहृत्सु कहना उसके वीर चरित्र को और भी ऊँचा उठा देता है।

इसी प्रकार उसका अन्य साथियों के रोके जाने पर भी अकेले युद्ध में कूद पड़ना रथ आदि के टूट जाने पर भूमि में ही सड़े होकर उसका बिना किसी विकार के पूर्ववत् उत्साह के साथ लड़ाई करना उसके वीर होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहता। अतः यदि राजा मेघवाहन एवं मलयसुन्दरी पात्र उसे वीरों में अग्रणी मानते हैं, उस पर गर्व करते हैं तो कौई अनुचित नहीं करते।

कवि ने उसकी मानवीय सुलभ दुर्बलताओं का भी वर्णन किया है। वह समुद्र में मलयसुन्दरी के गायब हो जाने पर अपने मित्र तारको एवं बन्धुवर्गा को संदेश देकर प्राण देने के लिए कूद पड़ता है।

यद्यपि वह गम्भीर है किन्तु कभी-कभी चंचल वृत्ति उसको किसी कार्य के लिए अत्यन्त वातुर कर देती है। वह कौतूहलवश तारक के साथ अकेले समुद्र की यात्रा शुरू कर देता है किन्तु उसे समुद्र की भयानकता देखकर अपनी इस वृत्ति पर झुंफलाहट आती है। कवि ने यहाँ पर उसका अन्तर्द्वन्द्व दिखा कर उसके महत्वाकांक्षी रूप का चित्रण असफलता के साथ किया है। स्मरकेतु को यही चिन्ता लग जाती है कि जब वह वापस लौटेगा तो उसके सभी मित्र आदि क्या देखा क्या अनुभव किया आदि पूछेंगे वीर वह कुछ नहीं बता पाएगा।

१- तिलक० पृष्ठ ४२०

२- ,, ,, ८८-९४

३- ,, ,, ९०-९९

४- तिलक० पृष्ठ ९६

५- ,, ,, १०९

६- ,, ,, २३३

दिए प्रकार प्रधान राजपुरुषों एवं वृद्धों को वह प्रसन्न करेगा और तारक उसे किता प्रकृति का समझेगा इत्यादि की चिन्ता से वह ग्रस्त हो जाता है ।

पुरुष पात्रों में कवि को विशेष रुचि कजायुष के चित्रण में भी परिलक्षित होती है । स्मरकेतु की भांति इसे भी कवि ने वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है । यद्यपि कवि ने इसका युद्ध कुजुमशंकर के साथ भी दिखाया है किन्तु वह उस युद्ध में उसके वीर रूप को चित्रित करने में सफल नहीं हो पाया है । इसके विपरीत स्मरकेतु के साथ किए गए युद्ध में कवि उसके इस रूप को चित्रित करने में सफल हुआ है । कुजुमशंकर से होने वाले युद्ध के पश्चात् सब अपने शिविर में वाराम ले बैठते हैं, स्कारक स्मरकेतु को चढ़ाई की बात सुनकर कवि ने उसके शोष का सफलता के साथ चित्रण किया है । वह तत्पश्चात् स्मरकेतु के मैदान में उपस्थित हो जाता है । युद्ध की बात सुनकर वह मगभान्त नहीं होता अपितु एक वीर योद्धा होने के नाते वह हर्षित होता है और यह सूचना उसे ज्ञात हुत्थ जाता है । यही नहीं, वह व्यूह आदि को रचना करके घमासान युद्ध करता है । कवि ने यहाँ पर घनघोर युद्ध का दृश्य लींकर दोनों पात्रों का वीरता का चित्रण किया है । शत्रु पक्ष की ललकार सुनकर उसका भी शोष के साथ 'हत इतः पर्यै नाम' कहना उसको वीरता का ही प्रदर्शन करता है ।

वह वीर है किन्तु वह क्षुब्धता के वीरों को भी आदर को दृष्टि से देता है । छोटे से युवक की वीरता को देखकर और युद्ध में दिव्य रत्न के प्रताप से उसको जात कर उसे अपने शिविर में लाकर उसकी चिकित्सा करता है और उसे यथैष्ट सम्मान देता है । उस युवक के हृदय में किसी प्रकार की चोट न लीं वह उसी कहता है -- 'कोऽह्य तव पराजये ।... स तु प्रभावाऽन्यस्य कस्यचिद्' । इन वाक्यों से कजायुष का चरित महान् हो गया है । वह राजा मेघवाहन के पास उसे एक कैदी के रूप में नहीं अपितु एक सम्मानो व्यक्त के रूप में भेजता है ।

इस प्रकार कवि ने इस पात्र को काव्य में थोड़ी देर के लिए ध्यान दिया है किन्तु उतनी-सी देर में वह पाठक के ऊपर अपनी अपिष्ट छाप छोड़ जाता है । यह कवि को चरित्र-चित्रण विषयक सफलता ही कही जा सकती ।

काव्य की कथावस्तु एवं चरित्र-चित्रण को दृष्टि से स्त्री-पात्रों में तिलकमंजरी एवं मलयसुन्दरी प्रधान हैं । तिलकमंजरी इस काव्य की नायिका है । किस प्रकार अन्य कवि नायिका को अत्यन्त रूपवती, गुणवती तथा विविध कलाओं को ज्ञाता बताते हैं उसी प्रकार घनपाल ने भी किया है । अतः उनकी तिलकमंजरी में भी सभी कलाओं में विजय-पद्माका को लहराती हुई बताया गया है । कवि ने इन कलाओं में से उसका विशेष अधिकार चित्रकर्म, वीणावादन, ताण्डवनृत्य एवं संगीत विषयक कलाओं में बताया है । किन्तु कवि ने केवल उसके श्रृंगारस परिपूर्ण सुकवि भाषितों का कहना, विवाधर पक्षियों के चोंड़ों का स्तम्भों पर बनाना एवं ताल के साथ मयूरों का नृत्य करना ही वर्णित किया है । कवि ने इन सब का वर्णन करके उसकी कला-विषयक प्रवीणता का न बताकर हरिवाहन को देखकर होने वाली उसकी श्रृंगारिक वैष्टाओं का ही वर्णन किया है ।

१- तिलक० पृष्ठ ३६१-५०	४- तिलक० पृष्ठ ३६३-६८
२- " " ३६३-६६	५- " " ३६३
३- " " ३६६	६- " " ३६४

कवि का उद्देश्य उसे एक प्रेमिका के रूप में ही चित्रित करना प्रतीत होता है और उसमें उसकी सफलता मिली है -- ऐसा कहा जा सकता है । सरौवर तट पर हाथी की घटना से मयभीत हथर-उधर घूमती हुई एक कन्या की नवागन्तुक को उसकी ओर धुरते हुए देख कर जो अवस्था हो जाती है उसका 'समुपजातसाध्वसा सहसैव प्रकलमारुताहता बालक वलीकन्दलीव कम्पितुमारब्धा -- एक पंक्ति में करके कवि ने अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है । वागन्तुक का परिचय मिल जाने पर उसके मन में उठने वाले प्रेम का संवार उसके अनुभावों के द्वारा कवि ने कराया है । वस्त्र का संवारना, तिरछी दृष्टि फैकना, वहाँ से निकलने के लिए कातर दृष्टि से देखना उसके मूक प्रेम को स्पष्ट करते हैं<sup>२</sup> । कवि ने उसकी वातालाप न दिहा कर वहाँ पर उसे अत्यन्त लज्जालु प्रकृति का बताया है ।

इस घटना के पश्चात् कवि ने विषयों के प्रति उसकी उदासीनता, ससियों के प्रति उपेक्षा भाव, सरौवर तट से जाने वाले के प्रति स्नेह का भाव एवं उसकी मुंभलाहट आदि दिखाकर उसकी पूर्वानुराग अवस्था का चित्रण किया है<sup>३</sup> ।

मलयसुन्दरी के माध्यम से हरिवाहन से पुनः मिल जाने पर उसकी शृंगारिक वैष्टावों को दिखाकर कवि ने उसके अपार प्रेम को प्रकट कराया है<sup>४</sup> ।

अन्य पात्रों की भांति इसके प्रेम को भी कवि ने उच्छ्वसल नहीं बनाया है । वह न अपने प्रेम की चर्चा ससियों से करती है अपितु ससियां इसका अनुमान लगा लेती हैं और न वह हरिवाहन के पास रहने पर अपना परमप्रिय सखी मलयसुन्दरी से ही इस संबंध में कुछ बात करती है । वह तो वहाँ चुपचाप बैठी रहती है और तिरछी दृष्टि से देखती है, बात तो उसकी सखी करती है । अपने साथ मौजन करने का प्रस्ताव स्वयं नहीं रखती अपितु उसकी सखी रखती है<sup>५</sup> ।

कवि ने इसे दूसरे पात्रों के अधीन इतना अधिक कर दिया है कि उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं रह जाता । मलयसुन्दरी जैसा कहती जाती है वैसा वह करती रहती है । मलयसुन्दरी के कथनानुसार अपने प्रेमी बन्धुवर्ग को देखने के लिए उत्सुक हरिवाहन को चित्रमाय के साथ भेज देती है ।

किन्तु कवि ने इन सबसे उसका प्रेम कम होना नहीं बताया है । वह उसको भेजकर पुनः जाने की आज्ञा करती है किन्तु चित्रमाय को अकेले जाता देखकर वह व्याकुल हो जाती है, जब उसकी पीड़ा अत्यधिक बढ़ जाती है तो वह प्राणोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हो जाती है उस समय उसका संभालना दूसरों के लिए दुष्कर हो जाता है । बहुत प्रयत्न करने पर पिता की आज्ञा से कुछ दिनों की और प्रतीक्षा करती है ।<sup>७</sup> उस समय कवि ने उसकी विश्वलता का<sup>३</sup> व्यनीयता का बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । उसकी यह

१- तिलक० पृष्ठ २४८

२- " " २५०

३- " " ३५५

४- " " ३६७-६३

५- तिलक० पृष्ठ ३६५

६- " " ३८५

७- " " ४१८

विह्वलता हरिवाहन को देखकर ही शान्त होती है ।

इस प्रकार कवि ने उसके प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यंजना उसके विरही रूप के वर्णन में की है ।

यद्यपि तिलकर्मजरी काव्य की नायिका है किन्तु कवि की विशेष रुचि मलयसुन्दरी के चित्रण में अधिक परिलक्षित होती है । वह स्मरकेतु की प्रेमिका है । उसका प्रेम विरहाग्नि से तपा कर तारा उतारा गया है । एक बार दृष्टि अनुराग हो जाने पर वह किसी अन्य पुरुष की कल्पना नहीं कर सकती है । अपने पिता द्वारा कज्रायुव को को दिए जाने की सूचना पा कर कवि ने जो उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण किया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है । पिता से जिस बीज की आशा उतने कभी नहीं की थी उस बीज को होते देख उसे क्रोध आना स्वाभाविक भी है । किन्तु कवि उसे उद्वण्ड प्रकृति का बताना नहीं चाहता है अपितु उसके माध्यम से आज्ञाकारी बेटे का भी उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता है अतः उसके इस प्रकार के विचारों का निरूपण कवि ने उसकी भावुक अवस्था में किया है ।

वह अपना सच्चा प्रेम रखने के लिए प्राणोत्सर्ग करना अधिक श्रेष्ठ समझती है । रात में जब वह अकेले इस कार्य के लिए निकलती है तो उस समय कवि ने चोरी करके निकलने वाले चोरों की ली दशा का चित्रण उनकी स्थिति के निरूपण में करके प्रसंग में एक सरसता ला दी है । उसका वस्त्र किसी में फँस जाता है या उसके ही पैरों की आवाज़ आने लगती है या इस प्रकार की कोई अन्य बातें हो जाती हैं तो वह उसका कोई पीछा कर रहा है -- ज़ही अनुमान कर लेती है<sup>१</sup> ।

मरने के पहले अपने हाथ से घाले एवं बढ़ाये गये विषयों के प्रति मोह होना स्वाभाविक है । उसी स्वाभाविकता का परिचय कवि ने मलयसुन्दरी का वनस्पतियों के विषय में उसका संदेश दिलवा कर दिया है । कवि ने उसकी इस स्थिति का इस ढंग से निरूपण किया है कि वह प्रसंग अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन जाता है ।

इसी प्रकार वह प्रिय के वियोग में मरना चाहती है और इस कार्य के लिए तीन बार प्रयत्न करती है किन्तु तीनों बार वह इसमें सफल नहीं होती है । इसपर एक सच्ची प्रेमिका के हृदय में कैसे माव उठ सकती है उसका निरूपण कवि ने बड़े उत्साह के साथ तथा हृदयग्राही किया है । उस समय उसके " न जाने कियन्मयाद्यापि दुष्कृतस्य फलमुपमांक्तव्यम्, केन्द्र-देशान्तरं गन्तव्यम्, ..... मरणमपि पापकारिण्या न संपद्यते । तथाहि- पूरित सप्तपातालमुदधिजलमपि न ह्वल जातम् । प्राणनाशाय निबिडमाहितः कण्ठदेशे पाशोऽपि पुष्पमाला संवृता<sup>२</sup> इत्यादि के वाक्य उसकी दयनीय स्थिति के निरूपण में अपना अपूर्व योग देते हैं ।

इसी प्रकार तपोवन में रहती हुई तथा प्रिय स्मरकेतु के मिलन की प्रतीक्षा करती हुई उसे जैसे सूचना कज्रायुव के साथ होने वाले युद्ध में कांची के वीर सैनिक मार डाले गए-- मिलती है और अपने प्रिय की मृत्यु का अनुमान लगा लेती है उस समय कवि ने उसका विलाप करते हुए उसके गुणों का स्मरण करना, पूर्व की सारी घटनाओं का स्मरण

१- तिलक० पृष्ठ ३३८-३३९

२- ,, ,, ३००

३- तिलक० पृष्ठ ३०१

४- ,, ,, ३३७-३८



होना, उसकी वीरता के प्रति गर्व करना, मर कर उसका अनुसरण करना आदि का मार्मिक वर्णन करके उसे एक आदर्श नारी के रूप में पाठक के समक्ष उपस्थित किया है।

एक स्थल पर कवि ने उसके आदर्श नारी के रूप को उसका अत्यधिक स्नेह हरिवाहन के प्रति <sup>दिरवा कर</sup> गिरा दिया है। क्योंकि मलयसुन्दरी को हरिवाहन से स्मरकेतु सम्बन्धी कुशलता मिल चुकी थी अतः उसने उसकी आशा बंधना स्वाभाविक था किन्तु हरिवाहन को अयोध्यानगरी में पहुँचाने वाले चित्रनाय से स्मरकेतु के वहाँ न मिलने पर कवि को उसके कारण उसका मूर्च्छित होना दिखाना चाहिए था किन्तु कवि ने हरिवाहन के कष्टों का स्मरण करवा कर उसका मूर्च्छित होना वर्णित किया है।

बाण ने जिस प्रकार पुण्डरीक की प्रतीक्षा में महाश्वेता का तपस्विनी रूप चित्रित किया है उसी प्रकार धनपाल ने मलयसुन्दरी का, किन्तु दोनों के द्वारा दिए गए चरित्र-चित्रण सम्बन्धी सफलता का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। धनपाल ने केवल उसे उदाः स्नाता, पुष्पाँ को देवता के ऊपर चढ़ाती हुई ध्यानमग्न, अक्षमाला तथा मंत्र का जाप करती हुई बताया है। यद्यपि कवि ने 'वातिस्थिर तथा कायस्य लिखितामिवोत्कीर्णाभिव निखातामिव' आदि कृताकर दृश्य की सजीवता लाने का प्रयत्न किया है किन्तु उससे न प्रसंग और न उसका यह रूप ही अनायास अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हो पाता है जैसा महाश्वेता के वर्णन में मिलता है।

कवि ने इसे लोक व्यवहारज्ञ, विदुषी, वाग्पटुनी एवं लज्जालु प्रकृति का भी बताया है। वह तिलकमंजरी के विपरीत नवागन्तुक हरिवाहन का यथेष्ट सत्कार करती है और अपने पास बैठा कर उसको आत्मीय स्पर्श कर अपनी दुःस्मरों कहानी सुनाती है। उसके हृदय में किसी प्रकार की चोट न लगे वैसे ही प्रयत्न करती है, तिलकमंजरी और हरिवाहन को एक-दूसरे से मिलाने में बड़ी चतुराई से काम करता है।

कवि ने उसे राज्य कन्याचित्त विद्या, उपनिषद्, नाटक, गायन, वाद्य आदि सभी कलाओं से परिचय रखने वाली बताया है<sup>४</sup>। किन्तु पाठक उसकी नृत्यकला के सम्बन्ध में की गयी प्रशंसा से ही परिचय पाता है। कवि ने उस समय उसकी नृत्यकलाओं की मुद्राओं का वर्णन नहीं किया है। इस प्रसंग को पढ़ने से ऐसा लगता है कि कवि केवल उसके इस गुण को ही बताना चाहता है और इस गुण का बताना भी काव्य के लिए आवश्यक था अन्यथा कहानी का विकास आगे नहीं हो पाता।

कवि ने उसकी वाग्पटुता से उसकी हास्य प्रकृति को भी चित्रित किया है। विचित्र वीर्य्य उससे उसकी माँ गन्धर्वदत्ता की जायु, वधे आदि के विषय में पूछता है और वह उसका उत्तर अघोषित पंक्तियों में देती है --

‘तात, प्रमाणतो नाति हत्या न चात्यायता, वर्णेन विक्रवम्पकावदाता, वयसापि यादृन्मधि प्रथमगर्भमवायां संभवति तादृशोपेता, रूपेण तु किञ्चिदादृशपरमिव सदसि मानुषमगनासु पुरुषेण वा पश्यामि । यदि परं देवस्यैव किञ्चिदनुकरोति ।’

१- तिलक० पृष्ठ ३३२

२- ,, ,, ३६२

३- ,, ,, २५५

४- तिलक० पृष्ठ २६४

५- ,, ,, २७०

६- ,, ,, २७९

इस प्रसंग के अतिरिक्त उसकी वाग्पटुता का परिचय समुद्र में दृष्ट स्मरकेतु के प्रसंग में मिलता है जहाँ वह श्लिष्ट भाषा में पूजा के हेतु जामगी को लाने वाले तपनवैग और स्मरकेतु के मित्र तारक दोनों से कहती है और कांची में जाकर स्मरकेतु के वरण करने का संकेत करती है<sup>१</sup>। वहाँ पर कवि ने उसके पूजन-विधि में उसकी चतुराई दिखाकर उसकी चतुर प्रकृति का भी चित्रण किया है<sup>१</sup>।

कवि ने उसकी लज्जालु प्रकृति के चित्रण में विशेष रूप से सफलता पायी है। विचित्रवीर्य उससे बार-बार पूछता है कि ज्योतिषियों से कब उसकी मां गन्धर्वदत्ता की बन्धुवर्ग जनित भेंट होना बताया है, क्योंकि यह भेंट उसके विवाह के समय बताया गयी थी अतः लज्जावश वह स्पष्ट शब्दों में नहीं कह पाती। पहले वह मां का परिचय देते समय 'किमप्यवादात्' कहकर उस प्रसंग को छोड़ देती है। किन्तु विचित्रवीर्य के द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने पर कभी 'न मया सम्प्राग्वधारितम्' कहती है, कभी भूमि कुरेदने लगती है और कभी मुस नाचा कर लेती है। जब किसी प्रकार उसे मुक्ति नहीं मिलती है तो केवल 'कथितमेवायं सर्वा यथावस्थितम्' कहकर चुप हो जाती है।

स्मरकेतु की मांति कवि ने इसका भी अन्तर्द्वन्द्व दिखाकर उसे विवेकी के रूप में चित्रित किया है। तारक स्मरकेतु को उसके पैरों पर झुकवाता है उस समय कवि द्वारा निहमित्त उसकी स्थिति का चित्रण अधोलिखित पंक्तियों में देता जा सकता है --

'मया तु किमिदानी कर्तव्यम् । यदि तावदस्य वचनमनुवर्तमाना नरपतिकुमारमेन  
समाश्रयामि, ततः स्वापत्थदुर्विनयजनितोद्देशस्य गुरुजनस्य कौपोत्पादनधर्मः । अथ  
बिभ्यती तस्यावधीरयामि, ततोऽस्य जातिमात्रव्यवहितस्य प्रज्ञानिधिमहापुरुषस्य  
प्रथमप्रणयमंगोऽस्य बाल्यन्तपरव्रतस्य राजसूनोर्विमानना ।... ।'

काव्य में ये सब पात्र कथानक की दृष्टि से विशेष महत्व रखने के कारण प्रधान पात्र हैं अतः कवि ने इन सब का चित्रण सविस्तर किया है किन्तु काव्य में कुछ गौण पात्र भी हैं। जैसे स्त्री-पात्रों में बन्धुसुन्दरी, तरंगलैला, गन्धर्वदत्ता, पत्रलैला, चित्रलैला, लक्ष्मी आदि। किन्तु कवि ने इन अप्रधान पात्रों में केवल बन्धुसुन्दरी तरंगलैला और गन्धर्वदत्ता के चित्रण में कुछ अधिक रुचि दिखायी है।

बन्धुसुन्दरी मलयसुन्दरी की विश्वस्त सखी है। मलयसुन्दरी केवल हृषी को अपने समुद्र में दृष्ट प्रिय स्मरकेतु का वृत्तान्त बताती है। बन्धुसुन्दरी स्वयं उसकी सखी सखी होने के कारण मां पर क्रुद्ध होते देख उसे समुचित मार्ग दिखा कर शान्त करती है<sup>५</sup>। उसे पाश से ग्रस्त देखकर वह अपने को छोड़ तथा वज्रायुध को दिए जाने की घटना सुन करके भी क्यों जकड़े उसे छोड़ जायी। वह अपना प्राण देकर देवताओं से उसके प्राण की भीस मांगती है, पाश से उसे मुक्त करने के लिए तरह-तरह की वैष्टाएं करती है। उस समय कवि ने उसके जिन-जिन कार्यों का स्वयं विलाप में कहे हुए वचनों का वर्णन किया है वे सब उसकी ध्याकुलता के चित्रण में अद्वितीय सौन्दर्य ला देते हैं<sup>६</sup>। उसी समय मलयसुन्दरी

१- तिलक० पृष्ठ २८८

२- ,, ,, २८६

३- ,, ,, २७३

४- तिलक० पृष्ठ २८७

५- ,, ,, ३००

६- ,, ,, ३०६-३०८



का हिलता हुआ हाथ देखकर बन्धुसुन्दरी के क्रोधपूर्ण इन कथनों में -- भर्तृहारिके, विरम । किं वारयसि देवैर्नैव वारिता । विस्ताह्मघ प्रभृति रोदनात् । अनाकुलाप्रसाधय स्वाभिप्रेत-मर्थे<sup>१</sup> में कोई अस्वामाविक्ता नहीं आती है, अपितु इन वाक्यों से मलयसुन्दरी विषयक उसका अनन्य प्रेम ही परिलक्षित होता है । वह दोनों को मिलाने में डूली का काम करती है<sup>२</sup> ।

तरंगलेखा मलयसुन्दरी की धाय है और वह एक सच्ची धाय का आदर्श रखती है । विषण्णस्त मलयसुन्दरी को देखकर मलयसुन्दरी के पिता द्वारा कही गई बातों का उसे स्मरण हो जाता है । इसीलिए उसे अपने ऊपर क्षोभ होता है कि वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं कर पा रही है । उसके अधोलिखित वाक्यों से उसकी कर्तव्य परायणता ही परिलक्षित हो रही है --

..... कि द्वेषेण निष्ठुरं त्वां तर्जयामि । किंप्रातिकूल्येन विचरन्तीमितस्ततो निवारयामि । प्रस्थानसमये त्वह्मानमाहूय त्वदीयपित्रा वारंवारमभ्यर्चिताहम्... तैर्नैष मे प्रयत्नः ।<sup>३</sup>

इसीलिए मलयसुन्दरी को इस दुःचेष्टा<sup>४</sup> को देखकर वह उसकी बुद्धि एवं शालीनता को धिक्कारती है ।

उसकी दृष्टि में आत्महत्या एक बहुत बड़ा पाप है । उसकी दृष्टि में जो व्यक्ति जिसके ऊपर रक्षा के लिए झोंड़ा जाता है वह यदि आत्महत्या कर ले तो आत्महत्या करने वाला पापी तो बनता ही है साथ ही उसका रक्षक भी उस पाप का भागी बन जाता है । इसीलिए वह पाप से भयभीत हो उठती है ।

गन्धर्वदत्ता मलयसुन्दरी की माँ एवं कुसुमशेखर की आदर्श पत्नी है । कुसुमशेखर सन्धि के रूप में अपनी कन्या को वज्रायुध को देना चाहता है किन्तु पति की इच्छानुरूप चलने वाली होने के कारण वह उससे इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहती है । अपनी पुत्री की आत्महत्या के करने की बात सुनकर जब कुसुमशेखर गन्धर्वदत्ता से सलाह लेता है तो उस समय कवि ने अवश्य 'य स्वात्मने रोचते, य एव बहुगुणः प्रतिभाति स स्वाश्रीयते'<sup>५</sup> कहला कर उसके क्रोध का वर्णन किया है किन्तु उसके क्रोध को चिरस्थायी नहीं रहने दिया । वह अपने मातृत्व का परिचय उस समय देती है जब वह पुत्री के सुख की कामना से उसे तपोवन में भिजवा देती है । उसके ये वाक्य -- 'देव, यद्यसौ दूरे गमयितव्या तद्वरं वैखानसाश्रमपदे गच्छतु, यस्माद्यपुत्रेण सह मे प्रथमं दर्शनं संवृत्तम्'<sup>६</sup> उसके मातृत्व की सूचना देते हैं

स्त्री पात्रों की भाँति पुरुष पात्रों में महोदर, चित्रमाय, विक्रमबाहु आदि कई पात्र हैं किन्तु कवि ने कुसुमशेखर, विचित्रवीर्य तथा गन्धर्वक के चित्रण में कुछ विशेष उत्साह दिखाया है ।

कुसुमशेखर का चित्रण कवि ने पहले एक योग्य शासक के रूप में किया है जिसमें वह अपनी राजधानी कांची की रक्षा के लिए तत्पर रहता है । वज्रायुध की लड़ाई की सूचना

१- तिलक० पृष्ठ ३०६

२- " " " ३१३

३- तिलक० पृष्ठ ३३६

४- " " " ३३५-३३६

५- तिलक० पृष्ठ ३३५

६- " " " ३२८

पाते हो वह युद्ध की तैयारी जोर-शोर के साथ शुरू कर देता है और उसके साथ युद्ध करता है। युद्ध में अपनी वीरता का परिचय घमानुमान युद्ध करके देता है और अपनी सहायता के लिए अन्य राजाओं के पास दूत भेज देता है। वह देश के हित के लिए अपनी पुत्री तक की वज्रायुध की संधि के रूप में दे देने के लिए तैयार हो जाता है।

इससे यह तात्पर्य लेना चाहिए कि वह अपनी कन्या को नहीं चाहता। उसे जब अब अपनी पुत्री द्वारा पाश बांध करके आत्महत्या करने की सूचना मिलती है तो उसे अपनी गलती पर बड़ा पाश्चात्ताप होता है। 'सद्येहि पुत्रि, परिष्वजस्वमां नृशंस्र' में जो 'नृशंस्र' कहा है उससे उसकी पितृवत्सलता तथा अपनी करनी पर किये गये पाश्चात्ताप की अभिव्यंजना हो रही है।

पंचशैल द्वीप के राजा विचित्रवीर्य पुत्री गन्धर्वदत्ता के वियोग में अत्यन्त दुःखी दिहाया गया है। उसके राज्य के सब कर्मचारी उसके पुत्रीजनित दुःख को विविध प्रकार से कम करने को चेष्टा करते हैं विविध देशों से राजकुमारियों को लाकर नृत्य कराते हैं किन्तु उसका मन किसी प्रकार भी नहीं बहलता है। नृत्य में अन्य राजकुमारियों के साथ आई हुई मलयसुन्दरी से जब उसकी अपनी कन्या के विषय में पता चलता है तो न जाने वह कितने प्रश्न उससे करने लग जाता है। अकस्मात् पुत्री प्राप्ति की मिली सूचना पर उसे जल्दी विश्वास नहीं होता। विचित्रवीर्य का मंत्री उसे कई बार समझाता है पर उसका कुछ भी प्रभाव उसपर नहीं पड़ता है। विचित्रवीर्य स्वयं इस बात का अनुभव करके मंत्री से कहता है --

'आर्य, किं करोमि । स्तदपि श्रुत्वा न मे निसर्गदुर्विदग्धं श्रुत्वाति दग्धहृदयम् ।'

उसका चरित्र अत्यन्त उच्च है वह पर-कलत्र दर्शन को पाप समझता है। क्योंकि उसका मंत्री जब पवनगति नामक दूत को भेजकर गन्धर्वदत्ता को बुलाने के लिए कहता है तो वह यह कहता है -- 'आर्य, गर्हितमस्मद्विधानामकाले परकलत्रदर्शनम् ।'

गन्धर्वक एक विधाधर का पुत्र है जो चित्रकला में अत्यन्त निपुण है। कहने की देर नहीं और चित्र बनाकर सामने रख देता है। गन्धर्वक के द्वारा बनाए गए तिलकमंजरी के चित्र में हरिवाहन के द्वारा कतार गूर पुरुष रत्न की कमी में वह तुरन्त ही हरिवाहन का चित्र वहाँ बना देता है। वह हरिवाहन और स्मरकेतु के प्रेम-सन्देश ले जाने का वाहक बनता है। उसमें उपकार की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में मिलती है। किंपाक फल खाने से मृतप्राय मलयसुन्दरी के प्रति किए गए तरंग लेला के विलाप को सुनकर उसका उपचार करने के लिए अपना गन्तव्य मार्ग छोड़कर तत्पर हो जाता है। मलयसुन्दरी की रक्षा के लिए महोदर यज्ञ से लड़ता है और शुक्र-योनि के शाप को प्राप्त करता है। शुक्र-योनि में भी हरिवाहन की कुशलता पत्र के माध्यम से उसके बन्धुवर्ग के पास पहुंचाता है और वहाँ का सन्देश हरिवाहन के पास लाता है। इसके अतिरिक्त वह मरणासन्न तिलकमंजरी की अवस्था को देखकर हरिवाहन की खोज के लिए निकल पड़ता है। १०

१- तिलक० पृष्ठ ८२-८३

४- तिलक० पृष्ठ २७७ २७३

७- तिलक० पृष्ठ १७२-७३

२- " " २६८

५- " " २७४

८- " " ३८०-८२

३- " " ३२८

६- " " २६७

९- " " २६४

१०- " " ४०५-०६

इस प्रकार कवि धनपाल ने अपने प्रधान-अप्रधान सभी पात्रों में कोई-न-कोई आदर्श अवश्य रक्खा है और उसके चित्रण में एकाध स्थलों को छोड़कर उन्हें सफलता मिली है, ऐसा कहा जा सकता है।

इन पात्रों के अतिरिक्त काव्य में विद्याधर मुनि, वैमानिक तथा वैताल भी आए हैं इन पात्रों से पाठक का परिचय देर के लिए होता है किन्तु वे उस पर जमिट छाप छोड़ जाते हैं। विद्याधर मुनि अत्यन्त तेजस्वी एवं महान् पुरुष के रूप में उपस्थित होते हैं; वैमानिक यद्यपि विद्याधरी होने के कारण दिव्य वाभा से युक्त है किन्तु दिव्य वायु के क्षीण हो जाने से मनुष्य-लोक में जन्म लेना पड़ेगा इससे उन्हें दुःख है अतः कवि ने उस समय उसके सौन्दर्य का वर्णन उसी के अनुरूप किया है और वैताल को कवि ने भयानक आकृति के रूप में चित्रित किया है। इन सब पात्रों में कवि को वैताल के चित्रण में सर्वाधिक सफलता मिली है। उसके हड्डी के आभूषण, जीभ घुमा घुमा कर रक्त का पान आदि करना उसके बीभत्स रूप का दृश्य सामने ला देते हैं।

गद्यचिन्तामणि के पात्र--

बोध्यदेव के पात्र धनपाल के पात्र की भांति केवल आदर्श उपस्थित करने वाले नहीं हैं। कवि ने जिन पात्रों में गुणों की अधिकता बताई है उनमें भी मानवोय सुलभ दुर्बलता वैसी है। राजा सत्यंघर जो कि जीवंधर का पिता है उसे कवि ने अन्य कवियों की भांति ही विद्वान्, पराक्रमी, परीपकारी, प्रतापी, शास्त्रज्ञ, दानी, नीति-निपुण आदि सब गुणों से युक्त बताया है। किन्तु उसमें उसकी कामुक प्रवृत्ति की अधिकता दिखाकर जो कि भोग-विलास में रत रहने वालों के लिए स्नाभाविक है, कवि ने उसका दोष भी दिखाया है। उसका यह दोष उसके लिए कितना घातक हुआ इसका भी चित्रण करके कवि ने उस दोष को मूर्तिमान कर दिया है। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह अपना सब राज्य काष्ठांगार को दे देता है। वह मंत्रियों की मंत्रणा को अवहेलना करता हुआ भी चित्रित किया गया है। क्योंकि वह उनकी इच्छा के विरुद्ध अपना राज्य काष्ठांगार मंत्री को देता है।

यद्यपि कवि ने उसकी मृत्यु के पश्चात् काष्ठांगार से त्रस्त होने के पश्चात् प्रजाजों के द्वारा 'लोकद्वयहितनिर्वतननियतबन्धौ विद्रावितनिद्रोपद्रवनेत्रै, शरीरान्तसंचारिजोवित ... मक्तावबोधिनि मृत्युजनापिब्रजप्रजारक्षणदीक्षिते शिवाप्रयोजनदण्डविधौ दण्डिता-राति मण्डले मण्डलेश्वरै' तथा 'निष्फलं लोकलौचनविधानम्, निःकारः संसारः, नीरसा रसिकता, निरास्पदा वीरता' आदि कहला कर उसके योग्य शासक होने का उल्लेख किया है किन्तु कवि ने उसे शासन-व्यवस्था में कुछ कार्य करते हुए चित्रित नहीं किया है। एक स्थल पर अवश्य उसके वीर रूप का परिचय होता है जब कवि काष्ठांगार की चढ़ाई अपने ऊपर बुनकर उत्पन्न हुए उसके क्रोध का वर्णन करता है, उस समय कवि ने उसकी शारीरिक आकृति का जो वर्णन किया है वह तो है ही साथ ही 'कथं कथं कथय कथय'

१-तिलक० पृष्ठ २३-२५  
२- ,, ,, ३५-३६  
३- ,, ,, ४६-४६

४- ग०चि०पृष्ठ ५०  
५- ,, ,, ८६-८७  
६- ,, ,, २५

शब्दों से अमृतपूर्व घटना होने के कारण उत्पन्न उसके अत्यधिक आश्चर्य एवं क्रोध दोनों की अभिव्यंजना कराई है। उसका युद्ध भी घमासान दिखाया है किन्तु स्कार्क प्राप्त होने वाले उसके वैराग्य को दिखा कर कवि ने कोई अच्छा कार्य नहीं किया। इससे सत्यंघर का जो अभी तक वीर रूप देखने को आ रहा था वह विलीन हो जाता है। इससे पाठकों का चित्र उसके चरित्र से हट जाता है।

कवि ने इस पात्र को विवेकी तथा धीर प्रकृति का बताया है। रानी द्वारा दृष्ट स्वप्न से उसे जहाँ प्रसन्नता होती है वहाँ अपने नाश का सोच कर उसे दुःख भी होता है। इस प्रकार का दुःख होना स्वाभाविक है किन्तु विवेक उसे तुरन्त शान्त कर देता है वह अपनी व्याकुल पत्नी को सान्त्वना देता है। दूरदर्शी होने के कारण युद्ध के पहले ही उसे मयूर यन्त्र पर बिठा कर अन्यत्र भेज देता है।

उसका पुत्र जीवंधर इस काव्य का नायक है। श्मशान में उसका जन्म होता है किन्तु उसकी बढ़ती हुई अवस्था के चित्रण में कवि ने उसके राजत्व की ओर निरन्तर ध्यान रक्ता है। नवजात शिशु को वह मार्तण्ड के रूप में देखता है<sup>१</sup>। उसकी बाल क्रीड़ाओं में उसके दीपक के फकड़ने के सम्बन्ध में कवि उसके तेज के समान दीपक की निःसारता बताता है, मणिसम्भ में प्रतिबिम्बित अपने प्रतिबिम्ब को छूने में कवि शत्रु की संभावना करके उसके द्वारा उसके नाश के लिए जाने की कल्पना करता है, इसी प्रकार शरीर में लगी धूल से पृथ्वी के भावोपति होने आदि की कल्पना करता है<sup>२</sup>।

इसी प्रकार की कल्पनाएँ कवि उसकी युवावस्था के सौन्दर्य निरूपण में करता है<sup>४</sup>।

राज्य प्राप्त कर लेने के बाद कवि ने उसे एक योग्य शासक के रूप में चित्रित किया है। कवि ने उसके लिए -- 'राज्ञा रात्रिदिवविभागेऽयं यदनुष्ठेयमिदमित्थमनिर्बन्धमन्वतिष्ठत जातमपि सद्यः शमयितुं शक्तोऽपि सदा प्रबुद्धतया प्रतीकारयोग्यं प्रकृतिवैराग्यं नाजीवैतव

उसके अतिरिक्त कवि ने इस नायक को भी साहित्य का ज्ञाता, शब्दशासन को साधने वाला, आयुध व्यापार में निपुण, अश्वारोहण, गजारोहण आदि में निपुण, प्रतिभावान आदि बताया है किन्तु इनमें से कुछ गुणों का केवल कवि-परम्परातुल्य उल्लेख भर कर दिया है जिससे उसमें बहुत प्रभाव नहीं आ पाता। इतना जरूर मानना पड़ेगा कि उन्होंने कुछ गुणों का चित्रण अवश्य ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। भूसे को अपना परीसा हुआ मौजम देकर उसे अतिथि-सेवी तथा त्यागी बताया गया है, सुदर्शन यज्ञ को कुत्ते की योनि से छुड़ाकर तथा उससे दावाग्नि से जलते हाथियों के ऊपर वर्षा करवा कर उसकी दयालु प्रकृति चित्रित की गयी है। हाथी से मयभीत गुणमाला की रक्षा करवाकर तथा पद्मा के विष को दूर कराकर उसकी परीपकार की प्रवृत्ति दिखाई गई है। जीवंधर स्वयं काष्ठांगार के दृष्ट हाथी को वन में करके हस्ति-युद्ध विषयक निपुणता का परिचय देता है<sup>३</sup>। छैनामपुरी में एक बाण से आम्रफलों को तोड़कर तथा चक्र-यन्त्र में नियंत्रित

१- ग०चि०पृष्ठ २५
२- " " ३०
३- " " ३२
४- " " ३६

५- ग०चि०पृष्ठ १५५
६- " " ३६
७- " " ७६-७७
८- " " ६०

९- ग०चि० पृष्ठ ७६ ७६
१०- " " ६०
११- " " ७६
१२ " " १११

तीन बराहों को एक बाण से मेट कर अपने को जीवधर लक्ष्य-सिद्धि-धन्वी होना चरितार्थ करता है, गन्धर्वदत्ता के स्वयम्बर में वीणाबादन की शर्त पूरी करके अपने को श्रेष्ठ वीणावादीक चरितार्थकरता है, गन्धर्वदत्ता की चिढ़ी पाकर अत्यन्त दुखी होने पर भी अपने छोटे भाई के सम्मुख किसी प्रकार के विकारों को न प्रदर्शित करने के कारण वह हृन्दि-निग्रही सिद्ध होता है, पुलिन्दो तथा हेमामपुरी में गौ को चुराने वालों के साथ युद्ध करके उसके गौ-रक्षक, जैनमन्दिरों की पूजा करने से उसके आदित्यक रूप तथा विविध युद्ध करने से उसके वीर रूप का परिचय पाठक से होता है ।

उसके वीर रूप के चित्रण में कवि ने कई बार उसका युद्ध कराकर उसकी वीरता का परिचय दिया है। उसके इस रूप का उत्कृष्ट चित्रण लक्ष्मणा के विवाह के पश्चात् होने वाले युद्ध के प्रसंग में देला जा सकता है ।

किन्तु इस पात्र के चित्रण में कवि को सर्वत्र सफलता ही मिली है-- ऐसा नहीं कहा जा सकता । क्योंकि उसमें गम्भीरता तथा स्थिरता का अभाव है । वह जिसका उपदेश देता है उसका निर्वाह स्वयं नहीं करता । वह दूसरों को माया-मोह में न फँसने के लिए सावधान करता है किन्तु वह स्वयं ही फँस जाता है । वह स्त्रियों की प्रभूत विन्दा करता है, उन्हें हली, कपटी, विश्वासघातिनी आदि की दृष्टि से देखता है किन्तु जब कन्याओं के साथ विवाह करने का अवसर आता है तो उसे वह सहज स्वीकार कर लेता है । सुर्मंजरी की प्राप्ति के लिए वह वृद्ध का रूप धारण कर उसके प्रासाद में घुसता है और कामदेव के मन्दिर में जाकर अपने मित्र की सहायता से उसके साथ विवाह कर लेता है ।

पद्मा तथा दामोद्री को संसार के प्रति विरक्ति हो जाने के कारण छोड़कर चला जाता है किन्तु सुमद्र और वृद्धमित्र के द्वारा रकसै गए अपनी कन्याओं के विवाह के प्रस्ताव का अनुमोदन करके वह उनके साथ विवाह कर लेता है । कनकमाला से विवाह करने के पश्चात् उसकी हज्जा किमला से विवाह करने की होती है । वह उसके विषय में सोचता है -- " कथमेनां करणं स्पृशन्कमलयोनिः कामुको नासीत् । अपि नामेयमस्माभिः कदाचित्लभ्येत् ।"

कवि ने नायक का इस प्रकार का वर्णन करके उसके चरित्र को गिरा दिया है ।

काष्ठांगार इस काव्य का उपनायक है किन्तु दुष्ट प्रकृति का । उसके स्वरूप की विवेचना कवि ने उसके स्वभावानुसार ही की है । कवि ने उसे कृतघ्नता तथा तुच्छता का साक्षात् रूप, कुर्म का अवतारी, सज्जनाश्रित मार्ग से कौसों दूर रहने वाला और निरन्तर राजा सत्यंवर के विनाश के उपाय को सोचने वाला बताया है । १३

१- ग० वि० ० पृष्ठ २१७

२- " " ६८  
३- " " ११७

४- " " ४८-४९

५- ग० वि० ० पृष्ठ ११७

६- " " १४५  
७- " " १, ४८-४९, ७०-  
७१, ८५, १४२-  
४४  
८- " " १, १४२-४४

९- ग० वि० ० पृ० १२६-२७

१०- " " ६६  
११- " " १०६  
१२- " " १२३  
१३- " " २६

अतः उसका राजा सत्यंघर के पुत्र तथा काव्य के नायक के प्रत्येक कार्य में बाधा उपस्थित करना स्वाभाविक ही है। जिस स्वयंघर में जीवंधर की विजय होती है वह उसी में लड़ने को तत्पर हो जाता है। उसकी चालें भी उसके स्वभावानुसार कुटिल ही बताई गई हैं। सत्यंघर से राज्य प्राप्त करके उसको मार डालने के पहले वह स्वप्न की चाल चल कर उसकी बड़ी सुन्दर भूमिका तैयार करता है। उसके अद्यापि लज्जमानमिव मानसन्तरा-कषति रसनाम् । पुरिवादपत्नभीतैव गलकुहरान्न निःसरति सरस्वती । पातक्यंकपतनातंका दिव कम्पतै कायः" ... इत्यादि वचनों से उसकी कुटिलता का ही परिचय होता है तथा कात्रप्रतिक्रिया । किंवात्र प्रयुज्यते । यदिहास्माधिर्विधीयते तदभिधीयताम् " से उसकी शूटनीतिज्ञता भी परिलक्षित होती है। वह अपने कार्य की सिद्धि भी करना चाहता है और मंत्रियों की दृष्टि में ऊंचा भी रहना चाहता है।

उसकी शूटनीतिज्ञता का परिचय गोविन्द के पास भेजे गये मन्त्रिपत्र से भी हो जाता है जिसमें वह पहले उसकी प्रशंसा करता है तत्पश्चात् अपने ऊपर काश्यपीपति का असमय आक्रमण होने की फूठी खबर भेजकर संधि का प्रस्ताव उसके साथ रखता है जिससे कि उसके राजपुरी जाने पर उसको मार डाला जाए।

पहली वाली चाल में तो वह सफल हो जाता है किन्तु इस चाल में उसे सफलता नहीं मिल पाती है।

इन अवगुणों के साथ-साथ कवि ने उसे मानी के रूप में भी चित्रित किया है। मान की रक्षा हेतु वह प्राणोत्सर्ग भी करने को तत्पर रहता है। लक्ष्मणा के स्वयंघर के पश्चात् होने वाले युद्ध में एक बार विनम्र होकर वह जीवंधर के पास जाता है किन्तु जीवंधर के यह कहने पर 'क्या डर गए' तां वह तुरन्त लड़ने की तैयार हो जाता है।

उसके वृद्ध निश्चय को कोई भी किसी प्रकार मिटा नहीं सकता है। एक बार जीवंधर को मृत्यु की आज्ञा दे दिये जाने पर भी वह उस आज्ञा को बदलता नहीं है।

कवि ने इसे एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है। शत्रुओं द्वारा गार्यों के बुरे लिए जाने पर इसकी सूचना मिलते ही वह युद्ध के लिए निकल पड़ता है और उनसे घमासान युद्ध करता है। उस समय कवि ने उसके क्रोध की मुद्रा का सफल चित्रण किया है। क्रोध में उसका चित्तलाना, निःश्वासी का तीव्र हो जाना, प्रकुटि का टेढ़ा हो जाना, क्रोध में पसीने का आ जाना आदि का चित्रण भी किया है।

इस प्रकार कवि ने नायक की अपेक्षा इस पात्र के चित्रण में अधिक सफलता पाई है। उसके कुटिल रूप के साथ-साथ उसके गुणों का चित्रण उसने सम्यक् प्रकार से किया है।

गोविन्द विदेह का राजा तथा सत्यंघर का साला बताया गया है। उसके साले के साथ इतनी बड़ी घटना हो गयी किन्तु कवि ने उसको इस घटना के प्रति पहले बिलकुल उदासीन दिखाया है जिसमें कि कवि की दुर्बलता ही कही जायगी। वह राजा को बाद

१- ग० वि० पृष्ठ २२

२- ,, ,, २२

३- ग० वि० पृष्ठ २३६-३७

४- ,, ,, २४४

५- ग० वि० पृष्ठ ८६

६- ,, ,, ४७



में, अपनी बहन से तथा अपनी बहन के पुत्र से मिल कर उसको सौंर हुए राज्य को पुनः दिलाने की चिन्ता में रत रहता है वह पहले इतना उदासीन क्यों रहा, क्यों नहीं ~~उसे~~ बहन की सौज की ? आदि प्रश्नों का कोई भी समाधान कवि द्वारा निरूपित उसके चित्रण से नहीं होता ।

कवि यद्यपि इस दृष्टि से उसके चित्रण में असफल रहा है किन्तु उसके कूटनीतिज्ञ के रूप में चित्रण में सफल हुआ है -- ऐसा कहा जा सकता है । काष्ठांगार के सन्धिप्रस्ताव को स्वीकार करने में उसकी चाल थी । वहाँ जाकर अपनी पुत्री का स्वयम्बर रख कर तथा स्वयम्बर में सब राजाओं को बुला कर सब के बीच जीवंधर को सत्यंधर का पुत्र बता देता है जिससे सब की सहानुभूति जीवंधर की ओर हो जाती है और युद्ध में सब राजा उसका साथ देते हैं ।

राजाओं में वृद्ध-मित्र भी एक पात्र आया है उसके पराक्रम के सम्बन्ध में 'पराक्रमैषां त्पादितम्, साहसैव त्निवेक्षितम्, अदृष्टम्ने नैवोत्पादितम्, महापत्वनयैव निवर्तितं, वर्षमिव गृहीतदेवम्, उल्काहमिव राशिकृतम्' कहा है किन्तु इसके चरित्र का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है ।

गन्धोत्कट एक वैश्य है जो जीवंधर का संरक्षक है । दूसरे का पुत्र होते हुए भी उसका लालन-पालन अपने पुत्र के समान करता है । इस पुत्रप्राप्ति की प्रसन्नता में खूब महोत्सव करता है तथा राजाजा लेकर उस दिन उत्पन्न होने वाले सभी पुत्रों को अपने घर में लाकर उनका पालन करता है । उनके स्वयं के पुत्र हाँ जाने पर भी वह जीवंधर के प्रति किसी प्रकार का मैद-भाव नहीं रखता है । उसकी समुचित शिक्षा-दीक्षा को यही व्यवस्था करता है तथा उसका विवाह करता है ।

जीवंधर के प्रति उसकी पितृवत्सलता का परिचय तब होता है जब वह काष्ठांगार के द्वारा जीवंधर के बन्ध की आज्ञा दे दिए जाने पर काष्ठांगार को मनाने के लिए अपार धनराशि लेकर जाता है तथा उससे कई प्रकार से विनती करता है ।

मुनियों के वचनों पर उसे पूर्ण विश्वास है । जीवंधर के बन्ध की आज्ञा से उसे दुःख होता है किन्तु ज्योतिषज्ञों की वाणी पर विश्वास करके स्वयं शान्त हो जाता है तथा अपनी पत्नी को शान्त करता है<sup>२</sup> ।

इस काव्य में श्रीदा भी एक पात्र है जो व्यापारी है । उसकी दृष्टि में धन ही सब कुछ है । कवि ने उसे परोपदेश कुशल बताया है । स्मृद्र में तूतान आ जाने पर अन्य यात्रियों को तो वह समझाता है किन्तु स्वयं वह उस घटना से दुःखी हो जाता है । 'धर' नामक विधाधर उसकी इस प्रकार की दयनीय स्थिति से जाई होता है ।

उसे गरुडवेग का सब्बा मित्र बताया गया है जो उसकी कन्या का विवाह बड़ी धूम धाम से करता है ।

- १- ग० वि० पृष्ठ ११२  
२- ,, वृद्धीय लम्ब  
३- ,, पृष्ठ ५८  
४- ,, ,, ५८

सुदर्शन नामक यज्ञ को कवि ने एक कृतज्ञ व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है जो जीवंधर की कृपा से कुतू की यौनि से मुक्त होकर तद्वै उसके प्रति आभारी बताया गया है । काष्ठांगार द्वारा जीवंधर को वध की आज्ञा दिए जाने पर वही जीवंधर को आकाशमार्ग से अपने प्रासाद<sup>में</sup> ले जाता है और यथेष्ट स्वागत करता है । कृतज्ञता से ही प्रेरित होकर वह जीवंधर को विष-अपहरण, गान-विद्या तथा यथेच्छा रूप धारण करने की क्षमता सम्बन्धी तीन शंभ्र देता है जिससे ज्ञात होता है कि वह यज्ञ स्वयं इन सब कलाओं का ज्ञाता था<sup>१</sup> । जीवंधर की विजय होने पर वह आकर उसका अभिषेक अपने हाथों से करता है<sup>२</sup> । प्रवृज्या लेने पर पुनः आकर उसकी स्तुति करता है<sup>३</sup> ।

आव्य में यद्यपि सूत्रो-पात्र अधिक है किन्तु कवि ने सब पात्रों के चित्रण में उत्साह नहीं दिखाया है । परमा और क्षेत्रज्ञ का विरहिणी रूप कवि ने चित्रित किया है, किन्तु दोनों का वर्णन प्रायः स्का-सा है, जितने उनका चित्रण बहुत सामान्य हो गया है । उसमें प्रभावोत्पादकता नहीं है । जीवंधर के रूप-माधुर्य पर मुग्ध होने वाली के रूप में गुणमाला चित्रित की गयी है जो अपना प्रेम-सन्देश जीवंधर के पास क्रीडाशुक द्वारा भेजती है<sup>४</sup> । कवि ने सुरमंजरी को अनन्य प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है जो 'चूर्ण' की शर्त में हार जाने के पश्चात् जीवंधर को छोड़कर और किसी का मुँह नहीं देखना पसन्द करती ।

यह अतिथिसैविनी भी बतायी गयी है । वह अतिथि रूप में आर जीवंधर का यथेष्ट सत्कार स्वयं करती है तथा बानी सलियों से करवाती है ।

मन्वर्वदत्ता जीवंधर की महिषी बताई गई है किन्तु उसके चित्रण में भी कवि की एक प्रकार की उपेक्षा दृष्टि ही परिलक्षित होती है । स्काय स्थलों के वृत्तान्तों से ही उसका चित्रांकन हो जाता है । कमला के प्रासाद में नन्दाहृदय का जाना सुनकर जीवंधर के मुख से निकले हुए-- 'नमश्चराधीशसुतोपदेशेन नन्दाहृदयः किमागतः । सा हि नः समस्तमित्युदन्तं हस्तामलवत्स्वविद्यामुक्षेन जानीते' वाक्य से उसकी विद्वत्ता का परिचय मिलता है ।

कवि ने उसे कुछ मन्त्रों का ज्ञाता भी बताया है क्योंकि वह मन्त्रों के बल से नन्दाहृदय को जीवंधर के पास पहुँचा देती है ।

उसकी स्थिर प्रकृति से पाठक तब अवगत होता है जब सुदर्शन द्वारा जीवंधर के उड़ा लिए जाने की सूचना पाकर भी<sup>५</sup> विचलित नहीं होती । इसके विपरीत वह नन्दाहृदय को समझाती है ।<sup>६</sup>

विजया सत्यंवर की महिषी, जीवंधर की माता बताई गई है । पति की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के होने पर कवि ने उसका करुण विलाप करवाकर उसकी स्थिति का

१- ग०चि० पृष्ठ ८७-८८

२- ,, ,, १४६

३- .. .. १६७

४- ग०चि० पृष्ठ ६६

५- ,, ,, १०६

६- .. .. ८२

७- ग०चि०पृष्ठ १२५-२७

८- ,, ,, ११५

९- .. .. ११६



बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र चित्रित किया है।

तपोवन में मिली, पति की मृत्यु तथा पुत्र को चिन्ता से ग्रस्त उसकी अवस्था के निरूपण में सुषितामिव मोहन, क्रीतामिवक्रशिम्ना, वशीकृतामिव शुवी, दुःखैरिवो-त्साताम्... तापरिवोपीकृताम्, चिन्तयेवाक्रान्ताम्,.... प्रयुक्त वाक्य एक सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं।

उसके संसार में जब सारी आशा उसके पुत्र से ही थी उसकी माँ वध की आज्ञा दिए जाने की बात सुनकर उतली क्या दशा हो सकती है, इसका चित्रण भी कवि ने किया है वह राजा की महिषो होने के कारण राजनीति से भी यथेष्ट परिचय रखती है। पुत्र को पाकर इस सम्बन्ध में वह उसे शिक्षा देती है।

काव्य में आए हुए पुरुष पात्रों तथा स्त्री पात्रों की यदि चरित्र-चित्रण की दृष्टि से देखा जाय तो कवि को काष्ठांगार के चरित्र चित्रण में विशेष सफलता मिली है, नायक के चित्रण में पूर्णतः से इस प्रकार की वारणा नहीं बनाई जा सकती है। स्त्री पात्रों के चित्रण में कवि की विशेष रुचि परिलक्षित नहीं होती है। अतः उनका चित्रण कवि ने सामान्य रूप से कर दिया है।

### कैमभूपाल चरित के पात्र--

यद्यपि वामनमट्ट बाण का गण-काव्य कैमभूपाल चरित अर्वाचीन गण-काव्यों में श्रेष्ठ समझा गया है, उर्ल कवि ने काव्य की समस्त सामग्रियों का सम्यक् निर्वाह किया है, बाण की कादम्बरी जैसा रसास्वादन कवि ने कराया है तथा उर्लने अपने काव्य को वीर रस प्रधान काव्य बताया है किन्तु कवि सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सफल हुआ है-- ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस काव्य में कवि की गुणानुवाद करने की प्रवृत्ति अधिक मिलती है, पात्रों के चरित्र-चित्रण को नहीं। कामभूपाल, प्रोत्ल के पुत्र कैम, माच, पैदकौमटीन्द्र तथा नायक कैम सभी को कवि ने गुणों में अग्रणी, दानी, पराक्रमी, आलस्यविहीन, रूपवान, योग्य शासक, सत्यव्रती, तेजस्वी, दानी आदि बता दिया है। राजा प्रोत्ल तथा नायक कैम के चित्रण में कवि ने इन दोनों राजाओं का शत्रु राजाओं के साथ सम्बन्ध पिलाकर कवि के उनके केवल वीर रूप का परिचय दे दिया है। राजा प्रोत्ल को कवि ने मालव कुल के लिए अपमृत्यु स्वल्प, गुर्जर के लिए ज्वर, सिन्धुराज के लिए राजयदम, वंग के हृदय के लिए बाण, गान्धार रूपी मदमत हाथी के लिए वश में करने का अंकुश, कामरूपपति के लिए घुमकेतु, मद्रसेना रूपी समुद्र के लिए वज्राग्नि, शक रूपी बन के लिए दावाग्नि, हेहय रूपी वर्षों को पिघलाने वाला सूर्य, लौमक रूपी चन्द्रमा को ग्रास करने वाला राहु, मगध-वधु के वैधव्य का विधान करने के कारण उनका दुर्भाग्य, दुष्ट तुलुष्क के लिए शुष्काग्नि, लाट और कर्णाट के लिए चिन्ता का उत्पादक और मौज तथा कम्बोज के लिए प्रजागर बताया है।

इसी प्रकार काव्य के नायक कैम को कलिा देश रूपी कीचड़ को उलाने वाला सूर्य, वंग और अंग रूपी बन को काटने के लिए कुल्हाड़ी, लाट और गौड रूपी पर्वत शिखर को

- |    |             |        |
|----|-------------|--------|
| १- | गोवि० पृष्ठ | २७-२६  |
| २- | ,,          | १२७-२१ |
| ३- | ,,          | ११६    |
| ४- | ,,          | १२९    |
| ५- | कैमभूपाल०,  | १६-१७  |

नष्ट करने के लिए वज्र, पाण्डुरूपी शत्रु विद्या के मत का संहन करने वाला, केरलरूपी सरोवर के लिए ग्रीष्म ऋतु, मौसला रूपी समुद्र के लिए अस्त्य मुनि मागध की स्त्रियों के नेत्र में वर्षा कराने वाले हन्द्र, गान्धार रूपी हाथी के लिए सिंह, साँराष्ट्र रूपी जवाग्नि के लिए वर्षा, काम्बोज रूपी कमल के लिए अग्नि स्वरूप बताया<sup>१</sup>।

कवि की इस प्रकार के चित्रण करने की प्रवृत्ति पैदकोमटीन्द्र के वर्णन में मिलती है किन्तु वहाँ कवि ने उनका सम्बन्ध केवल यवन, मागध और काम्बोज के साथ दिखाया है<sup>२</sup>।

कवि ने इन राजाओं का अन्य राजाओं के साथ सम्बन्ध अवश्य दिखाया है किन्तु नायक वैम के युद्धों को छोड़कर उनमें से किसी भी राजा का युद्ध-वर्णन कवि ने नहीं किया है जिससे कि उन राजाओं की वीरता का परिचय मिलता। राजा प्रौल्ल के युद्धों का वर्णन करके कवि ने उसकी मृगया का वर्णन अवश्य किया है जिससे उसकी श्रुता, दूसरे के तेज के प्रति असाहिष्णुता आदि देखने को मिलती है। वहाँ पर कवि का उसके लिए 'शरमकुलापमृत्युना, तरुदाक्षिणेण, द्विपविपदा, मृगराजराज्यदमणा, रुरुजरसा, लुलाय-प्रलयेन' आदि कठना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

काव्य में आये सभी पात्रों को महान् बनाने के चक्कर में पड़कर कवि उन्हें देवत्व की पदवी पर विभूषित कर देता है तथा जितने भी महान् पुरुष हैं उनको उष्मान की कौटि में लाकर रख देता है। वैसे तो यह पद्धति सभी पात्रों के गुणों के बलान करने में मिलेगी किन्तु उसकी प्रधानता राजा प्रौल्ल के पुत्र वैम के वर्णन में अधिक मिलती है। मीमसेन, पुन्धुमार, मगीरथ, मान्याता, युधिष्ठिर, बृहस्पति, शङ्खु, वरुण, विश्वकर्मा आदि सभी को एक साथ उसके वर्णन में कवि ने स्थान दिया है।

प्रौल्ल के ज्येष्ठ पुत्र माच के वर्णन में कवि ने न उसके अन्य राजाओं की भांति षष्णुण प्रयोक्ता, धार्मिक, दानी आदि गुणों का बलान किया है न उनका अन्य राजाओं के साथ सम्बन्ध दिखाया है और न उसे देवत्व की पदवी से विभूषित किया है अपितु उसके शरीर अवयवों की कठोरता अथवा दृढ़ता जो एक वीर पुरुष में होनी चाहिए उनका निरूपण किया है<sup>५</sup>।

इस प्रकार कवि ने सभी राजाओं को एक योग्य शासक के रूप में देखा है किन्तु केवल वैम को छोड़कर उनके योग्य शासक के रूप को व्यक्त करने में विशेष उत्साह नहीं दिखाया है। अतः इस दृष्टि से उन पात्रों का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

कवि यदि वैम को भी अन्य राजाओं की तरह उसके गुणों का वर्णन करके छोड़ देता तो उसके काव्य का इस दृष्टि से कोई भी महत्व ही न रह जाता। क्योंकि वही इस काव्य का नायक है। अतः उसके चित्रण में कवि ने विशेष उत्साह दिखाया है। कवि ने उसे चारों समुद्र का शासक, बहुवर्ती लक्षणों से युक्त, जानी, गुणी, प्रजारंजक, कर्णानुकूल कार्य करने वाला, सामन्तों सहित आनन्द देने वाला, षष्णुण-विषदाण, साहित्य-प्रेमी, दयालु, दानी, यशस्वी तथा वीर आदि बताया है।

१- वैमसुपाल० पृष्ठ १७६

२- " " १०४

३- " " २३

४- वैमसुपाल० पृष्ठ १०२-१०३

५- " " १०१

६- " " ११७-११८

कवि ने उसका कलिंग, वंग, वंग कांची, केरल, आसाम, मुराव, गुर्जर, सौराष्ट्र आदि विभिन्न देशों से घनगुप्तान युद्ध कराकर उसको वीरता का परिचय कराया है। इन युद्धों में से कलिंग युद्ध, सामुद्रिक युद्ध, गुर्जरा की लड़ाई तथा पर्वतीय सेना के साथ होने वाली लड़ाई में उसको युद्ध क्रियाओं का स्वं उसके द्वारा दी गयी युद्ध भूमि को अपेक्षा का विशेषरूप से वर्णन दिया है।

कवि ने जहाँ उसे महान् योद्धा के रूप में चित्रित किया है वहाँ उसे परम दयालु भी बताया है। वह वंगमंगल को जीतने के पश्चात् राजाओं को पुनः उनके पद पर बैठा देता है।

उसके दान का परिचय देवालयों के दान देने एवं प्रसन्न होने पर पारितोषिक वितरण से होता है। भीमेश्वर के मंदिर में उसने वस्त्र, मणिमय भुषण, चंवर, गायें आदि दान के रूप में दिए थे। उसके दान के सम्बन्ध में बताते हुए कवि ने कहा है कि वह निरन्तर दानवारि से कलियुग द्वारा संतप्त धर्म-दुग्ध कृत् सिंचन किया करता था तथा विजयांपरान्त ब्राह्मण को दान करने की उसकी आदत थी।

उसकी साहित्यिक प्रियता उसके गान्धर्व विद्या में निपुण गायकों के गानों, वीणा तोय आदि के वाद्यों के नादों और सरस कवियों के काव्यों को सुनने में परिलक्षित होती है।

कवि ने इस मात्र का चित्रण काव्य में आर्य माधव के द्वारा भी कराया है। वह व्यतिरेक मुनेन उसकी प्रशंसा करता है।

इस प्रकार इस काव्य में वीरता एवं योग्य शासक होने की दृष्टि से कवि ने बुरस पात्र का चित्रण सम्यक् प्रकार से किया है। राजा प्रौल्ल का भी चरित्र-चित्रण कवि ने किया है किन्तु उसकी विशेष रुचि, उसकी शासन-व्यवस्था एवं वीरता के चित्रण में न होकर उसके प्रेमी रूप के वर्णन में रही है। अतः वह काव्य में तुक्सारघट की कन्या अनन्ता के प्रेमी के रूप में चित्रित हुआ है। वह अनन्ता से प्रेम करता है किन्तु अपने कर्तव्य-मार्ग से च्युत नहीं होता है। राजस द्वारा गुप्त विदूषक की आर्तनाद सुनकर वह तुरन्त कहता है - <sup>सर्वे न भेदव्ययः। अयुग्रहप्रगतोऽयम्।</sup> ~~जाः~~ कथं मयि वर्तमाने मृत्युमुखाभिलाषी को वा वराको राजसस्त्वामाक्रमति।

कवि ने इन पंक्तियों से जहाँ उसकी मित्र की रक्षा में तत्परता तथा 'मयि वर्तमाने' आदि कहला कर उसकी अहं भावना का परिचय दिया है वहाँ 'तत्संगतं हृदयमपि बलादादाय, तदवयवलावण्यावलीकनस्पृहां च किंचित्संकोच्य, तादृशीं तस्याः स्थितिं चिन्ने विलिख्य, तदीक्षणविक्षेपविलासकीरपि मनसि संयोज्य' से उसकी दयनीय स्थिति का चित्रण करके उसके प्रगाढ़ प्रेम का परिचय दिया है।

कवि ने उसे एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किया है। अनन्ता की सखी से उसका परिचय तथा उसका प्रेम जानकर वह किसी प्रकार की उतावली नहीं दिखाता है यद्यपि उसके विरह वर्णन में कवि ने उसकी कामपीडा की अत्यधिक तीव्रता एवं उसके

१- कैमभूपाल ० पृष्ठ १३६-१३८	१- कैम भूपाल ० पृष्ठ १६३	६- कैमभूपाल ० पृष्ठ २०६
२- " " १४१-१४२	७- " " २०६	" " २३१-२२
३- " " १५७	८- " " २०६	" " ३८
४- " " १६२-६३	९- " " १४२	" " ३८
५- " " १६२		

उपचार का वर्णन किया है। वह उस समय स्वयं कुछ बात नहीं करता अपितु उसकी ओर से विदूषक करता है। वह गन्धर्व विवाह को उपयुक्त न समझ कर विधि विधान पूर्वक किए गए विवाह को पसन्द करता है अतः अनन्ता पर अनन्य प्रेम रखते हुए भी तथा उसके अनन्य प्रेम को जानकर भी वह दुष्यन्त की तरह कोई कार्य नहीं करता अपितु उसमें गुरुजनों की अनुमति के साथ पहले कन्या के घर जाइमियों को भेजता है तब घूम घाम के साथ विवाह करता है।

कवि से एक स्थल पर राजा प्रोत्ल के शेरवर्ष-वर्णन के चक्कर में पड़कर एक बहुत बड़ी असावधानी हो गयी है जिससे उसका चरित्र गिर जाता है। राजा प्रोत्ल के प्रिय राजा श्री प्रथम प्रणाम करने की इच्छा से जागे बढ़ते हैं और प्रतिहारी उन पर दण्ड प्रहार करते हुए बतार गए हैं जिससे राजा प्रोत्ल के शासन की कुल्यवस्था का परिचय होता है और वह एक अयोग्य शासक जैसा प्रतीत होने लगता है। यद्यपि कवि का प्रयोजन उस रूप में वर्णन करने का नहीं है किन्तु कवि की इस असावधानी से उगका यह रूप चित्रित हो गया।

कवि ने पुरुष पात्रों में नाटक की भांति अपने काव्य में विदूषक को भी स्थान दिया है किन्तु नाटक के विदूषक की विशेषताएं इसमें परिलक्षित नहीं होती क्योंकि वह हार्यप्रिय अथवा विनोदी नहीं है। काव्य में यह पात्र दो बार आया है। एक बार वह प्रोत्ल का सच्चा मित्र बताया गया है जो कादम्बरी के 'कर्मिण्ड' पात्र की भांति अपने मित्र की सदा रक्षा करता रहता है। वह प्रोत्ल का उसकी प्रेमिका से मिलाने में सतत प्रयत्नशील रहता है। कवि ने इस विदूषक को भीरु प्रकृति का अवश्य बताया है जैसा कि नाटक में दिखाया जाता है। क्योंकि वह राजास के द्वारा पकड़े जाने पर राजा प्रोत्ल को जोर से पुकारता है।

वेम का विदूषक माधव नर्मलाय कुशल, समयत, सतत परिपाश्वर्यती रूप में चित्रित हुआ है।

इस काव्य में विदूषक के अतिरिक्त राजास भी आया है जो कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के राजास (मातलि) की भांति विदूषक को पकड़ कर प्रेम में आसक्त राजा प्रोत्ल को दूसरी ओर (कर्तव्य मार्ग की ओर) आकृष्ट करता है। क्योंकि उनकी राजास यौनि से मुक्ति राजा के दर्शन से ही हो सकती थी और उस प्रेम की अवस्था में यदि उसका परम प्रिय मित्र विदूषक करुण होकर न बिल्लाता तो सम्भवतः राजा प्रोत्ल उसकी ओर ध्यान न देता। इसीलिए विदूषक को कल कर पकड़ने का उसने नाटक रचा था।

कवि ने उसकी आकृति का चित्रण राजास जाति के अतुल ही लम्बा शरीर, काले शरीरावयव, अंगारमयी आंखें, निकला हुआ पेट, गर्म निश्वास फैली वाली नाक, धारण की हुई हड्डियों की माला आदि बताकर किया है। और उसे कृतज्ञी बताया है। वह राजासयौनि से छूटने के पश्चात् राजा प्रोत्ल को भावी पुत्र के राजत्व की सूचना देकर ही अन्तर्हित हो जाता है।

१- वेम मुपाल० पृष्ठ ६३	३- वेममुपाल० पृष्ठ ७०, ६०	५- वेममुपाल० पृष्ठ १६३
२- ,, ,, ६८-६६	४- ,, ,, ३८	६- ,, ,, ३६
		७- ,, ,, ४०

यह पात्र क्यावस्तु की दृष्टि से कोई भी महत्व नहीं रखता । स्त्री पात्रों में केवल कवि ने तुक्सारघट की कन्या अनन्ता<sup>उसकी</sup> सती साँगन्धिक तथा पैदकीमहीन्द्र की पत्नी अनन्ताम्बा को स्थान दिया है । अनन्ता तथा अनन्ताम्बा को ही साँन्दर्य में अद्वितीय ~~रख~~ बताया है किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण पात्र प्रोल्ल की प्रेमिका तथा तुक्सारघट की कन्या अनन्ता ही हैं । यह बड़ी सुशील एवं सद्व्रत चित्रित की गई है । झुले पर झुलते समय वह राजा प्रोल्ल को देखकर उत्तपर मोहित होती है किन्तु लज्जावश उसके पाए वह नहीं पहुँच पाती । इस समय कवि ने जो उसके अनुभावों, उच्छ्वाजों एवं उसमें बाधा डालने वाली लज्जा का चित्रण किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है । इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ देती जा सकती हैं अप्युत्पिता-उ कन्यकाजनसहजया श्रीडयापत्र्यादित्वा

..... पुरः प्रसूते न डोलापीठे न तदन्तिकमनुरामेणे वाकृष्वप्राण्णनीयमाना,  
तत्पादतल्लभावितां स्थलीमपि बहुमन्यमाना,..... मुहुः सल्लकारकलिक्या ताम्बूल करके-  
वाटिकां प्रहरन्ती, मुहुः संवाटिकायाः स्वन्यै करं विन्यस्यन्ती..... स्थितावती ।<sup>१</sup>

वह लज्जालु होने के कारण ही राजा प्रोल्ल को तिरछी दृष्टि से देखती है । किन्तु कवि ने उसकी गलियों के समझ उसकी लज्जा का वर्णन किया है । वह सखियों के समझ स्पष्ट रूप से अपने विरह का कारण बता देती है । उसके ये वाक्य कथमिव घटते में मन्दमांडपायास्तादृशस्य पुंसः पुरार्जितसुकृतशतलभ्यं पुनर्दर्शनमिति • चिन्तयन्ती लज्जया तवापि निवैदयितुमसहा,..... वास्यमुत्सृजामि सहृदय को सहानुभूति के विषय नहीं हो पाते हैं । यह कवि की चित्रण विषयक दुर्बलता ही कही जायगी ।

कवि ने इसका विरहिणी रूप ही अधिक चित्रित किया है । यद्यपि धनपाल ने भी तिलकमंजरी तथा मलयसुन्दरी के विरहिणी रूप का चित्रण किया है किन्तु धनपाल तथा वामनमट्ट बाण ने जिस ढंग से उनका चित्रण किया है उसमें महदन्तर है । धनपाल को अपने इन पात्रों के चित्रण में सफलता मिली है किन्तु वामनमट्ट बाण के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा सर्वत्र नहीं बनाई जा सकती है ।

अनन्ता की सती साँगन्धिक का चित्रण भी बहुत अधिक प्रभावोत्पादक नहीं है । यद्यपि कवि ने उसका दुःख के समय अनन्ता को साँन्त्वना देना, उनका शीतोपचार करना उसे कन्यान्तःपुर में ले जाना, उसके लिए फूलों की शय्या बनाना, चित्रफलक में चित्र चित्रित करने के लिए सामग्री को एकत्रित करना, झूटे चित्रफलक को लेने के लिए अकेले निकलना और राजा को उसका परिचय देकर तथा उससे शुभ समाचार लेकर अपनी सती अनन्ता को सुनाकर उसे शान्त करना आदि उसके कार्य-काव्य में वर्णित हैं किन्तु उन कार्यों में कवि ने उसको इस ढंग से नहीं चित्रित किया है जिससे उसका प्रगाढ़ प्रेम अनन्ता के प्रति फलकता हो ।

- १- वैमसुपाल० पृष्ठ ३५  
२- " " " ७६  
३- " " " ७७

जो सला के लिए व्याकुलता अर्वाचीन गद्य-काव्यों में तिलकमंजरी की बन्धुसुन्दरी में मिलती है, वह इस काव्य की सांगन्धिक में नहीं मिलती। मौज की भांति इनके काव्य में वैचार्य आयी है किन्तु वामनभट्ट बाण ने उन्हें पात्रों के रूप में अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है, अपितु वैश्या जाति, गणिका जाति एवं कुटुनियों का चित्रण किया है। अनन्ता, अनन्ताम्बा तथा सांगन्धिक की अपेक्षा कवि इनके स्वभाव के चित्रण में अधिक सफल हुआ है। उनका अपने शरीर को जलकृत करना, वन लेकर व्यक्ति को निकाल देना कृत्रिम प्रेम प्रकट करना, विवेकियों के ज्ञान को नष्ट कर देना आदि का वर्णन करके उस दुःख की कवि ने सजीव बना दिया है। उनके स्वभाव के सजीव चित्रण का अनुमान कुछ अधोलिखित पंक्तियों से लगाया जा सकता है --

उन्द्र जालपिच्छिन्नेव क्ररतो भावान्प्रकाश्य भुवं व्यामोहयन्तो, गुडालिप्पशिलेव  
अन्तः कठिनापि वाह्ये रत्नले शमावहन्तो, .... भूमिरिव भुजंगभोगसंगिनो, .... स्फटिक-  
शिलेव प्रतिपुरुषरुचिं दधाना, ... प्रव्रज्या एव आत्मानु रक्तानां कौपीनदायिनो ...  
विधानभुनिधुर्तानाम्, ... आकरः कपटानाम् ... गणिका जातिः ।

कवि ने उनकी माताओं का वर्णन दुष्टा एवं लड़ाका के रूप में अधिक किया है<sup>२</sup>।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि को वैश्याओं के स्वभाव के निरूपण को छोड़कर जहाँ तक स्त्री पात्रों के चित्रण का प्रश्न है, उसमें कवि की एक प्रकार से अफलता ही मिली है, ऐसा ही कहा जायगा। पुरुष पात्रों के सम्बन्ध में भी कुछ पात्रों को छोड़कर इसी प्रकार की धारणा बनानी पड़ती है। अतः यह कहना पड़ जाता है कि यह कवि इस दृष्टि से अर्वाचीन गद्य-कवियों में अग्रिम स्थान नहीं प्राप्त कर पाया है।

### रामकथा के पात्र--

पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वालुदेव की रामकथा भी अधिक प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। यद्यपि इस काव्य की रथावस्तु ऐसी है जिसमें पात्रों की बहुलता है किन्तु कवि ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष रुचि न दिखाकर उनका सामान्यरूप से वर्णन कर दिया है। इस काव्य के नायक राम का चित्रण भी संतोषप्रद नहीं है। कवि ने राम को ईश्वर का अवतार माना है-- विश्वानुजिघृक्षया गृहीतमानुषवेषो भगवानरविन्द-  
नामः किन्तु स्वर्णिम मृग को देखते ही उनके विवेक को नष्ट होने का वर्णन कर दिया। यद्यपि कवि ने इस सम्बन्ध में 'नियति' का आश्रय लिया है -- 'स च विमलविवेकयनोऽपि  
नियतिपाशयन्त्रितः... मृगमन्वयासीत्', किन्तु इससे राम सद्बुद्धि की सहानुभूति के पात्र नहीं हो पाते। क्योंकि कवि ने इसके पहले मृग को देखकर सीता का मृग को लाने के लिए दैतना वर्णित किया है और तत्पश्चात् राम के द्वारा उसके अनुसरण किये जाने का वर्णन हुआ है।

कवि ने सीता के लिए ऐसा विशेषण रक्खा है जिससे राम के गुणों के बदले दोषों की उद्भावना होती है। राम के वियोग में अत्यन्त दुःखी पतिव्रता सीता के लिए

- १- वैमसुपालो पृष्ठ २००-२०१  
२- " " " २०१-२०२  
३- रामकथा पृष्ठ ५२  
४- " " " २२



'परुषाक्षरविज्ञिता' कहा है जिससे प्रतीत होता है कि राम ने उनसे कठोर वचन दृष्टकर अग्नि परीक्षा करवायी थी<sup>१</sup>।

राम के चरित्र-चित्रण में कवि को सबसे बड़ा अभावधानी यह है कि उसने उनके गुणों के वर्णन में परिस्थिति की ओर ध्यान नहीं दिया है। मार्ह-बन्धुओं के मर जाने के पश्चात् रावण राम से युद्ध करने के लिए आता है। वहाँ पर कवि ने केवल रावण को लुभाने वाली रूप-माधुरी का ही वर्णन कर दिया<sup>२</sup>। उनके वीर रूप का किंचिदपि वर्णन नहीं किया। वहाँ पर कवि को रावण की दृष्टि से राम के सौन्दर्य के अतिरिक्त उसके वीर रूप का भी वर्णन करना चाहिए था जिससे कि बाद में होने वाले युद्ध के वर्णन में सौन्दर्य आ जाता।

इसी कारण रावण का चरित्र-चित्रण भी अफस हो जाता है। क्योंकि कवि ने उसकी मनोवृत्ति को समाप्त रूप-माधुरी के मुन्ध होने में छोड़ कर दो और उसने राम को देख कर उनके प्रति उठने वाले क्रोध, घृणा आदि किसी भी भावों का चित्रण नहीं किया है जिससे अन्वामाविकता आ गयी है।

कवि इन्द्रजित् की मृत्यु पर उका विलाप कराकर उसके पितृ-हृदय का परिव्य कराकर पाठकों की सहानुभूति का विषय उसे बनाता चाहता है किन्तु एक वीर योद्धा के लिए यह विलाप संगत नहीं बैठता। फिर जिस ढंग से उसके विलाप का वर्णन किया है वह हास्य का विषय बन जाता है --

प्रियसुतनिधनध्यादुलीकृतचेतसस्तस्य युगपदेव विस्मष्टवर्गाविलाः विलापवाचो विविधाः प्रादुरासत् ।<sup>३</sup>

इस काव्य की नायिका सीता है किन्तु पाठक उनसे चार स्थलों पर मिलता है। पहली बार बन जाते हुए राम का अनुसरण करने में पतिव्रता का आदर्श उपस्थित करती हुई<sup>४</sup> दूसरी बार स्वर्णिम मृग की याचना करती हुई<sup>५</sup>, तीसरी बार निशाचर के गृह में रह कर चरित को रक्षा करती हुई<sup>६</sup> और चौथी बार अग्निपरीक्षा देकर अपने को युद्ध करती हुई पाठक के सम्मुख आती है।

अयोध्या-नरेश दशरथ के चित्रण में कवि ने संस्कृत गद्य-कवियों की परम्परा का पालन करते हुए केवल एक पंक्ति में उनकी विजय-प्राप्ति का वर्णन कर दिया है। इसी प्रकार उनकी रानियों के एक-एक गुण का वर्णन एक पंक्ति में कर दिया है<sup>७</sup>।

इन पात्रों का चित्रण आकर्षक नहीं है किन्तु काव्य में कुछ ऐसे पात्र हैं जिनका चित्रण संक्षेप में होने पर भी कुछ अधिक प्रभावोत्पाक एवं कुछ सफल कहा जा सकता है। कवि ने शूर्पणखा का चित्रण कुछ शब्दों में किया है। कवि ने उसे पापों तथा दुःखों का साक्षात् मूर्ति, संसार के लिए कष्टदायिनी तथा मायावी बताया है<sup>८</sup>।

उसकी अभिमानी प्रकृति उसकी हंसो उड़ाये जाने पर मिलती है। राम के पास जाने के लिए पहले वह रमणीय रूप धारण करती है किन्तु बार बार कभी राम और कभी लक्ष्मण के पास जाने-जाने के कारण सीता के हंस देने पर वह अपने असली रूप में आ जाती है। इस रूप का चित्रण कवि ने उसकी आकृति तथा उसकी कठोर आवाज को

१-रामकथा पृष्ठ ५०  
२- " " ४६  
३- " " ४८

४-रामकथा पृष्ठ १४  
५- " " २१  
६- " " ३३-३४

७-रामकथा पृष्ठ ५०  
८- " " २-३  
९- " " ३

लेकर एक पंक्ति में कर दिया है<sup>१</sup>।

कवि ने सर को एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है। बहन को इस दुर्गति को देखकर वह उत्तेजित हो जाता है, आवाज भयंकर हो जाती है, सुंसार के जोतने को हल्का उसमें उमड़ने लगती है और वह युद्ध के लिए जागे बद्ध जाता है।

कवि ने कुम्भकर्ण को एक वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया है। युद्ध क्षेत्र में उगके जाते ही बानर सेना में सबली मच जाती है। शरीर के अंग भंग हो जाने पर भी वह साहस को झौड़ता हुआ नहीं बताया गया है। बहुत से योद्धा पहले वीर बनते हैं और बाद में प्राण को रक्षा के लिए भागते हैं किन्तु कुम्भकर्ण शत्रुओं को मार कर मरता है। कवि ने उसको उपमा विशालपर्वत से देकर उसका चित्रण सम्यक् ढंग से किया है।

चूंकि यह एक राक्षस था अतः कवि ने उसको निःश्वासी का उगी यौनि के अनुसार वर्णन किया है --

बहुमूर्चलकन्दराविरत विवृततदीप्रकनधोणाकुहरोदराहमहमिकानिर्जिहाननिः-  
श्वासानिलकत्लोलजालतूलोलानुविधापिनः तैडपि कथमपि निद्रागारं प्रविष्टा महता  
प्रयत्नेनैनं गलितमुखिष्ठसंवेशमुद्रं व्यधिषत् ।<sup>२</sup>

कवि ने इन्द्रजात् को भी वीर योद्धा बताया है किन्तु उसके युद्ध-वर्णन में प्रयुक्त तयोश्च युध्यमानयोरिद्धमानयोर्व्यतिरस्मानयोः काकुत्स्थपुलस्त्यान्वैक्कीरयोरविशान्त-  
योरहस्त्रितयमत्यागव । तथा संप्रहरन्तं संप्रहारशौण्डं मण्डोदरीसुतं समिति सुमित्रापुरो  
रघुवरानुभावसंधुक्षितौजसा वैडीजसास्त्रेण विगतजावितमनोव<sup>५</sup> उसकी वीरता का विशेष परिचय नहीं देती है।

इन पात्रों के अतिरिक्त काव्य में सुग्रीव, हनुमान, विभीषण, लक्ष्मण आदि भी आर हैं। किन्तु कवि ने उनके चित्रण में कोई रुचि नहीं दिखायी है। सुग्रीव और हनुमान शूक के रूप में बताए गए हैं। एक स्थल पर हनुमान को राम का शरीरधारो मनोरथ<sup>३</sup> कहा गया है। विभीषण को यहाँ भी शत्रुपक्ष में जाने के पहिले भाई को समझाते हुए तथा वहाँ से तिरस्कार मिलने पर राम के परम मित्र बनते हुए तथा भाई-बन्धुओं का नाश करते हुए बताया गया है।

इन पात्रों की अपेक्षा लक्ष्मण के चित्रण में कवि को कुछ रुचि परिलक्षित होती है किन्तु वह उसको सम्यक् रूप नहीं दे पाए हैं।

कवि ने राज्य पाकर प्रतिज्ञा भूल जाने वाले सुग्रीव का कर्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए धनुष को लेकर सुग्रीव के भवन में जाते समय उनके क्रोध का अवश्य वर्णन किया है किन्तु उससे उनकी उग्र प्रकृति परिलक्षित नहीं होती है --

स हि रौषकलुषितनयनकमलावलीकजनितभयकुम्पितानैः प्रतीहारैर्विरचिताजलिबन्ध-  
मपसरद्दिमरनिवारितस्तरसाराजभवनमेवाविज्ञव ।<sup>४</sup>

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि काव्य में आर हुए हुए ही पात्रों का उपयुक्त चित्रण कवि कर सका है किन्तु उसमें प्राप्त उसकी सफलता अन्य गद्य-कवियों की अपेक्षा अत्यन्त कम है। इस काव्य के रचयिता ने तो अन्य कवियों की भांति गुणानुवाद भी नहीं किया।

१- रामकथा पृष्ठ १६

२- " " " १६

३- " " " ४५

४- " " " ४५

५- रामकथा पृष्ठ ४७

६- " " " ३६

७- " " " २६



आसफ-विलास के पात्र--

पंडितराज जगन्नाथ का 'आसफ-विलास' भी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सफल काव्य नहीं कहा जा सकता है। कवि ने इस काव्य में एक प्रकार से कथावस्तु का अभाव ही रक्खा है। यद्यपि जैसा कि कहा जाता है कि कवि ने इस काव्य को रचना आसफ की मृत्यु पर उसके गुणों का वर्णन करने के लिए की थी किन्तु कवि ने उसके और न शाहजहां के ही किन्हीं कार्यों का वर्णन किया है जिससे पाठक उसके कार्यों से मुग्ध होकर उनको प्रशंसा करे। केवल उन दोनों राजाओं के गुणों की संख्या गिना दी है। शाहजहां को दानी तथा प्रतापी बता दिया और आसफ़ां को ब्राह्मणों का हितैषी, सब के मन को प्रमत्त करने वाला, युद्धप्रिय, देवताओं से पूजित, सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता बताया है<sup>२</sup>। मुँकि आसफ़ां इस काव्य का नायक है अतः कवि ने उसके गुणों की संख्या कुछ अधिक बढ़ा दी है।

कवि ने यद्यपि मुगलपात्रों को काव्य में स्थान दिया है किन्तु मुगलों के रहन-सहन, खान-पान, ठाट-बाट आदि से सम्बन्धित किसी भी विशेषताओं का चित्रण उन पात्रों में नहीं किया है। हिन्दू राजाओं के रूप में ही उनको चित्रित किया है। अन्य कवियों की भांति यद्यपि इनमें भी केवल गुणों के गिनाने की प्रवृत्ति मिलती है किन्तु विस्तर के साथ नहीं। इन्होंने अन्य कवियों की भांति इन राजाओं के सौन्दर्य, शासन-व्यवस्था आदि का भी चित्रण नहीं किया है।

इस प्रकार समस्त अर्वाचीन गद्य-काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गद्य-कवियों में पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भोज तथा धनपाल श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। जोडयदेव ने अपने काव्य के नायक को एक योग्य और महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित करना चाहा है किन्तु उसमें कुछ व्यक्तित्व न दिखाने के कारण उसको उस रूप में चित्रित नहीं कर सके हैं। इसके विपरीत काष्ठांगार को खल रूप में चित्रित करने में उन्होंने अपनी चरित्र-चित्रण विषयक शक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। वामनमट्ट बाण ने काव्य में कई राजाओं के चित्रण के प्रति उपेक्षा दृष्टि रक्खी है किन्तु राजा वैम तथा राजा प्रोह्ल के चित्रण में उन्होंने इस शक्ति का परिचय दिया है। वासुदेव नायक-नायिका तथा उपनायक के चित्रण में इस प्रकार से असफल रहे हैं। इन पात्रों की उपेक्षा कवि राजासीय पात्रों में शूर्पणखा, कुम्भकर्ण तथा सर के चित्रण में अधिक सफल हो गया है-- ऐसा कहा जा सकता है। पंडितराज जगन्नाथ ने पात्रों के चरित्र-चित्रण को तो सर्वथा उपेक्षा ही की है।

१- आसफ-विलास श्लोक संख्या २, ३

२- ,, पृष्ठ ,, ८३

संस्कृत अध्ययन

-0-

२

संस्कृत अध्ययन

-0-

## सप्तम अध्याय

### सांस्कृतिक अध्ययन

\*\*\*\*\*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज से पृथक् अपना स्थिति को कल्पना एक प्राणी के लिए भी नहीं कर सकता। व्यक्तियों का समूह ही समाज होता है। अतः व्यक्ति को समाज के प्रत्येक नियम एवं रीति-रिवाजों को मानने पड़ते हैं। उसके प्रत्येक कार्य में उसके समाज का हाथ रहता है। यही कारण है कि लोग उसके क्रिया-कलापों से उसके समाज की स्थिति का अनुमान लगा लिया करते हैं। कवि भी समाज का एक अंग है। यद्यपि उसका कार्य काव्य को रचना करना होता है किन्तु वह समाज को, अपने आस-पास के वातावरण को उपेक्षा नहीं कर सकता। इसीलिए उसका साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। उसके काव्य से विभिन्न स्थितियों का ज्ञान होता है। बाण का हर्ष-चरित, विशालदा का मुद्राराक्षस तथा अन्य बहुत से काव्य ऐतिहासिकों के लिए बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत कराने में सहायक बनते हैं।

संस्कृत-कवि किसी-न-किसी राजा के आश्रित रहे हैं अतः उनके काव्यों में अनायास रूप से वर्णित विभिन्न परिस्थितियों की विवेचना मिलेगी। जिन संस्कृत कवियों ने अपने आश्रयदाता का जीवन चरित्र न वर्णन करके पौराणिक राम आदि की कथा को लिखा है उन कवियों ने भी काव्य के नायक के समय में होने वाली सामाजिक आदि दशाओं का अभिव्यक्ति में निरूपण किया है। यह दूसरी बात है कि उन काव्यों से विशेष जानकारी न मिल पाए और इस दृष्टि से वे महत्वहीन सिद्ध हों। रामकथा इसी प्रकार का गद्य-काव्य है। कुछ ऐसे भी गद्य-कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य का नायक आश्रयदाता राजा को बनाकर भी उस समय की स्थितियों के विषय में विशेष परिचय नहीं कराया है। इस विषय में पंडितराज ज्ञाननाथ का 'आराक-विलास' नामक गद्य-काव्य अवलोकनीय है। अतः यह भी काव्य इस दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखता है। जीह्यदेव ने अपने गद्य-काव्य 'गद्य चिन्तामणि' का नायक यद्यपि अपने आश्रयदाता को न बनाकर पौराणिक नायक जीवधर को बनाया है किन्तु उन काव्य से कवि के समय की अवस्थाओं के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है। इसी प्रकार धनपाल के काव्य 'तिलकमंजरी' में आश्रयदाता के नायक न होने पर भी उसके समय की स्थितियों से पाठक पर्याप्त मात्रा में परिचित हो जाता है। इस काव्य के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसकी पढ़कर कवि के आश्रयदाता भोज ने अपने को इस काव्य का नायक बनाने के लिए कवि से कहा था, कवि ने यह कहकर कि इस नायक तथा राजा भोज में बहुत अन्तर है, इस बात को अस्वीकृत कर दिया था जिससे स्पष्ट होकर भोज ने अग्नि में उसको कृति को डाल दिया था। यह बात कहां तक सत्य है, कुछ कहा नहीं जा सकता किन्तु उपर्युक्त किंवदन्ती से जतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उसके काव्य में उसके समय की

समा परिस्थितियों का प्रभाव है ।

राजा भोज को 'धृंगारमंजरी कथा' नामक काव्य में कियो जाश्रयदाता की नायक बनाने का कोई प्रयत्न ही नहीं उठता है किन्तु एक राजा की कृति होने से तथा उसमें अपनी राजधानी धारा आदि का चित्रण करने से उस समय की अवस्थाओं पर विशेष प्रकाश पड़ता है ।

वामनभट्ट बाण ने तो अपने काव्य का नायक अपने जाश्रयदाता वीरनारायण या वैमभूपाल को ही बनाकर उसकी बंशावली बताई है एवं उसका गुणगान गाया है । यह काव्य उस समय का विविध परिस्थितियों के ज्ञान कराने में उसी प्रकार का महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिस प्रकार बाण का हर्षचरित, जो हर्षकालीन इतिहास को प्रस्तुत करता है ।

यद्यपि हमें कोई जन्वैह नहीं है कि इन कवियों के वर्णन में अतिशयोक्ति का मात्रा अधिक रहती है । जमा संस्कृत के कवि राजाओं को सामान्यरूप से सर्वगुण सम्पन्न, योग्य शासक बता देते हैं, उन्हें 'कृत्वी' का पदवी से विभूषित कर देते हैं, उनको नगरी, बाजार आदि का विविध रत्नों का जागार एवं सभी सुखियों से परिपूर्ण चित्रित करते हैं । प्रासादों को ऊंचाईमें बन्द-सूर्य को गति को भी शिथिल कर देते हैं किन्तु इसका वात्सल्य यह नहीं है कि वे अपने काव्य में सत्य को सर्वथा उपेक्षा को दृष्टि से देखा करते हैं । इस प्रकार के वर्णन करने को तो एक प्रकार से यह कवियों की परम्परा बन गई है । इसका कारण है -- कवियों का राजाओं के जाश्रय में रहना तथा उनमें जात्म संतोष वृत्ति को प्रमानता होने के कारण उनका सुख तथा शान्तमय राज्य की कल्पना करना ।

वर्णन को प्रणाली में समता होते हुए भी उनके काव्यों में व्यक्तिगत दृष्टिकोण, तथा उनमें वर्णित सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों के कारण पर्याप्त मात्रा में भिन्नता परिलक्षित होती है ।

### धृंगारमंजरी कथा--

राजा भोज को धृंगारमंजरी-कथा से उस समय की सामाजिक स्थिति में विशेष प्रकाश पड़ता है । इस काव्य में वैश्याओं की स्थिति की विवेचना में कवि ने विशेष रुचि रखी है । इस काव्य की नायिका स्वयं वैश्या है । उसकी मां अपनी वृत्ति के अनुकूल उसे शिक्षा देती हुई पुरुषों के विविध रागों से व्यक्तित्व की चर्चा करती है । इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय वैश्यायें अपने सौन्दर्य के अङ्गुण्य कर्मायें रखने के लिए उसी के अनुस्यू बेश धारण करती थी, मुडुभाषी वाग्पटु, चाँसठ कलाओं को ज्ञाता तथा कामभूषण आदि में विद्वत्ताण सम्पन्नी जाती थी । प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका आदि में प्रसन्नता प्रदर्शित करती थी, प्रभावशाली व्याख्यानार्थ(वाक्योवाक्) के प्रति कौतुकिनी होती थी, हास्य नृत्य में दक्षता रखती थी, समस्यापूर्ति में निपुणता का प्रदर्शन करती थी, प्रबन्ध-रचना तथा गाथा-निर्माण में अपनी शक्ति का परिचय देती थी क्रीड़ाओं को प्रेमी समयानुसार वचनमंगिमा में परिवर्तित होने वाली एवं गायन और वाद्य-वादन में पटला

दिखाने वाला होता था<sup>१</sup>।

ये शराब, मांस आदि खाने में किसी प्रकार का रोक नहीं करता था<sup>२</sup>। दूसरे के धन का उपहरण करके अपना कौष करना तथा बाणना नैति छ आदि का बनाना उनके कार्य थे<sup>३</sup>। ये दूसरों को ठानने में निपुण, दूसरों का विध्वंसि जानने में दक्ष तथा वैशिक आलाप और सम्पूर्ण उच्चियों में प्रगत्य होते थे। अस्त्यता, वम्भ, धूर्तता, निरुष्ट चरित्रता, कष्ट-विनयता उनके गुण थे। उनके अतिरिक्त वे दुष्टता का निर्मात्र तथा दुष्टता का विधातिका होते थे<sup>४</sup>। वे अपना चालों से अत्यन्त विदग्ध तथा स्थिर प्रकृति वाले व्यक्तियों को भी धोखा देती, उन्हें क अस्थिर और मूर्ख बनाता, बाहर से फैलने, बोलने एवं वेष्टानों में अत्यन्त मौला-मौला एवं सरल प्रतीय होता है किन्तु अन्दर से उनका मन कुटिल होता। जनावटीमन अतिरिक्त मात्रा में होने के कारण अर्थात् के लिए रोना, लम्बा, लड़ना, पुत्रों को डांटना, आदि भी उनके कार्य होते। वे धनविहनि का कर्मा भी उत्कार नहीं करती, धनी का आदर करके उनके धन प्राप्ति के माधन को जानकर उन्हें दुत्कार देती। उनके नामने ऐन्द्रजालिक भी कुछ नहीं उहरीते।

आरु प्रकार के रागों जिन्हें कवि ने चार वर्गों में बांटा है उनसे परिचय रखना उनके लिए आवश्यक था। किस प्रकार से नीलो राग वाले व्यक्ति से सब कुछ लेकर उसे निकाल दिया जाता है, किस प्रकार मंजिष्ठ राग वाले से अपनी इच्छानुसार ले लिया जाता है किन्तु उन्हें कष्ट नहीं दिया जाता है, किस प्रकार कुम्भ राग वाले से किता चाटकारिता के (क्योंकि वह चाटकारिता पान्द नहीं करता है) उसे खुल बनाकर ले लिया जाता है तथा किस प्रकार शीघ्र ही विरक्त हो जाने वाले हरदरागी से शीघ्र धन ले लिया जाता है -- इत्यादि के विषय में ये पट्ट होती। उसकी शिक्षा उन्हें माता को गौद में ही मिल जाती थी।

कभी वैश्यायें स्कन्धी नहीं होती थीं। कुछ व्यक्तियों से परांगमुला, भावुक, कुम्भ मुमुभाषिणी, त्यागिनी, निलीमो स्व साहित्यिक रचना को प्रेमो होती थी। काथ्य की जायिका 'शंभारसंजरी' हरी प्रकार की है। सच्चा-प्रेम करने वाली वैश्यायें भी होती थीं। यह दूसरी बात है कि परिस्थितियां उनके सन्धे प्रेम को स्थिर नहीं रहने देती थीं।

वृद्धावस्था प्राप्त हो जाने पर वैश्यायों का काम धनिकों को अपना पुत्रों के माध्यम से बुलाना, अपने को उस अवस्था में भी अलक्ष्य रखना तथा उनसे प्राप्त धन को अपने पास रखना होता था। यदि कभी कोई युवती वैश्या अपने मार्ग से विचलित होती थी तो वह उसकी सावधान करती थी तथा उनसे धनप्राप्ति के मूल को लौज करावा कर उसके पाने के लिए घृणित से घृणित कार्य करती थी<sup>६</sup>।

जायुषणों में वे वन्तपत्र, कुण्डल, रत्नजटित हार, फूलों की माला, बलय, बंकण,

१- शंभार० पृष्ठ १२

४- शंभार० पृष्ठ १५-१६

७- शंभार० पृष्ठ १६

२- " " १५

५- " " १६

८- कही कथा, और जाठवां कथा०

३- " " १५

६- " " १६-१७

९- सातवीं कथा०

केसुर और तूपुर धारण करता था तथा बन्दन कुंज और रोघ्र का लेपन करता था । समाज में इन लोगों की स्थिति प्रशंसनीय नहीं थी । उनकी माताओं को ज्वगुणों की शान ही अधिकान्तः समझा जाता था<sup>१</sup> ।

वैश्यायों से जञ्जी स्थिति गणिका को समझा जाता था । वे सम्पूर्ण कलाओं से परिचित रहती थीं । ये राजा को प्रिय पात्र भी बन सकती थीं इस काव्य को नायिका शृंगारसंज्ञी गणिका ही है ।

गणिका के घर को व्यवस्था उनकी माँ या हुदिनी करती थी ।

समाज में हुदिनियों एवं वैश्याओं को जल कौ ठीक लगाने वाले कुड़ घृत हुआ करते थे जो उन्हें उनकी करनी का फल चलाता करते थे ।

राजा भोज के समय वर्ण-व्यवस्था भी था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, कायस्थ तथा अन्य पेशे वाले लोग हुआ करते थे । ब्राह्मण अधिकान्तः घनो और शिक्षित होते थे तथा झोटी-साँ उम्र में ही शिक्षा पा लेते थे । रत्नदत्त ने सोलह साल की उम्र में सम्पूर्ण हिन्दू शिक्षा पा ली थी । राजा और राजकुमार क्षत्रिय होते थे । वैश्य गजशास्त्र, जशविद्या, वाणिज्य कला, भूत रक्षाय, वैशिकोपनिषद्, चित्र, पत्रच्छेद्य और पुस्तककला में निपुण होते थे । उनके लिए आवश्यक न था कि वे पुरतनी नौकरी करे ही । रत्नदत्त पढ़-पूछ कर अपने पिता की नौकरी न करके मानसैह के राजा की नौकरी करने जाता है ।

कायस्थ अधिकान्तः शून्यकीय कार्य करते थे । पंचाल के कान्यकुब्ज के महामामन्त प्रतापसिंह तथा उरगपुर के स्मरसिंह ऐसा ही कार्य करने वाले क्रासु गर हैं ।

उनके अतिरिक्त समाज में शकुनिक, हेन्दूजालिक एवं नोहन विद्या को ज्ञानने वाले भी कुछ लोग हुआ करते थे । काव्य में तैलिक, तन्नुवाय(जुलाहा) तथा सक्कि का भी उल्लेख आया है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय इस प्रकार के पेशे थे ।

शहर के बाहर काबूट होता था जहाँ कैलाहल लोग रहते थे<sup>११</sup> । जंगलों में शबर रहते थे जो काले, चिन्टी नाक वाले, घुंघराले बाल वाले तथा दाढ़ी रखने वाले होते थे । वे धनुष बाण को निरन्तर बाने साथ रखते थे और प्रकृति के होने के कारण वे यात्रियों एवं जंगली जानवरों से डरा करते थे और समूह में निकलते थे ।<sup>१२</sup>

इस काव्य में मदन यात्रा महोत्सव का उल्लेख आया है जिससे उस समय के होने वाले पर्व के विषय में ज्ञात होता है ।<sup>१३</sup>

देवी-देवताओं में वाशापुरा देवी<sup>१४</sup> तथा विन्ध्यवासिनी देवी<sup>१५</sup> की पूजा होती थी । महाकाल नाथ के भी मन्दिर होते थे ।

मंदिरों का केवल उल्लेख मात्र होने से उनसे उस समय की 'धारा' की समृद्धता का नहीं पता चल पाता है किन्तु कवि ने जो प्रासाद सरोवर बादि का वर्णन अपनी राज्यानी के वर्णन में किया है उसे उस समय की वास्तविक सम्पन्नता के नाथ-नाथ प्रस्तर कला को उन्नति देली जा सकती है । यद्यपि मणिमय सक्ति ऊँचे-ऊँचे प्रासादों

१-शृंगार० पृष्ठ १६	५- शृंगार० पृष्ठ ७८	६-शृंगार० पृष्ठ ४३	१३-शृंगार० पृष्ठ ७६
२-,, ३,७,१० कथा०	६- ,, ,, ६६ १०- ,, ,, ६१	१४- ,, ,, ७६, ७२	१५- ,, ,, ७९-८६
३-,, प्रथम कथा०	७- ,, ,, ८० ११- ,, ,, ७७	१६- ,, ,, ८३	१७- ,, ,, ८४
४-,, बाठवीं कथा०	८- ,, कठी कथा ० १२- ,, ,, ५३	१८- ,, ,, ८५	१९- ,, ,, ८६

के वर्णन में कवि को अतिशयोक्ति तथा अन्य कवियों को अनुकृति मात्र है किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि राजा भोज साहित्यिक प्रेमो होने के साथ-साथ सुयोग्य शासक थे । वह: उन्होंने आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाकर अपना राज्य-व्यवस्था को भा दृढ़ बनाया था ।

उनके राज्यकाल में नगरों को रक्षा हेतु खेत, जंजा, मणिमण्डलित तथा मण्डलाकार आकार होता था । वह प्रकार चार प्रहोलियों से युक्त होता था । रक्षा के लिए नगरों के चारों ओर परिवेष्टा होता था । सरोवरों का यथेष्ट प्रबन्ध रहता था । वे गहरे, कमल आदि पुष्पों से युक्त, व्यवस्थित जल वाले तथा पक्षियों से भूषित होते थे ।

कवि ने अपना नगरों के यंत्रधारा गृह का विस्तार वर्णन करके भी उसकी समृद्धता एवं कला की उन्नति को दिखाया है । यंत्रधारा गृह के चारों ओर चन्द्रमणियों से अटित भित्तियाँ होती थीं जिन पर छोटे छोटे कुर्चों का प्रतिबिम्ब पड़ा करता था, चिटक को वेदिका के चारों ओर मण्डल मणि होता था जो लोगों को सघन मेखों को प्राप्त कराया करता था, वहाँ पर क्रियाशील मणिमय यन्त्रपुत्रिका होती थी,

चन्द्रमणि सन्निहित जल यंत्रपुत्रिका से फव्वारा निकला करता था उसके निकलते हुए पानी को आवाज मूर्धन जैसी सुनाई पड़ती थी, कहीं-कहीं पर कृत्रिम कमिलिनी भी होती थी जिनके बीच में मणिमय मरालिकारं होती थीं जिनके मुख के अन्दर धारा यंत्र का जल जाता था, कहीं पर हाथ को ऊपर उठाये हुए मणि-यंत्र पुत्रिका नृत्य करती हुई-सी प्रतीत होती थी, कहीं पर विकसित कणिका के अन्दर काली मणियों से निर्मित मधुकर होते थे और उसके अन्दर से निकली हुई पानी को ध्वनि से ऐसा लगता था कि पानी मधुकर मियुन गा रहे हों, कहीं पर फल वाली मन्दीरिका के नेत्रों से, कहीं पर नीचा मुख किस हुए मयूरी के मुख से, कहीं पर मणिमय यंत्र पुत्रिका के कक्षा:स्थल से, कहीं पर मणिमय स्त्रियों के नाखुनों से, कहीं पर अन्दर के मुख से, कहीं पर स्तम्भों एवं स्तम्भ-शीर्षकों से पानी गिरता था ।

उस यंत्रधारा गृह के आंगन में वायिका और पुष्करिणी (बावलियाँ) भी होती थीं जहाँ पर महलियाँ उत्तराती रहती थीं, उसके समीप कृत्रिम झुले होते थे जो ऐसे प्रतीत होते थे मानो महलियाँ उन्हें ला रही हों और वे झुले किन्तुव्यविमूढ़ लड़े रह गए हों । कहीं-कहीं पर यांत्रिक कमठ और कहीं-कहीं पर यांत्रिक मकर भी होते थे ।

इस प्रकार यंत्रधारागृह लोगों को कृत्रिम रूप के होने पर भी प्राकृतिक सौन्दर्य की सी अनुभूति कराया करता था ।

यहाँ पर वर्णित प्रस्तर कला से स्पष्ट है कि इनके कलाकार इतना सजीव रूप में सामने रह देते थे कि कृत्रिमता और प्राकृत रूप में अन्तर करना दुष्कर हो जाता करता था ।

आश्चर्य की बात यह है कि इस काव्य के रचयिता राजा के होने पर भी उसमें राजनीतिक स्थिति का चित्रण अधिक नहीं हुआ है । यह अवश्य है कि काव्य के अन्तर्गत



आयो डोंटा-डोंटा कान्तियाँ में कुछ नगरों के नाम मिल जाते हैं । जैसे कुण्डिनपुर, तामलिशा, विदिशा, हरिप्राम, उज्जनी, अहिच्छन्, मगध, पुण्ड्रवर्ष, भास्वामिदेवपुर, उरापुर, बोट, वल्लभुत्स, कला, कौशिकी, गामाँली, काव्यकुब्ज, हरितनागपुर, कावा, ना-न्योट, पूर्णपत्र, कुन्ड, लोट एवं हूमा जाति वा उल्लेख है । इस प्रकार नायिका के ली-वर्णन में उद्यान, प्राग्ज्योतिष्य, क्षिति तथा कुसुरी के विद्व स्वस्थान नेपाल भूमि जहाँ कुछ भूमि और शीत में स्थित जल, रत्नजल और सुवर्ण जल का भी उल्लेख है ।

कुछ नगरों के राजाओं के नाम तथा कुछ राजाओं के गुणों की चर्चा हुई है ।

तामलिशा का राजा प्रताप मुकुट बताया गया है । उज्जनी के राजा का नाम विक्रमसिंह काहर्षव, विद्वमार्क और विद्वमादित्य आया है । ये नाम सम्भवतः एक ही राजा के प्रतीक होते हैं । अहिच्छन् नगर का राजा वज्रमुकुट तथा उरापुर का राजा अमरसिंह कहा जाता गया है । कवि ने अमरसिंह के अधिकार क्षेत्र के विषय में थोड़ा-सा बताया है जिससे ज्ञात होता है कि उसने २४ सामन्तों पर, १२ मण्डलेश्वर पर, ३६ राजकुलों पर, ७२ वन के राजाओं पर, २४ कावट पर, २१ कौण्ड पर और ३६ बैलाकुलों पर अधिकार कर लिया था । हरितनागपुर का राजा फारक तथा भास्वामिदेवपुर का राजा वज्रमुकुट बताया गया है ।

इस प्रकार केवल उरापुर के राजा के वर्णन से ही उस समा की राजनीतिक स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ जाता है । उस राजा के वर्णन से पता चलता है कि भोज के समय कुछ चद्रवर्ती राजा होते थे जो राज्य के राजा हुआ करते थे । राज्य मण्डलों में विभाजित होता था जिसके शासक मण्डलेश्वर हुआ करते थे । कुछ पालक होते थे । काव्य में जाया हुआ पूर्ण-पत्रक ~~काव्य~~ पालक हा था ।

उज्जनी के राजा विद्वमार्क के वर्णन से राजाओं के कार्यों के विषय में कुछ ज्ञान उपलब्ध होता है । उसमें बताया गया है कि राजाओं का समय शस्त्राभ्यास, गजाशुभ, अश्वारोहण, सुदाकलोक, शस्त्रों में विशेषकर धनुष का अभ्यास करने के साथ-साथ उद्यान-बिहार, मृगया जल-झीड़ा, प्रणयिनी-समागम, मित्र-गोष्ठी तथा नाट्य-प्रदर्शन में व्यतीत हुआ करता था । इस काव्य का प्रारम्भिक अंश भोज तथा सामन्तों की साहित्यिक प्रियता का परिचय देता है ।

कुछ नगरों के वर्णनों से भौगोलिक स्थिति का भी थोड़ा सा ज्ञान हो जाता है । जैसे उज्जनी के विषय में कवि ने उसे अवन्ति शहर बताया है । अवन्ति-शहर श्रीमत्पुण्ड्रवर्षी नाम नगरी ।

१-शृंगारोपृष्ठ १६	१-शृंगारोपृष्ठ ५६	१५-शृंगारोपृष्ठ ७८	२२-शृंगारोपृष्ठ १३
२- " " २६	६- " " ५७	१६- " " ८१	२३- " " २८
३- " " २८	१०- " " ६६	१७- " " ५४	२४- " " ७६
४- " " ३०	११- " " ७४	१८- " " ६३	२५- " " २५
५- " " ३२, ३५, ४२, ८५	१२- " " ८२	१९- " " ६२	२६- " " ६३
६- " " ४१	१३- " " २८	२०- " " ७४	२७- " " ३६
७- " " ५४	(१४- " " ७३	२१- " " ७५	२८- " " ८४



पांचाल में कान्यकुब्ज की स्थिति बताई गई है। हस्तिनापुर की गंगातट पर बना हुआ ग्राम बताया गया है।

आठवीं कहानी में बताया है कि इस कहानी का नायक रत्नका पुण्ड्रवर्धन में था उसने मान्यसिंह के राजा विदितो, फिर भास्करवामिदेवपुर फिर पूर्णपानक और अन्त में मान्यसिंह पहुँचा।

इस प्रकार इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने अपने काव्य में समाज के निम्नस्तर का चित्रण अधिक किया है जिससे सामाजिक स्थिति का निरूपण अधिक हुआ है। राजा की कृति होने के कारण काव्य में नगरों के नाम काल्पनिक नहीं हैं। उनके नगरों एवं नहरों के राजाओं की स्थिति में बहुत नहीं किन्तु योग-सा प्रकाश पड़ जाता है तथा धारा नगरी की भव्यता से उस समय का जादिक सम्पन्नता एवं प्रगति का उन्नति के विषय में भी वाक्य अवगत हो जाता है।

### तिलकमंजरी --

पांचाल के काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि को रचना पर तात्कालिक स्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ा है। अतः उनके काव्य से उस समय के लोगों का धारणा, रहन-सहन, सम्पन्नता, राजनीतिक व्यवस्था आदि के विषय में परिकल्पित मात्रा में मिल जाता है।

अष्टाध्यायी नगरी के वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था थी। लोग सुशील विद्वान, कला-प्रेमी, सर्वभाषा-सर्वज्ञ, न्याय-विशेषज्ञ, एवं धार्मिक हुआ करते थे। ज्ञानार्थी की जादर को दृष्टि से देखते थे। एक स्थल पर कवि ने उस नगरी की उष्ण 'सक्राण्टीकेव द्विजसमाजेः' कह कर जलौक से दी है। इन लोगों को किसी प्रकार का भय नहीं रहता था। क्योंकि न वे राजमार्गों का उल्लंघन करते थे और न दण्ड के पागो करते थे। उनका जीवन शान्तिमय था। बोरियाँ आदि नहीं हुआ करती थीं, न मृत्यु का भय रहता था, समाज में व्यभिचार प्रायः नहीं के बराबर था। बड़ा पीड़ा, गलह-रोग, पैर-विच्छेद आदि कष्टों का पूर्णतः अभाव था। समाज में सुखी, धिट अवश्य थे जो स्त्रियों को देखकर गाने या कुछ पढ़ने लाते थे।

दक्षिण सागर में स्थित अपरधनकनक संख्या नामक नगरी के निवासियों की भी धार्मिक प्रवृत्ति वर्णित हुई है। उन्हें सर्वदेश-भाषा-भाषी, व्यास, दानों, सत्यवचनो, सदाचारी, शास्त्रप्रिय और विवेकी बताया गया है।

इन दोनों नगरों के निवासियों की विद्वान्ता का वर्णन कवि ने जो किया है उससे उस समय समाज में विद्वानों एवं शास्त्रों का क्या महत्व था, स्पष्ट हो जाता है। केवल प्रजा की धार्मिक प्रवृत्ति ही नहीं हुआ करती थी अपितु राजा भी हुआ करते थे।

राजकुलों में भी कुलदेवताओं का पूजन, मुनिजन की वाराणा, गुरुश्रीकृष्ण का ध्यान, पूजन, अनाथ, दीनों के कष्टों का निवारण, मन्त्रों का उच्चारण, पौराणिक कथाओं का

- १- आर्यो पृष्ठ ७८  
२- " " कथा ०  
३- तिलकमंजरी पृष्ठ १०७-११

- ४- तिलकमंजरी पृष्ठ ११  
५- " " " ८  
६- " " " २६०

रथन, सम्बन्धियों एवं ब्राह्मणों के घर में फल-फूलों का भेजना, उन्हें दान देना, पुरोहितों का स्वर्णिम कलश तथा हरित्केश की लेकर शान्ति-जल को छिटाकर ~~रथन~~ रथजल को पवित्र करना आदि कार्य होते थे ।

लोग दानप्रिय हुआ करते थे । ये कड़वाँ रहित गायों का दान ब्राह्मणों को करते थे, पंक्ती आदि करते थे तथा बलिघाटों में देवताओं के प्रसन्न होने को कल्पना करते थे । यज्ञ भी हुआ करते थे । काम को पूर्ति के लिए लोग देव-देवताओं को शरण में जा कर उनकी आराधना से उन्हें प्रसन्न करने के लिए कठोर तप भी करते थे । राजा मेघवाहन ने पुत्र प्राप्ति के लिए राज्यको को उपासना की था जिसके दह अपना शिर तक काटने के लिए तैयार हो गया था । हरिवाहन ने विशाखर राज्य को प्राप्ति के लिए अरण्य में जाकर धीरे तपस्या की थी ।

फल के लच्छुन को सर्वप्रथम आराध्य देव के लेक को प्रसन्न करना आवश्यक समझा जाता था । मेघवाहन को वैताल की जना शिर काट कर प्रसन्न करना पड़ा था ।

काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तपस्याएं कई प्रकार से की जाती हैं थीं । कुछ वाचनाओं से रहित होकर कन्द मूल फल साकर पंक्तप करते थे, कुछ गठे तक्यानों में रह कर, कुछ अयोमुख होकर घुमपान करके तथा कुछ सूर्य को अपलक देकर कठोर तप करते थे । उनके कर्त्यों में मृगहाल होता था । जैनी भी जवानाला जादि लेकर कठोर तप करते थे ।

तपस्याएं अरण्यों में तो हुआ ही करती थीं साथ ही गृहस्थ जीवन में भी तप हो सकते थे । मेघवाहन ने प्रासाद में रहकर ही तप किया था ।

मूर्तियों का भी पूजन हुआ करता था । मेघवाहन श्री की मूर्ति स्थापना करके उसको पूजा किया करता था । मूर्तियों के लिये मन्दिरों का निर्माण भी होता था । पुराने मन्दिरों का उद्धार किया जाता था । मंदिर दुर्गा, शिव और राफलकी साथ साथ जैनियों के भी होते थे । कवि ने इन मन्दिरों के वर्णन में विशेष उल्लास दिलाया है । इन मन्दिरों में जिनों की मूर्तियां होती थीं । इन मन्दिरों में निरन्तर दीपक जलता था, इडाकाण्ड से उनके तौरण तथा पत्तुर्वा से बन्दनवार क्वाये जाते थे । स्थान-स्थान पर छाछि और चावल के स्तूप होते थे ।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि उस समय शाक्त, शैव तथा जैनी लोग थे और एक वर्ग वैष्णव धर्म को भी मानने वाला था ।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त कामदेव के भी मन्दिर होते थे । ये मन्दिर युवतियों के उपास्य स्थल हुआ करते थे ।

शिवों मन्दिरों में जाकर देवताओं को दण्डवत् करती थीं । उनकी पूजा शिर डक्कर की जाती थी । मन्दिरों में बलि भी होती थीं किन्तु मनुष्य की हत्या करना पाप समझा जाता था । क्योंकि उन लोगों का विश्वास था कि ऐसे व्यक्ति को कई जन्मों तक कष्ट उठाने पड़ते हैं । आत्महत्या करना भी पाप समझा जाता था ।

पुत्रहीन व्यक्ति को 'पुनाश्न' नरक के कष्ट उठाने पड़ते हैं । देवा लोगों का विश्वास था ।

१- तिलक०पु० ४३	७- तिलक०पु० २३५-३६	१३- तिलक०पु० ३०४	१८- तिलक०पु० ३१५
२- " ४०	८- " ३६६, ३४५	१४- " ३०५	१९- " ३१३
३- " ११	९- " ३६	१५- " १२	२०- " २८८
४- " ५२	१०- " २३५	१६- " ३०५	२१- " ३०९
५- " ३६	११- " २३५	१७- " २०५	२२- " २१
६- " ४६	१२- " ३४		

• इन लोगों ने विशेष वस्त्रों के गन्धर्व में धारणा बना रखी थी कि अमुक वस्त्र से व्यक्ति शाप आदि से मुक्त हो सकता है। 'निशोथ' नामक वस्त्र इसी प्रकार का था।  
• लोग मंत्र-तंत्र में भी विश्वास करते थे और उसे लोगों के मुक्त करने का साधन मानते थे। पुनर्जन्म में भी उनका विश्वास था।

विवाह-यौनि लोगों को दृष्टि में स्वर्ग सद्गुरु समझा जाता था। इन लोगों का उद्देश्य एक प्रकार से मुक्ति प्राप्त कराना होता था।

वेताल न पतंग, न पशु न मानव ही समझे जाते थे। ये राक्षस कहलाते थे जिनका आहार मांस आदि होता था। बाधुषण हड्डी आदि के होते थे।

लोग शकुन शफ़लकुन पर भी विचार करते थे। जंगों के पक्षियों के अतिरिक्त १२ सूर्यों का एक साथ उदय होना शफ़लकुन माना जाता था क्योंकि वह विनाश का सूचक होता था। स्वप्न में परिजात वृक्ष का देहना द्रुम माना जाता था। समरसेतु ने इस स्वप्न से हरिवाहन से मिलने की आज्ञा बांध ली थी। लड़ाई में जाने के पहले द्रुम मुहूर्त निकलवाया जाता था, समुद्र की पूजा की जाती थी। मंगल विधान के लिए दधि, कुसुम, दुर्वाशुर वस्तुएं द्रुम समझी जाती थीं। सप्तशतक के प्रवाल से आच्छादित घड़े का सामने दिखाया देना भी द्रुम समझा जाता था।

समाज में अन्तर्जातीय विवाह मान्य न थे किन्तु राजा की अनुमति से यह विवाह हो सकता था। तारक और त्रियम्बिका का विवाह इसी प्रकार का था। गन्धर्व विवाह राजाओं के बीच था। कुसुमेश्वर और गन्धर्विका का विवाह इसी प्रकार का था। राज-कन्याओं के विवाह में स्वयंवर होते थे।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विवाह आजकल की भांति उस समय भी था। द्रुम लग्न में विवाह होता था, निर्मंत्रण जाता नगर की शोभित किया जाता तथा भोज आदि होते थे।

राजाओं के यहाँ पुत्र जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से होता था। लोग प्रसूति-गृह में हाथ-पैर बाँधकर जन्मदर घुसते थे, स्थान-स्थान पर स्वस्तिक बनाये जाते थे, द्वार पर जामु फले छटकाये जाते थे, पच्ची होती थी, फल के किनारे पर अम्मिंक्रित रत्नाभूति की रत्ना बाँध दी जाती थी। दसवें दिन नामकरण संस्कार होता था, नगर के सभी देवताओं की पूजा होती थी, गुरु का विशेष सत्कार होता था, ब्राह्मणों को भूषणार्थ से अर्कृत नाय बहड़े के साथ दान में दी जाती थी, पुरोहित अन्नप्राशन करता था तथा समग्र मंगलौपकरण के साथ बालक को बल्ला दिखाया जाता था। छठे वर्ष विद्या का आरम्भ कराया जाता था। राजकुमारों की शिक्षा की व्यवस्था राजकुल के जन्मदर ही होती थी। राधा के घर में पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में प्रत्येक दुकान, घर चौराहे पर तरह-तरह के चीनांशुक की ध्वजारें लहराती थीं, सुरही रव तथा नृत्य

१- तिलक०पु० ३७६	५- तिलक०पु० ३५०-५१६	९- तिलक०पु० २१३२	१३- तिलक०पु० २४२
२- " २३३	६- " ३५	१०- " २२५	१४- " ४२५
३- " ४०५-१०	७- " २०८	११- " २२६	१५- " ०३३-१५
४- " २६	८- " ३६६	१२- " २४३	

हीना था, ज्ञानिष्ठ प्रवर्गों का शिक्षण और पुष्प वर्गों को भी था।  
 जो महोत्सव है अतिरिक्त काल में जर्ज गणोत्सव मनाया जाता था। क्रोड्यों  
 के दिन कामदेव को यात्रा करा हुआ था वे लीला थी। विशेष उत्सवों में शिव्या  
 परी में मेहाउर लाती थी।<sup>१४</sup>

उस समय यह प्रथा थी कि दौंगहर में दुकानें बन्द हो जाती थीं, बूढ़ स्तुति करते<sup>१५</sup>  
 और विद्या के केन्द्रों में व्याख्यान मण्डलियां बैठ जाती थीं। लोग दौंगहर में जो ज्ञान  
 करते थे। ज्ञान के समय तैल, जांबला, कंभा, तिल और पुष्प को साथ रखते थे। मिठुवर्गों  
 के निकलने का समय जहाँ होता था। ताने के फल्ले कीवर्गों को जो पोषण दिया जाता  
 था। ताने के फल्ले का पुष्पान होता था, साथ ही कपूर या कस्तुरी जैसे ज्ञानिष्ठ  
 प्रवर्गों से ज्ञानिष्ठ किया जाता था। राजा अपने दौंगहर का समय काव्य के गुण-  
 दौंगरी पर विचार करके जाया कलाओं से मनोरंजन करके व्यतीत किया करते थे।<sup>१६</sup>

उस समय समाज में पर्दा था। शिव्या पूंघट डाल कर बाहर निकलती थीं।  
 शिव्या अपने शरीर को ज्ञानिष्ठ प्रवर्गों से ज्ञानिष्ठ रखती थीं। मनुष्य पर काज-  
 गुण का तिलक, तथा झरे में पुष्प गूँधे रखती थीं। कर्माभुषण मौतियों के तथा लका के  
 फल्लों के होते थे। मटलाहा को होते थे।<sup>१७</sup> पुष्प को चिर पर फूँठ लाते और  
 फाड़ी बाँधते थे।<sup>१८</sup>

शिव्या मनोरंजन का साधन भी समझी जाती थीं। विभिन्न वीथी के वहाँ उल्ले  
 मनोरंजनाथे कन्यार्ये जाया करती थीं।<sup>१९</sup>

वैसे राजाजी एवं राजकुमारों के मनोरंजन चिक्रम, प्रशनीर प्रहेलिका जादि  
 चित्र अंकारों से, हंगारिक क्यार्यों एवं सुश्रित्यों के जुने से होता था।<sup>२०</sup> जया-झाड़ा  
 भी राजाजी के मनोरंजन का साधन बताया गया है।<sup>२१</sup>

उसके अतिरिक्त मेठे-कमाहे में भी बैठ हुआ करते थे। वहाँ पर जाकर लोग बुद्धि  
 हाथी-योड़ के कमाहे पैदा करते थे। चैत्र के क्रोड्यो यात्रा के प्रसंग में कवि ने इस बैठ  
 का उल्लेख किया है -- बुद्धिसुरंगवारणश्रीहाप्रधानेश प्रेताणकेजु।<sup>२२</sup> उसी समय पिटी  
 का मनोरंजन करने के लिए वैश्यावर्गों को रास मण्डलियां भी जा जाया करती थीं --  
 'पिटलीकलोक सुवास वैश्यारासमणलीजु'<sup>२३</sup>

क्यों की श्रीजाजी में गुड़िया, गुड़िया-विवाह, तथा कन्दुक श्रीजा का उल्लेख  
 होने के कारण सम्भवतः उस समय यही बैठ प्रचलित थे-- ऐसा ज्ञात होता है।

राजाजी के मनोरंजन के साधनों से जाना जा सकता है कि उस समय विद्या का  
 किता प्रचार था। यहाँ तक कि शिव्या भी विदुषी हुआ करती थीं -- 'उर्वकला-  
 शास्त्र इत्येन उर्वनाशाविदा उर्वपौराणिकारव्यायनप्रवीणैः स्त्रीजनैः विनाभिः  
 कथाभिर्विनीयानादिनाभ्यतिवाहयति'।<sup>२४</sup>

१- तिलक०पू०	२६३	७- तिलक०पू०	२६९	१५- तिलक०पू०	२०८-२०९
२- " "	२६३	८- " "	२६९	१६- " "	२१०
३- " "	२६८	१०- " "	२७३	१७- " "	२२३
४- " "	२७०	११- " "	२८३	१८- " "	२२३
५- " "	२७०-२८	१२- " "	२८८	१९- " "	२६८
६- " "	२७५	१३- " "	२९५	२०- " "	

स्त्री वीर पुरुषों की शिक्षा भिन्न थी । राजकुमारियों को राज्यकर्मकोपयुक्त शिक्षा दी जाती थी । उन्हें उपनिषद्, नादय, वेद, गीत, वादन तथा नृत्य आदि कलाएं सिखाई जाती थी<sup>११</sup> ।

उस समय पत्र आदि गैर से लिखे जाते थे । कागज के स्थान पर ताड़ी वृक्ष के पत्ते होते थे<sup>१२</sup> । काव्य में ताड़पत्र पर कणोदि लिपि में लिखी पुस्तकों का उल्लेख आया है । सम्भवतः उस समय शब्दों के ऊपर लाइन लींजने की प्रथा न थी -- 'निरालम्बामिरि-  
वाम्बरतलोत्कीर्णामिरिय... वर्षापक्षि रुदमायितां प्रशस्तिमेवाय ।'

चित्रकला का विकास उज्जकोटि में था । चित्र चित्र न रहकर जीव प्रतीत हुआ करते थे<sup>१३</sup> । राजमहलों में भी इस कला को प्रोत्साहन मिला था<sup>१४</sup> । नृत्य कला भी अपनी चरम सीमा पर थी । ये नृत्य उज्जकोटि के हुआ करते थे । नर्तकी तथा पुरुष शैल्य कहलाते थे । नादय शालारं हुआ करती थी<sup>१५</sup> । देवमूर्तियों से उस समय की मूर्ति-कला का भी परिचय होता है ।

गीत तथा वाद्य-वादन को भी राजाओं की ओर से प्रोत्साहन मिला था । वाणन राजाओं का प्रिय वादन था<sup>१६</sup> । वाद्यों को सुरक्षित रखने के लिए 'गलाफ' भी थे -- मरतपुरेनिजुलकावृष्टप्रकृष्टवैणवोड्रो<sup>१७</sup> ।

बाजों में शंख, मत्सरी, मुख, नगाड़ा, मृदंग, तुरही तथा अन्य कुछ बाजे थे । 'जातोष' भी एक प्रकार का बाजा उस समय था ।<sup>१८</sup>

विद्या के प्रकार से समाज सम्य था । पान आदि को देने के लिए एक विशेष पात्र होता था जिसमें रखकर दिया जाता था ।<sup>१९</sup>

नगर में फाँवारे<sup>२०</sup> वीर वापियों के<sup>२१</sup> समुचित प्रबन्ध की ओर ध्यान रखा जाता था । शस्त्र-विषयक उन्नति उस समय परिलक्षित नहीं होती है । युद्ध में बाणों का प्रयोग होता था, जग्नि से तयै बाण फेंके जाते थे तथा पाषाणों को बर्षा होता था । कुठार आदि से फूली लौड़ी जाती थी । उस समय एक विशेष प्रकार का ढाल होता था जिसमें सात हाथ की लम्बी बाँस की इड़ लायी जाती थी और उसकी एक नोक पर लौह का मुकीला फल रहता था । फल के ऊपर स्तम्भ बढ़ा रहता था । गदा-प्रहार होता था । इसके अतिरिक्त कील के सचित मयंकर वक्र युद्ध में लौड़े जाते थे । 'शक्ति' नामक अस्त्र विशेष का लोण प्रयोग करते थे । शरीर रक्षा के लिए अपने पास कवच, ढाल तथा तलवार रखते थे ।

सामुद्रिक युद्ध के लिए जाते समय नाव में (संभवतः जहाज होता होगा) खाने-पीने ईधन आदि सभी का प्रबन्ध रखा जाता था ।<sup>२२</sup>

इस वाक्य में दो प्रकार के पौं का भी उल्लेख है -- रागा करने वाले (अपुत्रक) वीर कारीगर(कास्कार) ।

१- तिलक० पृ० २२०	६- तिलक० पृष्ठ २८	११-तिलक०पृ० २६६	१६-तिलक०पृ० २३१
२- " २४६	७- " २८	१२- " २४७	१७- " २२१
३- " २३४	८- " ३७२	१३- " ३६३	
४- " २९६	९- " ४९३ ३७२	१४- " २७६	
५- " २६६	१०- " ७०	१५- " २९७	



इस काव्य में चूंकि कथावस्तु काल्पनिक है अतः काव्य में जाए राजाजों एवं उनके नगरों की सत्यता के विषय में कुछ भी प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता है। कवि ने काव्य के प्रारम्भ में अपने वाक्यदाता की वंशावली वर्णित की है जिससे ऐतिहासिकता की मौजूदगी के विषय में थोड़ा-सा मालूम हो जाता है। इस काव्य के अनुसार उसकी वंशावली का क्रम--परमार-- श्री वीरसिंह--तीरकच्छप - सिन्दुराज-वाहूपति राज मुंज तथा श्री मौज है।

काव्य में जयोध्या का नरेश मेघवाहन, गिंहलद्वीप की रंगशाला नगरी का राजा चन्द्रकेतु तथा कांची का राजा कुलुमशैलर बताया गया है। ये राजा चाहे काल्पनिक हों किन्तु उनके राज्य काल्पनिक नहीं हैं, वे इतिहास में मिलते हैं। इनकी शासन-व्यवस्था से उस समय की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। कवि ने राजा मेघवाहन के गुणों को बताकर एक योग्य शासक के गुणों की ओर संकेत किया है। प्रजा में हर प्रकार से शान्ति रखना राजा का कर्तव्य समझा जाता था, स्वयं राजा अपनी नगरी का यदा कदा निरीक्षण करता था, कुछ चर हुआ करते थे जो राजा को शासन की गति की सूचना दिया करते थे। राजा के आराम का समय प्रायः दोपहर का ही हुआ करता था। उस समय वह खाना खाने के पश्चात् 'दण्डलम्बिका' में बैठकर विनोद करता था, वहीं पर दूतों की बातचीत को सुनता था तथा उनके द्वारा लाई गयीं चीजों को स्वीकार करता था।

योग्य शासक मंत्रि परिषद् भी रखता था, जिसके सदस्य प्रधानमंत्री, जमात्य बृह, मूर्धाभिषिक्त नृपति, महासामन्त रत्नाध्यक्ष, महादण्डनायक, न्यायाध्यक्ष जो वाचापाटलि कहलाता था, महासचिव, नर्मसचिव तथा कौशाध्यक्ष हुआ करते थे।

इनमें से कुछ मंत्री विशाखी के अधिपति भी होते थे। काव्य में वज्रायुध दक्षिण दिशा का सेनापति था। इसे महादण्डाधिपति भी कहा गया है। उत्तर दिशा का दण्डनायक नीतिकर्ता बताया गया है जिसने हूणपति को हराया था।

इन मंत्रियों की पुरी स्वतन्त्रता रहती थी। ये बिना राजा से पूछे युद्ध आदि फैसले दिया करते थे और विजय होने के पश्चात् उसकी सूचना राजा के पास भेज दिया करते थे।

काव्य में कई विधाधर राज्यों का उल्लेख आया है। जैसे विजयार्थगिरि शिखर पर विजयान गगनबल्लभ नामक नगर जहाँ का राजा विक्रमबाहु था, वैताद्वयगिरि के दक्षिण में विजयान रघुपुर कञ्जाल जिसका राजा कञ्जसेन था, पंचशैल द्वीप जिसका राजा विश्वित्र-वीर्य था तथा अन्य कई राज्य आदि हैं। इनकी ऐतिहासिकता में सन्देह किया जा सकता है किन्तु उन राज्यों के अस्तित्व से ही उस समय मंत्रियों में नर्मसचिव तथा रत्न कौशाध्यक्ष भी होता था -- ऐसा ज्ञात होता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि उस समय मंत्रियों में अंगरक्षा के अधिकार में नियुक्त हुआ करती थीं -- अंगरक्षाधिकारनियुक्ता-भिरंगनाभि राक्षन्चारिणा ।<sup>११३</sup>

इन राज्यों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय राजा विधाधर तथा शबर जाति के भी हुआ करते थे। विधाधर विद्वेशी समझे जाते थे।<sup>११४</sup> पंचशैल द्वीप का राजा

१-	तिलक०पृ०	१३-२०
२-	॥	६६-७१
३-	॥	६२
४-	॥	६३
५-	॥	७१

६-	तिलक०पृ०	१०३
७-	॥	१८४
८-	॥	२३२
९-	॥	८२, १०१, ३६५
१०-	॥	८१

११-	तिलक०पृ०	१८२
१२-	॥	८१-१००
१३-	॥	३४९
१४-	॥	१६२, ३५८

विचित्रवीर्य शबर जाति का राजा बताया गया है<sup>१</sup>। उसके अधीन राज्यों में कुशस्थल के राजा प्रतापशील, मगधेश्वर सुरसेतु, पौराष्ट्र मण्डल के महाबल तथा कलिंग, अंग, कां, कौशल, कुल्लु आदि के राजा बताए गए हैं,<sup>२</sup> क्योंकि उनकी कन्याएँ उनका विनोद करने के लिए आयी थीं। इन राज्यों के नाम प्रसिद्ध हैं किन्तु उनके राजाओं के नाम के विषय में सन्देहात्मक दृष्टि ही रखनी पड़ती है।

कलिंग राज्य का उत्तरेत अगोच्य नरेश के राज्यक्षेत्र के वर्णन में भी मिलता है जिसके राजा का तो नाम नहीं किन्तु उसके पुत्र कमलगुप्त का उल्लेख आया है किन्तु इसका भी कोई राजनीतिक स्थिति के चित्रण की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है।

उस समय सेनाओं में अश्व, गज, पदाति, सेना तो थी ही साथ ही स्त्री सेना भी हुब करता थी जो कवच धारण किया करती थी। सेना के सामान ऊंट आदि पर चला करते थे और फल भी साथ चलते थे<sup>३</sup>।

युद्ध की आशंका होने पर सबसे पहले नगरी की रक्षा करना राजा अपना कर्तव्य समझता था। दुर्ग की सर्वप्रथम व्यवस्था की जाती थी, विपत्तिकाल के लिए उसमें प्रचुर मात्रा में भोज्य पदार्थ रक्खा जाता था, साईं पर ध्यान दिया जाता था, दुर्ग की हर प्रकार से अताध्य बनाया जाता था, हाथ से कंकने के लिए पत्थर एकत्रित किए जाते थे तथा प्रतीली छ की रक्षा के लिए बाघ पुरुषार्थी को नियुक्त किया जाता था।

युद्ध के समय योद्धा अपनी रक्षा के हेतु टोप रक्खा करते थे -- 'शिरस्थितफरक-फारकप्राथम्यान....'।<sup>४</sup> उनके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल रखती तथा बलाःस्थल पर कवच रहता।

युद्ध के शास्त्रों में गदा, शक्ति, चक्र, प्रास, बल्ल, धनुष, कुन्त, डोर, पादुका आदि होते थे।

युद्ध के समय बाजों में सुरेखा, काबल, पट्टे तथा नगीड़े बना करते थे। पिंजड़ों में शेर भी जाया करते थे<sup>५</sup>। उस समय गांव के गांव जला दिए जाया करते थे, प्रतीली तौड़ दी जाती थी। किन्तु योद्धा विश्वासघात नहीं करते थे। केंतनावस्था में लौट जाने पर अरसेतु ने सामने लड़े निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार नहीं किया था<sup>६</sup>।

युद्ध में विभिन्न देश के राजा अपना विशेष चिह्न रखकर चलते थे<sup>७</sup>।

युद्ध की समाप्ति पर संग्राम में मरे योद्धाओं को तिलोदक सहित निवापाजलि दी जाती थी, पायलों का क्यासाध्य औषधियाँ से उपचार होता था। शत्रु का भी उपचार होता था<sup>८</sup>। युद्ध के उपरान्त योद्धा शराब भी पीते थे<sup>९</sup>।

१- तिलक०पू०	२६६	६- तिलक०पू०	८३	११- तिलक०पू०	१३३	१६- तिलक०पू०	८४
२-	२६७	७-	८७	१२-	३७०	१७-	९६
३-	३६२	८-	८८	१३-	८३	१८-	१२६
४-	११८	९-	८५	१४-	८४	१९-	९७
५-	८२-८३	१०-	१२४	१५-	८६	२०-	८४

मुद्र-शान्ति, सन्धि-प्रस्ताव से हुआ करता था । इस सन्धि में राजा अपना कन्या तक को दे दिया करता था । कुजुन शेर ने यही करने की सोचा था । उसके अतिरिक्त अपने राज्य का कुछ भाग दे देने से, गजादि की सम्पत्ति देने से या पण-बन्धन से भी हो जाता करता था ।<sup>१२</sup>

मुद्र यात्रा में राजा हावनियां डाला करते थे । जहाँ आवश्यकता पड़ती तन्त्रु जादि गाड़ बंधा उलाड़ लिया करते थे ।

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय दण्ड- व्यवस्था कठोर थी । हाथ-पैर का काटना, देश-निष्कासन, गदह पर चढ़ाना जादि राजा के हम थे ।

राज्यक्षेत्रों में कंबुकी, किरात, कुब्ज, मुक, तथा वार्मन और कन्यान्तःपुर में किरात, वक्षवक और कंबुकी होते थे ।

इस काव्य में कुछ नगरों तथा द्वीपों की भौगोलिक स्थिति का भी उल्लेख हुआ है । जैसे क्यौध्या के दक्षिण में कम्पा, कांची, द्वीपों में सिंहल द्वीप, नन्दीश्वर द्वीप, अर्द्ध-द्वीप और पंचशैल द्वीप तथा पर्वतों में रत्नेशूट तथा सुवेल पर्वत का उल्लेख मिलता है । कांची में अपरधनकनकसंबया नगरी, सिंहलद्वीप में रंगशाला और नन्दीश्वर द्वीप में रतिविहाला नामक नगरी बताई गई है ।

क्यौध्या के उत्तर में वैतादय पर्वत बताया गया है<sup>१४</sup> । क्यौध्या से उस ओर जाते समय बहुत से जंगल पड़ते थे तत्पश्चात् उसके पश्चिम में एक भूंग चौटी थी वहाँ पर अदृष्ट पार सरोवर था<sup>१५</sup> । उस पर्वत के दक्षिण में रत्नेशूट चक्रवाल<sup>१६</sup> तथा उत्तर-दक्षिण में गगनबल्लभ नामक नगर का होना बताया गया है ।

लेकिन इन नगरों की वास्तविकता का पता न चलने के कारण इन भौगोलिक स्थिति का भी कोई विश्लेषण मूल्य नहीं रह जाता है ।

नगरी जादि के वर्णन से कवि के समय की मजबूतता का परिचय मिलता है । कवि का समय मीरा का था उस समय आर्थिक व्यवस्था उच्च थी । उसी के अनुरूप उसने क्यौध्या का वर्णन किया है । उसकी मजबूतता के विषय में बताते हुए कहा है कि वह विहाल वप्र वाले प्राकारों से वैश्वित थी, वहाँ उतरने में सुविधा जनक सीढ़ियाँ से युक्त बापियां थीं, सागर की विडम्बना करने वाली लाहवां थीं, चारों ओर गाँपुरों पर ध्वजारं छहराया करती थीं, देवमन्दिर श्वेत होते थे, उनके शिखर पर स्वर्णम कलाश की जामा शेषनाग का उच्च उपहास किया करती थीं । सिंहाई के लिए पानी निकालने के यन्त्र थे, विविध मणियाँ की कान्ति से दिन रात का वेद मिटाने वाले प्रासाद थे । इत्यादि ।

राजा जब चलता तो शेरक उसके पीछे हुए, घो, वही से भुरे सोने के घड़े, बन्धन, कैसर, जादि से सुगन्धित पार्श्व एवं बहुमूल्य वस्त्रों को लेकर चलते थे ।<sup>१८</sup> राजा का पर्यक रत्नों से सजित रहता था और उसमें मसनद लगी रहती थी ।<sup>२०</sup>

राजा बंधा उसके प्रासादों में ही खुद की चरम सीमा नहीं थी अर्थात् बाजार के दोनों ओर के मकान भी मजबूत होते थे ।<sup>२१</sup> गगनबुद्धी प्रतापी, ऊँचे-ऊँचे तोरण एवं

- १- तिलकपृ० ३२७, २-३२८, ३-११४, ४- ७६, ५- ३८६, ६- ४२४, ७- ८२, ८-२७, ११४  
९- ,, ४०, ४०६, १०- ~~६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००, १००१, १००२, १००३, १००४, १००५, १००६, १००७, १००८, १००९, १०१०, १०११, १०१२, १०१३, १०१४, १०१५, १०१६, १०१७, १०१८, १०१९, १०२०, १०२१, १०२२, १०२३, १०२४, १०२५, १०२६, १०२७, १०२८, १०२९, १०३०, १०३१, १०३२, १०३३, १०३४, १०३५, १०३६, १०३७, १०३८, १०३९, १०४०, १०४१, १०४२, १०४३, १०४४, १०४५, १०४६, १०४७, १०४८, १०४९, १०५०, १०५१, १०५२, १०५३, १०५४, १०५५, १०५६, १०५७, १०५८, १०५९, १०६०, १०६१, १०६२, १०६३, १०६४, १०६५, १०६६, १०६७, १०६८, १०६९, १०७०, १०७१, १०७२, १०७३, १०७४, १०७५, १०७६, १०७७, १०७८, १०७९, १०८०, १०८१, १०८२, १०८३, १०८४, १०८५, १०८६, १०८७, १०८८, १०८९, १०९०, १०९१, १०९२, १०९३, १०९४, १०९५, १०९६, १०९७, १०९८, १०९९, ११००, ११०१, ११०२, ११०३, ११०४, ११०५, ११०६, ११०७, ११०८, ११०९, १११०, ११११, १११२, १११३, १११४, १११५, १११६, १११७, १११८, १११९, ११२०, ११२१, ११२२, ११२३, ११२४, ११२५, ११२६, ११२७, ११२८, ११२९, ११३०, ११३१, ११३२, ११३३, ११३४, ११३५, ११३६, ११३७, ११३८, ११३९, ११४०, ११४१, ११४२, ११४३, ११४४, ११४५, ११४६, ११४७, ११४८, ११४९, ११५०, ११५१, ११५२, ११५३, ११५४, ११५५, ११५६, ११५७, ११५८, ११५९, ११६०, ११६१, ११६२, ११६३, ११६४, ११६५, ११६६, ११६७, ११६८, ११६९, ११७०, ११७१, ११७२, ११७३, ११७४, ११७५, ११७६, ११७७, ११७८, ११७९, ११८०, ११८१, ११८२, ११८३, ११८४, ११८५, ११८६, ११८७, ११८८, ११८९, ११९०, ११९१, ११९२, ११९३, ११९४, ११९५, ११९६, ११९७, ११९८, ११९९, १२००, १२०१, १२०२, १२०३, १२०४, १२०५, १२०६, १२०७, १२०८, १२०९, १२१०, १२११, १२१२, १२१३, १२१४, १२१५, १२१६, १२१७, १२१८, १२१९, १२२०, १२२१, १२२२, १२२३, १२२४, १२२५, १२२६, १२२७, १२२८, १२२९, १२३०, १२३१, १२३२, १२३३, १२३४, १२३५, १२३६, १२३७, १२३८, १२३९, १२४०, १२४१, १२४२, १२४३, १२४४, १२४५, १२४६, १२४७, १२४८, १२४९, १२५०, १२५१, १२५२, १२५३, १२५४, १२५५, १२५६, १२५७, १२५८, १२५९, १२६०, १२६१, १२६२, १२६३, १२६४, १२६५, १२६६, १२६७, १२६८, १२६९, १२७०, १२७१, १२७२, १२७३, १२७४, १२७५, १२७६, १२७७, १२७८, १२७९, १२८०, १२८१, १२८२, १२८३, १२८४, १२८५, १२८६, १२८७, १२८८, १२८९, १२९०, १२९१, १२९२, १२९३, १२९४, १२९५, १२९६, १२९७, १२९८, १२९९, १३००, १३०१, १३०२, १३०३, १३०४, १३०५, १३०६, १३०७, १३०८, १३०९, १३१०, १३११, १३१२, १३१३, १३१४, १३१५, १३१६, १३१७, १३१८, १३१९, १३२०, १३२१, १३२२, १३२३, १३२४, १३२५, १३२६, १३२७, १३२८, १३२९, १३३०, १३३१, १३३२, १३३३, १३३४, १३३५, १३३६, १३३७, १३३८, १३३९, १३४०, १३४१, १३४२, १३४३, १३४४, १३४५, १३४६, १३४७, १३४८, १३४९, १३५०, १३५१, १३५२, १३५३, १३५४, १३५५, १३५६, १३५७, १३५८, १३५९, १३६०, १३६१, १३६२, १३६३, १३६४, १३६५, १३६६, १३६७, १३६८, १३६९, १३७०, १३७१, १३७२, १३७३, १३७४, १३७५, १३७६, १३७७, १३७८, १३७९, १३८०, १३८१, १३८२, १३८३, १३८४, १३८५, १३८६, १३८७, १३८८, १३८९, १३९०, १३९१, १३९२, १३९३, १३९४, १३९५, १३९६, १३९७, १३९८, १३९९, १४००, १४०१, १४०२, १४०३, १४०४, १४०५, १४०६, १४०७, १४०८, १४०९, १४१०, १४११, १४१२, १४१३, १४१४, १४१५, १४१६, १४१७, १४१८, १४१९, १४२०, १४२१, १४२२, १४२३, १४२४, १४२५, १४२६, १४२७, १४२८, १४२९, १४३०, १४३१, १४३२, १४३३, १४३४, १४३५, १४३६, १४३७, १४३८, १४३९, १४४०, १४४१, १४४२, १४४३, १४४४, १४४५, १४४६, १४४७, १४४८, १४४९, १४५०, १४५१, १४५२, १४५३, १४५४, १४५५, १४५६, १४५७, १४५८, १४५९, १४६०, १४६१, १४६२, १४६३, १४६४, १४६५, १४६६, १४६७, १४६८, १४६९, १४७०, १४७१, १४७२, १४७३, १४७४, १४७५, १४७६, १४७७, १४७८, १४७९, १४८०, १४८१, १४८२, १४८३, १४८४, १४८५, १४८६, १४८७, १४८८, १४८९, १४९०, १४९१, १४९२, १४९३, १४९४, १४९५, १४९६, १४९७, १४९८, १४९९, १५००, १५०१, १५०२, १५०३, १५०४, १५०५, १५०६, १५०७, १५०८, १५०९, १५१०, १५११, १५१२, १५१३, १५१४, १५१५, १५१६, १५१७, १५१८, १५१९, १५२०, १५२१, १५२२, १५२३, १५२४, १५२५, १५२६, १५२७, १५२८, १५२९, १५३०, १५३१, १५३२, १५३३, १५३४, १५३५, १५३६, १५३७, १५३८, १५३९, १५४०, १५४१, १५४२, १५४३, १५४४, १५४५, १५४६, १५४७, १५४८, १५४९, १५५०, १५५१, १५५२, १५५३, १५५४, १५५५, १५५६, १५५७, १५५८, १५५९, १५६०, १५६१, १५६२, १५६३, १५६४, १५६५, १५६६, १५६७, १५६८, १५६९, १५७०, १५७१, १५७२, १५७३, १५७४, १५७५, १५७६, १५७७, १५७८, १५७९, १५८०, १५८१, १५८२, १५८३, १५८४, १५८५, १५८६, १५८७, १५८८, १५८९, १५९०, १५९१, १५९२, १५९३, १५९४, १५९५, १५९६, १५९७, १५९८, १५९९, १६००, १६०१, १६०२, १६०३, १६०४, १६०५, १६०६, १६०७, १६०८, १६०९, १६१०, १६११, १६१२, १६१३, १६१४, १६१५, १६१६, १६१७, १६१८, १६१९, १६२०, १६२१, १६२२, १६२३, १६२४, १६२५, १६२६, १६२७, १६२८, १६२९, १६३०, १६३१, १६३२, १६३३, १६३४, १६३५, १६३६, १६३७, १६३८, १६३९, १६४०, १६४१, १६४२, १६४३, १६४४, १६४५, १६४६, १६४७, १६४८, १६४९, १६५०, १६५१, १६५२, १६५३, १६५४, १६५५, १६५६, १६५७, १६५८, १६५९, १६६०, १६६१, १६६२, १६६३, १६६४, १६६५, १६६६, १६६७, १६६८, १६६९, १६७०, १६७१, १६७२, १६७३, १६७४, १६७५, १६७६, १६७७, १६७८, १६७९, १६८०, १६८१, १६८२, १६८३, १६८४, १६८५, १६८६, १६८७, १६८८, १६८९, १६९०, १६९१, १६९२, १६९३, १६९४, १६९५, १६९६, १६९७, १६९८, १६९९, १७००, १७०१, १७०२, १७०३, १७०४, १७०५, १७०६, १७०७, १७०८, १७०९, १७१०, १७११, १७१२, १७१३, १७१४, १७१५, १७१६, १७१७, १७१८, १७१९, १७२०, १७२१, १७२२, १७२३, १७२४, १७२५, १७२६, १७२७, १७२८, १७२९, १७३०, १७३१, १७३२, १७३३, १७३४, १७३५, १७३६, १७३७, १७३८, १७३९, १७४०, १७४१, १७४२, १७४३, १७४४, १७४५, १७४६, १७४७, १७४८, १७४९, १७५०, १७५१, १७५२, १७५३, १७५४, १७५५, १७५६, १७५७, १७५८, १७५९, १७६०, १७६१, १७६२, १७६३, १७६४, १७६५, १७६६, १७६७, १७६८, १७६९, १७७०, १७७१, १७७२, १७७३, १७७४, १७७५, १७७६, १७७७, १७७८, १७७९, १७८०, १७८१, १७८२, १७८~~



चन्दन मालाओं से सुशोभित आंकनके वेदी होती थी ।

सिंहल द्वीप लोगों की दृष्टि में रत्नों की सान सम्झी जाती थी -- 'सिंहलद्वीप - मुष्णिरिव रत्ननिवहस्य' । अपरधनकनकराज्या के वर्णन में कवि ने उसे नारंगी, कटहल, कैला, नारियल, मुक्ताफल आदि से सम्पन्न बताया है ।<sup>१२</sup>

सिंहल द्वीप के सान विधाधर भी बनादय माने जाते थे । इसीलिए इस राज्य का अधिकार कर्त्वित्व का सूचक सम्झा जाता था ।

सिंहल द्वीप के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस सब समय कुछ घर विमान-आकृति के हुआ करते थे । तिलकमंजरी के प्रासाद वर्णन से ज्ञात होता है कि प्रासादों में पताकाएं लहराती थीं उन्हें जेक शालायें हुआ करती थीं जो सम्भवतः कदा कदा कमरे हुआ करते थे । इन कमरों में हनु चामर, गिंहा न आदि रखे रहते थे । प्रासाद में गौपुर द्वार भी होता जो गरुड़, सिंह, मयूर के आकार वाले बाहनों से अलंकृत रहता था ।

नगर प्रासादों के अतिरिक्त मन्दिर भी विविध मणियों की आन्ति से सुशोभित बताए गए हैं । आधतनों में गौपुर, मणिमय स्तम्भ-तोरण से युक्त बड़े-बड़े द्वार, प्राकार, प्रतीक्षु स्वं हांटे द्वार होते थे । ये वास्तव बहुत ऊंचे हुआ करते थे । उसके अन्दर कमरे होते थे । कुछ मन्दिरों के द्वार में यज्ञ-देवता की प्रतिमा रहती थी तथा कालागुरु धूप से वातावरण सुगन्धित रहता था । सिंहासन गृह-कक्ष स्वं विविध पशुओं के चित्रों से सुशोभित रहता था -- 'गृहकालंकृतमृगमाजि सिंहोदमासिते नभस्यल हवालवोयसि सिंहासने' । मुख्य प्रतिमा के आस पास बहुत से गुरों के चित्र भी बने रहा करते थे ।<sup>१३</sup>

कुछ मन्दिरों में मणिमय सीढ़ियाँ, मणिमय कलश, मणिमय शलाकाओं, मणिमय शिलामणिकाओं का भी वर्णन कवि ने किया है जो कवि के लिए साधारण-सी बात है । मन्दिरों में बृहती और जगती हुआ करता थीं । बैठने के लिए रजत बैदिका बनाई जाती थी और मण्डप भी हुआ करते थे ।<sup>१४</sup>

काव्य में कुछ पर्वतों को रत्नों का आगार माना गया है । सुवेल पर्वत के वर्णन में कवि ने उसे मणि, सोने और चाँदी को सान बताया है । रत्नकूट के पर्वत के वर्णन में बालू तथा को रत्नमय बताया है जिसमें अतिशयोक्ति स्पष्ट है किन्तु उस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता था कि लोग कुछ शिलारों पर रत्नों की सम्भावना किया करते थे । कुछ बहुमूल्य प्रस्तरों का भी उल्लेख बनादय पर्वत के वर्णन प्रसंग में मिलता है । जैसे सोने की पदा करने वाले, दिव्यामा वाले, काँसा को उत्पन्न करने वाले, मणियों को करने वाले तथा हस्तों प्रकार के कुछ प्रस्तर काव्य में आए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लोग इस प्रकार के पत्थरों से परिचय रखते थे ।<sup>१५</sup>

उस समय लोगों की बड़ी झुटियों की भी जानकारी थी । दृष्टि-दोष, ज्वरारोग, मृत्यु के मय तथा विषु की दूर करने में समथी कुछ जाँकधियाँ भी थीं जो प्रायः पर्वतों पर मिला करती थीं ।<sup>१६</sup>

१- तिलक०पु०२७	६- तिलक०पु० १५७	११- तिलक०पु० १५५	१६-तिलक०पु० २३१
२- " २६०	७- " २१४-२१५	१२- " ३५२	
३- " २६७	८- " २१६	१३- " १३२-३४	
४- " २१४	९- " २१७	१४- " २३७	
५- " ३७०	१०- " २१७	१५- " २३४	

काव्य में आभूषणों में मणि जटित नूपुर, कर्णाभूषण, सोने के बल्ल, रत्नजटित अंगुठी का तो वर्णन है ही साथ ही इसमें पद्मराग से जटित पैदा का उल्लेख भी आया है, जिसे पुराण बांधा करते थे --

उवलदनेक उवलदनेक उवलदनेक पद्मरागशकला तानवप्रकर्षादतिकष्टदुःसुदरदेशमा-  
विष्कृतमुपसंग्रहात् प्रवुरदोपयैव तानोऽपट्टिकया गाढावनक शुक्लरितपट्टांशुकनिवसनः ।<sup>१९</sup>

यह पैदा सम्भवतः आजकल की चपरास रही होगी जिसे चपरास अपने कमर में बांधते हैं ।

काव्य में कवच भी मुक्ताफल से सजित और सोने से निर्मित बताये गये हैं । कर्त्रों में बड़ा-बड़ा मोतियाँ लटका करती थीं । हाथियों के आभूषणों में 'नदाञ्जाला' का उल्लेख आया है ।<sup>१९</sup>

राजाओं के उगुलदान भी मणिमय हुआ करते थे ।<sup>२०</sup>

बाषों में मृदंग,<sup>२१</sup> पटह,<sup>२२</sup> बल्लिकी,<sup>२३</sup> शंख,<sup>२४</sup> मुरज,<sup>२५</sup> वीणा,<sup>२६</sup> वैष्णो,<sup>२७</sup> काहल,<sup>२८</sup> फल्लहरी,<sup>२९</sup> काव्यताल (करताल),<sup>३०</sup> जातोय,<sup>३१</sup> तुरही<sup>३२</sup> और मार्दल<sup>३३</sup> थे । दन्तबोणा का भी उल्लेख काव्य में आया है ।<sup>३४</sup>

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वाहन, हाथी, घोड़ा, सिंह, महिष, अजगर, मयूर एवं हंस को वाकृति के होते थे । विमानों में वातायन हुआ करते थे ।<sup>३५</sup>

सामुद्रिक यात्राएं होती थीं । यह यात्रा नाव तथा पोत से होती थीं । ये पोत सम्भवतः जहाज ही होते थे । इसमें लाने के लिए भोज्य पदार्थ, पीने के लिए पाना, ईंधन, ली, तैल, कम्बल, औषधि एवं दीपान्तरों में दुष्प्राप्य सभी वस्तुओं का प्रबन्ध रहता जाता था ।<sup>३६</sup>

इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस समय पत्थर काटने की कौशी हुआ करती थी -- तीक्ष्णकोटिमिष्टिकामिस्त... । आरा थे -- 'ब्रह्मकृताति'...<sup>३७</sup>, जलयंत्र<sup>३८</sup> (रहट) है तथा धारागृह होते थे । धारागृहों में फव्वारों का प्रबन्ध रहता था ।<sup>३९</sup>

इस प्रकार धनपाल की तिलकमंजरी से उस समय की परिस्थितियों के विषय में पर्याप्त सामग्री मिल जाती है ।

१- तिलकमंजरी १६४	११- तिलकमंजरी १४१	२१- तिलकमंजरी ३५०
२- " ३६१	१२- " १४७	२२- " १७८
३- " १५६	१३- " २३६	२३- " १७६
४- " ११५, ३६१	१४- " २००	२४- " ४१८
५- " ६६	१५- " ३५८	
६- " ३४	१६- " ४२६	
७- " ४१	१७- " ५७	
८- " ५४	१८- " १४०	
९- " ५७	१९- " १३०	

गद्य चिन्तामणि--

जिस प्रकार तिलकमंजरी से सभी परिस्थितियों से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान मिल जाता है उसी प्रकार गद्यचिन्तामणि से भी मिलता है । दोनों काव्यों के रचयिता जैना कवि हैं किन्तु धनपाल ने अपने धर्म के सम्राट् कित्ता धर्म को निरादर को दृष्टि से नहीं देखा है किन्तु जोष्यदेव ने अन्य धर्मों को उपेक्षा को दृष्टि से देखा है । इसका कारण हो सकता है कि कवि कट्टर जैनी रहा हो या उस समय तक धर्म को दृष्टि से परिस्थितियों में अन्तर जा गया हो । यद्यपि काव्य में ब्राह्मण के लिए 'धारणोत्तर', 'द्वितीयोत्तर' आया है किन्तु कवि ने उनके धर्म को निन्दा की है । कवि के इस प्रकार के विचारों से जैन धर्म तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों के वैमनस्य का पता चलता है । जैना ब्राह्मणों को तपस्याओं को 'जहो देहीनां मोहनीयकर्मैदं दुर्मात्रप्रसरं यदस्या ज्ञी मुथा न्निःश्रयन्ते' इति... न हिंस्यात्स्व-भूतानि' इति विभुतां धृतिं विद्वानोऽपि किं हिंसा-निदाने तपस्येक्ताना भवन्ति' आदि कह कर निन्दा किया करते थे । किन्तु वे स्वयं कठोर तप किया करते थे । उनके यहां वाह्यगुडम्बर स्त्री थी । मन्दिर में जाकर देव के सम्मुख प्रवृत्त्या लेकर वे सिर मुँडवा लेते थे, आमरण, बस्त्र एवं सुगन्धित द्रव्यों को छोड़ देते थे तथा उन्हें राग, द्वेष, मोह आदि विकारों को भी छोड़ना पड़ता था । तत्पश्चात् वे तप करने के अधिकारी होते थे । उन्हें यम-नियम के साथ रहना पड़ता था, अन्न का खाना तथा शय्या पर लेटना त्यागना पड़ता था । जिस प्रकार ब्राह्मण कठोर तप करके मुक्ति पाता था उसी प्रकार जैना अन्त में क्षमणक की स्थिति प्राप्त करता था । जिस प्रकार ब्राह्मण मोह से हट जाते थे उसी प्रकार जैना शुद्धध्यान से हट जाते थे । तपस्या करने के पश्चात् जो स्थिति ब्राह्मण की होती थी वही जैना की भी होती थी । अर्थात् जैना सप्त प्रकृति से रहित चतुष्टय को नष्ट करके मुक्ति प्राप्त करता था । जैन धर्म का श्रवण, नृहण, धारण और अनुस्मरण ब्राह्मण धर्म का श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही होते थे । जैना इन शास्त्रों को जानकारी करके पुरुषार्थ को सिद्धि करके मोक्ष को प्राप्त करते थे और ब्राह्मण धर्म में भी इन्हीं से ज्ञान प्राप्त करके लोग मोक्ष प्राप्त करते थे ।

जैन धर्म में भी मूर्तिपूजा एवं उनकी प्रवर्द्धिणा होती थी । ब्राह्मण देवताओं की भाँति उनके भी देवताओं का स्वरूप था --

यदीयर्ष्यामृतसैवनेन हरति संसारं मुनीन्द्राः ।

स एव संतोषतनुर्जिनोः संसारं तपं शक्यो करोतु ॥ ५

१- गद्यचिं० पृष्ठ ६६

२- " २६८

३- " ४०

४- " १०३

५- " १००

• इनके धर्म में भी तीर्थ स्नान थे -- सर्वलोकप्राप्त्यानि तीर्थानि च तत्रदर्शितातिशयानि पश्यत ।<sup>१</sup>

• इस काव्य के अध्ययन से पता चलता है कि ब्राह्मण और जैन धर्म में समान विशेषता होते हुए भी काफी कमनस्य था । ब्राह्मण धर्म में यज्ञ होते थे किन्तु जैन धर्म में इसका कुछ भी महत्व नहीं था । केवल सन्कल्प, रत्नत्रय कर्माष्टक (ज्ञानावरणीय, पर्यन्तावरणीय मोहनीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और जन्तराय ) तथा गुणाष्टक (जन्त ज्ञान, जन्त दर्शन, जन्त वीर्य, जन्त सुख, अव्याबाधत्व, अगुरु ल्युत्व, अतिगुह्यत्व और अवगहनत्व ) पर बल दिया जाता था ।

जिनालयों का स्वरूप मन्दिरों से भिन्न होता था । जिनालयों में स्तूपिका और गीपुर होते थे । उनमें सिंह बने रहते थे<sup>३</sup> । ये जाकार में बृहद तथा सन्यासियों से भरे रहते थे । उनमें जैन महोत्सव हुआ करते थे ।<sup>५</sup>

• इस काव्य से पता चलता है कि जैन धर्म में कोई भी निःसंकोच सर्वत्र जा-जा सकता था -- ' जैनजनसर्वस्वतया निःसंके प्रविशन् ।'<sup>६</sup>

• इस काव्य में वर्णित नगर निवासियों के प्रसंग से पता चलता है कि धार्मिक कमनस्य होते हुए भी लोग कुटिल स्वभाव के प्रायः नहीं हुआ करते थे । कवि ने उन्हें पयाहु, पराक्रमी, सामाशील, इन्द्रिय-निग्रही आदि बताया है । इन्द्रिणु के नित्यलोक वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय कुछ मन्वन्तिह लोग भी हुआ करते थे ।<sup>७</sup>

• हेमांगद जनपद के वर्णन में कवि ने जैन धर्म के प्रचार की अधिकता दिखाई है । जिनालयों में निरन्तर इती धर्म के उपदेशों के होने का ही उल्लेख किया है ।

• इस काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था कवि के समय में थी । ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन-पूजा आदि करना था । वैश्य का काम व्यापार करना था । काव्य में श्रीदत्त नामक वैश्य एक बहुत बड़ा व्यापारी ~~का~~ बताया है ।<sup>८</sup> पात्रिय पृथ्वी की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे ।<sup>९</sup>

• एक शबर जाति भी थी जो अपने केश को चमरी मृग से गुंथते थे, शिर पर मयूर के फंश रखते थे, व्याघ्र चर्म से शरीर के नीचे का हिस्सा ढकते थे, कौड़ियों के जामुषण से अपने को जलकृत करते थे, पैरों में चर्मपल पहनते थे, धनुष को लेते थे, चण्डी देवी की उपासना करते थे तथा मधुपान करते थे ।<sup>१०</sup>

१-	ग०चिं०पृष्ठ	१०८
२-	॥	३३
३-	॥	५
४-	॥	१५६
५-	॥	१०
६-	॥	३८

७-	ग०चिं० पृष्ठ	१६१
८-	॥	३४
९-	॥	तृतीय उम्ब
१०-	॥	१५५
११-	॥	४८

जेनियों को दृष्टि में स्त्रियों की वशा शौचनीय थी । उन्हें कहीं, कपटी, विश्वासघातिनी आदि समझा जाता था<sup>१</sup>।

इस काव्य के अध्ययन से यह भी बात होता है कि जन्तःपुर में युवतियां पहरेदार हुआ करती थीं जो बाएं हाथ में केंच रत्ता और दूसरे हाथ में तलवार लेती थीं तथा ऊपर से नीचे तक लाबादा चढ़ने रक्ती थीं ।

उस समय लोग रिश्वत दिया करते थे । गन्धोत्कट काष्ठांगार को प्रसन्न करने के लिए उनके पास अपार धनराशि लेकर गया था<sup>२</sup>।

उस समय पशु विनित्सक भी हुआ करते थे । काष्ठांगार के हाथों का इलाज करने में एक पशु विनित्सक का उल्लेख जाया है<sup>३</sup>।

कुछ लोग विश्व के निवारण के मन्त्र से भी परिचित थे -- प्रवर्तमान तुमुलवर्तितवर्ष धरनिवारणान्त्रणम्<sup>४</sup>।

शकुन-अपशकुन में का परिस्पदन के अतिरिक्त स्वप्न में विशाल वृक्ष का गिरना अपशकुन, कनक मुकुट का दिखायी देना पुत्रीत्यागि का सूचक तथा क्लोक वृक्षाश्च पर लटकती हुई माला वधु को सूचक समझी जाती थी । जल से भरा घड़ा पैरना शुभ माना जाता था किली भी मंगल कामना के लिए उसके आगमन के समय घर पर अथवा सड़क पर जलपूर्ण घड़े रखे जाया करते थे । जोरवार जब अपने घर लौट रहे थे तब राजमार्ग में जलपूर्ण घड़े रखे गए थे ।

विवाह के समय कुछ वस्तुएं शकुन की मानी जाती थीं । जैसे मुहूर्त निकलवा कर विवाह करना, कैले से घर की सजावट करना, आठ मंगल ग्रहों का जानना, विवाह के समय कन्याओं का लाल वस्त्र पहनना, वर का हन्द्र की दिशा की ओर मुस करना, गोबर से भूमि को लोफना, दीवारों पर स्त्रियों के हाथों के लाल हाथे होना, दूध, वहाँ, धों से भूमि का पिन्दाहित होना स्व अग्नि का होना लोग आवश्यक समझते थे । पुत्री को ला कर पिता वर के हाथ में जल रत्ता और वर प्रतिज्ञा करते हुए उस जल को ले लेता था और अग्नि की प्रवर्धना करता था<sup>५</sup>।

उस समय कुलक्षेत्रों में अन्तर्जातीय विवाह मान्य न थे । लौकपाल नामक राजा अपनी कन्या के विवाह के सम्बन्ध में जीवक स्वामी के लिए वैदेशिक होने का सन्देश करता है । सन्देश के दूर होने पर ही उसके साथ विवाह करता है ।<sup>६</sup>

वैसे इस काव्य में इस प्रकार के विवाह का उल्लेख मिलता है । जोरवार ने नन्दगोप की कन्या गोविन्दी तथा वैश्य कन्या सुसंजरी से विवाह किया था -- ऐसा काव्य में

१-गोविं०पुष् ११०-११	५-गोविं०पु० ६२	६-गोविं०पुष् १०४	१३-गोविं०पु०५४-५५
२- " १२६	६- " १८	१०- " १५०	१४- " ६३
३- " ८६	७- " ७१	११- " ८३	१५- " ५४
४- " ८५	८- " ८३	१२- " ७२	१६- " नवम लक्ष

जाया है ।

उस समय विवाह भाषा को लड़का से भी हो सकता था । जैसा कि विदेह के राजा गोविन्द को कन्या का विवाह उसके मान्ये जीवंधर से हुआ था<sup>१</sup> ।

विवाह एक से अधिक भी हो सकते थे । क्योंकि जीवंधर के पाठ विवाहों का काव्य में उल्लेख है । इस प्रसंग के आत होता है कि समाज में बहु विवाह को प्रथा का प्रारम्भ हो गया था । किन्तु गन्धर्व विवाह समाज में मान्य न था विवाह करने के पूर्व माता-पिता से अनुमति ली जाती थी । जीवंधर के सब विवाह इसी प्रकार से हुए थे ।

विवाह करने में लोग कुटिल चालें चला करते थे जोवंधर ने वृद्ध का रूप धारण कर सुराजरी को उगा था<sup>२</sup> ।

ज्याम्बर को प्रथा राजाओं के बीच में ही नहीं जनसाधारण के बीच में भी उस समय तक हो गयी थी-- ऐसा इस काव्य से पता चलता है । क्योंकि श्रीदत्त नामक व्यापारी ने गन्धर्वका के विवाह में इस प्रथा को अपनाया था<sup>३</sup> ।

ज्याम्बर प्रथा में शर्त रहती थी । कन्या सखियों के साथ मण्डप में जाती थी । उस समय सखियाँ हाथ में शुक और मणि-वर्षण को लिए रहती थीं<sup>४</sup> ।

पुत्रीत्सव में कन्या छोड़ दिए जाया करते थे । धात्रियाँ राजाओं से पुरस्कार पाती थीं, कुम्भ वामन आदि आभूषण लेते थे, वैश्व कुण्डलियाँ बनाते थे, मंगलाचार स्वं दान आदि होते थे<sup>५</sup> । सातवें दिन नामकरण संस्कार होता था । इस प्रकार का महोत्सव साधारण जनता के बीच में होता था । गन्धोत्कट ने इसी प्रकार की पुत्री-महोत्सव मनाया था<sup>६</sup> ।

ब्रह्मों का विद्या संस्कार किसी पवित्र स्थान पर होता था । अधिकांशतः लोग जिनालय को ही उपयुक्त समझते थे । इसके लिए विद्या-मण्डप बनाया जाता था जो गोबर से छोपा हुआ, विविध कुसुम हारों से अलंकृत एवं सुरभित तथा मणियों की कांति से दीप्त हुआ करता था । दीवारों पर पाप के मक्कर परिणामों के चित्र बने रहते थे भूमि पर लाल-कुसुम छिंकाये जाते थे, तदनन्तर लटकाये जाते थे तथा कालागुरु धूप के धुं से वातावरण पवित्र किया जाता था । कुछ तरह-तरह के दार्थी से मंगल पाठ हुआ करता था । विद्या-संस्कार के पहले अभिषेक होता था । तत्पश्चात् पुरोहित देव या 'जिन' को आराधना करके सरस्वती की पूजा करा कर विद्या संस्कार कराता था<sup>७</sup> ।

१-गोविं०वृ नवम-लम्ब पृ०१५०

२- " " पृ०-२८ नवम लम्ब

३- " " पृ० २८

४- " " पृ० ६६

५- गोविं० पृष्ठ ३२

६- " " ३२

७- " " प्रथम लम्ब

८- " " पृष्ठ ३४

विद्या मण्डप में स्वच्छ पितान, सरस्वती की प्रतिमा से युक्त चित्रपट, सम्पूर्ण ग्रन्थ-कीश तथा रास प्रकार के शस्त्र आदि रखे जाते थे<sup>१</sup>।

विद्याओं में व्याकरण, तर्कशास्त्र, सिद्धि-उपाय के सिद्धान्त, भाषित्य, वाक्य-विस्तार शब्द-ज्ञान, प्रमाण-निष्पत्ता, नीतिशास्त्र, लक्ष्यभेद, शस्त्र शिक्षा, जश्वारीहण विद्या दृष्टि विद्या, वीणा, वेद्यु आदि का वादन-प्रयोग तथा नृत्य आदि कलाएँ थीं जो उस समय की सांस्कृतिक उन्नति को जोर देती हैं<sup>२</sup>। उस समय पाठशालाएँ बड़े स्थानों पर होतीं थीं<sup>३</sup>।

उस काव्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय चित्र देवताओं के ही नहीं होते थे अपितु पूर्ववर्ती राजाओं के भी बना करे थे। जय प्रसाद में पहुँच कर जोधर ने सत्यधर का चित्र देखा था।

तिलकमंजरी की भाँति इस काव्य में भी कई छोटे-छोटे राज्यों एवं वहाँ के राजाओं का उल्लेख हुआ है। जैसे पल्लव के राजा लोकपाल, क्षेमपुरी के राजा नरपतिदेव क्षेमपुरी के दृढमित्र आदि। तिलकमंजरी के राज्यों एवं राजाओं की भाँति इस काव्य में बार राज्यों एवं राजाओं के विषय में भी कवि के कल्पना तत्व को प्रधानता परिलक्षित होती है। यत्र तत्र ही राजनीतिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। जैसे क्षेमपुरी के राजा की शासन-व्यवस्था के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि लोग कुछ राजाओं से सली हाथ नहीं मिल सकते थे। क्योंकि दृढमित्र से कष्ट निवेदन करने के लिए प्रजा पुष्प लेकर जायी थी।--

गदापल्लव गुच्छप्रणयिमाणि पल्लवा पल्लवा ।

भूशं धरापल्लमस्य द्वारि स्थिताश्चक्रुः ।<sup>४</sup>

इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि पराजित राजा विजित राजा के सामने शस्त्रों की रख दिया करता था<sup>५</sup>।

राजा सत्यधर के राज्य के वर्णन से ज्ञात होता है कि राजा से किसी चीज़ के निवेदन करने के पूर्व लोग उसके गुणों का ज्ञान किया करते थे। प्रतिहारी सत्यधर से काष्ठांगार के घेरे डालने की बात कहने के पूर्व गुणों का ही गान करती है।

राजा सत्यधर के राज्य वर्णन से उस समय की मंत्री-परिषद् के विषय में भी ज्ञात होता है। उस समय इसके सदस्य राजनीति कुशल, हल-काट से रहित, विवेकी और प्रौढ़ होते थे। इनमें से कुछ मंत्री कुल्लुनागत होते थे। ये राजाओं की उपदेश भी

१- ग०चि० पृष्ठ ३५

२- ,, ३५-३६

३- ,, १११

४- ,, १४८

५- ग०चि० पृष्ठ ११७

६- ,, ११८

७- ,, १५



दे सकते थे । ये सलाह देते थे किन्तु राजा को अधिकार था कि उस सलाह को माने अथवा न माने । सत्यंशर ने उगला सलाह को अवहेलना करके अपना राज्य काष्ठांगार को दे दिया <sup>४</sup> था ।

इसके पदों में राजभेषिपद, कुबराज पद, महामात्र पद, तथा कर पद थे<sup>१</sup> । काष्ठांगार के राज्यकाल में \* चाणिकार्थ्यका अथवा चौराध्यका पद का भी उल्लेख हुआ है । चौराध्यका का कार्य सम्भवतः चोरों को पकड़ने अथवा उनके दण्ड देने का हुआ करता होगा किन्तु काव्य ग्रन्थ से कुछ स्पष्ट नहीं हो पाता है । लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि उस समय लोगों की चोरों कादि से रक्षा करने का प्रबन्ध था । राज-प्रासाद में गुरु, पुरोहित तथा स्वयं जी-वेत्र को धारण करने वाले दारनाल हुआ करते थे । धोषणा करने वाला चाण्डाल होता था<sup>२</sup> । गोगालों का <sup>स्वामी</sup> ~~स्वामी~~ ग्रामणो होता था । नन्दगोप इसी पद पर था<sup>३</sup> ।

इस काव्य में जेल की भी समुचित व्यवस्था थी -- ऐसा ज्ञात होता है क्योंकि काव्य में उसके अधिकारों का भी उल्लेख आया है<sup>४</sup> । काव्य से उस समय की दण्ड व्यवस्था का भी परिचय होता है । पैरों को लोहे की जंजीर से बांध कर बाल दिया जाता था काष्ठांगार ने कुछ मंत्रियों को इसी प्रकार बंद किया था<sup>५</sup> । किन्तु नर राजा के मद्दे पर बैठने को जुशों में कैदियों को छोड़ दिया जाता था<sup>६</sup> ।

कर की व्यवस्था के लिए 'स्केकरपद' बना था<sup>१०</sup> । इस पद का अधिकारी सम्भवतः करों का व्यौरा रखता रहा होगा । प्रजा तो कर देती थी ही साथ ही पराजित राजा भी विजित राजा को 'कर' के रूप में सोना अथवा बहुमूल्य वस्तुएं दिये करते थे<sup>१२</sup> 'कर' रूप में हाथी भी दिए जाते थे<sup>१३</sup> ।

इस काव्य में यह भी ज्ञात होता है कि राजा अपनी कन्याओं का विवाह करके मंत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया करते थे । फाल्गुन नरेश, हेमांगपुरी तथा दोमपुरी के राजा ने सत्यंशर के पुत्र जीगंधर से इसी प्रकार मंत्री सम्बन्ध स्थापित <sup>६</sup> किया था ।

इस काव्य में हेमांगद का सम्बन्ध मालव, वीर, कैरल, पाण्ड्य, पारसीक, कलिंग, कश्मीर, जम्माव, आदि देशों से बताया गया है<sup>१४</sup> । इसके अतिरिक्त यहाँ का राजा

१-	गोविं०पुष्ट	१४८-४९
२-	॥	१०८
३-	॥	१६५
४-	॥	१३८
५-	॥	१४९
६-	॥	५०-५१
७-	॥	१४८

८-	गोविं०पुष्ट	२४
९-	॥	१४८
१०-	॥	१४८-४९
११-	॥	१५५
१२-	॥	१५१
१३-	॥	९
१४-	॥	वशम लम्ब



सत्यंवर काश्यपीपति भी कहा गया है, जिससे ज्ञात होता है कि उसका अधिकार काश्यप में भी था। इसका सम्बन्ध विदेह से भी था। वाराणसी का राजा गोविन्द इसका साला बताया गया है।

काव्य में बताया है कि विदेह का राजा गोविन्द सत्यंवर का साला था, उसी को ब्रह्मचाल से जीवंधर ने पुनः अपना लौया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया था।

काव्य में यह भी बताया है कि काष्ठांगार ने गोविन्द को मरवाने के लिए ऋद्धयन्त्र रचा था किन्तु उसमें वह सफल नहीं हो पाया।

किन्तु ये घटनाएँ सत्य हैं कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है।

काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि गार्वाँ के बुरा लिस जाने पर जयवा स्वयंम्बर के कारण राजाओं के बीच युद्ध हुआ करते थे। उस समय गाय परम सम्पत्ति समझी जाती थी अतः राजा उसके लिए हमेशा प्राण देने की तत्पर रहता था।

रजाओं में कोई विशेष सेना न थी। बली हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और धनुर्धारियों की सेना थी। हेमांगद में अक्षय कुन्तपारी सेना का उल्लेख हुआ है।

सेना के युद्ध प्रस्थान करने पर हाथी, घोड़े, सुरंग, सर, करम, महिष, मैण, शाकवर(बैल), रथांग तथा कैलाशियाँ पर आवश्यक सामग्री रख ली जाती करती थी।

यौद्धा सिर की रक्षा का भी प्रबन्ध करते थे -- पिनिदाधीरुके रक्षी भी थे।

युद्ध के लिए जाते समय राह चलते लोगों के लिए धन छुटाया जाता था। युद्धोपरान्त विजय मिलने पर प्रजा को सोना, कपड़ा, कंबल, कड़े आदि दिये जाते थे।

राजा जब एक देश से दूसरे देश जाता तो बीच में पड़ने वाले अरण्यों को कण्टकविहीन किया जाता था। बीच-बीच में कुर्जों को सुव्यवस्था की जाती थी और महिष मैण आदि बाहक पशुओं पर यथेष्ट सामग्री रख ली जाती करती थी।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में ज्ञान राजनीतिक विचार भी प्रस्तुत किये हैं कवि का कहना है कि योग्य राजा को कभी भी अपने हृदय पर विश्वास एकदम से नहीं कर लेना चाहिए। अतः उसके लिए दूसरों की बातों पर विश्वास करना दूर रहता है। यह मंत्रियों के लिए नट का-ला कार्य करता है। ऊपर से तो दिलाता है कि वह उनकी बातों को मान रहा है तथा विश्वास कर रहा है किन्तु उन पर वह विश्वास नहीं कर लेता है। क्योंकि बहुत विश्वास प्रकट करने पर ही विश्वासघात करके उसे विपत्ति में

१- गोविं० पृष्ठ १४-२७

२- " १७

३- " कश्म लम्ब

४- " पृष्ठ १४२

५- गोविं० पृष्ठ १३७

६- " १४८

७- " १३८

गल होते हैं।

कवि का कहना है कि राजा के प्रति उत्पन्न विरोध अनेक विपत्तियों के जाने का कारण बन जाता है --

‘मन्त्राणि वैपरीतं राजानि शिखांशुतां विन्नाभामभाविनी विपदिति  
नेतदाश्चर्यम् । यदेकपद एव सह सकलसंपदा संपत्तयते प्रलयः खडुलस्यापि । परत्राणि  
भाषीकस्तत्तत्तथाधोगिरिणि भवितेति संतन्ति शाखाणि ।’

अन्य कवियों की भांति जीइयदेव ने भी अपने काव्य में ऊंचे प्रासाद, गंभीर नीच वाले ऊंचे प्रकार और साईं जाद का वर्णन किया है। दीर्घिकाओं के मणिमय तट एवं मणिमय ताड़ियों का वर्णन करना भी कवि पूरा नहीं है। किन्तु हेमांगद के वर्णन में कवि ने वहाँ का कुछ विशेषताओं को भी बताया है। उसे धान के मैदानों से सम्पन्न जामु कम्पक आदि विशेष वृक्षां से सुशोभित उद्यानों से युक्त बताया है। वहाँ की उर्वरा भूमि का उल्लेख किया है तथा कर्पूर की अधिकता बताई है। उस प्रदेश के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोगों का लफाई को और विशेष ध्यान था। आधुनिक ढंग की भांति कुएं का मूल भाग दीवारों से आच्छादित रहता था।

कवि ने मन्दिरों के ऊपरी भाग, स्तूपिका और स्तम्भ को मणिमय, बलिवेदिका को मकटिक शिखा से निर्मित और चार की चांदी से गढ़े हुए बताया है<sup>४</sup>। इन वर्णन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि मन्दिर भी उस समय विविध रत्नों एवं मणियों से संपन्न हुआ करते थे। वह मन्दिर चार गौपुरों से अधिष्ठित होता था, गलाकार छहराया करती थीं और उसके अन्दर मूर्तियां हुआ करती थीं<sup>५</sup>। इन मन्दिरों में सिंह की मूर्ति भी रहती थी<sup>६</sup>।

राजा ही धन-धान्य से सम्पन्न न थे वैश्य भी हुआ करते थे। उन्हें कई बार कुंवर से बढ़कर बताया गया है। उनके घर में भी गलाकार छहराया करती थीं। ये सामुद्रिक व्यापार करके अपनी धनराशि नित्य बढ़ाया करते थे<sup>७</sup>। उनके यहाँ भी स्वयम्बर मण्डप की शोभा राजाओं के स्वयम्बर मण्डप से कम नहीं थी। जैसे उनके स्तम्भों में मणियां छटकती, ध्वजां छहरातीं, मालाएं शोभा को द्दिगुणित करतीं। इत्यादि।

इनके यहाँ भी कन्याओं के अन्तःपुर हुआ करते थे जो विविध मणियों से अलंकृत रहते थे।<sup>८</sup>

१- ग०वि०पृष्ठ १४-१५

२-    ११    २३

३-    ११    ५

४-    ११    ३३

६- ग०वि०पृष्ठ ५

७-    ११    १०१

८-    ११    ८२-८३

९-    ११    १२६

धनाढ्य वैश्याँ <sup>१७</sup> 'पौजनस्थान मण्डप' को भूमि पर स्वर्ण फैले रहते थे, जिनमें पात्र होते थे, वहाँ हाथ धुलाने के लिए पुरालो या लौटा लीने का लौटा था । वैश्याँ के अतिरिक्त गोपालक भी धनाढ्य हुआ करते थे । नन्दगोप हारा ही बताया जा रहा है ।

जनसाधारण भी विवाह के उपलक्ष्य में दूध, घी, दही से भूमि को मिच्छिलि या करते थे ।

राजा के सिंहासन में शेर बिहिनत रहता था । कुछ सिंहासनों का पदपोठ सिंह की कृति के समान होता था । उस पर पड़ी बादर के किनारे सुक्ताफल को झुलें होता था । मणिमय दण्ड के सुशोभित उत्तका हवन होता था । हवन के बीच एक महान् मीठी तो थी और हवन के चारों ओर बड़ी-बड़ी मोतियाँ लटकती रहती थीं । हवन श्वेत जा करता था ।

राजा के बैठने का हाथी स्वर्ण से अंकृत होता था । उसपर बैठने का त्रीहदा ने का ही होता था जिस पर हंस और कर्क के समान कुमशः श्वेत और कोमल वस्त्र पहना जाता था उसके प्रान्त भाग में विचित्र रत्न लक्षित रहते थे ।

प्रासादों में जोक कदा हुआ करते थे जिनको पार करने के पश्चात् ही राजा के दर्शन पाते थे । <sup>१९</sup> उसमें एक धारागृह भी हुआ करता था ।

उस समय बाघों में पटह, शंख, काखिल, बीणा, बांगुरी, टक्का, भत्तरी, मुदंग, गी, मर्दल, कांस्यताल, डिडिछम, भृंग (भैंस की सींग का बाजा) तथा शस्त्रों में तलवार, शक, कुन्त, बाण, प्रास, तोमर, मिण्डपाल, हेति, शक्ति, आदि वैभव को सूचित करते हैं । एक स्थल पर कवि ने इन शस्त्रों का वर्णन करते हुए कहा है कि ये सब हतनीयक मात्रा में थे कि शस्त्र रखने की जाह में कुछ भी जाह नहीं रह गयी थी --

... प्रास्तामरभिण्डपालप्रसुलनिखिलायुवनितकारितखलुरिकोपदेशे । <sup>२०</sup>

पशुओं में कुछ पशु सामान ढोने के काम में जाते थे, जैसे-- हाथी, घोड़े, खर, कर्म, हक, मेघ, शम्बर(बैल) तथा बैलाड़ी । <sup>२१</sup> सवारियों में ऊंट का भी उल्लेख आया है । व्यव में एक ऐसा ऊंट वर्णित है जो उड़ा कर लोगों को ले जाता है था । धर नामक बाघर शीकत को हली पर बैठा कर ले गया था । <sup>२२</sup> वानासुजीम घोड़े का भी उल्लेख व्यव में है जो सम्भवतः पारसीक घोड़ा हुआ करता था ।

ग०वि०पु० ३-

११ ५५  
१२ ५४  
१३ २३५  
१४ २५२

६- ग०वि०पु० २५२

७- ११ ६५  
८- ११ २४७  
९- ११ २४७  
१०- ११ २२२

२१- ग०वि०पु० ६५

२२- ११ ३५  
२३- ११ २३६  
२४- ११ ५८  
२५- ११ ६५

जुह का एक विशेष रूप होता था जो शतांग कहलाता था<sup>१</sup> । स्वयम्बर का रूप 'चतुरन्तयान'<sup>२</sup> कहलाता था जिस पर कन्या चढ़कर जाती थी ।

इस काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय शिल्प कला उन्नत पर थी । इसको <sup>सत्यता</sup> ~~सत्यता~~ मन्दिरों, प्रासादों, स्वयम्बर मण्डप आदि के निर्माण में प्रमाणित होता है । उस समय कृत्रिम मयूर यन्त्र बनाते थे जो आकाश मार्ग से जाया करते थे । स्वयम्बर ने विजया की उठी पर फटा कर अन्यत्र भेज दिया था । यह सम्भवतः आजकल के हवाई जहाज जैसा कोई वाहन रहा होगा ।

इस कला के साथ-साथ संगीत कला भी विकसित थी । संगीत शालाओं का प्रबन्ध रहता था । भरत मार्ग से अनुसरित गीत हुआ करते थे<sup>३</sup> ।

वीणा वादन भी अपनी चरम सीमा पर था । कन्यारों भी इसे बजाया करती थीं । गन्धर्वदेवा के स्वयम्बर ने वीणा वादन की शर्त रखी गयी थी<sup>४</sup> ।

इस काव्य से चित्रकला के विषय में यह ज्ञात होता है कि कौतुलागार में विविध चित्र रखा करते थे और राजमहलों में पूर्व राजा का चित्र रखा करता था<sup>५</sup> । जिनालयों के मन्दिर में भी पाप के मर्याद परिणामों के चित्र को रखा करते थे<sup>६</sup> ।

बाजारें सम्पूर्ण सामग्रियों से भरी रहती थीं । वहाँ सब प्रकार के फल, बन्दन काठे कम्बल, स्वच्छ अनुकूल तथा स्पर्श में जुह देने वाले रेशमी वस्त्र, मणिधियाँ, कांसा, कपूर आदि मिला करते थे ।<sup>७</sup>

काव्य में कई प्रकार के पेशों का उल्लेख जाया है । शिल्पी<sup>१०</sup>, तक्षक<sup>११</sup>, व्यापारी, माली, मालिन, धोबी, स्वर्णकार, चित्रकार<sup>१२</sup> आदि के नाम उल्लेख से उस समय की पनादयता का परिचय होता है ।

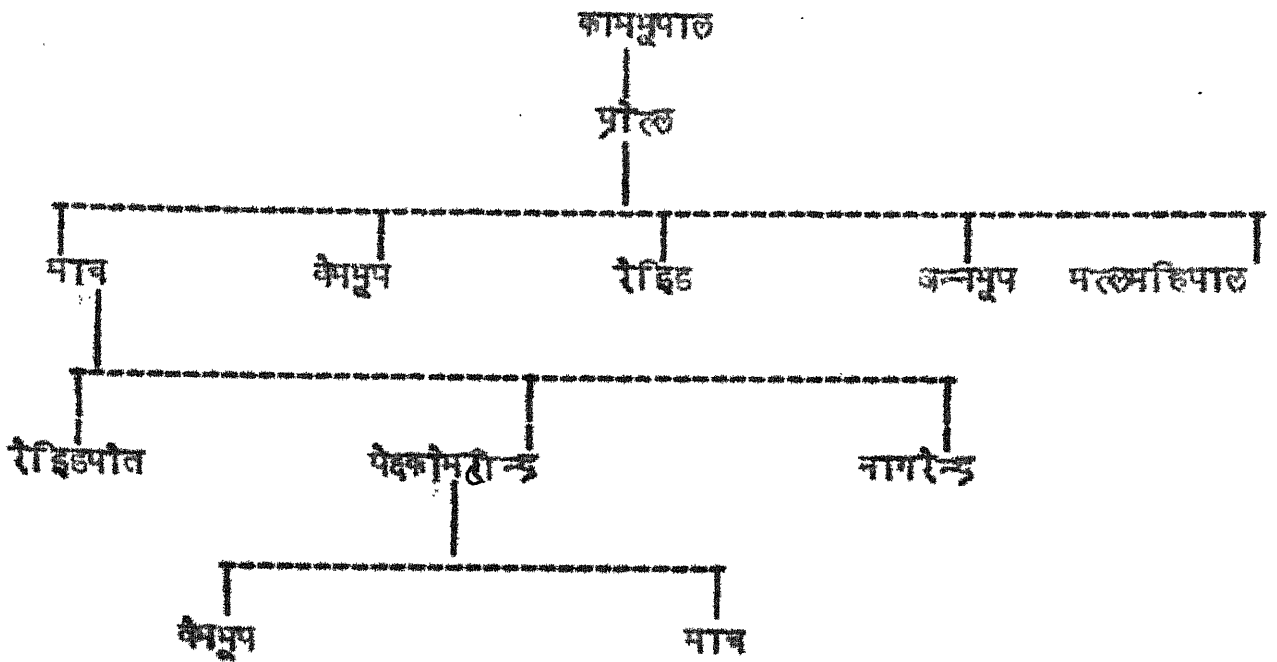
इस प्रकार तिलकमंजरी के समान गद्यचिन्तामणि से भी विभिन्न परिस्थितियों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती है ।

### केमभूपालचरित--

केमभूपाल चरित में बुंकि कवि के आश्रयदाता के गुणों का तथा उनके वंश का वर्णन है जतः इस काव्य से कवि के समय की दशा का रूप उसी प्रकार ज्ञात होता है जिस प्रकार बाण के हर्षचरित से । इस दृष्टि से केमभूपालचरित तथा हर्षचरित दोनों समान हैं । उन दोनों काव्यों के काव्यात्मक वर्णन में ऐतिहासिकता भी परिलक्षित होती है

१- ग०वि०पू० ६५	६- ग०वि०पू० ७४	११- ग०वि०पू० १३८
२- " ६६, ७५	७- " १४८	१२- " १३६
३- " १२	८- " ३४	१३- " ७
४- " ६	९- " ७-८	१४- " १५०
५- " द्वितीय लम्ब	१०- " १३८	

इस काव्य के अध्ययन से अदंकि के राज्य तथा वीर नारायण के वंश के विषय में पर्याप्त सूचना मिल जाती है। यह वीरनारायण काव्य के नायक कैमभुज ही हैं। काव्य के अनुसार उनकी वंशावली त्वालित है --



ये सभी राजा वीरों में अग्रणी बताये गये हैं। राजा प्रौल्ल का शासन मुख्य रूप से त्रिलिंगी नामक जगद की राजधानी अदंकि में थी किन्तु उसने कई देशों के शत्रुओं को जीत करके अपने अधीन कर लिया था। गान्धार, मालव, गुर्जर, सिन्धुराज, बंग, उत्कलकुल, कामरूपपति, मद्र, शक, हेहय, मगध, तुलुष्क, लाट, कर्णाटक, मोज, कम्बोज पर इसने विजय प्राप्त की थी।<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त पाण्ड्य, नेपाल, कैल, वास्ट, पारसीक वार सिंहल के राजा भी इसके अधीन थे। प्रौल्ल जम्बूद्वीपेश्वर भी कहलाता था। कुछ राजाओं के साथ उसका मैत्री सम्बन्ध हो गया था। काव्य में बताया है कि राजा प्रौल्ल ने विवाह के समय उठते हुए मालव के राजा का सहारा लिया था।

राजा प्रौल्ल ने वैवाहिक सम्बन्ध दक्षिण की विक्रम सिंह नामक नगरी के राजा तुम्बहार घट्ट की कन्या से स्थापित करके उस राज्य में भी अपना अधिकार कर लिया था।<sup>५</sup>

प्रौल्ल के बाद उसके पुत्र कैम ने मुकलमानों से वाङ्मन्त कुछ भूमि भाग को अपने अधीन कर लिया था -- 'यवनमहाप्रलयार्णवमध्यपतितामुद्रुत्य वसुन्धराम्'।<sup>६</sup> कवि ने इसके राज्य

१- कैम०पृष्ठ १६-१७

२- " ६३

३- " ६३

४- कैम० पृष्ठ ६५

५- " ७१

६- " १०३

का क्षेत्र 'ओ-शेलाशिरतः पातालंगावतरणसोपानपाथे' कहकर बताया है जिसमें अतिशयोक्ति स्पष्ट है किन्तु इसमें तन्देह नहीं किया जा सकता कि इन लोगों का राज्य क्षेत्र काफी बड़ा था ।

प्रौल्ल के दूसरे पुत्र को काव्य में तार्कभौम का पदवी है विभूषित किया गया है और उसे खन-कुल के लिए महाकाल स्थापन कराया गया है ।

इस प्रकार पेदकोषटीन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र कैम को, जो कवि का वाक्यदाता तथा काव्य का नायक है, विस्तृत पैतृक राज्य मिला था ।

इसने भी कई युद्ध लड़े थे और सब में विजय पायी थी । कैममूपाल का दिग्विजय के लिए सर्वप्रथम प्रस्थान कलिंग की ओर हुआ था । कलिंग नरेश के पास पैना जुद्ध था वह कैम से लड़ने आया था । उसे जीत कर कैम ने वहाँ से मतवाले हाथों लिए थे ।

कैम ने जंग पर भी विजय प्राप्त की थी । सामुद्रिक युद्ध बंग भंगाल को जीतने के प्रसंग में किए थे जिसमें यह विजयी हुआ था । दक्षिण दिशा में कांची पर आक्रमण करता हुआ वह पाण्ड्य की ओर बढ़ गया था । वहाँ पर उसने आसानी से विजय पा ली थी । उसने कैरल पर भी चढ़ाई की थी । मुरच पर आक्रमण करके वह मलय पर्वत की ओर बढ़ गया था ।

पश्चिम दिशा में उसने गुजरात पर आक्रमण किया था उसकी सेना समृद्ध थी । वहाँ का राजा मध्य सेना के साथ युद्ध करने आया था । यह युद्ध बहुत भयंकर था किन्तु विजय कैममूपाल के हाथ ही लगी थी ।

उसकी सीमाओं के साथ लड़ाई नहीं हुई थी । वहाँ के राजाजों ने कैम के सामने अपने को आत्मसमर्पण कर दिया था । इस समर्पण करने में वहाँ के राजाजों ने शीघ्रगाम षोड़े, विमान सदृश, स्वर्णम, हाँटी घंटियों की आवाज से मुन्नरित रथ तथा जपार पनराशि कैम को दी थी ।

ध्वजाँ पर विजय पाने के लिए वह पारसीक गया था वहाँ पर उसने तुर्कों से लड़ाई की थी और वह उसमें विजयी हुआ था ।

उत्तर दिशा में उसने सिन्धुराज को पराजित किया था । कम्बोज में आक्रमण करके वहाँ से उसने तेजस्वी घोड़ों को प्राप्त किया था । कश्मीर, काश्रुल, केक्य, शक, मद्र तथा वाह्लीक ने हाथी, घोड़ा, सोना, मणि, सुवृण, कस्तूरिका, चंवर आदि देकर उसके

१-कैम० पृष्ठ १०३	६- कैम०पृ० १४१	११- कैम० पृ० १५४	१६-कैम०पृ०
२- " १०४-१०५	७- " १४१	१२- " १५७	
३- " ११७	८- " १४४	१३- " १५७	
४- " १३६	९- " १५०	१४- " १५८	
५- " १४०	१०- " १५४	१५- " १५८	

संभुस अपने को आत्मसमर्पण किया था<sup>१</sup>। रिमात्य की ओर किंपुरुष वैश पा उग्र पर  
जाग्रण करके उल्लेख वहाँ से दिव्य आभा वाले चंवर, गज, मुक्ता, कस्तुरी और हरिण  
पाए थे<sup>२</sup>। उल्लेख हूणों को भी हराया था<sup>३</sup>।

इस प्रकार इस काव्य से ज्ञात होता है कि कैम ने कई युद्ध करके अपना राज्य सीमा  
को बहुत बढ़ा लिया था।

युद्ध में घनुष, बाप, चक्र, मुसल, सड़ा, मिण्डिभाल, मुशर, छुड, जारिका, यष्टि,  
कुठार, प्रास, वसि, फिनाक, पाला, कर्, तामर, पत्थर, शातहेति, तलवार, कुन्तक,  
प्रीत, सदवांग, लिलिर, फलक, पारुका तथा विष जूने-बाणों का प्रयोग होता था  
इन शस्त्रों की तालिका से ज्ञात होता है कि उस समय तक कई नवीन शस्त्रों के निर्माण  
हो चुके थे।

युद्ध हाथी पर बैठ कर होते थे<sup>१५</sup>। युद्ध प्रस्थान के समय मेरी, पटह, दुन्दुभो तथा  
पुरी बजा करती थी। गवय की सींग के बने बाजे का भी उल्लेख काव्य में आया है जो  
युद्ध प्रस्थान कालीन बाजा हुआ करता था<sup>१६</sup>।

कुछ पराजित राजा विजित राजा के प्रासाद तक चला करते थे। वहाँ विजयी  
राजा उनकी सम्पत्ति लूटा कर पुनः उन्हें उसी पद पर प्रतिष्ठित कर देते थे<sup>१७</sup>।

विजयीपरान्त राजा ब्राह्मणों को दान देता था तथा शिविर में वैश्याओं के नृत्य  
करवाता था<sup>१८</sup>। कैम ने विजय के लश्कार ऐसा ही किया था।

इस काव्य से केवल राजा कैम की वंशावली तथा उसके युद्धों के अतिरिक्त और कुछ  
भी ज्ञात नहीं हो पाता है। बंकी, परिषद जादि की व्यवस्था के विषय में भी कुछ  
नहीं पता चलता है। केवल एक स्थल पर महामात्य शब्द का प्रयोग हुआ है।

वामनभट्ट बाण के इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म एवं समाज की  
दृष्टि से पूर्ववर्ती कर्वाचीन गद्य-कवियों से पर्याप्त मात्रा में भिन्नता कवि के समय तक आ  
चुकी थी। वनपाल तथा जोह्यदेव के समय धर्म का अधिक मात्रा में प्रचार था, बौद्ध,  
जाविक जादि धर्मों की उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था-- ऐसा उनके काव्यों के  
अध्ययन से ज्ञात होता है किन्तु इस काव्य के रचयिता के समय चाविक बौद्ध एवं जैन धर्म

१- कैम० पृ० १५६	७- कैम० पृ० १३६	१३- कैम० पृ० १५४	१९- कैम० पृष्ठ २०६
२- " १६३	८- " १४२	१४- " १६२	२०- " १४२
३- " १५६	९- " ४	१५- " १२८	२१- " २०५
४- " २२	१०- " १४२	१६- " १२३	२२- " १२४
५- " १२८	११- " २४	१७- " १२६	
६- " १२६	१२- " १३८	१८- " १६१	



जादि गिर रहा था, हिन्दू धर्म उन्नत का शिखर पर था -- देना इस काव्य से प्रतीत होता है । इस कवि के समय विविध देवताओं एवं देवियों का उपासना हुआ करती थी किन्तु जापन में कोई विरोध न था । नारायण, शिव, कार्तिकेय, गणेश, हनु, व भगवती, दुर्गा, सभी लोगों की दृष्टि में श्रद्धा के विषय थे । देवी के उपासक शाक्त कहलाते थे । इन सभी देवताओं के मन्दिर हुआ करते थे । इन मन्दिरों में गरुड़ चिह्नित पताकारं लहराया करता था । दीपदण्ड होता था, वैदिका पाचांगुली से सुशोभित होता था<sup>१</sup>, पहले द्वार की भित्तियों पर दशावतार के कृत्तान्त चित्रित रहते थे, वहां पर बैठकर बैरवानस शूक्तों का उच्चारण करते थे, वहां तुलसीदल रहता था तथा वातावरण सुगंधि द्रव्यों से सुगन्धित रहता था, लोहे के निर्मित सालवलय पर ध्वजारं लहराता था<sup>२</sup> ।

राजा-महाराजाओं की ओर से मन्दिरों को दान भी मिला करता था<sup>३</sup> ।

मन्दिरों में ऋत हुआ करते थे । यज्ञों में यूप गाड़ा जाता था, वहां हरिण-धर्म बिल्लता था, अग्नि प्रज्वलित करके विविध वेदों के मंत्रों का उच्चारण होता था और सोम चढ़ाया जाता था । उस समय यज्ञ करने का अधिकार ब्राह्मणों को था । ये यज्ञ में नरबलि चढ़ाया करते थे<sup>४</sup> । देवी को पूजा मांस और मद्य से हुआ करती थी । वीर को ये उपास्य देवी होती थीं । उनकी दृष्टि में यही सर्वशक्तिमान हुआ करता था --  
'अस्यास्तु शक्तिरध्यास्य विरुन्निमुदंक्ष्यति प्रपंचसंभवम् । सत्कृष्णवर्तिष्ठुं विष्णुमाश्रित्य पुष्पाति भुवन-रक्षाम् । हरणाय ज्ञातामास्थाय रुद्रमुन्निद्राति<sup>५</sup> ।'

मदिरा चढ़ाने के साथ-साथ व्यक्ति देवी को पूजा करके स्वयं मदिरा भी पी लिए करते थे और सुख-सुख ही देखते थे । स्त्रियों भी वासवपान करती थीं । उस समय मदिरा को पीने के बताने वाला दण्डनीय समझा जाता था<sup>६</sup> । इन मन्दिरों में भी ऋत, यज्ञ, साम तथा अर्घ्य जादि का पाठ हुआ करता था<sup>७</sup> ।

इन मन्दिरों में भगवती का स्वरूप कानों में कुंडल, माथे में तिलक, मुण्डमाला तथा मुक्ताफलों की माला, बाहुओं में कैयूर, एवं मणिमय रत्नों से सजित चण्डाटक वामूषणों से अलंकृत रहता था<sup>८</sup> । उन देवी के समीप ही भयंकर रूढ़ पर दानव का शिर रक्ता रहता था<sup>९</sup> । इन मन्दिरों में अनेक गवादा हुआ करते थे, श्वेत ध्वजा लहराया

१- कैम० पृ० ४६

२- " ८

३- " १६३

४- " १३

५- कैम० पृष्ठ १८७

६- " १०६

७- " १८७-१८०

८- " १६०-१६१

९- कैम० पृष्ठ १६६

१०- " १८५

११- " १८५-१८६

१२- " १८३



करती थी, हाथों के दांत का बलिहार होता था और अन्तहार रत्नों से मरा होता था<sup>१</sup>।

विष्णु की मूर्ति चार भुजाओं से युक्त हुआ करता था जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म होते थे वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि, कमाला तथा उनका तैल दिलाया जाता था। चारों बाहुओं में कैयूर तथा प्रकौष्ठों पर शार्ङ्गधनु के बिहिन् दिलाए जाते थे<sup>२</sup>।

शिव के मन्दिरों में पत्थरों के नन्दी केल, महाकाल, मंगरीति, निकुम्भ, कुम्भीदर आदि शिव के प्रमुख गण तथा पास में गणेश और कार्तिकेय की मूर्ति भी रहती थी।

उस समय उन मन्दिरों में कहीं-कहीं शिव की मूर्ति ताण्डव नृत्य करती हुई भी होती थी। इन काव्य में उस मूर्ति के सम्बन्ध में जाया है कि वह नौली माला, डवर-उधर लिपटे सर्प, जटा में चन्द्र, त्रिशूल, तथा सदवांग शस्त्र को धारण किए हुए, झुक बजाते हुए तथा तीन नेत्र को धारण किए हुए निर्मित की गयी थी। लोगों की दृष्टि में यह देवता जनक, रत्नाक और संहारक थे<sup>३</sup>।

इन्द्र के मन्दिर में हाथी पर चढ़े हुए इन्द्राणी सहित इन्द्र की मूर्ति सोने की होती थी, जिनके ऊपर रम्भा, उर्वशी आदि अप्सरारं चंवर खिलाता हुई तथा द्वजिनके पास वज्र रक्ता हुआ दिलाया जाता था। इन्द्र की मूर्ति के कान में कल्याण मंजरी का कर्णाभूषण रहता था तथा धनुष भी समीप में रक्ता हुआ दिलाया जाता था<sup>४</sup>।

इन देवताओंके अतिरिक्त लोग कामदेव की भी आराधना किया करते थे।

इन मन्दिरों के वर्णन से स्पष्ट है कि उस समय लोग दुर्गा, शिव, विष्णु की तो पूजा करते ही थे, साथ ही गणेश, कार्तिकेय और इन्द्र की मूर्तियां भी बनाई जाती थीं जिनकी लोग पूजा किया करते थे। इन मन्दिरों के वर्णन से उस समय की मूर्ति निर्माण की कला के विषय में भी पता चलता है कि यह कला कितनी उन्नति पर थी।

इस काव्य से मूर्ति निर्माण कला के अतिरिक्त चित्रकला की उन्नति का भी पता चलता है। द्राक्षारामपुरी के वर्णन में जाया है कि ~~मूर्ति~~<sup>चित्र</sup> द्वार पर मिथुन चित्रित रहते थे।

द्राक्षारामपुरी के वर्णन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज शिक्षित था। लोग गद्य, पद्य और बन्धु काव्यों का अध्ययन किया करते थे। वेदों का अध्ययन मंदिरों में होता था। इसके अतिरिक्त शास्त्रों का पर्यालोचन, इन्द्रोविचिन्ति, निरुक्ता, शिल्प,

१- कैम० पृ० ११५

२- " १४१

३- " ८

४- " १४७-१४८

५- कैम० पृष्ठ ११०-११

६- " ११५

७- " ११४

८- " ११५

उ गौतम, भट्ट, प्रभाकर के मतों की विवेचना करने वाले, वेदान्त, वैशेषिक, नैयायिक मत को जानने वाले एवं अनुसरण करने वाले लोग हुआ करते थे। धर्मशास्त्र, सांख्य सिद्धान्तों का प्रणेता (बौद्ध) चाविक सिद्धान्तों एवं साहित्य से भी लोग अभिन्न न थे। अर्थात् की राजधानी सरस्वती का केन्द्र बसाई गई है।

इस काव्य में हिमालय के किंग्डम के लोग उत्तम बताए गए हैं। वहाँ की रीत का वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि रीतानी गोकर्ण पर्व के <sup>पर्व</sup> का क्वच और भासु के चमड़े का टोप पहनते थे तथा कटि में कुटज वृक्ष का बल्कल और शिर पर मयूर पंख धारण करते थे। जामुषणों में मुक्ता फलों से युक्त गुंजाफल की माला होती थी और इनके शस्त्र शक्ति, शंख, मिण्डिपाल और तोमर थे।<sup>३</sup>

इस काव्य के अध्ययन से लोगों के पद्मभस्म लगाने का भी पता चलता है। वर्णों की समुचित व्यवस्था थी। अधिकांश व्यक्ति वनादय, पुण्यकर्ता, राम्य एवं धर्म के पालक हुआ करते थे। कुछ विट भी हुआ करते थे। कुछ कामुक, तापस आदि का केश रस कर लोगों के घर घुस जाया करते थे। जुवारी के लिए पूत स्थान हुआ करते थे।<sup>६</sup>

उस समय के स्वर्णकार, नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहा, दुकानदार, सराब, मांस, माला आदि बेचने वाले हुआ करते थे। इसी उस समय के पैशों के विषय में ज्ञात होता है।<sup>७</sup>

जनता के मनोरंजनों के साधनों में एक साधन मेष, कुक्कुट और कर्पिंजल की लड़ाई भी थी।<sup>८</sup>

लोगों की दृष्टि में पुत्र-जन्म, पितृ-रूप से मुक्त होना समझा जाता था। अतः जिनके पुत्र नहीं होते थे वे देवाराधना से प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। पुत्र का नामकरण संस्कार धर्मज्ञ एवं वैदिक के सम्मुख हुआ करता था। उस समय पुत्र की रक्षा हेतु 'रक्षावलय' जामुषण उसे पहना दिया जाता था।<sup>९</sup> तीन वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ होता था।<sup>१०</sup> लोगों की दृष्टि में इस समय तक भी गन्धर्व विवाह मान्य नहीं था। राजा प्रोक्त 'जनन्ता के साथ विवाह शास्त्रोक्त विधि से करता है।<sup>११</sup> उसमें मुहूर्त निकाला जाता था। काव्य में वर्णित इस विवाह के प्रसंग से ज्ञात होता है कि उस समय मार्ग में चन्दन का छिड़काव किया जाता था, गवैय गान गाते थे, जामातु के मित्रों एवं साथ जाने वाले सभी लोगों को मणिमय भूषण और वस्त्र दिए जाते थे।<sup>१२</sup> इस वर्णन से स्पष्ट है कि जिस प्रकार वाजकल बरातियों का स्वागत किया जाता था उसी प्रकार उस समय भी हुआ करता था।

इस काव्य के अध्ययन से कुछ शहरों की वार्षिक सम्पन्नता के विषय में पता चलता है। त्रिलिङ्गी जनपद उसकी राजधानी अर्थात् और द्राक्षारामपुरी में तो काव्य के नायक-  
कैम का तथा उनके बंधुओं का राज्य था। अतः उसकी समृद्धता बताना कवि के लिए आवश्यक था। त्रिलिङ्गी जनपद में पनसफल, सरल, कर्णिक, तिलक, कवली, ताल, सहकार,

१-कैम०पु० ६	६- कैम० पु० १०१	१०- कैम०पु० ११५
२- १४	७- ११७	११- ११६
३- १६१	८- ११५	१२- ११-१२
४- १५	९- ११५	१३- ११ १४-१७
५- १६५		

गंग, लिङ्ग, नारंगी, लवंग, धुंवेर, जीरक, दाहिम, कारखेल कोऊता, पटौल, लोणु का उल्लेख हुआ है। इसी वहाँ पर इन वृक्षों की अधिकता थी— ऐसा ज्ञात जाता है। वहाँ पर मसूर, कुलुत्थ, सफेद मस, छोटी मटर एवं तिलों के सेतों का भी उल्लेख हुआ है जो वहाँ की विशेषता प्रतीत होते हैं।

वहाँ बादलों पर सेती अधिकांशतः निर्भर रहती थी एवं जुलाई हुआ करती थी<sup>३</sup>। मि उपजाऊ थी, धान्य की बहुलता थी, लौहा भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होता था। जड़े घोंड़े तथा गी भी अधिक वहाँ थे<sup>४</sup>।

काव्य में अदक की बाजारें बहुत समृद्ध तथा बड़ी कताई गड़ हैं जो मुक्ताफल, इमराग, इन्द्रनील तथा गरुत्मणियाँ से, अनन्त शंखों से तथा गुण्णित द्रव्यों से भरी होती थी। गुण्णित द्रव्यों में केसर की मात्रा अधिक थी<sup>५</sup>।

वहाँ ऊँचे-ऊँचे मत्तवारण तथा पराङ्गी हाथी होते थे। विविध प्रकार के वस्त्र बना करते थे। काव्य में ऊनी, नेत्र, धाम, बीनांशुक कपड़ों का उल्लेख हुआ है— नेहारांशुचिभिरुणनाभतन्जालैः, निर्माक निर्भनेत्रैः, कदलीगर्मदलकौमलैः क्षोभैः, नैःस्वासाहायैश्चीनांशुकैः।<sup>६</sup>

काव्य में कपड़ों का रंग नीला, श्वेत, मुरा, लाल, ईश्वरीय (कणिकारकेसरगौरैः), तैतिर वैह की कान्ति के सदृश तथा काला हुआ करता था<sup>७</sup>।

जामुषणों में मणिमय नूपुर, करधनां, मोतियों के हार, मङ्गराग मणि के मणिधुषण, कान, बलय तथा नाक के जामुषण हुआ करते थे। पूर्ववर्ती काव्यों की गति इस काव्य में भी हाथी के जामुषणों में नक्षत्रमाला का उल्लेख आया है।<sup>८</sup> शिकारी कुले के गले में सोने की जंजीर तथा बड़ी-बड़ी मोतियों की माला पड़ी रहती थी<sup>९</sup>।

राजाजी के घोंड़े को लाम सौने की हुआ करती थी<sup>१०</sup>। पर्याणक भी सोने का हुआ करता था। सौने के कल्ल से राजमार्ग पर छिड़काव हुआ करता था<sup>११</sup>। काव्य में कनकमय घटीयन्त्र का भी उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय घटीयन्त्र हुआ करते थे<sup>१२</sup>।

सौष भी विविध वैभवों से सम्पन्न कताए गए हैं। दक्षिण को विष्णुसिंह नगरी के वणन से ज्ञात होता है कि वहाँ के प्रकार ऊँचे तथा स्वणिम थे। सीढ़ियाँ स्फटिक मणि मय होती थीं, वहाँ की पालकी इन्द्रनील मणि सजित थीं। श्वेत जातपत्र होते थे जिनके दण्ड पर विष्णु लगे रहते थे<sup>१३</sup>।

१- वैम०पु० ६-७	६- वैम०पु० १४	११- वैम० पु० १७३	१६-वैम० पु० २०
२- " ७	७- " १२	१२- " १७७	१७- " २०७
३- " ७	८- " ४६	१३- " ३०	१८- " २०८
४- " ६-१०	९- " ४६	१४- " ४४	१९- " ६३
५- " १०	१०- " ८१	१५- " १२६	२०- " ८०

वहाँ के बौद्धकागार के वर्णन से भी वहाँ की समृद्धता का पता चलता है । सोने के स्तम्भों में निर्मित जपारा सदृश सुन्दर शाल्यंजिकार्ये तो थीं ही साथ ही कवि ने वहाँ सोने के वृषा की भी कल्पना की है -- त्वचित्कनकममही रुह प्राकृतिः<sup>१</sup> ।

इस काव्य में कांची की भी समृद्धता का वर्णन है । वहाँ के ऊँचे-ऊँचे प्रासाद, स्फटिक मणि निर्मित ऊँचे साल, उन्नील मणिमय भवन, यदमरागमणि सञ्चित तोरण मुक्तामय सीध, महानीलमणियाँ से सञ्चित कनकमय श्रीडापर्वत, लहराती हुई ध्वजारं वर्णि है ।<sup>२</sup> इस वर्णन में यद्यपि अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है किन्तु इससे जना स्पष्ट हो जाता है कि लोगों की दृष्टि में कांची एक समृद्ध देश समझा जाता था ।

कैम के राज्य में स्थित द्राक्षारामपुरी के वैभव वर्णन में भी अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है किन्तु उस शक्तिशाली राजा के राज्य की समृद्धता के विषय में कोई तन्देह नहीं कर सकता । वहाँ ऊँचे-ऊँचे गौपुरों में मणियाँ सञ्चित होती थीं, ध्वजारं लहराती थीं, तथा स्फटिकमणिमय प्रासाद होते जिसे निरन्तर काळा गु धूप जलता था । वहाँ श्रीडापर्वत भी हुआ करते<sup>३</sup> ।

राजाओं के स्थान मण्डपों में मणिमय सोपान होते थे, जवशाला, कुंभियाँ एवं वैक्रमारियाँ से अधिष्ठित राजमन हुआ करते थे<sup>४</sup> ।

राजकुमारियों के साथ में वातायन के समीप वैदिका में चन्द्रकान्त मणि सञ्चित रहती थी ।<sup>५</sup>

राजसी ठाट के अतिरिक्त इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय सामुद्रिक यात्राएं होती थीं । भ्रानपात्रों में सोना, मणि, घुसुण, कपूर, कस्तूरिका, बंजर चन्दन, धन आदि लेकर अन्य राजा उपहार के स्वरूप में भेजा करते थे ।

इस काव्य में बाणों में काहल, पैरो, पट्टे आदि का नामोल्लेख तो है ही साथ ही पर्वतीय सेना के बीच युद्ध के समय बजने वाले गवय की जींग से निर्मित बाजे का भी उल्लेख है ।

इस प्रकार वामनभट्ट बाण के इस काव्य में उस समय की तात्कालिक स्थिति एवं अन्य देशों के विषय में होने वाली लोगों की धारणाओं का पता चल जाता है । उस समय पर्वतीय सेना किस प्रकार लड़ती थी तथा किस प्रकार सामुद्रिक युद्ध हुआ करते थे, युद्ध के लिए जाते समय मार्ग में किस प्रकार की बाधाएं पड़ती थीं, धर्म का स्वरूप क्या था, विद्या किस कोटि पर थी, वार्षिक सम्पन्नता किस सीमा पर थी -- सभी का परिचय होता है ।

१-	कैम० पु० ६६
२-	१४४
३-	१६२
४-	१७०
५-	७४
६-	१३७

७-	कैम० पु० १३६
८-	३७
९-	१२३
१०-	११४
११-	१६१

रामकथा--

उब तक के गद्य-काव्यों से पाठक को कवि के समय की विविध स्थितियों के विषय में ज्ञान मिल जाता था किन्तु रामकथा तथा जायक-विलास जैसे गद्य-काव्यों से इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो पाता है। इन दोनों के रचयिताओं का प्रवृत्ति विविध परिस्थितियों के निरूपण करने की ओर नहीं परिलक्षित होती है।

रामकथा में वासुदेव ने लोक प्रसिद्ध राम की कथा ली है किन्तु उससे न कवि के समय की किसी प्रकार की परिस्थिति का और न नायक राम के हो समय की स्थिति का परिचय मिल जाता है। केवल प्रारम्भिक एवं अन्तिम श्लोकों से कवि के वाच्यदाता एवं कवि के विषय में थोड़ा-सा ज्ञान हो जाता है। इसमें कवि का वाच्यदाता जादित्यवर्मा बताया गया है ६ जो राज्या का रक्षक, विद्वान्, शत्रुविजयो, यशस्वी था। उसके लिए 'नरलोकवीर' शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐतिहासिकों का कहना है कि यह 'नरलोकवीर' जादित्यवर्मा की उपाधि थी --

सतां परिव्राणपरः सुषेवा

जितारिषड्वर्गं तथा महोयाद् ।

विभ्राजते विभूतविक्रमश्री -

रादित्यवर्मा नरलोकवीरः ॥२॥

धिराय रक्षोपामेन कुर्वद्

गुर्वी मुद् यः सुनोक्तानाम् ।

महीजगदीशं चित्तपुण्यकीर्ति-

रामोदते राम इव प्रकामम् ॥ ३॥

कवि ने स्वयं कहा है कि उसने इस काव्य की रचना इंगो राजा की आज्ञा से की थी। २

'जादित्यवर्मनृपतेः कृतिना निवेशाद्' वाक्य से पता चलता है कि जादित्य वर्मा साहित्य प्रेमी भी था।

कथा में तत्र तत्र परिवर्तन से ज्ञात होता है कि कैरल में प्रचलित रामकथा हथर की रामकथा से कुछ भिन्न हुआ करती थी। क्योंकि इस काव्य में लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाग कान तब काटे जब सीता ने शूर्पणखा के बार - बार एक बार राम के पास और एक बार लक्ष्मण के पास जाने से उसकी हंसी उड़ायी थी और शूर्पणखा अपना असली रूप दिखा कर उस पर कपटो थी १

क्योंकि नारी कथा लंकापुरी का वर्णन कवि ने किया अवश्य है किन्तु उससे न उन दोनों नारों का और न उस समय की आर्थिक सम्पन्नता का पता चल पाता है।

१- रामकथा पृष्ठ १

२- " २

३- " ५२

४- " १६

इस प्रकार इस काव्य से किसी भी स्थिति का विशेष जानकारी नहीं हो पाती है ।

### जायकविलास--

जायकविलास नामक गद्य-काव्य से भी उस समय की किसी भी प्रकार की परिस्थिति के विषय में पाठक अवगत नहीं हो पाता । काव्य में केवल दो राजा जायकशां और शाहजहां हैं । कवि ने उनके गुण भी जो बताए हैं वे केवल कवियों की परम्परा का अनुसरण करते हैं । काव्य के अध्ययन से केवल इतना ही पता चलता है कि शाहजहां जायकशां से कश्मीर मिलने गया और शाहजहां ने अपने आश्रित तथा इस काव्य के रचयिता को 'राय' तथा पंडित-राज की पदवी से विभूषित किया था ।

इस काव्य में हरित जीन अश्व सेना का वर्णन अवश्य हुआ है किन्तु उसका भी कवि परम्परानुसार ही वर्णन है ।

इस काव्य से किसी नगरी आदि का वर्णन न होने के कारण आर्थिक सम्पन्नता का भी परिचय नहीं मिल पाता है । कश्मीर का वर्णन अवश्य है किन्तु उस वर्णन में वहां की किसी भी ऐसी बात का वर्णन नहीं हुआ है जिससे उस देश की विशेषता के सम्बन्ध में कुछ मालूम हो सके ।

इस प्रकार इस काव्य का भी सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से कोई भी मूल्य नहीं रह जाता है ।

इस प्रकार इन समस्त जायकविल्लास गद्य-काव्यों का सांस्कृतिक दृष्टि से पर्यालोचन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि प्रायः सभी कवियों ने अपने काव्य में राजाओं की एक योग्य शासक के रूप में चित्रित किया है, उनको प्रजाओं की धार्मिक, प्रकृति, सहिष्णु तथा उदार आदि बताया है और उनके नगरों को धन धान्य की दृष्टि से दुबैर नगरी से समता करते हुए वर्णित किया है । इसीलिए सभी काव्यों में इन सब का वर्णन एक-सा मिलता है । अतः ऐसे वर्णन उस समय की सांस्कृतिक स्थिति के विषय में ज्ञान कराने में विशेष सहायक नहीं बन पाते हैं । किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कवि एक सामाजिक प्राणी है और वह अपने समाज और आसपास के वातावरण से किसी प्रकार से अलग नहीं रह सकता है अतः उसके काव्य में उन सब का प्रभाव पड़ना स्वभाविक है । यही कारण है कि इन काव्यों में एक से वर्णन मिलते हुए भी पाठक उस समय की स्थितियों का अनुमान लगा लेता है ।

इन कवियों के काव्य में यद्यपि कई काल्पनिक राजा तथा उनके राज्यों के वर्णन मिलते हैं, उदाहरणार्थ तिलकजरी में ही विजयार्थगिरि का गगनबल्लभ, वेतादय पर्वत का रघुपुर कब्राल तथा इसी प्रकार के न जाने कितने राज्य बरस हैं किन्तु उनसे भी राजनीतिक स्थिति के विषय में थोड़ा-सा प्रकाश पड़ जाता है । कुछ किस प्रकार होते थे, शस्त्र एवं अन्य विविध कलाओं की उन्नति, शिखर पर थी, रीति रिवाज आदि क्या थे आदि की भी थोड़ी-बहुत जानकारी उनके काव्यों से हो जाती है ।

जर्वाचीन गद्य-काव्यों में कुछ ऐसे भी गद्य-काव्य हैं जो इस प्रकार को मानगो प्रसंगत नहीं करते । उनके उदाहरण जैसा कि देला जा चुका है, वासुदेवकृत रामकथा तथा जगन्नाथकृत बालकविलास हैं । वासुदेव के काव्य से तो फिर भी उसके आश्रयदाता राजा के सम्बन्ध में पता चल जाता है किन्तु पंडितराज के काव्य से वह भी नहीं शत हो पाता किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इस दृष्टि से उनका काव्य न माना जाय क्योंकि कवि कोई शैलिसिद्ध तो होता नहीं है जो अपने समय को समस्त स्थितियों को विवेचना करे अथवा उसका कार्य काव्य-रचना करना तथा उसको जो उग से पाठक के लक्ष्य उपस्थित करना होता है कि पाठक उगी के अध्ययन में लगे जाय, उसी में विभोर हो जाय और ये समस्त विशेषताएं उन दोनों काव्यों में उपलब्ध हैं ।

अष्टम अध्याय

उपसंहार

-०-



## उपसंहार

प्रस्तुत शोध को दो भागों में विभाजित करके पहले उसमें काव्य के स्वरूप का निर्धारण किया गया है तत्पश्चात् गद्य-काव्य के स्वरूप की विवेचना की गयी है। चूंकि हमारे गद्य-काव्य का विषय-अर्थात् प्राचीन गद्य-काव्यों का समीक्षात्मक अध्ययन है अतः उन गद्य-काव्यों का विशेष अध्ययन किया गया है। उन कृतियों के साहित्यिक मूल्यांकन के लिए प्राप्त प्राचीन गद्य-कृतियों जो काव्य के नाम से अभिहित हैं-- वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरित तथा दशरुमारचरित, <sup>उनसे</sup> ~~के~~ ~~काव्य-रचना~~ ~~की~~ ~~दृष्टि~~ ~~से~~ ~~प्रभाव~~ ~~उत्पन्न~~ ~~हो~~ ~~गया~~ ~~है~~। प्राचीन गद्य-कवि उन्हे कितने प्रभावित हुए हैं उसकी यथारम्भव विवेचना विविध अध्यायों में हुई है।

इसमें सन्देह नहीं कि गद्य-काव्य की रचना सब कवि नहीं कर सकते, कोई विशेष ही कवि हुआ करते हैं। क्योंकि इसकी रचना पद्य-रचना से अत्यन्त भुङ्कर होती है। पद्य-कवि हन्दों के नियमों से बंधा रहता है उससे यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो वह हन्दों पर डाल दी जाती है किन्तु गद्य-कवि के लिए ऐसा सम्भव नहीं होता। उसकी रक भी त्रुटि साम्य नहीं होती। तभी तो पं० बलदेव उपाध्याय ने पद्य-कवि की फिर बह झुक छूट से और गद्य-कवि की उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाले पदों से उफा दी है। गद्य-कवि के लिए हन्दों के नियमों का अभाव होने से उसे काव्य के प्रांगण में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने तथा काव्य-प्रतिभा के निस्तार करने के अधिक अवकाश प्राप्त होते हैं किन्तु सभी कवि उस क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस नहीं रखते हैं। यही कारण है कि संस्कृत-साहित्य जगत् में गद्य कृतियाँ तो अनेक मिल जायेंगी किन्तु गद्य-काव्य के नाम से अभिहित होने वाली संख्या अत्यन्त अल्प है।

यद्यपि पार्श्ववात्य विद्वानों ने संस्कृत-साहित्य के इतिहास लिख कर संस्कृत-साहित्य की महती देन दी है किन्तु एक प्रकार से उनकी प्रवृत्ति ग्रीक साहित्य की अत्यधिक उन्नत-पूर्ण स्थिति में विज्ञाने की रही है। जिस प्रकार उन्होंने नाटक आदि को ग्रीक साहित्य से प्रभावित होना तथा भारतीयों का ग्रीक-साहित्य से नक्षत्रविद्या (ज्योतिष-विद्या) की सीखना बताया है, उसी प्रकार से उन्होंने गद्य-काव्य को भी बताया है। उनके इस प्रकार के भ्रम का कारण संस्कृत तथा ग्रीक दोनों गद्य-काव्यों में स्वप्न देत कर भ्रम उत्पन्न होना, स्वयम्बर, प्रेमियों का पत्र-प्रेषण, मूर्च्छा, लम्बे विलाप, उपकथा, प्रकृति-वर्णन, अनुप्रास आदि अलंकारों के प्रयोग तथा प्राचीन विद्वानों का निवेशन आदि मिलना है। किन्तु इस प्रकार के विचारों का लपट उनहीं विद्वानों ने दोनों की सम्यक्ता तथा साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर मान कर कर दिया। स्फ० लोकेटे जैसे विद्वानों ने तो यहां तक

कहना शुरू कर दिया था कि ग्रीक गद्य-काव्य भारतीय बृहत्कथा से प्रभावित है। इस विषय में उन्होंने दोनों को समानताएँ दिखायीं।

वस्तुतः यदि देखा जाय तो दोनों गद्य-काव्यों के साहित्यिक रूप में पर्याप्त अन्तर है। भारतीय गद्य-काव्यों में विशेष रूप से 'वर्णन' की प्रधानता मिली हुई है जब कि ग्रीक गद्य में 'कथा' की। यही कारण है कि यहाँ पर गद्य-काव्यों का आकार बृहद हो जाता है।

यद्यपि कथा-साहित्य में भी एक कहानी के अन्दर कई कहानी कहने की प्रवृत्ति होती है, रसास्वादन होता है, यत्र तत्र काव्य का सम्पत्तियों का सम्यक् निर्वह मिलता है किन्तु कथा-साहित्य और गद्य-काव्य इस दृष्टि से एक नहीं हो जाते क्योंकि कथाकार और कवि होने के कारण दोनों के उद्देश्य भिन्न हो जाते हैं। कथाकार का मुख्य उद्देश्य केवल कहानियाँ लिखकर उपदेश देना होता है और गद्य-कवि का मुख्य उद्देश्य सहृदय को रसास्वा करना और गाँज उद्देश्य उपदेश देना होता है। क्योंकि काव्य-रचना के उद्देश्यों से 'कान्तसंभितितयोपदेशयुजे' भी माना गया है।

गद्य-काव्य के वर्णन-विषय एवं शैली बम्पू-साहित्य से भी मिलती है किन्तु दोनों में पद्यों के प्रयोग की दृष्टि से महदन्तर है। गद्य-काव्य में केवल मुख्य रूप से वक्त्र, अपरवक्त्र और जायाँ हन्दी की ही स्थान मिला हुआ है और किसी प्रकार के हन्द् ग्राह्य नहीं है परं अम्बिकादत्त व्यास ने अवश्य इन हन्दी के अतिरिक्त अनुष्टुप, छार, चर्चरी, त्रिमंती, पादाकुलक, रौत्ल और उल्लाहा जादि हन्दी की भी गद्य-काव्य में ग्राह्य बताया है। किन्तु संस्कृत आचार्यों ने गद्य-काव्य में तीन ही प्रकार के हन्दी की ग्राह्य बताया है। बम्पू में पद्यों का रूप निश्चित नहीं रहता है। इसमें गद्य-पद्य दोनों का समान स्थान रहता है, दोनों ही कथावस्तु में सहायक होते हैं, एक के अभाव में कथावस्तु का समझना दुष्कर हो जाता है। अतः बम्पू कवि जो उत्साह गद्य के प्रयोग में दिखाता है वही उत्साह पद्य के प्रयोग में भी दिखाता है।

इन गद्य-कवियों की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। विशेष रूप से इन कवियों ने अपना आवर्ष बाण की ही बताया। उनकी कथावस्तु के विकास में बाण का स्पष्ट प्रभाव परिच्छिन्न होता है।

जिस प्रकार बाण ने प्रारम्भ में देव स्तुति, साधु की प्रशंसा जादि का उल्लेख किया है वही ही प्रवृत्ति कनपाल, जीह्यदेव और वामनभट्टबाण में मिलती है। राजधानी, राजा, राजाजी की महिषी, उनकी शासन-व्यवस्था का चित्रण, प्रकृति दृश्यों के निरूपण के प्रति उत्साह जादि पूर्वकृतियों की भाँति यहाँ भी देखने को मिलता है। पुत्राभाव भी कभी नायक-नायिका के जन्म में देवी कृपा, उनकी शिदा का व्यवस्था, दिग्बिजय के लिए प्रस्थान करना, नगरवासियों का राजाजी अथवा राजकुमारों को देखने के लिए उत्सुक होकर कड़ना एवं उस समय होने वाली उनकी व्यवस्थाओं का चित्रण भी

हुआ है। ये कवि द्वारा दृष्ट महाकवेता तथा महाकवेता द्वारा दृष्ट उपदरीक का घटना से बहुत अधिक प्रभावित है। धनपाल ने अपने काव्य में प्रथम घटना को स्थान दिया है। हरिवाहन अदृष्टपारा नामक शरीर में पहुंचकर प्रिय स्मरकेतु के वियोग में तपस्विनी वेश धारण करके तपस्या करता हुई मलयसुन्दरी को देखता है। और वामनभट्ट बाण ने बाण की दूसरी घटना को राजा प्रीतल और अनन्ता के एक-दूसरे के दर्शन कराने में स्थान दिया है। पान के बोझा देने की घटना से मा धनपाल प्रभावित हुए हैं।

ये कवि बाण के अतिरिक्त सुबन्धु से भी प्रभावित है। जिस प्रकार वासवदत्ता में की डाशुक संदेश ले जाता है तथा उमें आत्महत्या का प्रसंग आया है उन्ही प्रकार गद्यचिन्तामणि तथा तिलकमंजरी में आया है। गद्य चिन्तामणि में शुक गुणमाला के संदेश को ले जाता है और तिलकमंजरी में शुक हरिवाहन का संदेश उसके पास ले जाता है। तिलकमंजरी में ही आत्महत्या का प्रसंग आया है और वह भी तीन बार। किन्तु कवि ने यहाँ सुबन्धु की भाँति आकाशवाणी नहीं करवाई है। श्रपितु स्मरकेतु की चिट्ठी पाकर मलयसुन्दरी को इस कुर्म से बताया है। कवि का यह प्रसंग वासवदत्ता के इस प्रसंग से कहीं अधिक आकर्षक हो गया है। सुबन्धु की आकाशवाणी का ग्रहण वामनभट्ट बाण ने किया है किन्तु आत्महत्या के प्रसंग से बचाने के लिए न करके राजा प्रीतल की भावाभिव्यक्ति के लिए किया है।

दण्डी के काव्य में जैसे अद्भुत घटनाओं का वर्णन है वैसे तिलकमंजरी में न जाने कितनी आश्चर्यमय घटनाएं घटित हुई हैं। वह एक जादू की पिटारी-सी लगने लगती है दशकुमार चरित में दस राजकुमारों की जला-जला घटनाएं हैं और वे उलझी हुई नहीं हैं किन्तु तिलकमंजरी की सारी कहानियाँ एक-दूसरे में उलझ गयी हैं। बाण की भाँति इसमें एक जन्म की कथा नहीं है।

शृंगारमंजरी में <sup>कथा</sup> वैश्याजों से सम्बन्धित जला-जला कहानियाँ होने के कारण तथा गद्यचिन्तामणि में जीवंबर के विवाह से सम्बन्धित जला-जला आठ कहानियाँ होने के कारण ये दोनों कृतियाँ दण्डी के दशकुमारचरित से अधिक समता रखती हैं। भोज की शृंगारमंजरी <sup>कथा</sup> तो विशेषरूप से दण्डी से ही प्रभावित है।

इन अर्वाचीन गद्य-कवियों पर पूर्ववर्ती गद्य-कवियों के अतिरिक्त पूर्व महाकवियों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है उनमें महाकवि कालिदास तथा भवभूति हैं।

यद्यपि ये कवि पूर्ववर्ती गद्य-कवियों एवं पद्य-कवियों से प्रभावित हुए हैं किन्तु उनके काव्यों के अध्ययन से उनकी मौलिकता का भी पता चलता है। कहीं-कहीं पर उन्हीं वर्ण्य-विषयों की अद्वितीय रूप से प्रस्तुत करके कवियों ने अपनी काव्य-प्रतिभा का

परिचय दिया है, वर्णन-प्रसंग को सरल बनाया है।

इन गद्य-काव्यों के अध्ययन से यह भी ज्ञात हो जाता है कि इनमें से कुछ काव्यों के कथानक काल्पनिक हैं, कुछ के ऐतिहासिक और कुछ के रामायण एवं पुराणों से गृहीत होने के कारण उनसे भी सम्बन्धित हैं। तिलकर्मजरी को पुराण कथा काल्पनिक तथा विषाधर लोक से सम्बन्धित है। शृंगारमंजरी में कथाओं को कथानियां काल्पनिक हैं किन्तु नगर तथा राजाओं के नाम ऐतिहासिक प्रतीत होते हैं। वेदभूपाल वरिष्ठ की कथावस्तु ऐतिहासिक ही है। अर्वाचीन गद्य-काव्यों में उम्का बने स्थान है जो प्राचीन गद्य-काव्यों में बाण के हर्ष-वरिष्ठ का। गंडितराज जगन्नाथ ने यद्यपि एक प्रकार से कथावस्तु के प्रति उदात्त भाव रखा है किन्तु उन्होंने भी जो कुछ कथा रूनी है वह अपने आश्रयदाता से सम्बन्धित करके। रामकथा को कथावस्तु से जैना कि, स्पष्ट है वह रामायण से ली गयी है। गणविन्तामणि को कथा पौराणिक है।

अर्वाचीन गद्य-कवि कथावस्तु के विकास करने में बाण से तो प्रभावित हैं हां साथ ही उनकी शैली से भी बहुत प्रभावित हैं। विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति, विशेषण विशिष्ट, दीर्घस्माराच्छन्न वाक्यों की कथा वहाँ किसी भी प्रकार नहीं है। बाण ने अपनी शैली में संकुचन रखा है। अर्थात् जहाँ उन्होंने दीर्घ वाक्य रूनी हैं वहाँ मरिचक को आराम देने के लिए लघुकाय वाक्यों का प्रयोग दिया है। गली कारण है कि उनके वर्णन के प्रारम्भ में दीर्घ स्माराच्छन्न वाक्य मिलते हैं, मध्य में उतने स्मारा नहीं रह जाते हैं और अन्त तक स्मारा का प्रायः अभाव ही हो जाता है। किन्तु इन गद्य-कवियों में शैली विशेषता प्रायः बहुत कम पैराने को मिलती है। वे वादि से अन्त तक स्माराच्छन्न दीर्घ वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं जिससे वर्णन-प्रसंग अत्यन्त क्लिष्ट हो जाते हैं। उस प्रकार की शैली युद्ध-वर्णन बीमत्सु नादि के वर्णन के लिए तो उपयुक्त हो सकती है किन्तु सर्वत्र नहीं। किन्तु इन कवियों ने गद्य-काव्य का प्राण <sup>तन्त्र</sup> <sup>ने</sup> तन्त्र <sup>ने</sup> वाञ्छुण तथा समान मान कर उसका एक प्रकार से दुर्योग ही दिया है। कहीं-कहीं पर उनकी इस प्रकार की शैली उस के आस्वादन कराने में भी बाधक बन गई है। उदाहरणार्थ करुण प्रसंग में यह शैली प्रशंसनीय नहीं मानी गई है किन्तु इन कवियों ने वहाँ पर भी इसका प्रयोग किया है। बाण की इस स्माराच्छन्न शैली ने इन कवियों को इतना अधिक प्रभावित किया है कि वे इसके अपमाने के मोह को किसी प्रकार छोड़ नहीं सके हैं। धनपाल वैदर्भी रीति को श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु उनके काव्य में प्रथम शैली का रूप ही अधिक दितायी देता है। यह

अवश्य है कि श्लेष को श्लिष्टता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है।

कवियों ने उपर्युक्त शैली का अधिकांशतः प्रयोग वर्णन प्रधान स्थलों में किया है किन्तु जहाँ उपदेश देना अथवा भावों को अभिव्यंजना कराने हुई है वहाँ उन्होंने वैदर्भी शैली में सर्व उनके प्रगाढ़गुण को स्थान दिया है। समासान्धन शैली को अपेक्षा कवि इस शैली के प्रयोग में अधिक सफल हुए हैं। यत्र तत्र मध्यमात्मा शैली पा मिलती है। अर्वाचीन गद्य-कवियों में वासुदेव ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपना पूरा काव्य वैदर्भी शैली में ही रचा है, स्थाय स्थलों पर ही समास्युक्त दीर्घ वाक्य मिलते हैं।

बाण जो एक प्रकार से गद्य-काव्य के जन्मदाता हैं उन्होंने गद्य-काव्य का समासा, अस्मासा और उल्लासा शैली को ही श्रेष्ठ माना है, श्लोकमन्वित शैली को नहीं। किन्तु ऐसा कि इन अर्वाचीन गद्य-कवियों को शैली के जन्तगत देना जा चुका है कि इन कवियों ने अपने काव्य में इस शैली का भी बहुत प्रयोग किया है। इन काव्यों में यद्यपि पद्यों की बहुलता है किन्तु उन्हें बन्धु काव्य नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि यहाँ पद्य कथावस्तु के विकास के गहायक न होकर भावों को अभिव्यंजना अथवा सौन्दर्य निरूपण में हुए हैं जब कि बन्धु में ऐसा कि देता जा चुका है कि पद्यों का प्रयोग इन स्थलों के अतिरिक्त कथावस्तु के विकास में भी होता है।

बाण की भांति अपनी शैली को अलंकृत बनाने के लिए इन कवियों ने अलंकारों का भी प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में किया है। उनके आवाद रूप केवल वासुदेव कवि ही कहे जा सकते हैं। अलंकारों में बली उपमा, उत्प्रेक्षा, हफक, विरोधाभास, व्यतिरेक, संदेह, समासोक्ति, श्लेष, समक, अनुप्रास, विशेषोक्ति आदि कुछ विशिष्ट अलंकारों का प्रयोग हुआ है। उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकारों के प्रति सभी कवियों का मोह परिलक्षित होता है। कुछ ही स्थलों को छोड़कर इनके अलंकारों में आयी कल्पनाओं में नवीनता मिलती है। श्लिष्टोपमा और हफक अलंकारों के प्रति अत्यधिक मोह वामनभट्ट बाण की रचना में मिलता है। परिस्थिती अलंकार का प्रयोग कवियों ने किया है किन्तु अधिक नहीं। अर्वाचीन गद्य-कवियों में केवल वनपाल को श्लोकमन्वरी में ही अलंकार की अधिकता मिलती है। इन कवियों ने इन अलंकारों का प्रयोग प्राकृतिक दृश्यों के निरूपण, पात्रों के सौन्दर्य एवं स्वभाव चित्रण तथा रसों को अभिव्यक्ति कराने में किया है और ऐसा कि मोह देता जा चुका है कि उन्हें इस विषय में पर्याप्त मात्रा में सफलता भी मिली है।

रसों के निरूपण में भी इन कवियों को कम सफलता नहीं मिली है। काव्य का प्राणतत्त्व 'रस' होने के कारण इन कवियों ने इसकी चर्चणा कराने में विशेष उत्साह दिखाया है। इन कवियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनके काव्यों में शृंगार, वार, प्रवृत्त,

बोधत्व, भयानक, राँद्र -- वादि रस है किन्तु कवियों को विशेष रुचि शृंगार रस के निरूपण में रही है। जिन गद्य-कवियों ने वीर रस को अपने काव्य का प्रमुख रस बना है उन्होंने भी इस रस का विस्तार के साथ सम्यक् निरूपण किया है। बोधत्व रस की वर्णना वीर रस के आश्वादन तथा भयानक रस के आश्वादन के समय अधिकांशतः होती है। राँद्ररस भी वीररस का एक कवर काया है। रसों के अतिरिक्त इन काव्यों में भावों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना हुई है। इस दृष्टि से ये गद्य-काव्य बाण आदि पूर्व गद्य-कवियों से किसी प्रकार कम नहीं कहे जा सकते। यह बात अवश्य है कि इन गद्य-कवियों में रस की अक्षफला के यत्र तत्र काथ उदाहरण मिलते हैं। 'आसक-विलास' में काव्य केवल सुन्दरवर्ण योजना को ही जोर कवि का ध्यान है, वहाँ पर इस तत्व का सामान्यतः उपेक्षा हुई है। रामकथा में इस तत्व को उपेक्षा नहीं कही जा सकती किन्तु उसमें कवि को काथ स्थल छोड़कर अक्षफला मिली है -- ऐसा ही कहा जायगा।

इन गद्य-काव्यों में प्राकृतिक दृश्यों की भी खनता मिलती है। उपवन, वन, सरोवर, समुद्र, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि का वर्णन यहाँ भी मिलता है और कवियों ने उनके वर्णन में अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। महाकाव्यों की भाँति प्राकृतिक दृश्यों का अत्यधिक मात्रा में निरूपण यहाँ भी मिलता है। इन कवियों ने प्रकृति को स्वतंत्र तथा उदोपन दोनों रूप में लिया है। उदोपन रूप का ग्रहण रस को सुभिका के रूप में अधिक किया गया है। इसके अतिरिक्त इन काव्यों में प्रकृति कभी शिदिका के रूप में कभी सहचरी के रूप में, कभी सेविका के रूप में, कभी दण्ड-विधातृ के रूप में तथा मानव की भाँति अन्य कार्य करती हुई आई है। प्रकृति की विविध-रूपता<sup>में</sup> इनके काव्य में सौन्दर्य जा गया है। शैली के कारण यद्यपि इन कवियों के इस प्रकार के स्थल अलक्ष्य अवश्य ही गए हैं किन्तु उससे कवि का प्रकृति-विषयक प्रेम तथा प्रकृति की विविध रूपता से उत्पन्न सख्य आकर्षण में किसी प्रकार की कमी नहीं परिलक्षित होती।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में ये कवि अधिक सफल नहीं कहे जा सकते। कुछ ही कवि सफल हुए हैं। क्योंकि इन कवियों में गुणानुवाद करने की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है और उन गुणों को क्रियान्वित रूप देने में कम, जिससे उनके चरित्रों का मुख्यांकन किया जा सके। वामनभट्ट बाण के इतने बड़े गद्य-काव्य में केवल राजा प्रोल्ह, नायक वैश तथा प्रोल्ह की मछिणी का ही चित्रण सम्यक् प्रकार से हुआ है। अधिकांशतः इन गद्य-कवियों ने पात्रों में आदर्श गुणों की कल्पना की है और उनके आवरणों का तदनुकूल वर्णन किया है। सब पात्रों को रखकर नायक के चरित्र की



जहाँ उठाने का प्रयत्न किया गया है तथा कर्म पर धर्म का विषय बताया गई है।  
 शृंगारमंजरी<sup>कथा</sup> में इस प्रकार के पात्र नहीं मिलते हैं। उसका विषयक्षेत्र ही भिन्न है।  
 उसमें कवि ने व्यतिरिक्त-मुखीन कथायार्थों से सावधान होने का संकेत किया है। उन्होंने  
 अपने काव्य में कथायार्थों, उनकी मालाओं एवं उनके सम्पर्क में जाने वाले पात्रों को लेकर  
 निम्नकोटि के समाज का स्वीय चित्र खींचा है। चरित्र-चित्रण विषयक सफलता भोज  
 तथा धनपालको अधिक मिली है। औपदेव नायक की अपेक्षा सलनायक के चित्रण में  
 अधिक सफल हुए हैं।

जहाँकीन गद्य-काव्यों में कुछ न गद्य-काव्य सांस्कृतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।  
 उनसे देश की स्थिति, समाज की स्थिति तथा उस समय की आर्थिक सम्पन्नता के विषय  
 में पर्याप्त सामग्री उपस्थित हो जाती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इन काव्यों  
 में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तीनों स्थितियों का एक साथ निरूपण हुआ  
 हो। भोज की शृंगारमंजरी<sup>कथा</sup> में समाज के निम्नतर की स्थिति का अधिक चित्रण हुआ  
 है। यद्यपि यह धारा नरेश भोज को रचना है किन्तु उनकी इस रचना से केवल कुछ नगरों  
 एवं कुछ राजाओं के नाम ही ज्ञात हो पाते हैं। तिलकमंजरी में काल्पनिक कथावस्तु है  
 अतः पात्र भी अधिकांशतः काल्पनिक हैं। उनके भी काव्य से राजनीतिक स्थिति के  
 विषय में इतना ज्ञान नहीं हो पाता जितना सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में।  
 गद्यचिन्तामणि में अल्प सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों की विवेचना अपेक्षाकृत  
 अधिक हुई है।

आर्थिक स्थिति का विवेचन सभी गद्य-काव्यों में प्रायः एक-सा हुआ है। इसका  
 कारण सम्भवतः भारतीय कवियों का आदर्शवादी दृष्टिकोण तथा अधिकांशतः राजाओं  
 के आश्रय में रहने के कारण आत्मसंतोष की भावना जैसा उनकी चाटुकारिता है। अतः  
 इस स्थिति के वर्णन में यदि अतिशयोक्ति मिलती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है  
 किन्तु कवियों की इस अतिशयोक्ति में भी गत्य का अंश रहता है। अतः उनके काव्यों से  
 उस समय की सम्पन्नता का भी कुछ अनुमान लाया जा सकता है।

इस दृष्टि से यदि कोई गद्य-काव्य महत्व नहीं रखते हैं तो केवल वाजुदेव की  
 रामकथा और ज्ञान्नाथ का आसफ-बिलास ही। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि  
 इस दृष्टि से उनके गद्य-काव्य को काव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि कवि का कार्य  
 ऐतिहासिक की भांति समस्त स्थितियों का निरूपण करना नहीं होता, उसका कार्य  
 काव्य में एक ऐसा सख्त आकर्षण लाना रहता है जिसमें पाठक लीन हो जाय और

वह विशेषता इन काव्यों में परिचित होता है ।

इस प्रकार सभी दृष्टियों से इन जर्वाचीन गद्य-काव्यों का विवेचना करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भोज, धनपाल, शोभ्यदेव तथा अभिनव मट्ट बाण की गद्य-कृतियाँ ऐसी हैं जिनमें बाण की-सी गद्य-कृतियों का गान्धर्व मिला है । यह अवश्य है कि कहीं-कहीं उनका समानत-भूयिष्ठ शैली यत्र तत्र उनके वर्णन-सौन्दर्य में बाधक हो जाती है । समासभूयिष्ठ शैली के जो दोष भोज और धनपाल का रक्ता में मिलते हैं वह वामनमट्टबाण की शैली में जोषाकृत रूप हैं । उन्होंने अपने काव्य में अशुद्ध शैली को प्रधानता दी है । उनके काव्य में इस प्रकार की शैली अधिकांशतः युद्ध आदि के प्रसंग में आयी है । वामनमट्ट बाण की यह कृति अन्य जर्वाचीन गद्य-कृतियों का अपेक्षा उत्कृष्टतर कही जा सकती है । जर्वाचीन गद्य कृतियों में वासुदेव और पंछिराज जगन्नाथ का स्थान सबसे भिन्न है । वासुदेव की रक्ता में बाण का किंबदन्ति प्रभाव नहीं है । उन्होंने सरल-सीधी शैली में राम की कृष्ण कथा को संक्षिप्त रूप में रक्ता है और पंछिराज जगन्नाथ ने जासकविलास जैसी कुछ पंक्तियों की उत्पन्न लघुकाय गद्य-काव्य कृति को प्रस्तुत करके उत्पन्न प्राचीन काल से अपने समय तक चले जाने वाली गद्य-काव्यों की परम्परा को एक नया मोड़ दिया है, एक नई दिशा दिखाई है जिसका प्रभाव परवर्ती गद्य-काव्य कृतियों पर यत्र-तत्र स्पष्ट आलोचक को भी बिना परिचित हुए नहीं रहेगा ।



## परिशिष्ट

### उदयसुन्दरी कथा-- गण-काव्य अथवा चम्पू

जहाँजहाँ गण-काव्यों में पद्यों की बहुलता को देखकर बहुत से विद्वान उदयसुन्दरी कथा को चम्पू काव्य होते हुए भी गण-काव्य मानते हैं। डॉ० डे ने पनपाल का तिलकमंज के आधार पर ही उदयसुन्दरी कथा को गण-काव्य बताया है। किन्तु गण-काव्य और चम्पू काव्य में शैली एवं विषय की दृष्टि से प्रभूत समानता होते हुए भी दोनों में अन्तर है। गण-काव्य में गण की प्रधानता रहती है, पद्य रहते भी हैं तो सीमित रूप में और वे कथा-विकास में सहायक नहीं होते हैं। अतः तिलकमंजरी की यदि देखा जाय तो उसमें पद्यों को उस प्रकार का स्थान नहीं मिला है जिन प्रकार का स्थान चम्पू-काव्य में होता है। तिलकमंजरी में आये हुए पद्यों से उसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। प्रारम्भ में जिन स्तुति, लाघु-वसाधु की विवेचना, कवि-प्रशंसा, अपना परिचय आदि तो श्लोक में ही ही इसके अतिरिक्त भी पद्यों के अर्थात्कृत रूप मिलते हैं --

चरित्रचित्रणात्मक पद्य-- राजा मेघवाहन की वीरता-वर्णन में चार श्लोक (पृष्ठ १६) तथा विष्णुबाहु के वर्णन में एक श्लोक (पृष्ठ ४०१) का प्रयोग हुआ है।

सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- राजा मेघवाहन की महिषी मदिरावती के नरसिंह वर्णन में एक श्लोक (पृष्ठ २३) हरिवाहन के द्वारा दृष्ट तिलकमंजरी के सौन्दर्य-वर्णन में दो श्लोक (पृष्ठ २४८), मलयसुन्दरी के नरसिंह वर्णन में दो श्लोक (पृष्ठ २५५), गन्धर्वद के सौन्दर्य-वर्णन में तीन श्लोक (पृष्ठ २६२) का प्रयोग है।

बारणा द्वारा उच्चारित पद्य-- बन्दी अपरधनरु हन्ध से मेघवाहन को पुत्र प्राप्ति के लिए ईश्वर की आराधना की और स्तूत करता है (पृष्ठ २८) तथा साथ-साथ बड़े हुए-तिलकमंजरी और हरिवाहन की जल-जल करने के लिए बारण जाया का पाठ करता है। (पृष्ठ २३२)

दृश्यों के वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- प्रकृति - वर्णन में एक पद्य (पृष्ठ २१२), एक स्थल पर रा का अन्त और सूर्य का उदय दिखाने के लिए छः दृशुल्लोक (पृष्ठ २३७) तथा दूसरे स्थ पर सात दृशुल्लोक (पृष्ठ ३५८-३५९) का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त एक श्लोक

होभाग्नि का वर्णन हुआ है । (पृष्ठ ३२६-३३०)

शुभकामना में प्रयुक्त पद्य-- एक श्लोक में गन्नानाग शुभकामना प्रष्ट करता है । (पृ० २४०)

भावों की अभिव्यंजना में प्रयुक्त पद्य-- तिलकमंजरी की वियोगावस्था का वर्णन दो श्लोकों में हुआ है । (पृष्ठ ३६१)

सन्देश भेजने में प्रयुक्त पद्य-- मलयसुन्दरी को मिले स्मरकेतु के पत्र में एक श्लोक ~~के~~ आया है ॥ (पृष्ठ ३३६) तथा तिलकमंजरी द्वारा भेजा गया सन्देश एक श्लोक में है । (पृ० ३६६)

इस प्रकार तिलकमंजरी में पद्यों की बहुलता है किन्तु इनमें से कोई भी ऐसा पद्य नहीं है जो कथावस्तु में सहायक हो । इनमें से कोई भी पद्य यदि छटा दिया जाय तो कथा के विकास में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती है । इसमें भावों की अभिव्यंजना के लिए केवल एक श्लोक का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार कवि का लक्ष्य गद्य के प्रयोग में अधिक है यत्र तत्र ही श्लोकों के प्रति कवि की रुचि उरिलक्षित हो जाती है ।

किन्तु क्या हम उदयसुन्दरी कथा में नहीं देखते हैं । इसमें पद्य को झोड़ देने पर उसके कथा-भाग को नहीं समझा जा सकता है । यहाँ कथा में सहायक होने वाले स्वाध पद्य नहीं अभिस्तु कई हैं । शुक के रूप के अतिरिक्त शुक को बीली जो पद्य में कहे गई है उसे बुनकर वसन्तशोच नामक वनगल को कौतूहल होता है और उसको पकड़ने के लिए वह प्रयत्नशील होता है । वही शुक राजा मलयवाहन को उदयसुन्दरी के विषय में बताता है जो काव्य का मुख्य विषय है । (पृष्ठ २८ )

पामर के द्वारा पकड़े जाने पर शुक भाग्य की विहम्बना को दो आर्या हर्दों में कहता है । जिसको बुनकर पामर फयमीत हो जाता है और जिस कार्य के लिए उसे पकड़ा था उस पर ध्यान न देकर उसे झोड़कर बल देता है । वह शुक वसन्तशोच के हाथ में पकड़ा है और राजा के पास पहुँच कर स्तुति सत्कार ~~पहुँच~~ पाता है एवं कथा आगे बढ़ती है । यदि भाग्य की विहम्बना से उम्बन्धित श्लोक न कहलाए जाते तो पामर उग शुक को घर से जाकर मार डालता और अपनी पत्नी को मिलाता और उसके बिना फिर उदयसुन्दरी का पता न चलता और कथा आगे नहीं बढ़ पाती । (पृष्ठ ३४)

शुक द्वारा की गयी राजा की स्तुति को बुनकर राजा को आश्चर्य होता है । कौतूहल के कारण राजा शुक से उसकी जीवनी पूछता है । शुक पूरी कहानी बताता है जो आगे चलकर नायक में नायिका के प्रति अनुराग पैदा करने का कारण होती है । पृ० ३६

मृगया प्रसंग का आरम्भ शुक के प्रस्ताव से होता है जो श्लोक में कहा गया है । पृ० ४

कुमारवाहन स्वप्न में पक्ष्मी आवाज़ सुनता है । यह उसकी शर्मा बहने के लिए प्रेरित करती है जिसने आकाश उदयसुन्दरी के बारे में पता चलता है । पृष्ठ ५०  
उदयसुन्दरी अपनी मनोव्यथा पद्य में व्यक्त करती है जिसकी सुनकर उषा को प्रिय सखी तारावती को दुःख होता है और वह उसकी शर्मा के दुःख के निवारणार्थ प्रयत्नशील होती है । पृष्ठ १०२

उदयसुन्दरी के वियोग में विश्वल राजा को प्रोत्साहित करने के लिए पद्य का प्रयोग हुआ है । पृष्ठ ११७

कवि का वर्णन कथावस्तु में सहायक है । अन्तर्गत वर्णन केवल पद्य में हुआ है । उसकी इन रूप में वैश्वर तथा उषा को नष्ट करते हुए वैश्वर (यह गद्य में) उनके पीछे मलयवाहन दौड़ता है और अकस्मात् उसका अनुसरण करने से देव वश उदयसुन्दरी को प्राप्त कर लेता है । पृष्ठ १२७

वन्दर के मनुष्यरूप में जाने का उल्लेख पद्य में हुआ है । मनुष्य रूप जाने पर राजा उसके बारे में पूछता है । उस पर वह अपनी कहानी कहते हुए बताता है कि उदयसुन्दरी को वह बराबर रक्षा करता रहा । पृष्ठ १३६

इसके अतिरिक्त उदयसुन्दरी कथा में कवि का उद्देश्य गद्य-काव्य का समान रूप से प्रयोग करना भी परिलक्षित होता है । क्योंकि उसने कई स्थलों पर जिस उत्साह से गद्य वर्णन किया है उसी उत्साह से पद्य में किया है ।

पृष्ठ ४ पर अर्जुन कालादित्य के युद्ध का वर्णन जिस उत्साह से गद्य में हुआ है उसी उत्साह से अर्जुन कालादित्य का युद्ध-वर्णन पृष्ठ ७ पर पद्य में हुआ ।

प्रतिष्ठान नगर का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में है । पृष्ठ १२

इसी प्रकार राजा मलयवाहन की तलवार का वर्णन दोनों में है । (पृष्ठ ४१) युद्ध के माध्यम से कवि ने अपनी राजभक्ति गद्य-पद्य में प्रदर्शित की है जब युद्ध उसकी वीरता से शत्रु के बीच होने वाली दशा का वर्णन करता है । पृष्ठ ४१-४२

मुनया के लिए तत्पश्चात् बाण चढ़ाये राजा का वर्णन कवि ने गद्य-पद्य दोनों में किया है । मुनया के समय जानवरों की स्थिति का वर्णन गद्य में तथा उनके कव का वर्णन पद्य में किया गया है । पृष्ठ ४३

१- दो कालादित्य भाई-भाई हैं । अतः दोनों का भेद कताने के लिए अर्जुन और अर्जुन प्रयोग किया गया है । यद्यपि युद्ध-वर्णन के प्रारंभ में अर्जुन अर्जुन नहीं प्रयुक्त हुआ परन्तु वर्णन से पता चलता है कि पहले अर्जुन कर्मपाल से लड़ने गया फिर अर्जुन उसी से लड़ने

रात्रि का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से हुआ है और दोनों में काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है । पृष्ठ ७२-७३

नवीन कल्पना के साथ चन्द्रोदय का वर्णन गद्य-पद्य में है (पृष्ठ ७३) युद्ध में राजा जीरराजास के संबोध (पृष्ठ ८०) अज्ञान का वर्णन (पृष्ठ ६०-६१), पाताल लोक एवं उसके इन्दीवर नामक नगर का वर्णन (पृष्ठ ६३-६४) और उदयसुन्दरी के काम-विकारों का वर्णन (पृष्ठ ६६-६७) दोनों में ही हुआ है । वर्षाकाल का उद्दीपन रूप दोनों में वर्णित है किन्तु गद्य में कवि का उल्हास अधिक परिलक्षित होता है अपेक्षाकृत पद्य के । पद्य को दो पंक्तियों में गद्य में वर्णित विषयों की पुनरावृत्ति और दो पंक्तियों में वर्षाकालीन वायु का वर्णन है । पृष्ठ १०३

अस्मात् उदयसुन्दरी के गायब हो जाने पर तारावली वितर्क करती है उसकी गद्य-पद्य दोनों से वर्णित किया गया है दोनों रूप एक दूसरे से बढ़कर हैं । पृष्ठ १०६

राम-रावण युद्ध के प्रसंग गद्य-पद्य में है । गद्य को पुनरावृत्ति पद्य में नहीं है । पृष्ठ १०१  
प्रभातकालीन कार्यों एवं वायु का वर्णन गद्य के माध्यम से पृष्ठ ११४ में और चन्द्रास्त और सूर्योदय का वर्णन पद्य के माध्यम से पृष्ठ ११५ में हुआ है ।

इसी प्रकार ब्रह्मन्तर्गु का उद्दीपन रूप (पृष्ठ १२१-१२२) , तड़ाग का लौन्दर्य वर्णन (पृष्ठ १२६-३०), उदयसुन्दरी का वर्णन (पृष्ठ १३३-३४) दोनों में है ।

सूक्ष्म उदयसुन्दरी को राजा अपने हाथ से पकड़ता है यह गद्य में और उसकी सूक्ष्मा के पुर होने का वर्णन पद्य में है । यह वर्णन बड़ा नाटकीय एवं भावपूर्ण है --

तथापि पुनस्ती मणिर्यथा कायपरिवर्तनविकारमपहरति तथा सूक्ष्मादिव्यागायहरोऽपि जायत इत्याकृतसत्त्वसुत्याय गृहीत्वा च तं मणिं तद्गर्भितेन पाणिना सुकृतसुदयसुन्दरीं करे क्राह ।

ब्रह्मान्तरिभगिति तस्य मणैः प्रसंगा-

सूक्ष्मसूक्ष्मसुप्रविशोचनाऽसौ ।

केगोत्थितापुतकराग्रमर्गःप-

मग्रे मरेऽग्रमवनिविलकं ददर्श ॥ पृष्ठ १३७

राज्य में पहुँचने पर शिवाजी की वृत्ता का एवं उनके सत्कार का वर्णन गद्य में है तो राजधानी के उत्सव का वर्णन गद्य-पद्य दोनों में समान रूप से है । पृष्ठ १४६-१४७

प्रकृति-वर्णन में पद्य— प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्ध दिखाने में पद्य का प्रयोग हुआ है।  
सन्ध्या के समय आकाश में लालिमा उदित होती है मगर त्वर राजा के हृदय में अनुराग  
उदित होता है। पृष्ठ ७१

फैली हुई बन्धकार का वर्णन (पृष्ठ ७२) रात्रि का वर्णन, उसके अंकार में  
बूझों का अनुमान, अँत चरों पर अमिलारिकाओं का जाना (पृष्ठ ७२-७३), चन्द्रोदय  
(पृष्ठ ७३), चन्द्रोदय तथा सूर्योदय का वर्णन (पृष्ठ ११५), तथा शुक (पृष्ठ १०३), चन्द्र  
शुक का उदोक्त रूप (पृष्ठ २६, १२१-१२३) तथा तड़ाग का वर्णन पद्य में ही है।

इस काव्य में पद्यों में गद्य को पुनरावृत्ति मिलती है। रावण के मरने की बात गद्य  
में कही जा चुकी है उसी को पुनः पद्य में कहा गया है। विभाषण का प्रयोग भी पुनः  
पद्य में आया है। पृष्ठ (८५) वषाँ शुक के उदीपन वर्णन में वषाँ पद्य की दो पंक्तियों  
में गद्य को पुनरावृत्ति है। (पृष्ठ १०३)

गद्य में वर्णित कृतकालीन वायु को पुनरावृत्ति पद्य में है। (पृष्ठ १२२)

उदयकुन्दरी के कार्यक्रम को पुनः संक्षेप में पद्य में कहा गया है। (पृष्ठ १३५)

इसके अतिरिक्त इस काव्य में चरित्र-चित्रणात्मक पद्य, स्तुतिपरक पद्य, वर्णनात्मक  
पद्य, सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य तथा भावों की अभिव्यक्ति में भी पद्यों का प्रयोग  
मिलता है।

चरित्रचित्रणात्मक पद्य— बन्दी ने राजा का गुणगान जो गद्य में गाया है उसकी स्तुति  
भी कहा जा सकता है, राजा के चरित्र-चित्रण में सहायक है। उसकी सुनकर राजा  
करुणागढ़ होकर बन्दी धर्मपाल (बन्दी) को छोड़ देता है। पृष्ठ ७

राजा के प्रति शुक का जो भक्ति भाव वर्णित हुआ है वह राजा के पराक्रमी  
स्वरूप को बताता है। पृष्ठ ५१

कलिन्दकेतु का यश एवं तलवार का वर्णन पद्य में अंकार के साथ सुन्दर ढंग से हुआ  
है। पृष्ठ ५५ मलयवाहन के पराक्रम एवं उसकी विद्वता, वीरता एवं यश का वर्णन (पृष्ठ २३-२४)  
एवं मन्त्री विभूतिवह्न के गुणों का वर्णन पद्य में हुआ है। (पृष्ठ २५)

स्तुतिपरक पद्य— शंकर एवं पूर्ववर्ती कवियों की स्तुति (पृष्ठ १-३) सरस्वती (पृष्ठ १४, १६),  
कात्यायिनी (पृष्ठ ६१) शंकर (पृष्ठ ६५), तथा दुर्गा (पृष्ठ ६२) की स्तुति पद्य में है।

भाग्य की विद्वम्बना में प्रयुक्त पद्य— शुक का कहना जिसकी सुनकर वसन्तशील वाश्वर्यानि  
होकर पकड़ने के लिए प्रयत्नशील होता है। (पृष्ठ २८)

नियति पर शुक की बोली को सुनकर पामर भयनीत होकर उसे छोड़ देता है। पृष्ठ ३३

कुमारकेसरी को झुक होने का शापमिलने पर कुमारकेसरी का भारी कोपकला का कल देना पद्य में है । (पृष्ठ ६६)

वर्णनात्मक पद्य-- प्रतिष्ठान नगरी (पृष्ठ २१), नन्दाकट नगर के उपवन (पृष्ठ २७), सुगया (पृष्ठ ४३-४४), स्वज्ञान वर्णन (पृष्ठ ६०-६१), पाताल लोक एवं उसके सुन्दरी नामक नगर का (पृष्ठ ६३-६४) तथा उदयसुन्दरी के वियोग में दुःखित राजवानी का वर्णन (पृ० १०७) में पद्य का प्रयोग हुआ है ।

सौन्दर्य-वर्णन में प्रयुक्त पद्य-- उदयसुन्दरी का वर्णन (पृष्ठ ५३, ६६, १३३-३४, १४०-१४१) उन्हीं में है ।

भारती की अभिव्यञ्जना में प्रयुक्त पद्य-- राजा के प्रति झुक का भक्तिभाव (पृष्ठ ५१) तथा उदयसुन्दरी के काम-विकारों का वर्णन (पृष्ठ ६६, १०१) उन्हीं में है । मायाकल नामक राधास अपनी वीरता का परिचय औजस्य, वक्तव्य के साथ प्रसादमयी शैली में देता है (पृष्ठ ८६) । अकस्मात् उदयसुन्दरी के गायब हो जाने पर तारावली के मनोभावों की अभिव्यञ्जना में पद्य का प्रयोग हुआ है । (पृष्ठ १०६) उन्हीं प्रकार उदयसुन्दरी के दुःख में दुःखित राजवानी की वशा का वर्णन (पृष्ठ १०७), राधासों का शोक (पृष्ठ १११), राजा मलयवाहन उदयसुन्दरी के बारे में जो कुछ सोचता है उन्का वर्णन (पृष्ठ ११६) चित्र दर्शन के पश्चात् अकस्मात् आपस में मिलने से उत्पन्न होने वाले नायक-नायिका के मनोभावों की सुन्दर अभिव्यञ्जना (पृष्ठ १३७) तथा विशाधर ताराकिरीट के मन में उदयसुन्दरी को देखकर उठे हुए विचारों का वर्णन (पृष्ठ १४०) पद्यों में ही है ।

उदयसुन्दरी में जहाँ पद्यों की इतनी बहुलता है वहाँ उन्में गद्यों के उत्कृष्ट नमूनों की कमी नहीं है । कवि ने काव्य-प्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग से उसे ललित रूप दिया है । इस प्रकार जो काव्य में पद्य और गद्य दोनों का ही सुन्दर रूप देखने को मिलता है और दोनों ही कथावस्तु में सहायक है । पद्यों की इतनी बहुलता तथा कथावस्तु में सहायक होने वाले पद्यों का प्रयोग तिलकमंजरी में नहीं है । अतः डा० के उदयसुन्दरी क्या ही गद्य-काव्य मानने का जो तर्क देते हैं कि उन्में पद्य का वही स्वतन्त्र एवं अधिक प्रयोग नहीं है वही वाच्य में देखा जाता है -- ठीक नहीं प्रतीत होता ।

डा० के ही नहीं, कई विद्वान् जो गद्य-काव्य मानने के पक्षपाती हैं किन्तु वे इन्को देखा मानने में कोई समुचित प्रमाण नहीं देते । स्व० कृष्णमाचार्य लोहड़ल के सुन्दर विचार कल्पना एवं भावों की अभिव्यञ्जित के कारण उन्में गद्य-काव्यकारों में प्रथम स्थान देते हैं<sup>१</sup> ।

१- २० हि० आफ् सं० लि०-- स्व० कृष्णमाचार्य पृष्ठ ४७६





अपनी जानकी एवं लिखने की प्रेरणा का उल्लेख किया है । बत्थराज द्वारा कथित जाया को सुनकर कवि चम्पू काव्य को रचना करने के लिए नीचता है --

.... करोमि स्वशक्तिवित्तरमरोक्षणं विनाः कुतूहलेन भूरिणा च कार्त्तुरभिलाषेण  
 आरभुतापूर्वकं विधानं कमेकरानुबन्धपरं प्रबन्धम् । प्रथमे तु स्मरणोपं न नाम केवलं गयं नापि  
 केवलं पद्मभयानुबन्धिनो चम्पूरेव श्रेयसो, यस्मादन्यैव रत्नीविभक्तिवत्स्य शोभा क्तक्युचणस्य  
 अन्यैवपाटलामिश्रितस्य सौरमं विवक्तिगुलुहस्य, अन्य एव वंशध्वनिगमितस्य मनोधासिमा  
 गीतस्य, अन्यैव कर्पूरमिश्रितस्य शैत्यं मलयजद्रवस्य, अन्यैव च हुक्ता पत्तानुर्धमिणी  
 गयत्येति वेतसि विचिन्त्य चम्पूमेव कथां कर्तुमुपजनितनिश्चयस्तद्विद्वन्मतिवाच्याचक्रे ।<sup>२</sup>

प्रथम उच्छ्वास में मत्थर मूर्ति से मनुष्य का रूप धारण करने वाले तिलक तालक नामक युवकों से कवि ने स्वयं कहलयाया है --

कुतूहलेन संभूतगर्भायां सुगुणदरिद्रायां यदाचि जातेयमात्मजा चम्पूः ।

तालक जब अपने मित्र तिलक के (जो पूर्व में बाण था) शपथ से उद्धार की कहानी सोइहल को सुनाता है तो इस रक्ता के विषय में चम्पू ही कहता है --

"यदा हि क्वैः सोइहलस्य कृतिरपूर्वं उदयसुन्दरीति चम्पूप्रबन्धस्तमितिः सुत्यावधारि-  
 ष्यति तदाकृत्य सायान्ता इति ।"

मधुरमाहार नामक मठ कवि सोइहल के पास जाकर कहता है --

"मोः क्वीन्द्र । मवता उम्प्रत्यैव कृता चम्पूरुदयसुन्दरीति कथा ।"

काव्य के जन्म में मो कवि ने उसे चम्पू ही बताया है --

"जयति जयति वासावत्र चम्पूकथायां"

शिवनुतिफम्पू(गा) हन्त सारस्वतश्रीः ।

जॉर पुष्पिका में स्पष्ट शब्दों में कवि ने कह दिया है --

॥साज्यसुदयसुन्दरीकथाचम्पूः ॥"

ज्ञातः कवि ने अपने इस काव्य में जो बीच-बीच में 'कथा' शब्द का प्रयोग किया है वह गद्य-काव्य के रूप में 'कथा' से सम्बन्धित न होकर कहानी से ही है । ज्ञातः ज्ञा

- १- उदयसुन्दरी कथा पृष्ठ १३
- २- " " " " पृष्ठ १८
- ३- " " " " पृष्ठ १५१
- ४- " " " " पृष्ठ १५४
- ५- " " " " पृष्ठ १५८
- ६- " " " " पृष्ठ १३, २०, १५४ ।



काव्य को चम्पू काव्य मानना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। 'उदयसुन्दरी कथा' को भूमिका-लिखने वाले पं० कृष्णमाचार्य ने इसे 'चम्पू' काव्य ही माना है -- 'अथ गद्य-प्रधिष्ठस्य चम्पूप्रबन्धस्य प्रणेता कविः सोऽहो नाम्नाः १' अथ च चम्पूप्रबन्धः परिशील्य-मानः पुराङ्गं गुर्जरदेशो... महाकवीनामास्पृशमभुदित्यस्यमपति २।

पं० कृष्णमाचार्य के अतिरिक्त श्री श्री० वरदाचार्य, पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय, डा० शान्तिकुमार नूनाराम व्यास, तथा रामबिहारीलाल शास्त्री ने इसमें गद्य-गद्य दोनों का समान रूप मिलने के कारण इसे चम्पू काव्य बताया है।

हंसराज अग्रवाल ने भी इसे चम्पू काव्य माना है। यद्यपि उन्होंने स्पष्ट रूप से ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दिया है किन्तु चम्पू के रूप का विवेचना करते समय जो उन्होंने गद्य-गद्य का कथावस्तु में सहायक होना बताया है, सम्भवतः बड़ा आधार प्रतीत होता है।

दिजेन्द्रनाथ शास्त्री, राम जी उपाध्याय तथा पार्श्वनाथ विद्वानों में २०वीं कीर्ति ने भी इसे चम्पू काव्य ही बताया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बहुत से विद्वान् जहाँ इस काव्य को गद्य-काव्य मानने के पक्षपाती हैं वहाँ उसे चम्पू-काव्य मानने के भी पक्षपाती हैं। किन्तु इस काव्य को गद्य-काव्य मानने की अपेक्षा चम्पू काव्य मानना अधिक संगत बैठता है।

- 
- १- उदयसुन्दरी कथा--भूमिका-- पं० कृष्णमाचार्य पृष्ठ १  
 २- " " " " " " पृष्ठ ८  
 ३- २० हि०शाफ सं० लिटि०-- श्री० वरदाचार्य पृष्ठ ११६  
 ४- संस्कृत डा० की हंसराज-- पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय और डा० शान्तिकुमार नूनाराम व्यास पृष्ठ ३५०  
 ५- सं०शा०का सुबोध इति--रामबिहारीलाल शास्त्री, वैदकीय पृष्ठ १६२  
 ६- संस्कृतसाहित्यतिहासः द्वितीयभागः पृष्ठ २५  
 ७- सं०शा० विमर्श-- दिजेन्द्रनाथ शास्त्री पृष्ठ ६२२  
 ८- सं०शा० का आलोचनात्मक इति०--रामजी उपाध्याय पृष्ठ १७६  
 ९- हि०शाफ सं०लिटि०-- २०वीं कीर्ति पृष्ठ ३३६

## संक्षिप्त नामावली

---

जभि० भा०	-- जमिनव भारती
जग्नि० का०शा०भा० अ० उ०	-- जग्निपुराण काव्य शास्त्रीय भाग
का०सु० वृ०	- अष्टम उल्लास
का० प्र०	-- काव्यसूत्रवृत्ति
काव्या०	-- काव्यप्रकाश
कला०सं०लि०	-- काव्यालंकार
ग० का० भी०	-- क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर
ग० का० का वि०	-- गद्य काव्य मीमांसा
ग०चिं०	-- गद्य काव्य का विकास
तिलक०	-- गद्यचिन्तामणि
दशकुमार०	-- तिलकमंजरी
ध्वन्या०	-- दशकुमारचरितम्
नि०सा० प्रे०	-- ध्वन्यालोक
पं०का०सं० प्र० परि०	-- निर्णय सागर प्रेस
प्र०सं० प्र० उ०	-- पं०किशोर काव्य संग्रह
मा०का०शा०सु०	- प्रथम परिच्छेद
व०जी०	-- प्रथम लम्ब
वैम०	- प्रथम उद्योत
श्लो०सं०	-- भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका
शृंगार०	-- मञ्जीवित जीवितम्
सं०सा० का इति०	-- कैमभूपालचरितम्
सं०सा० वि०	-- श्लोक संख्या
सं० ग० शै० का वि०	-- शृंगारमंजरी कथा
सं०लि०	-- संस्कृत साहित्य का इतिहास
सं०सि०टी०	-- संस्कृत साहित्य किर्ति
सं० नाटककार	-- संस्कृत गद्य शैली का विकास
	-- संस्कृत लिटरेचर
	-- संस्कृत हिन्दी टीका
	-- संस्कृत नाटककार

(अ)

- सां० ६० -- माहित्य दर्पण  
हि० आफ० मं० लिट० -- हिन्दी आक० संस्कृत लिटरेचर  
हि० आफ० कला० सं० लिट० -- हिन्दी आक० अलौकिक संस्कृत लिटरेचर  
हि० आफ० सं० पौयटिकल -- हिन्दी आक० संस्कृत पौयटिकल

(०)

ग्रन्थ - सूची

कलकत्ता, कलकत्ता

(८)

शास्त्रीय ग्रन्थ - सूची

कलकत्ता, कलकत्ता

- अलंकार रत्नसमूह -- टीका- जयराम शंभरुं गुर्गाडाय, बम्बई १८८३
- अलंकार संग्रह -- अतानन्दमोगिन बाधार पुस्तकालय १९६६
- अलंकारसंग्रह -- कैशवमिश्र, काव्यमाला ५० बम्बई १९२६
- अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग-- अनु० रामलाल कर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिंगहाउस  
दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५६ ।
- काव्यलक्षण (काव्यादर्श) रत्न श्री टीका, मिथिलाविद्यापीठ प्रधानेन प्रकाशित १९५७
- काव्यादर्श -- प्रेमचन्द्रतर्कवागीश विरचित टीका, सं० सुन्दरजय राय, प्रकाशक  
संतोषकुमार सेन, जेलियाटोला स्ट्रीट, फल्गुना-६, १९५६ ।
- काव्यप्रदीप -- प्रकाशक- पानुदुरंग जीवा शो, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३  
तृतीय संस्करण काव्यमाला २४ ।
- काव्यानुशासन -- ऐमचन्द्र वैतल्लु १ श्री महावीरजय विद्यालय, बम्बई, प्रथमावृत्ति  
वि० १९६४ ख्रिस्ताब्दा १९३८ ।
- काव्यालंकार -- नामह- बालमनोसा सिरीज नम्बर ५४ सन् १९५६
- काव्यमीमांसा -- राजेश्वर, अनु० पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, विहार राष्ट्रभाषा  
परिषद् पटना, प्रथम संस्करण सन् १९५४ ।
- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति -- वामन, व्याख्या० विश्वेश्वर, सं०डा० नगेन्द्र, बात्माराम एण्ड  
सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६, १९५४ ।
- काव्यालंकार सारसंग्रह -- उद्दमट-हन्द्रराज विरचित छुट्टीटीका, प्रथमावृत्ति १९२५ ।
- काव्यालंकार-संग्रह रुद्रट - नामिसाधु बम्बई काव्यमाला २, १९२८ ।
- काव्यानुशासन -- कै०सु० वाग्पट्ट बम्बई १८८४ ।
- काव्य प्रकाश -- मम्मट-फलीकर टीका पन्थीयसंज्ञावृत्ति, ख्रिस्ताब्दा १९५०
- काव्य प्रकाश -- धर्मिणीशिला व्याख्योपेतः टीकाकार, डा०सत्यव्रत सिंह,  
बीलम्बा विद्यामवन, नारायण-१, १९५५ ।
- चन्द्रालोक -- जयदेव, टीकाकार प्रेमचन्द्र
- चन्द्रालोक सावलीक्य -- चन्द्रकला हिन्दी व्याख्या सहित, व्या०डा० मोलारंकर व्यास  
बीलम्बा, विद्यामवन, धाराणशी-१, सं० २०११

(क)

- ध्वन्यालोक लोकावलि -- बालप्रिया टीका, काशी संस्कृत विरोज ग्रन्थालय १९५५  
चीतम्बा, संस्कृत विरोज आफिस, काशी सन् १९४० ।
- ध्वन्यालोक काव्यालोक २५ -- डॉ० पं० दुर्गाप्रसाद, निर्णय सागर प्रेस बम्बई १९६१ ।
- हिन्दी ध्वन्यालोक -- व्याख्याकार डा० विश्वेश्वर सं० डा० नगेन्द्र, गीता प्रेस  
दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५२ ।
- दुर्गा प्रकाश -- डॉ० जी० जार० जोसायर, प्र० जी० एस० जोसायर कौन्सिल  
प्रेस, १०० फीट रोड, मैसूर १९५५ ।
- रत्न गंगाधर -- पं० छिन्नराज जान्नाथ, चन्द्रिका संस्कृत हिन्दी व्याख्या-  
पेतः, चीतम्बा विद्याभवन, बीक, काशी सन् १९५५ ।
- वाग्भट्टाचार्य -- वाग्भट्ट-ईश्वरदत्त और दयाल सिंह की प्राज्ञ मनोरंजनी  
टीका, लाहौर ।
- सरस्वती कण्ठाभरण -- मौज- रत्नदर्पण टीका सहित जैन प्रभाकर नामक  
मुद्रालाय सं० १९४९, काशी ।
- साहित्य दर्पण -- विश्वनाथ, विमला व्याख्या, द्वितीयावृत्ति
- हिन्दी अभिनव भारती -- अभिनवगुप्त- सं० डा० नगेन्द्र, व्या० डा० विश्वेश्वर,  
प्रथम संस्करण १९६० ।
- हिन्दी कौञ्जिकवित्तम् -- व्या० डा० विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र, काश्मोरी  
गेट, दिल्ली ६, सन् १९५५ ।

(ख) सामान्य ग्रन्थ

- संस्कृत साहित्य किमर्थं -- द्विवेन्द्रनाथ शास्त्री, भारती प्रतिष्ठान, मेरठ १९५६
- संस्कृत साहित्य की रूपरेखा -- पं० चन्द्रशेखर माण्डेय और डा० शान्तिशुमार नूनाराम  
व्यास, चतुर्थ संस्करण १९५५ ।
- संस्कृत साहित्य का कुक्षीय इतिहास -- रामविहारीलाल शास्त्री, वैदिकीय, प्रथम संस्करण
- संस्कृत साहित्य इतिहास: द्वितीयभाग: -- <sup>हंसराज अग्रवाल</sup> शक्ति प्रकाशन, माड्रिस्टाउन, लुधियाना १९५९
- संस्कृत साहित्य का इतिहास -- वाग्भट्टाचार्य नदीला, चीतम्बा, विद्याभवन, काशी सन् १९६० ।
- संस्कृत साहित्य का इतिहास -- पं० कल्लेय उपाध्याय, १९५८
- संस्कृत साहित्य का आर्योचनात्मक इतिहास -- राम जी उपाध्याय, विद्याभवन, काशी

अध्यायी जी का जीवन

-- राजप्राग टोका, काशी संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थालय १३५  
 श्रीरामा, संस्कृत विद्यापीठ काशी, कारका १९४० ।

अध्यायी का जीवन

-- डॉ० दुर्गाप्रसाद, निर्णय जगर प्रेस पन्ना १९६१ ।

विश्वनाथ का जीवन

-- आशाशारका डॉ० विश्वेश्वर डॉ० डा० नौन्द, गीता कु  
 लियो, दिल्ली, प्रका संस्करण, १९५२ ।

गार प्राग

-- श्री० डा० जोसावर, प्र० जोसावर जोसावर कौरीनेशन  
 प्रेस, १०० फीट रोड, मैसूर १९५० ।

राजीव --

-- पंडितराज ज्ञानाथ, चन्द्रिका संस्कृत विद्या व्याख्या-  
 गेता, श्रीरामा विद्याभवन, काशी, कारका १९५५ ।

काशीदास

-- वाग्भट्ट-विश्वनाथ जीर ब्याल सिंह का प्राज्ञ मनोरंजना  
 टोका, लाहौर ।

राजीवकाश्याभरण

-- पी० रत्नदपेण टोका सहित जैन प्रभाकर नामक  
 मुद्रिताका डॉ० १९४३, काशी ।

काशीका दर्शन

-- विश्वनाथ, विमला व्याख्या, शिवाजीवाणी

विश्वनाथ का जीवन काशी

-- अभिनवकुशा- डॉ० डा० नौन्द, व्याशा० विश्वेश्वर,  
 प्रका संस्करण १९६० ।

विश्वनाथ का जीवन काशी

-- व्याशा० विश्वेश्वर, डॉ० डा० नौन्द, काशी  
 गेट, दिल्ली ६, १९५५ ।

### (३) सामान्य ग्रन्थ

संस्कृत साहित्य काशी

-- विज्ञाननाथ शास्त्री, भारती प्रतिष्ठान, मैसूर १९५६ ।

संस्कृत साहित्य का जीवन

-- डॉ० चन्द्रशेखर भाणेश्वर जीर डा० शान्तिशार नूनाराम  
 व्यास, चतुर्थ संस्करण १९५५ ।

संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास-- रामबिहारीलाल शास्त्री, वेदतोषी, प्रका संस्करण

संस्कृत साहित्य इतिहास: द्वितीयभाग:-- <sup>एस राज अग्रवाल -</sup> शक्ति प्रकाशन, माडलटाउन, लुधियाना १९५२

संस्कृत साहित्य का इतिहास -- वाग्भट्ट गौरीलाल, श्रीरामा, विद्याभवन, कारका १९६० ।

संस्कृत साहित्य का इतिहास -- डॉ० कलदेव उपाध्याय, १९५८

संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास -- राम जी उपाध्याय, विद्याभवन १९६८,